हिंदू वाल्मीकि जाति

एक गौरवशाली इतिहास के
पतन का सिंहावलोकन

(विदेशी आक्रांता मुसलिम शासकों द्वारा बलपूर्वक बनाई गई वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी, मखियार, मेहतर एवं रुखी सफाईकर्मी स्वाभिमानी एवं धर्माभिमानी हिंदू जातियों का ऐतिहासिक तथ्यात्मक अनुशीलन)

डॉ. विजय सोनकर शास्त्री

वास्तव में वाल्मीकि समाज के राजवंशीय एवं गौरवशाली इतिहास को बलपूर्वक कमरे में बंद तो कर दिया गया किंतु कमरे की खिड़कियों एवं झरोखों से आज भी वह दिख रहा है। डिप्रेस्ड क्लास यानी दलित शब्द 1931 की जनगणना में सर्वप्रथम प्रयुक्त हुआ, तत्पश्चात् यह सामान्य रूप से प्रयोग होता रहा।

दलित संवर्गीय वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज में कुल 624 उप-जातियाँ हैं। विदेशी मुगल, तुर्क एवं मुसलिम आक्रांता शासकों के भारी दबाव के बाद भी इसलाम स्वीकार न करने के कारण कट्टर हिंदुओं के हिंदू धर्माभिमान एवं स्वाभिमान को ध्वस्त करने के लिए उन्हें बलपूर्वक तलवार की नोक पर अस्वच्छ (सफाई एवं मैला ढोने) जैसे कार्यों में लगा दिया गया था। उन स्वाभिमानी लोगों ने मैला ढोना स्वीकार किया, किंतु इसलाम को ठुकरा दिया।

धर्म एवं राष्ट्रहित के समक्ष स्वहित का बलिदान करने वाली वर्तमान हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जातियों का मध्यकालीन काली रात्रि के पहले की हृदय विदारक एवं मर्मस्पर्शी घटनाएँ इस पुस्तक का सार हैं। वास्तव में यह पुस्तक सारगर्भित इतिहास लेखन के मानदंड के अनुरूप लिखे इतिहास का एक उदाहरण है। इस पुस्तक से हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियों के साथ-साथ दलित संवर्गीय हजारों जातियों को धर्म एवं देश के नाम पर मर-मिटने का विराट् गौरव-बोध होगा।

हिंदू वाल्मीकि जाति

हिंदू वाल्मीकि जाति

एक गौरवशाली इतिहास के पतन का सिंहावलोकन

(विदेशी आक्रांता मुसलिम शासकों द्वारा बलपूर्वक बनाई गई वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी, मखियार, मेहतर एवं रुखी सफाईकर्मी स्वाभिमानी एवं धर्माभिमानी हिंदू जातियों का ऐतिहासिक तथ्यात्मक अनुशीलन)

डॉ. विजय सोनकर शास्त्री

एम.बी.ए, पी-एच.डी. (शास्त्री उपाधि)

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

ISO 9001:2008 प्रकाशक

प्रकाशक • **प्रभात प्रकाशन**
4/19 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002
सर्वाधिकार • सुरक्षित
संस्करण • 2016
मूल्य • पाँच सौ रुपए
मुद्रक • नरुला प्रिंटर्स, दिल्ली

HINDU VALMIKI JATI

by Dr. Bizay Sonkar Shastri — Rs. 500.00
Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road, New Delhi-2
e-mail: prabhatbooks@gmail.com — ISBN 978-93-5048-566-8

आमुख

सामाजिक समरसता आज भारत के लिए ही नहीं अपितु संसार के लिए एक चुनौती बनी हुई है। यदि हमारे देश में जातिगत भेदभाव, ऊँच-निम्न के भेद के साथ सवर्ण एवं अवर्ण चिंतनयुक्त व्यवहार परिलक्षित है, तो संसार के अन्यान्य देशों में भी रंगभेद एवं अभिजात्य वर्ग तथा निर्धनता की खाई में बँटे हुए समाज का स्वरूप स्पष्टरूपेण दृष्टिगत है। विशेष रूप से हमारे देश में हजारों जातियों की आंतरिक संरचना पर आधारित हिंदू समाज में कुछ जातियों के प्रति त्रुटिपूर्ण व्यवहार खेदजनक है। मानवीय व्यवहार के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत की दृष्टि से चिंतन में भी यह तथ्य उजागर होता है कि हिंदू समाज में कुछ जातियों के निम्न होनें संबंधित तथ्य अनावश्यक हैं। तिरस्कार, भेदभाव अथवा दुर्भावना तो उनके प्रति होती है जिनसे कभी व्यक्ति की अंतररात्मा चोटिल हुई होती है, किंतु वर्तमान अनुसूचित जातियों के प्रति तिरस्कार, घृणा, भेदभाव एवं ऊँच-निम्न की भावनायुक्त व्यवहार के पार्श्व में ऐसे तथ्य नहीं पाए जाते हैं। कम-से-कम तथाकथित सामान्य वर्ग की जातियों एवं अनुसूचित वर्ग की जातियों के मध्य इस प्रकार का टकराव एवं तनावपूर्ण सामाजिक संरचना तो नहीं थी। सतयुग, त्रेता, द्वापर इत्यादि युगों में सुर-असुर समुदायों के मध्य सर्वदा असामान्य संबंध था, किंतु हिंदू समाज के चतुर्वर्ण संरचना में भी किसी वर्ण का आपस में तनाव अथवा टकरावपूर्ण आंतरिक संबंध का उल्लेख नहीं मिलता है। इसलिए वर्तमान अनुसूचित जातियों के प्रति अकारण तिरस्कार, भेदभाव एवं अस्पृश्यतायुक्त व्यवहार इत्यादि विषयों पर गहन चिंतन की आवश्यकता है।

हिंदू समाज की आंतरिक संरचना के समाजशास्त्रीय विश्लेषण से भी यह प्रश्न उठता है कि आपस में एक तरह की संस्कृति, एक तरह का धार्मिक क्रियाकलाप एवं एक ही तरह की आर्थिक, सामाजिक सौष्ठवयुक्त संरचना की वाहक हिंदू लोकजीवन में इतना भेद कब, कैसे और क्यों उत्पन्न हो गया? हिंदुओं का आपस में व्यक्तिगत एवं सामाजिक आधार पर इतना अस्वाभाविक, अप्राकृतिक, अतार्किक

एवं अवैज्ञानिक विभाजन कैसे हुआ? आज प्रबुद्धजनों, सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं राजनीतिक क्षेत्रों में कार्य करनेवाले बंधुओं को इन प्रश्नों का उत्तर देने, उनके सेवा एवं अन्यान्य क्रियाकलापों को संपन्न करने एवं समय-समय पर उनके निर्णय क्षमता की गुणवत्ता के लिए आवश्यक भी है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन निस्वार्थ व्यवहार चिंतन पर स्वार्थयुक्त चिंतन की विचारधारा क्रमशः प्रभावी होती चली गई और लोगों ने स्वार्थ एवं स्वहित में लोक एवं राष्ट्र-चिंतन को परे कर दिया। घटना-दुर्घटना के मध्य कालचक्र सर्वदा गतिशील रहकर अतीत, वर्तमान एवं भविष्य का स्वाभाविक स्वरूप रचता है। हमारे यहाँ अतीत की दुर्घटनाओं को स्वार्थ के दायरे में रखकर अग्रसारित कर दिया गया है। आज देश के संपूर्ण प्राचीन इतिहास का प्रस्तुत स्वरूप हिंदूविरोधी शक्तियों के कुकृत्यों का शिकार हो स्वयं हिंदू समाज के सेकुलर चिंतकों को ही भ्रमित किए हुए है।

जातियों की संकल्पना पर आधारित हिंदू समाज में लगभग साढ़े छह हजार जातियाँ हैं। वाल्मीकि अथवा सुदर्शन समाज उनमें एक है। हिंदू जातियों में व्यवसाय की विशेषतायुक्त अवधारणा में इन जातियों का संबंध सफाई-कर्म से है, किंतु प्रस्तुत पुस्तक में सफाई-कर्म का संगठित व्यवसाय के रूप में पहचान का समय मध्यकाल निर्धारित किया गया है। बारहवीं शताब्दी के पहले सफाई-कर्म अथवा चर्म-कर्म का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। सामूहिक भोज में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा भोजनोपरांत जूठे पत्तल को उठाने की कथा व्यक्ति की व्यक्तिगत विनम्रता एवं सद्भावना का उदाहरण माना जाता है। वर्तमान समाज में अस्पृश्यता सबसे बड़ी समस्या है। वैदिककालीन शूद्र वर्ण की वृत्ति यदि हम कुछ क्षण के लिए सेवाकार्य मान भी लें, तो इस अवधारणा के आधार पर भी शूद्र अस्पृश्य अथवा अंत्यज नहीं हो सकते हैं। इस प्रकार शूद्र एवं वर्तमान अनुसूचित जातियों में यह बहुत बड़ा अंतर दृष्टिगत है। इसलिए हमें पुस्तक में वर्णित दलित समस्या के लिए उत्तरदायी तथ्य उचित एवं स्वाभाविक लगते हैं। दलित वर्ग का उद्भव विदेशी आक्रांता तुर्क, मुसलिम एवं मुगल काल में हुआ। इसके पूर्व हिंदू समाज का आपसी स्वरूप सामाजिक समरसता की वैचारिकी पर सुदृढ़ था।

डॉ. विजय सोनकर शास्त्री द्वारा लिखित पुस्तक 'हिंदू वाल्मीकि जाति : एक गौरवशाली इतिहास के पतन का सिंहावलोकन' में अनेक बुनियादी प्रश्नों का तथ्यपरक एवं प्रमाणित उत्तर प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक में आठ अध्यायों के माध्यम से वाल्मीकि एवं सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि समाज के विभिन्न पहलुओं को स्पर्श किया गया है। उत्तर भारत में वाल्मीकि एवं दक्षिण में तथा मुख्य रूप से महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में सर्वत्र फैली सुदर्शन, पंजाब क्षेत्र में पाई जानेवाली

मजहबी सिख इत्यादि जाति की वृत्ति सफाई-कर्म है। संपूर्ण देश में सफाईकर्मी के रूप में चिह्नित वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि जाति की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति सर्वाधिक दयनीय है। पुस्तक में इस जाति की उत्पत्ति एवं पतन के साथ इस जाति के पूर्ण शक्तिकरण की बुनियादी आवश्यकताओं का सुस्पष्ट विवरण प्रस्तुत किया गया है। हिंदू धर्म के प्राचीन स्वरूप में अस्पृश्य एवं अस्वच्छ वृत्ति पर आधारित जातियों का अस्तित्व ही नहीं था। लेखक ने इसे पर्याप्त प्रमाणों के साथ सिद्ध भी किया है। यह बात विचारणीय है कि जो हिंदू संपूर्ण प्राणियों को आत्मा के रूप में देखता है तथा संपूर्ण प्राणियों में परमात्मा को देखता है, वही हिंदू व्यक्ति और व्यक्ति में अंतर कैसे कर सकता है? इस पुस्तक में उल्लिखित जातिगत तिरस्कार, भेदभाव, घृणा और दुर्भावना के लिए उत्तरदायी आंतरिक कारणों के स्थान पर बाह्य शक्तियों द्वारा प्रायोजित कारण ही मुख्य हैं, यह गहन अध्ययन से उपजी एक सच्चाई है।

हिंदू लोकजीवन में वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि (सफाईकर्मी) जाति का अस्तित्व एवं उनके साथ अमानवीय व्यवहार इत्यादि विषय का हिंदू संस्कृति, हिंदू धर्म एवं हिंदू जीवन-पद्धति के संदर्भ में पाया जाना आश्चर्यजनक है। क्या अस्पृश्य जातियों का निर्माण हिंदू समाज ने किया है? ऐसा कैसे हो सकता है कि हिंदुओं ने अपने ही बंधुओं को बलपूर्वक अस्वच्छ कार्यों में लगाया होगा? आज पेशा के रूप में भले ही वाल्मीकि समाज के व्यक्ति को सफाई-कर्म की स्वीकृति है किंतु आगंतुक चाहे वह किसी भी जाति का हो, उसका सेवा करना हमारी संस्कृति का हिस्सा होता है। आगंतुक या अतिथि का वर्ण, वर्ग एवं जातियों की सीमा से परे उसका हर तरह से सेवा एवं सम्मान किया जाना यही हिंदू संस्कृति है।

प्रस्तुत कृति में 'हिंदू लोकजीवन एवं वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि जातियाँ नामक अध्याय में हिंदू धर्म के प्राचीन स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने हिंदू संस्कृति, हिंदुत्व एवं वैदिक व्यवस्था को हिंदू लोकजीवन के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट किया है। वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति का गौरवशाली अतीत एवं अंधकारमय भविष्य का मार्मिक चित्रण मानस में अंकित हो जाता है। वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि जाति के वंश, गोत्र एवं उपजातियों का वर्णन यह चिंतन के लिए बाध्य करता है कि वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति की अभी तक प्राप्त 624 उपजातियाँ मध्यकाल यानी इसलामिक काल में ब्राह्मण एवं क्षत्रियों का भारी उत्पीड़न करके बनाई गई जातियाँ हैं। इतना प्रमाणित एवं विश्वसनीय तथ्य पहली बार दृष्टव्य है। सफाईकर्मी के रूप में चिह्नित वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख जाति को भी इस

कृति से आत्मबल एवं अपनी वास्तविक पहचान के साथ अपने पूर्वजों के महान् त्याग, बलिदान तथा धर्मपरायणता का एहसास हो रहा है। डॉ. सोनकर शास्त्री ने इस कृति के माध्यम से सफाई जैसे कर्म में अभियोजित करनेवाली उन भारत-विरोधी शक्तियों को भी उजागर किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के कुल आठ अध्यायों में हिंदू लोकजीवन एवं वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि जातियाँ, विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के शासनकाल में भयानक हिंदू उत्पीड़न, स्वाभिमान भंग कर बनाई गई सिद्ध होती हैं। हिंदू धर्मरक्षा के दंडस्वरूप धर्माभिमानी बनें दलित, मैला दुलवाने का कारण तथा उद्देश्य, हिंदू समाज वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जातियों का ऋणी, महर्षि वाल्मीकि तथा अन्य महान् पुरोधा और वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज का सामाजिक उत्थान एवं सशक्तिकरण नामक अध्याय के अंतर्गत अनेक बिंदुओं पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक में वर्णित विदेशी मुसलिम आक्रांता शासकों के उत्पीड़न एवं अत्याचार की बर्बरतापूर्ण कुकृत्य मन को कंपित कर देता है। इतिहास लेखन में विदेशी इतिहासकारों द्वारा किया गया भेदभाव उनकी दुर्बलता को दरशाता है। मध्यकाल को स्वर्णिम काल की उपमा देनेवाले इतिहासकारों की कल्पना से परे हिंदुस्थान की संवृद्धि एवं वैभव था। जिस काल में लगातार लूटपाट, युद्ध, हिंदू उत्पीड़न, अत्याचार, व्यभिचार एवं सामूहिक नरसंहार होता रहा, उस देश के उस काल खंड को स्वर्णिम काल की संज्ञा देना इतिहास के जिज्ञासुओं एवं विशेषज्ञों के लिए एक चिंतन का विषय है। समाज इतिहास की घटनाओं एवं अतीत के अनुभवों पर अपने भविष्य का चित्र तैयार करता है।

'हिंदू वाल्मीकि जाति' नामक प्रस्तुत कृति के अध्याय एक के उपशीर्षक 'हिंदू संस्कृति की पूर्ण वाहक वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि समाज (1 : 6)' में दी गई सारणी उन भयानक सच्चाइयों को उजागर कर रही है, जो हिंदुओं के उत्पीड़न की पराकाष्ठा थी। हिंदुओं के इस देश में हिंदुओं को हिंदू होने का कर देकर अपनी प्रखर राष्ट्रभक्ति की परीक्षा उत्तीर्ण करनी पड़ी थी। स्वाभिमान की रक्षा हेतु उन्हें घोर अपमान को सहन करना पड़ा था। स्वाभिमानी योद्धाओं को बाध्य करके निम्न एवं अस्वच्छ व्यवसाय में लगाया गया था। धर्म एवं संस्कृति के वाहक ब्राह्मणों को और देश की भौगोलिक सीमा तथा आंतरिक सुरक्षा प्रदान करनेवाली जाति क्षत्रियों को बदला लेने एवं अपमानित करने की दृष्टि से बलपूर्वक अस्वच्छ कार्यों में लगाकर उन्हें अस्पृश्य एवं तिरस्कृत किया गया था। सारणी में प्रस्तुत कुल सत्ताईस समूहों में दो समूह ब्राह्मण वर्ण का एवं शेष पच्चीस समूह क्षत्रिय वर्ण का यह प्रमाणित करता है कि धर्म एवं राष्ट्र-रक्षा का मूल्य धर्माभिमानियों एवं योद्धाओं को किस सीमा तक चुकाना पड़ा है। डॉ. भीमराव

अंबेडकर द्वारा भी अपनी पुस्तक 'शूद्रों की खोज' में उल्लिखित तथ्य कि वर्तमान शूद्र एवं प्राचीन वैदिककालीन शुद्रों में अंतर है, डॉ. विजय सोनकर शास्त्री द्वारा प्रस्तुत इन तथ्यों का एक सत्यापन है। वर्तमान अनुसूचित जाति के लोग शूद्र नहीं हैं। शूद्र का संबोधन देकर उनकी वास्तविक पहचान को छिपाकर उनका हिंदू धर्म एवं हिंदू संस्कृति के प्रति प्रस्तुत किए गए त्याग एवं बलिदान की उपेक्षा है। अनुसूचित जाति वर्ग की संपूर्ण जातियाँ विदेशी आक्रांता शासकों द्वारा मध्यकाल की दंडित जातियाँ हैं, जिन्हें हिंदू धर्म के अभिमान एवं हिंदुस्थान की रक्षा यानी देशभक्ति के लिए दी गई यह एक अनोखी सजा है।

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि जाति पर लिखी यह पुस्तक देश के उन करोड़ों लोगों को सम्मानित करने की दिशा में एक सफल प्रयास है, जिनके त्याग-बलिदान की महान् गाथा आज तक देशवासियों के समक्ष विधिवत प्रस्तुत ही नहीं हो सकी। वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज के सर्वांगीण उत्थान एवं सामाजिक तथा आर्थिक सशक्तिकरण के लिए इस पुस्तक में सुझाए गए कदम का पालन होना आवश्यक है। सामाजिक एवं आर्थिक रूप से दयनीय जीवन जीनेवाली इस जाति के विकास का अपेक्षित परिणाम सम्मान एवं शिक्षा द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। डॉ. विजय सोनकर शास्त्री द्वारा पुस्तक में प्रस्तुत किए गए प्रमाण वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति के अलावा भी हजारों अनुसूचित वर्ग की जातियों को सम्मानित करने की दिशा में अकल्पनीय एवं अतुलनीय हैं। इन महानायकों को पुस्तक की विषय-वस्तु से सहज में गौरवान्वित किया जा सकता है, किंतु शैक्षणिक विकास के लिए सरकारी तंत्र एवं योजनाओं की भूमिका अत्यंत चुनौतीपूर्ण है।

सामाजिक समरसता की स्थापना की दिशा में डॉ. विजय सोनकर शास्त्री द्वारा लिखित यह पुस्तक एक मील का पत्थर सिद्ध होगी, ऐसी मेरी कल्पना है। इस कृति में उनके द्वारा किए गए श्रम का उचित परिणाम भविष्य में अवश्य परिलक्षित होगा। डॉ. सोनकर शास्त्री राजनीतिक क्षेत्र में कुशलतापूर्वक विभिन्न दायित्वों का निर्वहन करते हुए भी समाज के लिए अत्यंत उपयोगी साहित्यों का सृजन करते रहे हैं। सामाजिक समरसता के क्षेत्र में इनकी विभिन्न कृतियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। डॉ. सोनकर शास्त्री ने भारतीय संसद् में लोकसभा के सदस्य एवं राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग (भारत सरकार) के अध्यक्ष के दायित्व पर भी कुशलता के साथ स्मरणीय भूमिका का संपादन किया है।

मुझे आशा है कि डॉ. विजय सोनकर शास्त्री इसी प्रकार देश में सामाजिक एकात्मता और समरसता हेतु अपने गहन अध्ययन से और भी साहित्य का सृजन

करेंगे, जो आज के विषाक्त और भेद तथा द्वेष को बढ़ानेवाले वातावरण को समाप्त करने में उचित दिशा देनेवाला होगा।

यह पुस्तक अधिकाधिक पढ़ी जाए एवं इसका प्रचार-प्रसार हो, इसी भाव के साथ मैं डॉ. विजय सोनकर शास्त्री के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

—सुरेश जोशी
(भैया जोशी)
सरकार्यवाह,
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

विचारभूमि

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि समाज के मध्य जाकर गहन अध्ययन के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इस समाज की प्रखर देशभक्ति, धर्मपरायणता, हिंदू समाजरक्षक की भूमिका एवं त्याग-बलिदान को उचित स्थान मिलना ही चाहिए। सामान्य रूप से उत्तर भारत में वाल्मीकि और महाराष्ट्र एवं उससे आगे दक्षिण भारत में सुदर्शन एवं मखियार तथा गुजरात में रुखी, पंजाब क्षेत्र में मजहबी सिख नाम से जानी जानेवाली यह जाति पेशे के आधार पर संपूर्ण भारत में पाई जाती है। वैसे तो अनेक पेशे में लगी वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार एवं रुखी जातियों का परंपरागत पेशा सफाई-कर्म से संबंधित था। ऐसा नहीं कि इन जातियों पर यह प्रथम लेखन है, किंतु हमें ऐसा लगता है कि उन पुस्तकों की कोई विशेष आवश्यकता या उपयोग अथवा योगदान इस समाज के लिए नहीं है। उन पुस्तकों में वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि समाज के गौरवशाली इतिहास, स्वाभिमानी स्वभाव, धर्माभिमानी लोकजीवन या किसी अन्य विशेषता का उल्लेख नहीं है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक संपूर्ण हिंदू समाज को चिंतन के लिए बाध्य करेगी कि हजारों जातियों एवं उपजातियों में बँटा हमारा हिंदू समाज किस प्रकार एकजुट है? वास्तव में इतिहास के पृष्ठों पर यत्र-तत्र वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि अन्य जाति का वर्णन पाया जाता है, किंतु उसे गौरवबोध के संदर्भ में नहीं कहा जा सकता है। मध्य प्रदेश के मांडव का 'भंगी दरवाजा' अथवा आगरा का 'कालू मदारी' पंजाब के भंगी मिस्ल के हरि सिंह की गाथा को समझा जा सकता है, किंतु जो वास्तविक स्वरूप होना चाहिए वह वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख समाज को अभी प्राप्त नहीं है। इतिहास लेखन में विदेशी मुसलिम आक्रांता सुल्तानों, नवाबों एवं बादशाहों इत्यादि के चाटुकारों तथा अंग्रेजों के पिट्ठुओं ने अपने-अपने शासकों का बढ़ा-चढ़ाकर गुणगान किया। इसका परिणाम यह हुआ कि मध्यकाल के महान् योद्धाओं और मुगलों से लोहा लेनेवाले महान् नायकों, माटी के अमर सपूतों तथा हिंदू धर्म-संस्कृति के रक्षकों की भूमिका

की अहवेलना कर दी गई। मध्यकाल के महान् स्वतंत्रता सेनानियों के युद्ध एवं उसके परिणाम को इस पुस्तक में हम देने का प्रयास कर रहे हैं, ताकि यह समाज गौरवान्वित हो सके।

प्रस्तुत पुस्तक इतिहास के उन सुनहरे पृष्ठों को अनावरित करने में पूर्णतया सफल है, जिनमें अखंड प्राचीन हिंदुस्थान का प्रामाणित ऐतिहासिक तथ्य अतीत के धुँध से कसमसाते हुए बाहर आने के लिए उद्यत है। हिंदुस्थान यानी भारत का गौरवशाली इतिहास आज नाम मात्र के लिए भारत के इतिहास का बोध कराता प्रतीत हो रहा है। हिंदुस्थान के इतिहास में केवल विदेशी आक्रांता शासकों, मुगलों, तुर्क लुटेरों, दक्षिण-पश्चिम एशिया के बड़े-बड़े आतंकियों द्वारा विश्वविजय का स्वप्न लेकर भारत में हुए भयंकर नरसंहार को ही प्रमुखता से दरशाता है। समृद्धशाली देश भारतवर्ष उन विदेशी तुर्क एवं मुगल आक्रांताओं, दरिंदों तथा शिकारियों की नजर में सोने की चिड़िया के अलावा कुछ न था। व्यवसाय के मोहपाश में फाँसकर लगभग दो सौ वर्ष तक अंग्रेजों द्वारा भी किए गए शासन को दुर्भाग्यवश इस देश का आज इतिहास माना जाता है। देशी अथवा विदेशी इतिहासकार शायद इतिहास लेखन का मानदंड विस्मृत कर गए हैं, नहीं तो भारत की निरीह प्रजा एवं उन पर बलपूर्वक नियंत्रण करके विदेशी आक्रांताओं द्वारा उनका उत्पीड़न एवं उन पर किए गए भयानक अत्याचार तथा व्यभिचार को हिंदुस्थान के इतिहास में स्थान देना अनुचित था। इससे तो अच्छा होता कि वे यह लिख देते कि हिंदुस्थान में एक हजार वर्षों की काली रात्रि थी, जिसे इतिहास माना ही न जाए। एक हजार वर्षों के कालखंड में शासकों द्वारा कुछ भी ऐसा नहीं किया गया, जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि उनका राजा-प्रजा का संबंध रहा होगा।

हिंदुस्थान के इतिहास में हिंदुओं एवं हिंदू योद्धाओं को तो उचित स्थान नहीं मिला किंतु तथाकथित इतिहासकारों ने मुसलिम, तुर्क एवं मुगल विदेशी आतंकियों, लुटेरों, हत्यारों एवं धोखेबाज अंग्रेजों को अमर बना दिया। मुहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी, मुहम्मद गौरी, कुतुबुद्दीन से लेकर सिकंदर लोदी एवं बहादुर शाह जफर और लार्ड क्लाइव से लेकर लार्ड केनिंग एवं लार्ड माउंटबेटन तक भारतीय इतिहास में अमर हो गए। क्या इसे ही भारतवर्ष की आनेवाली पीढ़ियाँ अपना इतिहास मान सकेंगी ? वास्तव में हिंदुस्थान में लगभग एक हजार वर्षों तक केवल आतंक एवं आतंकी थे। लूट-पाट, व्यभिचार एवं नरसंहार करते हुए विदेशी मुसलिम, तुर्क एवं मुगल हत्यारे थे। इतिहास से प्रेरणा प्राप्त होती है किंतु दुर्भाग्यवश भारतीय इतिहास को पढ़ने से एक सच्चे हिंदुस्थानी को हीनता, दीनता, कायरता एवं एक शर्म का बोध होता है। हो सकता है अज्ञानतावश भारतीय मुसलमानों को मुहम्मद गौरी या महमूद गजनवी के व्यक्तित्व से प्रेरणा मिले, किंतु भारत के हिंदुओं को गजनवी के लूटपाट, व्यभिचार एवं हत्याओं जैसे कुकृत्य में

पाँच लाख से अधिक उन माँ-बहनों की आज भी चीत्कार सुनाई देती है, जिन्हें वह विदेशी मुसलिम आक्रांता गुलाम बनाकर यहाँ से उठाकर ले गया और अरब की गलियों एवं सड़कों पर कौड़ियों के मोल नीलाम किया था। बहन-बेटी के देहांत को तो सहन किया जा सकता है, किंतु आक्रांताओं के चंगुल में फँसकर माँ-बाप एवं अपने भाइयों से जीते जी विलग हुई उन अभागी बहन-बेटियों की चीत्कार को हिंदुओं एवं हिंदुस्थान ने कैसे सहन किया होगा? भारत के गौरवशाली इतिहास के बदले में इतिहास के नाम पर भारत के एक हजार वर्षों की काली रात्रि की दुःखद सत्यकथा को स्वर्णिम इतिहास के रूप में क्या लिखा जाना चाहिए था?

हिंदुस्थान में इतिहास छद्म रूप में ही दृष्टिगोचर है। इतिहास के पृष्ठों में हिंदुस्थान की महान् हिंदू संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान एवं अध्यात्म-दर्शन के गौरव बोध का कहीं भी उल्लेख नहीं है। यह देश जिसका एक नाम हिंदुस्थान है, यानी यहाँ कभी केवल हिंदू ही थे, किंतु आज हिंदुओं के बजाय धर्मांतरितों (मुसलिम एवं ईसाइयों) के लिए विशेष तुष्टिकरणयुक्त चिंतन है। इतना ही नहीं, हिंदुस्थान के प्रधानमंत्री यह वक्तव्य देते हैं कि भारत में पाए जानेवाले संसाधनों पर प्रथम अधिकार अल्प-संख्यकों यानी हिंदू से धर्मांतरितों (मुसलिम एवं ईसाइयों) का है। हिंदुस्थान के सभी ईसाई एवं मुसलमान आयातित नहीं अपितु धर्मांतरित ही हैं। धर्मांतरित होने से उनमें क्या कोई विशेष गुण उत्पन्न हो गया, जिसके कारण पदासीन प्रधानमंत्री उन्हें विशेष अधिकृत घोषित करते हैं? विदेशी तुर्क, मुसलिम एवं मुगल आक्रांताओं के बल एवं क्रूरता के समक्ष घुटने टेककर धर्मांतरित हुए तथाकथित भारतीय मुसलमानों और उन्हीं विदेशी आक्रांताओं द्वारा ही जंगलों में भगा दिए गए अथवा जीवन-रक्षा के लिए स्वयं पलायित हुए अथवा मुसलिम आक्रांता शासकों को मुँहतोड़ प्रत्युत्तर देने के उद्देश्य से जंगलों एवं दुर्गम स्थानों पर गई, स्वाभिमानी हिंदू जातियों की दयनीय स्थिति तथा निर्धनतायुक्त जीवन-यापन करने वाले आज के वनवासियों की अनदेखी कर धर्मांतरित मुसलमान एवं ईसाइयों का प्रथम अधिकार हिंदुस्थान के संसाधन पर कैसे हो गया? डॉ. मनमोहन सिंह को हिंदुस्थान के इतिहास की जानकारी होती तो वे ऐसे वक्तव्य नहीं दिए होते। आज देशवासियों को हिंदुस्थान के उन एक हजार वर्षों की बीती हुई काली रात्रि के यथार्थ पर दृष्टिपात् करने की परम आवश्यकता है।

देश में इतिहास के इन अत्र-तत्र बिखरे हुए तथ्यों में छिपी उन सच्चाइयों का विश्लेषण होना चाहिए। हिंदू धर्म, हिंदू संस्कृति, हिंदू जीवन-पद्धति एवं हिंदू लोक-जीवन के सिद्धांतों से ओत-प्रोत हिंदू समाज में सुख-समृद्धि चरम पर थी। हिंदू संस्कृति पर आधारित हिंदू सभ्यता जन-जन में प्राणशक्ति की तरह प्रवाहमान थी। लोग धार्मिक एवं धर्म हेतु प्राणापन्न थे। हिंदू का तात्पर्य मात्र पूजा-पाठ की पद्धति तक सीमित न था।

हिंदू संस्कृति पर आधारित जीवन-पद्धति ही जीवन जीने की एक कला थी। हिंदू परंपरा रीति-रिवाज, मर्यादित आचरण एवं जीवन-मूल्यों पर आधारित सामाजिक संबंधों के साथ जीवन जीने के प्रत्येक क्षेत्र में धार्मिकता आच्छादित थी। हिंदुओं ने धर्म के अनुरूप जीवन एवं जीवन का आधार धर्म को ही बना रखा था। इस प्रकार हिंदुस्थान में धर्म के माध्यम से हिंदू लोकजीवन संचालित था। यही कारण था कि यहाँ की सुख-समृद्धि एवं मूल्ययुक्त संबंधों की चर्चा संसार में थी। अरब के मुसलिम, तुर्क, यूरोप के चालबाज अंग्रेज व्यवसायी एवं अन्यान्य स्थानों के महत्त्वाकांक्षी नाविकों तथा विश्व-विजय की इच्छा रखनेवाले आक्रांता हिंदुस्थान की समृद्धि को लूटने हेतु हिंदुस्थान की ओर आकर्षित हुए। तैमूर, सिकंदर, मुहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी इत्यादि के इस देश पर आक्रमण के पार्श्व में यही आकर्षण था।

हिंदुस्थान में लोग धर्म को ही अपनी अंतिम इच्छा मानते थे। धन-समृद्धि इत्यादि सबकुछ धर्म के समक्ष हीन था। धर्म-रक्षा में वे अपने आपको स्वाहा करने हेतु तत्पर थे। विदेशी आक्रांताओं द्वारा की गई लूट की वे अनदेखी कर देते थे, किंतु धर्म के लिए वे मरने एवं मिटने के लिए खड़े हो जाते थे। यही कारण था कि वे विदेशी हिंदू-विरोधी शक्तियों का एकजुट होकर प्रबल एवं मुँहतोड़ प्रत्युत्तर देते थे। हिंदुस्थान में बाहरी शक्तियों का जब-जब आक्रमण हुआ तो मुख्यत: धर्म-रक्षा के नाम पर ब्राह्मण एवं देश-रक्षा के नाम क्षत्रियों ने उनसे भीषण संघर्ष किया। वैसे तो पूरा देश ही विदेशी आक्रांताओं को मुँहतोड़ उत्तर देता था, किंतु उक्त दो वर्ग सामाजिक दायित्वयुक्त थे। यही कारण था कि बाहरी विदेशी शक्तियों की दृष्टि में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय ही मुख्य शत्रु की तरह चिह्नित हो गए। परिणामस्वरूप प्रारंभ में ब्राह्मण एवं क्षत्रियों को लक्ष्य करके उनका भीषण उत्पीड़न किया गया। इस प्रकार मंदिरों पर धावा बोलकर सामान्य जन की सुरक्षित संपत्ति को लूटने के साथ ब्राह्मणों को तहस-नहस किया जाता था। ठीक इसी प्रकार राजवंशों पर आक्रमण करके उनके राजसत्ता, राजप्रासाद एवं उनके विशाल परिवार के सदस्यों को प्रचंड लूटपाट एवं उत्पीड़न का शिकार बनाया जाता रहा। स्त्रियों को पकड़कर बलपूर्वक दास बनाकर अरब भेज दिया जाता था। पुरुषों के समक्ष इसलाम स्वीकार करने के लिए बल प्रयुक्त होता था। जो धर्मांतरित हो जाते उन्हें छोड़कर शेष जो किसी भी मूल्य पर हिंदू धर्म नहीं त्याग सके उनके हिंदू स्वाभिमान को नष्ट करने हेतु बलपूर्वक उन्हें अस्वच्छ, निम्न तथा मैला ढोने एवं चर्म-कर्म में लगाकर विदेशी मुसलिम आक्रांताओं ने उनसे प्रचंड बदला लिया और अपना व्यक्तिगत आक्रोश शांत किया। इस प्रकार स्वाभिमानी एवं योद्धा हिंदुओं के सामाजिक, आर्थिक, राजवंशीय स्वरूप को नष्ट-भ्रष्ट करने के साथ उनका दलन करके उन्हें दलित बना दिया गया।

हिंदुस्थान में दलितों का इतिहास आज एक शोध का विषय है। दलित का तात्पर्य

न केवल उनकी निम्न आर्थिक स्थिति से है, बल्कि उससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण उनके निम्न सामाजिक भूमिका से है। इतना ही नहीं, देश के शासन एवं सत्ता में इनकी अल्प भागीदारी भी इनके सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक दलन के इतिहास की ओर संकेत है। वास्तव में यह आश्चर्य का विषय है कि सामान्य एवं पिछड़े वर्ग की तुलना में दलित वर्ग आर्थिक, राजनैतिक एवं शिक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक न्यून है। ऐसा प्रतीत होता है कि अस्वच्छ कार्यों के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई अस्पृश्यता के कारण अन्य वर्गों की तुलना में दलित संवर्गीय जातियों की सामाजिक स्थिति भी अत्यंत निम्न होती चली गई। तब यह तो स्पष्ट हो जाता है कि दलित संवर्गीय जातियों को अस्वच्छ कार्यों में लगानेवाले लोग ही दलित वर्ग की वर्तमान दयनीय परिस्थिति के लिए मुख्यरूप से उत्तरदायी एवं दोषी भी हैं। चूँकि वे शासन एवं सत्ता में थे इसलिए बलपूर्वक प्रचंड सामाजिक, आर्थिक एवं राजवंशीय उत्पीड़न के उपरांत दमन एवं दलन (नष्ट-भ्रष्ट) करके उन्हें दलित की पहचान दी गई। अस्वच्छ कार्यों एवं अस्पृश्यता का भारत में 12वीं सदी के पहले यानी मध्यकाल से पहले उल्लेख नहीं प्राप्त है। अस्वच्छ कार्यों में प्रवीण ऐसी ही जातियों को डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने अस्पृश्य समाज एवं 1931 ई. की जनगणना में अंग्रेजों ने 'डिप्रेस्ड' यानी 'दलित' के रूप में संबोधित किया। डॉ. अंबेडकर के ही महान् संघर्ष से 1935 ई. में दबाव में आकर अंग्रेजी सरकार ने अनुसूचित जाति की सूची घोषित किया। अंग्रेजी सरकार ने भी अस्पृश्यता एवं अस्वच्छ व्यवसाय को ही अनुसूचित जाति के लिए आधार बनाया। आज स्वतंत्र भारत के संविधान में भी वे दो बिंदु यानी अस्पृश्यता एवं अस्वच्छ व्यवसाय मात्र ही अनुसूचित जातियों की पहचान अथवा अनुसूचित जाति में सम्मिलित करने का आधार हैं। यदि सावधानी एवं विद्वतापूर्ण ढंग से अध्ययन किया जाए तो यह पूर्णरूपेण स्पष्ट होता है कि अस्वच्छ कार्य ही हिंदू समाज में अस्पृश्यता के लिए उत्तरदायी है। यही कारण था कि 12वीं सदी के बाद विदेशी मुसलिम आक्रांता शासकों के दमन, दलन, उत्पीड़न एवं शोषण के बाद हिंदुओं में तीव्रगति से एक दलित समुदाय का उदय हुआ, जिसमें सबसे अधिक क्षत्रिय एवं ब्राह्मण जातियों के लोग ही थे। वैश्य एवं शूद्र जातियाँ भी प्रभावित रहीं, किंतु वह अल्प मात्रा में थी। डॉ. अंबेडकर ने अपनी पुस्तक शूद्र कौन? में यह उल्लेख किया है कि वर्तमान शूद्र (दलित) एवं पूर्वकालीन वैदिककालीन शूद्र दोनों भिन्न थे।

इस पुस्तक को लिखने का हमारा यह भी एक उद्देश्य है कि हिंदू समाज का विघटित रूप एवं उसके पीछे छिपे वास्तविक तथ्य संसार के समक्ष स्पष्ट हो सके। दीर्घकाल से हो रहे हिंदू समाज के अवनयन को रोककर उसमें व्याप्त भेदभाव, ऊँच-निम्न एवं अस्पृश्यता तथा अपनों को ही व्यर्थ में दिए जा रहे तिरस्कार से उन्हें बचाया जाए। इसी क्रम में संपूर्ण हिंदू समाज को योजनाबद्ध रूप से हुए आंतरिक एवं बाह्य

षड्यंत्रों से अवगत कराया जा सके। 914 ई. में मुहम्मद बिन कासिम द्वारा सिंध के राजा दाहिर की महारानी एवं उनकी राजकुमारियों के साथ हजारों हिंदू स्त्रियों को गुलाम बनाकर अरब ले जाया गया, 1024 ई. में विदेशी मुसलिम आक्रांता महमूद गजनवी द्वारा हजारों क्विंटल सोना, हीरे-जवाहर एवं बहुमूल्य रत्नों के साथ पाँच लाख हिंदू स्त्रियों को दास बनाकर अरब ले जाया जाना, अल्पतगीन एवं सुबुक्तगीन द्वारा 1135 ई. में हिंदुओं का प्रचंड उत्पीड़न एवं उन्हें निर्धन बनाने का शासनादेश, 1490 ई. में औरंगजेब द्वारा अमानवीय हिंदू उत्पीड़न एवं हिंदुओं को उनके ही देश में रहने के लिए जजिया कर लगाया जाना तथा कर देने में असमर्थ लाखों हिंदुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाना, औरंगजेब द्वारा हिंदू व्यापारियों का उत्पीड़न करके उन्हें समाप्त करना एवं उनकी जगह धर्मांतरित हुए यानी हिंदू से मुसलमान बने लोगों को व्यापार में प्रोत्साहित करने जैसे हजारों-हजार भयानक तथ्यों से हिंदू समाज को विशेष रूप से नौजवान हिंदुओं को अवगत कराना आवश्यक है।

पाठकगण इसका तात्पर्य यह न समझें कि हिंदू और मुसलमान समाज के मध्य यह दूरी पैदा करने का प्रयास है, अपितु हमारा प्रयास तो एक अन्य किंतु अत्यंत महत्त्वपूर्ण भयानक सत्य एवं एक प्रमाणित तथ्य को प्रकाशित करना है कि जिस प्रकार स्वाभिमानी हिंदुओं का दलन करके उन्हें दलित बनाया गया उसी प्रकार उन्हीं धर्माभिमानी, राष्ट्राभिमानी एवं स्वाभिमानी हिंदुओं को यानी वर्तमान मुसलमानों के पूर्वजों को भी उत्पीड़ित एवं भयभीत करके उन्हीं अरब के विदेशी आक्रांताओं ने घुटने टेकने, इसलाम ग्रहण करने एवं उन्हें मुसलमान बनने के लिए विवश किया। भारत में दलित एवं मुसलमान तो अरब के निवासी विदेशी तुर्क, मुसलिम एवं मुगल आक्रांता शासकों के प्रचंड उत्पीड़न के परिणाम हैं। दलित एवं मुसलमान मध्यकालीन हिंदू समाज के प्रचंड धर्म-रक्षक, देशरक्षक एवं स्वाभिमानी योद्धा थे। इसका ही तो उन्हें दंड मिला था। जो अत्याचार एवं उत्पीड़न के उपरांत मुसलमान हो गए उन्हें शासन एवं सत्ता की ओर से राजाश्रय एवं सहयोग मिला और जिन्होंने इसलाम को ठुकरा दिया, उनका हर प्रकार से दमन एवं दलन करके उन्हें दलित बना दिया गया। कालांतर में अस्वच्छ कार्यों यानी मैला ढोने एवं चर्म-कर्म के कारण हिंदू समाज द्वारा भी उनसे अस्पृश्यता का व्यवहार किया गया एवं वे अपने ही समाज से अलग-थलग होते चले गए।

सौभाग्यवश अनुसूचित जातियों के संदर्भ में भारत सरकार ने 1935 ई. में एक सूची तैयार की थी। उस समय पूरा देश 9 प्रांतों में विभक्त था। इसलिए वह सूची 9 भागों में विभक्त थी। 'गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट' के अधीन 'ऑर्डर इन कौंसिल' के निर्देश पर 1935 ई. में अनुसूचित जातियों की पहली सूची जारी हुई थी। प्रत्येक भागों में उस प्रांत के वर्णों, नस्लों, जातियों तथा समूहों को इस सूची में रखा गया, जो अस्पृश्यता जैसे

व्यवहार से प्रभावित थी। अस्पृश्यता के साथ ऐसी भी जातियाँ, नस्लों तथा समूहों को उस सूची में रखा गया जो अस्वच्छ पेशों में लगी पाई गई, जिनके कारण उन्हें अस्पृश्य माना जाता था। यह एक भयानक सूची थी, जिसमें 429 जातियाँ सम्मिलित थीं। अनुसूचित जाति के निर्धारण के लिए आज भी भारत सरकार की यही दो शर्तें यानी प्रथम, अस्पृश्यता और द्वितीय, अस्वच्छ पेशा ही है। इसके अलावा कोई शर्त नहीं है। यदि अस्पृश्यता एवं अस्वच्छ पेशों की उत्पत्ति, कारण, कारक एवं काल (समय) का प्रमाण मिल जाए तो बड़ी लंबी-चौड़ी चर्चा अथवा वेद-शास्त्रों के अध्ययन से मुक्त होकर अस्पृश्यता के निदान में समाजसेवक, विद्वतजन एवं देशभक्त लग सकते हैं। हिंदू धर्मग्रंथों की गहन अध्ययन के उपरांत जैसा कि हमने पूर्व में भी कहा है कि डॉ. बी.आर. अंबेडकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वर्तमान दलित प्राचीन वैदिककाल के शूद्र नहीं हैं। और इसलिए शूद्रों के दंड-विधान तथा नियम-कानून वर्तमान दलितों पर न तो लागू होते हैं और न ही इसे हिंदू समाज को मानना भी चाहिए। (शूद्रों की खोज, प्राक्कथन का तृतीय पैराग्राफ) डॉ. अंबेडकर प्रचंड अध्ययन के उपरांत अपनी एक अन्य पुस्तक 'अछूत कौन और कैसे' में भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि हिंदू समाज के चारों वर्ण अस्पृश्य नहीं थे। अस्पृश्य तो वे थे जो गैर-हिंदू थे और वे छितराये हुए थे। ('अछूत कौन और कैसे' की भूमिका, पृ. 3) डॉ. अंबेडकर ने इसी पुस्तक में यह सिद्ध करके कि अछूत एवं अपवित्र दोनों अलग है, इस समस्या को हमें समझने एवं अंतिम निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए प्रकाशपुंज दे दिया।

इस कृति के अध्ययन के पूर्व मेरी यही विनती है कि जिस प्रकार डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने 'अछूत कौन और कैसे' के पृष्ठ 4 पर उल्लेख किया है कि 'संभव है, आलोचक मेरी इस 'कमी' संस्कृत भाषा में लिखे ग्रंथों का अंग्रेजी भाषा में अनुवादित साहित्य को पढ़ने का उपयोग मेरी सारी विचार सारणी को रद्दी की टोकरी में डालने के लिए करें और कहें कि यह ऐतिहासिक खोज के सिद्धांत के सर्वथा प्रतिकूल है। यदि आलोचकों का यही मत हो, तो मैं उन्हें याद दिलाना चाहता हूँ कि यदि कोई ऐसा नियम है, जो ऐतिहासिक निष्कर्षों पर शासन करता है और कहता है कि किसी मत को केवल इसलिए अस्वीकार कर दो कि उसकी बातें सीधी-सादी नहीं मिलती, तो यह नियम ही खराब है।' प्रबुद्धजनों से निवेदन है कि हमारी कृति जो वैसे तो पूर्णरूपेण स्पष्ट है, किंतु अगर कहीं दुर्गमता आए तो उसे कड़ियों से कड़ी जोड़ने के क्रम में देखने का प्रयास करें। डॉ. बी.आर. अंबेडकर के साथ जो सहिष्णुता दिखाई गई, मुझे भी उसकी अपेक्षा है। डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने उसी पुस्तक के पृष्ठ 5 पर लिखा है कि 'इसलिए कहाँ कड़ियाँ खोई हुई हैं, वहाँ उनके पुनः निर्माण करने का प्रयत्न करने के लिए मुझे क्षमा-याचना करने की जरूरत नहीं है, और केवल इसी कारण मेरा मत दूषित भी माना नहीं जा सकता। अधिकांश में मेरी सारी विचार-सारणी अथवा मत का आधार यथार्थ घटनाएँ

और उनसे जो अनुमान निकाले गए, वे हैं।' मेरा भी मत है कि इतिहास लेखन की यह सबकुछ कठिनाइयाँ हैं, जिन्हें विद्वत् पाठकगण सरलता से समझ सकते हैं। इसका एक उदाहरण मैं देना चाहूँगा। यदि वर्तमान दलित वर्ग अस्पृश्यता एवं अस्वच्छ पेशा से ही संबंधित हैं, तो हिंदुस्थान में इसका इतिहास खोज लें। हमें शूद्रों या अन्य में इन तथ्यों को खोजना निरर्थक है, क्योंकि वर्तमान दलित न तो शूद्र हैं और न ही छितराई हुई अहिंदू जातियाँ, जिनका उल्लेख डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने अपनी पुस्तक में किया है। वर्तमान दलित मध्यकाल में अरब के विदेशी मुसलिम, तुर्क एवं मुगल आक्रांता शासकों द्वारा दंडस्वरूप बलपूर्वक अस्वच्छ कार्यों में ठेल दी गई जातियाँ हैं, जिनका विस्तृत प्रमाण प्रस्तुत पुस्तक में देखा जा सकता है।

आज इक्कीसवीं सदी में हिंदुस्थान के इस समय के धुँध में छिपे इतिहास को संसार के समक्ष लाने का एक उद्देश्य यह भी है कि आनेवाले समय में हिंदुस्थान की भूमिका विश्व परिप्रेक्ष्य में अत्यंत महत्त्वपूर्ण होने जा रही है। मानवीय संवेदना, मूल्य-परक सामाजिक संबंध, शांति का संदेश, प्राकृतिक जीवन जीने से मानव समाज का हित इत्यादि बिंदुओं पर हिंदुस्थान ही संपूर्ण संसार का मार्गदर्शन करने की स्थिति में रहेगा। समस्त विश्व के कल्याण, सर्वे भवन्तु सुखिन: एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की वैचारिकी की स्थापना करना हिंदुओं द्वारा ही संभव है।

हिंदुस्थान को अंग्रेज शासकों की दासता से मुक्त हुए आज लगभग साठ वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके हैं। आधुनिक भारत के नवनिर्माण में देश के चिंतक, विचारक, वैज्ञानिक, डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, किसान, श्रमिक, छात्र-छात्राएँ एवं युवा वर्ग लगे हुए हैं, किंतु आज भी देश के करोड़ों लोगों के शरीर पर फटे कपड़े, नंगे पाँव, आधा पेट भोजन, अपूर्ण चिकित्सा व्यवस्था, अशिक्षा इत्यादि के लिए वास्तविक उत्तरदायी किसको ठहराया जाए? आज भी वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि जातियों को अहर्निश अपमानित एवं तिरस्कृत जीवन जीना पड़ रहा है। इस अपमान एवं तिरस्कार के लिए उत्तरदायी कौन है? जब तक हम इस अपमान एवं तिरस्कार के लिए उत्तरदायी कारणों एवं कारकों को वास्तविक रूप से प्रमाणों के साथ ज्ञात नहीं कर लेते तब हम कैसे इनके विरुद्ध युद्ध कर सकेंगे। हिंदू समाज में पाई जानेवाली विसंगतियों को समाप्त करके एक समरस समाज की स्थापना में हमारे इस प्रयास को निष्पक्षता के साथ देखा जा सकता है। निर्धनता, ऊँच-निम्न के भेद के साथ सामान्य जन हेतु रोजी एवं रोटी की समस्या के समाधान के पार्श्व में इस प्रकार के प्रयास की महती आवश्यकता भी है।

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि समाज को इस कृति से आत्मबल की प्राप्ति होगी और इन जातियों के त्याग तथा बलिदान के वास्तविक मूल्यांकन से सामान्य लोगों की भावनाओं में परिवर्तन के साथ उनकी अपने भाई-बंधु

की तरह स्वीकार करने की दिशा में होनेवाली कठिनाइयाँ समाप्त हो सकेंगी। वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि समाज का इस पुस्तक में प्रस्तुत तथ्यों के आधार पर ब्राह्मण एवं क्षत्रिय सवर्ग से संबद्धता एवं मध्यकाल की उनकी भूमिका के रेखांकन को ही सामाजिक विश्लेषण के मूल्यांकन का आधार बनाया जाना चाहिए। इस प्रकार के सकारात्मक मूल्यांकन की हिंदू समाज में आवश्यकता एवं प्रतिक्षा भी है। 'हिंदू वाल्मीकि जाति : एक गौरवशाली इतिहास के पतन का सिंहावलोकन' शीर्षक पर आधारित इस पुस्तक में एक सीमित ही भावनाएँ व्यक्त की जा सकी हैं, किंतु इसी क्रम को हमने अपनी अन्य दो पुस्तकों में भी बनाए रखने का प्रयास किया है। 'हिंदू चर्मकार जाति : एक स्वर्णिम गौरवशाली राजवंशीय इतिहास का अनुशीलन' तथा 'हिंदू खटिक जाति : एक धर्माभिमानी समाज के उत्पत्ति, उत्थान एवं पतन का इतिहास' शीर्षक से लिखी अन्य दोनों पुस्तकों में दलित इतिहास लेखन का कार्य पूर्ण हो चुका है। वैसे इन पुस्तकों का स्वतंत्र स्वरूप है, किंतु विषद् एवं विराट् अध्ययन की दृष्टि से एवं दलित समस्या तथा निराकरण की दृष्टि से तीनों पुस्तकों का समन्वित अध्ययन शोधकर्ताओं एवं जिज्ञासुओं के लिए अत्यंत उपयोगी होगा।

हमें बाल्यावस्था से रा. स्व. संघ की शाखाओं पर जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। विद्यालय जाने के पूर्व ही संघ की शाखाओं पर गया। वहाँ हमें यह लगा ही नहीं कि हम वाराणसी के हैं अथवा हम उत्तर प्रदेश के हैं। इतना ही नहीं, वहाँ तो अखंड भारत की बातें बड़ी प्रमुखता से होती थीं, किंतु देखने में तो मुझे यही लगा कि हम देश को विश्व परिवार का एक सदस्य मानकर मात्र भारत को ही नहीं अपितु संसार को परमवैभव का मंत्र दे रहे थे। संघ वैचारिकी में प्रत्येक विषय को समग्र भाव में देखने का प्राकृतिक भाव है। वहाँ तो हमें खंड में देखने का स्वभाव ही नहीं मिला। जिस प्रकार अंकगणित की इकाइयाँ अलग-अलग होकर भी एक समग्रता अथवा निरंतरता का बोध कराती हैं, ठीक उसी प्रकार संघ चिंतन में समग्रता एवं निरंतरता का हमें बोध हुआ। राष्ट्र-चिंतन में क्षेत्र एवं प्रदेश समाहित था। हिंदुत्व चिंतन में पंथ, संप्रदाय और मत-मतांतर से ऊपर देश की लगभग छह हजार पाँच सौ जातियों से बना संपूर्ण हिंदू समाज समाहित था। आज भी अंतर्मन की भित्तियों में बाल्यकाल के वे ही चित्र अंकित हैं। आज वही स्वभाव बना हुआ है कि हम देशव्यापी या राष्ट्रव्यापी के स्थान पर विश्वव्यापी चिंतन करते हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' एवं 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' की हिंदू वैचारिकी हमारे चिंतन का प्राणतत्त्व है। राजनैतिक क्षेत्र में भी हमारे प्राचीन ऋषियों का एक अत्यंत गंभीर चिंतन था। उनकी दृष्टि में राजनीति का संक्षिप्त अर्थ समूह के चिंतन से ही अवगाहित है। इसलिए हमारे लेखन कार्य में वही सब सामग्री सर्वत्र दृष्टिगोचर है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पूज्य सरसंघचालक श्रद्धेय श्री मोहनराव भागवत द्वारा

इस कृति की प्रशंसा एवं इस दिशा में और भी आगे बढ़ने का दिशा-निर्देश मेरे साहित्य सृजन की राह में पाथेय जैसा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह माननीय सुरेश जोशी 'भैयाजी जोशी' द्वारा मेरे रचित साहित्यों पर संतोष की अभिव्यक्ति मेरे लिए बहुमूल्य पुरस्कार के समान प्रतीत होता है। माननीय सह-सरकार्यवाह सुरेश सोनीजी एवं माननीय सह-सरकार्यवाह दत्तात्रेय होसबाले के प्रति विशेष आभार व्यक्त करना ही उनके द्वारा दिया प्यार, स्नेह एवं सम्मान है। माननीय बजरंगलालजी गुप्त, संघचालक, उत्तर क्षेत्र राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा कर्मभूमि में लक्ष्य प्राप्ति हेतु उत्साहवर्धन के साथ तथा उनके द्वारा समय-समय पर दिए गए सुझाव हमारी साहित्यिक यात्रा की राह में प्रकाश स्तंभ के समान प्रतीत हुए। डॉ. कृष्ण गोपालजी, सह-सरकार्यवाह, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा अनेकानेक विषयों का अन्वेषणात्मक अभिव्यक्ति, सारतत्त्व का सारगर्भित संप्रेषण तथा अप्रतिम स्नेहिल मार्गदर्शन मेरे लिए सफलता का द्वार प्रमाणित होता है।

श्री अटल बिहारी वाजपेयी, श्री लालकृष्ण आडवाणी, डॉ. मुरली मनोहर जोशी, श्री राजनाथ सिंह, श्री नरेंद्र भाई मोदी एवं श्री नितिन गडकरी जी के साथ श्रीमती सुषमा स्वराज एवं श्री अरुण जेटली जी को अवश्य धन्यवाद दूँगा, क्योंकि मुझे इन विभूतियों का लगातार स्नेह प्राप्त हुआ। राष्ट्र की आशा और आकांक्षाओं की पूर्ति के निमित्त बने प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र भाई मोदी जी से दलित विषयक हुई एक लंबी परिचर्चा इस कृति में अवगाहित है। राजनीतिक क्षेत्र में वैसे तो अनेकों विभूतियों का अपनी पार्टी से भी इतर अन्य पार्टियों के लोगों का प्यार मिला पर मेरा प्रयास रहा कि राजनीतिक क्षेत्र की चुनौतियों को जाति, धर्म, पंथ, वर्ग तथा राजनीतिक विचारधारा इत्यादि से ऊपर उठकर विचार करूँ एवं कम-से-कम भारतीय इतिहास की सच्चाइयों को प्रमाणों के साथ समाज के समक्ष लाऊँ। मेरा यह प्रयास आज इस पुस्तक के रूप में फलीभूत है। मैं राजनीतिक क्षेत्र के उन अनेकश: महाविभूतियों को अपने मन की गहराइयों से आभार व्यक्त करता हूँ।

माननीय महेश शर्मा, पूर्व अध्यक्ष, खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग; डॉ. महेश चंद शर्मा, पूर्व सांसद, अध्यक्ष, एकात्म मानववाद अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान; श्री वीरेंद्र सिंह, पूर्व सांसद; श्री सुनील पांडेय, सचिव, भारतीय किसान संघ; श्री डी.एस. विरैया, विधान परिषद् सदस्य तथा चेयरमैन अंबेडकर डेवलपमेंट बोर्ड, कर्नाटक; श्री सी. चेलप्पन (आई.ए.एस.) पूर्व सदस्य, राष्ट्रीय अनु.जाति एवं जनजाति आयोग; प्रो. रामजी मालवीय, प्रो-वाइस चांसलर, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी; श्री सत्यप्रकाश असीम, राजनीतिक संपादक, दैनिक 'आज'; श्री राधेश्याम, श्री गड़वाघाट आश्रम, वाराणसी; श्री विजय खंडेलवाल, प्रदेश प्रभारी, उड़ीसा सामाजिक समरसता

अभियान, विश्व हिंदू परिषद्; श्री सुरेश खंडेलवाल, संयोजक, उद्योग प्रकोष्ठ, भाजपा, नई दिल्ली; श्री सी.वी. पाटोदिया, सलाहकार, बिड़ला ग्रुप; श्री एन. सुरेश रेड्डी, हैदराबाद, कानून का अधिकार : एक जनांदोलन के दक्षिण भारत के संयोजक; श्री पी. गुनासेकरन, श्री रंजन खन्ना, चिरंजन एडवरटाईजिंग; श्री अमलेंदु हलदर, वरिष्ठ नेता, यू.बी.आई. बैंक कर्मचारी कल्याण संगठन, कोलकाता, श्री मनोज चौधरी, पानीपत; डॉ. योगेश कटारिया, दिल्ली; श्री विनोद वैरवा, राजस्थान; इंजी. रंजन कुमार; इंजी. जे.एल. गुप्ता; डॉ. सुरेंद्र झा; श्री राज कुमार अग्रवाल, वाराणसी; इंजी. अनुराग कुशवाहा, वाराणसी; श्री विवेक सोनकर, कोलकाता; श्री महेश आहिरवार, ग्वालियर; श्री शांत प्रकाश, गाजियाबाद; श्री विजय पहाड़िया व श्री शीतल सिंह, इंदौर; श्री विश्राम सिंह, मैरीटार, बलिया; श्री लक्ष्मी नारायण सोलंकी, भीलवाड़ा; श्री अतीस कुमार सोनकर, बिलासपुर; श्री रोहित सोनकर, लुधियाना; अश्विनी कुमार, भिवानी आदि सभी शुभेच्छुओं के प्रति आभारी हूँ।

मैं विश्व हिंदू परिषद् के राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री दिनेशजी एवं अंतरराष्ट्रीय महामंत्री श्री प्रवीण भाई तोगड़िया के द्वारा दिए जानेवाले उत्साहवर्धन तथा हिंदू मिशन के प्रति उनकी सुस्पष्ट निर्दिष्ट नीति जो मेरे लिए प्रेरक रही, इस कृति के माध्यम से उन्हें मैं धन्यवाद देता हूँ। ठा. सूबेदार सिंह, सदस्य, अखिल भारतीय मार्गदर्शक मंडल, गो-रक्षा संवर्धन परिषद् एवं पूर्व केंद्रीय मंत्री, विश्व हिंदू परिषद् के प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। विश्व हिंदू परिषद् के केंद्रीय मंत्री स्व. मा. रामफलजी; मा. पुरुषोत्तम सिंह एवं अ.भा. संपर्क प्रमुख; महावीरजी, प्रदेश संगठन मंत्री, उ.प्र.; श्री शिवदास सिंह, क्षेत्रीय संगठन मंत्री, अ.भा. सामाजिक समसरता अभियान एवं श्री भागवत सिंह के अविस्मरणीय उत्साहवर्धन के लिए मैं उन सबका कोटिशः धन्यवाद करता हूँ।

इस कृति के माध्यम से मैं श्रद्धेय 1008 श्री शंकराचार्य स्वामी जयेंद्र सरस्वतीजी महाराज एवं श्रद्धेय 1008 कनिष्ठ शंकराचार्य स्वामी विजेंद्रजी महाराज, कांचिपुरम; श्रद्धेय आचार्य स्वामीश्री धर्मेंद्रजी महाराज, श्रीपंचखंडपीठ, जयपुर, स्वामी ब्रह्मदेवजी महाराज, श्रीब्रह्मविद्यापीठ, वेस्टइंडीज, दक्षिण अमेरिका; स्वामी राधे-राधे बाबा, इंदौर; स्वामी जगदीश मुनिजी महाराज एवं स्वामी देवानंद गिरीजी, हरिद्वार का मैं अध्यात्म के क्षेत्र में विशेष मार्गदर्शन के लिए हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

वात्सल्यमयी माँ एवं कर्मयोगी बाबाजी का आशीर्वाद, बड़े भाइयों, बहनों तथा भाभियों के स्नेह तथा पत्नी की सहधर्मिता ने इस पुनीत कार्य को संपन्न करने के लिए सर्वदा प्रेरित किया। मेरी धर्मपत्नी द्वारा मेरे कार्यों का व्यक्तिगत रूप से मूल्यांकन मेरे लिए अप्रतिम प्रेरक रहा। मेरे प्रिय भानजों, भतीजों एवं बच्चों ने भी एक सहायक के

रूप में सहयोग देकर जीवन की अनेकानेक कमियों को दूर किया। मेरे मन में उन सभी के प्रति अगाध स्नेह है। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि प्रभु उनके प्रति सदैव स्नेहिल भाव रखें।

अंत में मैं सर्वशक्तिमान, विश्वरूप, विराट् चेतना शक्ति, सृष्टि संचालनकर्ता, करुणामयी जगन्माता एवं परमपिता परमेश्वर रूप सत् सत्‌गुरु से जाने-अनजाने हुई गलती, अपराध एवं पाप के लिए क्षमा माँगते हुए इस कृति को दलित समाज के साथ संपूर्ण हिंदू समाज के उत्थान के लिए प्रस्तुत करता हूँ। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक हिंदू धर्म में व्याप्त सामाजिक विषमता, सांस्कृतिक विखंडन एवं विविध प्रकार के सामाजिक भेदभाव को मिटाने के साथ हिंदू धर्म एवं संस्कृति के वैश्विक प्रचार-प्रसार तथा द्वेष-भाव से तर्क करनेवाले महानुभावों की जिज्ञासा को शांत करने के लिए अवश्य उपयोगी सिद्ध होगी। हिंदू धर्म के पुरोधाओं, विचारकों, साहित्यकारों और विद्वानों के प्रति लेखक सदैव आभारी रहेगा, जिनकी कृतियों एवं विचारों से वह समुन्नत हुआ।

—डॉ. विजय सोनकर शास्त्री

शास्त्री भवन
चाँदपुर इंडस्ट्रियल इस्टेट
वाराणसी-221006 (उ.प्र.)
इ-मेल : dr.bsshastri@gmail.com

अनुक्रम

आमुख 5
विचार भूमि *11*

प्रस्तावना 27

अध्याय-1

हिंदू लोक जीवन एवं वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी इत्यादि जातियाँ 41

1.1 हिंदू धर्म का प्राचीन स्वरूप 43
1.2 हिंदू संस्कृति, हिंदू तत्त्व एवं वैदिक व्यवस्था 47
1.3 हिंदू धर्म में वर्ण, वंश एवं गोत्र 52
1.4 वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति का गौरवशाली अतीत एवं अंधकारमय भविष्य 60
1.5 वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति के वंश, उपजातियाँ एवं गोत्र 65
1.6 हिंदू संस्कृति का पूर्ण संवाहक वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि समाज 73
1.7 वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जातियाँ प्राचीन ब्राह्मण, क्षत्रिय (राजपूत) एवं मराठे 76
1.8 मैला ढोना मुसलिम एवं ईसाई शासकों की देन 85

अध्याय-2

विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के शासन में भयानक हिंदू उत्पीड़न 88

2.1 विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के आक्रमण का इतिहास 90
2.2 हिंदुस्थान में भयानक लूट-पाट एवं हिंदुओं से संघर्ष 100

2.3 हिंदुस्थान में इसलाम की स्थापना एवं हिंदुओं का प्रचंड उत्पीड़न 103
2.4 विदेशी मुसलिम आक्रांताओं का विरोध एवं मुँहतोड़ जवाब 105
2.5 हिंदू योद्धा जातियाँ एवं उनका प्रचंड विरोध 108
2.6 धर्मपरायण वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी इत्यादि जातियाँ 111
2.7 धर्मरक्षा के अग्रणी दूत 114
2.8 हिंदूधर्म रक्षा हेतु स्व का बलिदान 118

अध्याय-3

स्वाभिमान भंग कर बनाया सफाईकर्मी 122
3.1 हिंदू गर्व, बोध एवं स्वाभिमानी हिंदू 123
3.2 दुर्भाग्यपूर्ण पराजय एवं हिंदू युद्धबंदी 126
3.3 धर्म और स्वाभिमान में एक का चुनाव 130
3.4 धर्म की रक्षा अंतिम इच्छा 133
3.5 पराजितों एवं युद्धबंदियों पर भयानक अत्याचार 136
3.6 स्वाभिमान भंग होने से भंगी नाम पड़ा 139
3.7 मैला ढोना स्वीकार्य, किंतु इसलाम अस्वीकार्य 140
3.8 और अपनों में भी अछूत हो गए 143

अध्याय-4

हिंदू धर्मरक्षा की सजा दलित बने 147
4.1 हिंदुस्थान पर पड़ी दुनिया की कु-दृष्टि 148
4.2 समृद्ध भारत की उपमा 'सोने की चिड़िया' 151
4.3 लुटेरों को मुँहतोड़ उत्तर 155
4.4 सैकड़ों आक्रमणों से निर्बल हुआ हिंदुस्थान 158
4.5 आपसी कलह से हिंदू हुए पराजित 161
4.6 हिंदू धर्म के लिए लड़ने वालों का भयानक उत्पीड़न 163
4.7 सामाजिक एवं आर्थिक शोषण की भयानक कालरात्रि 167
4.8 उत्पीड़न एवं बदहाली के परिणामस्वरूप दलित की पहचान बनी 171

अध्याय-5

मैला ढुलवाने का कारण तथा उद्देश्य 176
5.1 युद्ध में चुनौती देने का परिणाम-इसलामिक शासकों का कोपभाजन 178

5.2	युद्धबंदियों को मैला ढोने की सजा	182
5.3	मैला ढोने से स्वाभिमान हुआ भंग	185
5.4	सामाजिक रूप से गिराने का षड्यंत्र	187
5.5	असहाय, बंदी एवं दंडित हिंदुओं का आर्थिक शोषण	191
5.6	आक्रांताओं द्वारा राजवंशीय इतिहास का दुःखद समापन	195
5.7	धर्माभिमानियों के स्वाभिमानी स्वभाव का अंत	199
5.8	और मिली पहचान दलित जाति की	202

अध्याय-6

हिंदू समाज वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जातियों का ऋणी **208**

6.1	विदेशी मुसलमान एवं मुगल आक्रांताओं के आक्रमणों का उत्तर	209
6.2	वाल्मीकि, मजहबी सिख सुदर्शन जाति द्वारा इसलाम अस्वीकार्य	212
6.3	वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियों द्वारा धर्म की रक्षा	216
6.4	इसलामिक उत्पीड़न के विरुद्ध अपनाया 'सूअर-पालन' रूपी एक हथियार	220
6.5	धर्मपरायण हेतु ऐतिहासिक अपमान	224
6.6	हिंदुओं का जूठन स्वीकार्य किंतु मुसलमान का छुआ जल अस्वीकार्य	228
6.7	हिंदुत्व को मुख्यधारा में वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य सफाईकर्मी समाज	231
6.8	संपूर्ण हिंदू समाज सफाईकर्मी जाति का ऋणी	233

अध्याय-7

महर्षि वाल्मीकि तथा अन्य महान् पुरोधा **238**

7.1	हिंदू धर्म में ऋषि-परंपरा	239
7.2	महर्षि वाल्मीकि का चरित्र-चित्रण	242
7.3	हिंदू धर्म की पहचान महर्षि वाल्मीकि	245
7.4	महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण	247
7.5	महर्षि वाल्मीकि एक भागवत रूप	250
7.6	करोड़ों वाल्मीकि जाति के लोगों के श्रद्धा केंद्र महर्षि वाल्मीकि	252

7.7 वाल्मीकि एवं सुदर्शन, इत्यादि समाज के विशिष्ट पुरोधा 254
ऋषि एवं संत परंपरा के पुरोधा 255
7.8 फिर सफाईकर्मी समाज से घृणा क्यों ? 261

अध्याय-8

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि का सामाजिक उत्थान एवं सशक्तिकरण 267

8.1 वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज की वर्तमान स्थिति 268
8.2 सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक पिछड़ेपन का वर्तमान कारण 272
8.3 वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज का सशक्तिकरण अति आवश्यक 277
8.4 सफाईकर्मी समाज का सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक विकास शिक्षा द्वारा संभव 280
8.5 सफाई कार्य में वैज्ञानिक तकनीकि एवं पारिश्रमिक नीति आवश्यक 282
8.6 सामाजिक जनजागरण एवं आत्मगौरव का बोध 284
8.7 जातिगत संगठन एवं आत्मोत्थान चिंतन आवश्यक 287
8.8 संवैधानिक संरक्षण एवं सरकार द्वारा प्रदत्त अन्य अभिकरण तथा योजनाएँ 290

उपसंहार 299

परिशिष्ट : हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि (सफाईकर्मी) जाति के संबोधन उपनाम एवं गोत्र आदि की सूची 310

संदर्भ ग्रंथ-सूची 318

प्रस्तावना

रामराज्य की परिकल्पना पर प्रतिष्ठापित प्रजातांत्रिक राज्य प्रबंधन में शासन-सत्ता पर लोकमत का अधिकार है। प्रजा जिसे चाहती है, उसे अपना राजा नियुक्त करती है। देश की संप्रभुता और उसका भविष्य जन-शक्ति में केंद्रीभूत है। वोट-बैंक सुनिश्चित करते हैं कि सत्ता कौन सँभालेगा? हिंदुस्थान की जन-शक्ति अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, किंतु वह बौद्धिक दृष्टि से सशक्त देश की संस्कृति एवं सभ्यता के महत्त्व को समझ सकने में पारंगत एवं पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति के प्रभाव में आकर[1] नीर-क्षीर विवेक करने की स्थिति में आज पूरी तरह समर्थ नहीं है। जिसके परिणामस्वरूप देश की संप्रभुता उनके भी हाथों में पहुँच जाती है, जो इसके अपात्र होते हैं। शिक्षा जब जन-जन तक पहुँचेगी और सभी अपनी बुद्धि एवं विवेक से बिना किसी एकाकी विचारधारा, पूर्वाग्रही उन्माद और लोगों के बहकावे में आए बिना अपने लिए सही प्रतिनिधि चयन करने लगेंगे तो वही लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था का चरम उत्कर्ष होगा। निःशुल्क शिक्षा, आहारसहित शिक्षा और सर्वशिक्षा अभियान द्वारा प्रबुद्ध मतदाता तैयार करने हेतु प्रयास आज देश में प्रगति पर है।

वर्ण एवं जातिविहीन वैदिक काल[2] का स्वर्णिम दिन धीरे-धीरे वर्तमान समय में वापस आने लगा है और जाति-भेद, छुआछूत आदि का प्रश्न गौण होता जा रहा है, जिसके फलस्वरूप हिंदू समाज का स्वरूप समरसतापूर्ण होने लगा है। इसमें सबसे बड़ी बाधा डाल रही है—'जातिगत राजनीति की वैचारिकी'। जाति के आधार पर जोड़-तोड़ की राजनीति सत्ता लोभ में एक बार पुनः हिंदू समाज में विष घोल रही है। राजनेतागण एक तरफ तो भेदभाव मिटाने की बात कहते हैं, किंतु स्वयं ही प्रत्येक जातियों को अपना स्वतंत्र स्वरूप प्रदर्शित करके अपनी-अपनी जाति का जनप्रतिनिधि चयन करने की सलाह देते हैं।

---

1. सोनी, सुरेश : हमारी सांस्कृतिक विचारधारा के मूल स्रोत, 2003, (मनोगत पृ. 4)
2. ऋग्वेद 5/60/5 एवं 9/12/3

देश में राजनैतिक जागृति प्राय: सभी जातियों के अंतर्गत अब उत्पन्न हो चुकी है और सभी जातियाँ शासन में अपना प्रतिनिधित्व प्रेषित करना चाहती भी हैं, ऐसे में उस जाति-विशेष की मतदाता संख्या ही महत्त्वपूर्ण होती है। वर्तमान समय में कोई भी ऐसी जाति नहीं है, जो अकेले अपने बल पर शासन-सत्ता अपने हाथों में कर ले। यहीं से जाति-समीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है और कुछ अत्यधिक जनसंख्या (मतदाता संख्या) वाली जातियों के मतों का ध्रुवीकरण भी आरंभ हो जाता है। अतएव हिंदुस्थान में वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था की संरचना में आज जाति समीकरण एवं मतों का ध्रुवीकरण अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रतीत होने लगा है।

जाति समीकरण एवं जातिमतों के ध्रुवीकरण के धारदार अस्त्र-शस्त्रों से सत्ता संघर्ष में संलग्न होकर अपने पौरुष-पराक्रम (बाहुबल एवं धनबल) का प्रचंड प्रदर्शन करते हुए शासन-सत्ता के सुख-प्रेमी नीति-अनीति[1] अर्थात् किसी भी मूल्य पर संप्रभुता का स्वामी बनने को उद्यत है। इसमें स्वहित ही स्वधर्म का मापदंड है, देश और देशवासियों के हित का इसमें कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार वर्तमान वातावरण में सत्ता हथियाने और उसके संचालन में वर्चस्व स्थापित करने की दृष्टि से जाति समीकरण एवं अन्यान्य जातियों का अपने अंतर्भूत शक्तियों के प्रदर्शन की परंपरा स्पष्ट दृष्टिगत है।

वर्तमान समय में राजनीति का वर्चस्व प्रत्येक क्षेत्र में स्थापित हो चुका है। सामाजिक जगत हो या आर्थिक, यहाँ तक कि धार्मिक क्रिया-कलापों में भी राजनीति का हस्तक्षेप सामान्य रूप से दिखाई दे रहा है। राजनीति एक नशा हो गई है।[2] राजनीति में अग्रणी होकर प्रत्येक व्यक्ति अथवा समाज, सत्ता को हथियाकर शासन पर अपना प्रभुत्व रखना चाहता है। ऐसे में सामान्य जाति, पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियाँ, सभी अपने को एकत्रित, संगठित और जागृत करके तथा अन्य जातियों के साथ समीकरण स्थापित करके सत्ता इत्यादि में भागीदारी कर रही हैं।

दलित शासन देश के बहुसंख्यक वर्ग की राजनैतिक प्रगति का प्रतिबिंब है। यह तभी तक स्थायी है, जब तक कि वह पक्षपातपूर्ण मानसिकता के प्रदूषण से मुक्त होकर किसी दलित जाति विशेष के लिए अधिक उदार नहीं है। दलित वर्गों में भी सत्ता हथियाने की होड़ में किसी एक जाति विशेष के द्वारा अन्य जातियों के लिए भेदभाव के प्रदूषण दृष्टिगोचर होने लगे हैं। एक जाति का व्यवहार दूसरी जाति के विरुद्ध हो रहा है।[3] ऐसे में असंतुष्ट दलित जातियों के लिए कुछ अलग से सोचने की आवश्यकता हो

---

1. डॉ. कृष्णगोपाल : बाबा साहब व्यक्तित्व और विचार, 1994, पृ. 45
2. बाबा साहब डॉ. अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, 1993, नई दिल्ली, खंड-1, पृ. 261-262
3. वही, खंड-1, पृ. 72

सकती है। तथाकथित सफाईकर्मी (वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार एवं रुखी, मजहवी सिख इत्यादि) जाति सभी दृष्टि से दलितों में भी दलित मानी जाती है, परंतु दलित-सत्ता में उसे मिल क्या रहा है, यह स्वयं इस जाति के लोगों को सोचना होगा। वस्तुतः ऐसे में वाल्मीकि, सुदर्शन मखियार एवं रुखी, मजहवी सिख इत्यादि जाति को भी अपने अंदर विद्यमान चिंतन शक्ति को जागृत करके वर्तमान राजनीतिक सक्रियशीलता में अपने लिए भी राजनीतिक संभावनाओं को आज तलाशने की आवश्यकता है।

हिंदू धर्म में आज जाति-व्यवस्था अर्थहीन हो चुकी है। सभी को वेद का अध्ययन-अध्यापन करने, पूजा-पाठ एवं तीर्थाटन करने और किसी भी प्रकार की हिंदू दैवी आराधना में निरत रहने की पूरी स्वतंत्रता है। जाति के आधार पर किसी को भी हिंदू धर्म के समस्त क्रिया-कलापों के संपादन में कोई बाधा नहीं है। परंतु लोकाचार में यह प्रथा व्यवहार में है, इसलिए इसकी अनदेखी भी नहीं की जा सकती है। राजनीति में जाति-व्यवस्था को इसी कारण से एक सशक्त आधार बना हुआ पाया जाता है। यदि वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि यानी सफाईकर्मी जातियाँ भी अन्य दलित जातियों की भाँति अपने को राजनीतिक रंगमंच पर लाती हैं, तो अपने लिए वे विशेष कुछ अर्जित कर सकती हैं, क्योंकि प्रतिवेदन में जो प्रभाव होता है, वह अनुमोदन में नहीं होता। इस जाति को अनुयायी होने की अपेक्षा अगुआई में आना उचित होगा।

हिंदू धर्म एवं संस्कृति के अनुपालन में जातियों की कोई भूमिका नहीं होती है। धर्म एवं संस्कृति के सान्निध्य में जाति, वर्ग आदि का प्रश्न स्वतः गौण अथवा समाप्त हो जाता है। चारों पुरुषार्थ पर आधारित हिंदू धार्मिक व्यवस्था में जाति का कोई महत्त्व नहीं है, किंतु लोकाचार में प्रयुक्त होने से यह आज भी हिंदू समाज में व्यावहारिक बनी हुई है। वर्तमान समय में यह अर्थहीन हो चुकी है और इस अर्थहीन जाति-व्यवस्था को समाप्त करने से ही हिंदू समाज का विकास हो सकेगा। वस्तुतः ग्राम्य स्तर पर भी अब इसे अर्थहीन ही माना जाने लगा है।

सामाजिक व्यवस्था में आर्थिक ढाँचे की नींव[1] प्राचीन काल की जाति-व्यवस्था पर अवश्य टिकी थी, किंतु आज वह भी लगभग समाप्त प्रायः है। वैश्विककरण के तहत एफ.डी.आई. यानी फुटकर व्यवसाय में भारी एवं विदेशी निवेश ने व्यवसाय पर आधारित जाति-व्यवस्था के समक्ष प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया है। स्वधर्म कर्म के अंतर्गत वंशगत निर्धारित कार्यों पर अब किसी भी जातिविशेष का एकाधिकार नहीं रह गया है। चर्म-शिल्पोद्योग में सभी जाति के लोग सेवारत हैं। यहाँ तक कि सफाई कार्यों में भी

---

1. यजुर्वेद 30/5, वृहदारण्यकोपनिषद् 1/4/11-13, महाभारत (शांतिपर्वक) 188/10

निविदा पर विभिन्न जाति के लोग नियुक्त होकर अपनी जीविका कमा रहे हैं। उन दोनों ही कार्यों में नियोजित होने पर उनको कोई चमार अथवा वाल्मीकि नहीं कहता है, बल्कि वे चर्म-शिल्पी और सफाईकर्मी ही कहलाते हैं। अर्थात् आज हिंदुस्थान में व्यवसाय किसी जाति की वृत्ति का पर्याय भी नहीं है और अब कोई जाति किसी व्यवसाय अथवा वृत्ति की एकाधिकारी नहीं। जाति-भेद यहीं समाप्त होता है और वैदिककाल की स्थापित सामाजिक अवधारणा जातिविहीन समाज का स्वरूप झलकने लगता है।

जाति आधारित भेदभाव एवं अस्पृश्यता की स्थिति तभी तक विद्यमान रही, जब तक यह देश इसलामिक और अंग्रेजों के शासनाधिकार में था। अपवित्रता और अस्पृश्यता की स्थिति विदेशी इसलामिक शासकों ने उत्पन्न की और उसी आधार पर भेदभाव एवं फूट डालकर अंग्रेजों ने लंबे समय तक उसी का लाभ लेते हुए भारत पर राज्य किया, परंतु उनके देश-निष्कासन के साथ ही हिंदू समाज में सामाजिक समरसता आधारित बंधुता हमारे संतों, समाज-सुधारकों और बुद्धिजीवियों के सराहनीय प्रयास से स्वत: व्याप्त होने लगी। विदेशी मानसिकतावालों के लिए सरकार द्वारा संविधान में कानून बना दिया गया और जाति आधारित भेदभाव एवं अस्पृश्यता को अपराध तक घोषित कर दिया गया। आज तथाकथित सफाईकर्मी जाति को केवल जातिनाम द्वारा विद्वेष को भावना से संबोधित कर देने पर भी जेल की सजा और अर्थदंड का प्रावधान है।

वास्तव में हिंदू समाज में अपवित्रता, स्वच्छता और अस्पृश्यता में अंतर नहीं करने के कारण ही हजारों की संख्या में दलित जातियाँ बनती चली गईं। यदि मुगलकाल के अत्याचार के कारण अस्वच्छ कार्यों में बलपूर्वक लगाई गई जातियों को पवित्रता की दृष्टि से देखा जाता तो वे अस्वच्छ कार्य करते हुए भी आत्मा से पवित्र दिखलाई देतीं, वैसे ही जैसे महर्षि व्याघ्र और संत रैदासजी मांस एवं चमड़े का कार्य करते हुए भी अतीव स्वच्छ एवं पवित्र थे। अस्पृश्यता एक अलग व्यवस्था है। जैसे कुछ रोगों में रोगियों को नहीं छुआ जाता है अथवा डॉक्टरों द्वारा कभी-कभी रोगियों को सामान्य व्यक्तियों से अलग रखा जाता है ताकि बीमारी फैलने न पाए, उसी प्रकार से अस्पृश्यता का तात्पर्य समाज विरोधी कार्य तथा चोरी आदि करनेवाले लोगों को समाज से बहिष्कृत किया जाना था। आज भी हड़ताल, धरना या सरकार की नीतियों के विरुद्ध प्रदर्शन करनेवालों को जेल में भेजा जाता है। यह भी एक प्रकार की अस्पृश्यता का वर्तमान स्वरूप है। इसलिए मध्यकाल के शासन एवं सत्ता द्वारा सताए हुए लोगों के साथ अस्पृश्यता अथवा अपवित्रता के भाव में व्यवहार करना पूर्णरूपेण अनुचित है।

हिंदुस्थान में जाति आधारित भेदभाव अतार्किक एवं अव्यावहारिक है। यह स्थिति मध्यकालीन इसलामिक शासकों द्वारा प्रायोजित थी। प्राचीनकाल में इसकी दुर्गंध तक न थी। प्राचीन हिंदू धर्म-ग्रंथ ऋग्वेद में भी यही उल्लिखित है कि मनुष्यों में न कोई बड़ा

है, न कोई छोटा है। सभी आपस में एक जैसे बराबर के एवं भाई हैं, यथा—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठासएते सं भ्रातरो।
वावृधुः सौभगाय।[1]

यही नहीं, एक ही परिवार में भिन्न-भिन्न जाति-व्यवसाय वाले भी होते थे और उनमें किसी तरह का भेदभाव नहीं था।[2] चारों वर्णों के लोग एक ही परिवार के सदस्य हो सकते थे और एक ही घर में रहते भी थे। यथा—

कारुरहं ततो मिषगुपल प्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवोअनुगा इव तस्थिम्॥[3]

अर्थात् मैं कारीगर हूँ, मेरा पिता वैद्य है और मेरी माता चक्की पीसती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न बुद्धियों अर्थात् योग्यता के काम करनेवाले, धन के अभिलाषी, हम सब अपने-अपने कामों को करते हैं और गायों की भाँति मिलकर, एक ही घर में रहते हैं।

ऋग्वेद के उपरोक्त सत्योक्तियों से स्वतः सिद्ध है कि प्राचीनकाल में हिंदू धर्म अथवा समाज में कहीं भी वर्ण अथवा जाति के आधार पर भेदभाव नहीं था। वर्तमान दलित जातियों का तो जन्म ही नहीं हुआ था। जो लोग चर्म-कर्म, मानव, मल-मूत्र यानी सफाईकर्मी इत्यादि जैसे शब्दों के आधार पर तथाकथित चर्मकार एवं सफाईकर्मी जैसी जातियों को प्राचीन जाति सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, वे वास्तव में उन जातियों को अपमानित करने का दुस्साहस ही करते हैं। चमड़ा उन दिनों यानी प्राचीन अथवा वैदिककाल में अपवित्र एवं अस्वच्छ माना जाता था, अतएव चमड़े की बनी कोई वस्तु व्यवहार में न थी। हिंदू आज भी चमड़े को हेय समझते हैं।[4] वस्त्र-संस्कृति विकसित होने से पहनने के लिए उच्च कोटि के परिधान प्रचलित थे। मृगछाल अथवा बाघंबर का उपयोग ऋषियों-मुनियों के लिए विहित था, जिसे प्राप्त करने और उपयोग करने के कारण न तो वे चर्म-शिल्पी थे और न ही चर्मकार अथवा चमार कहे गए थे। घोड़े के लगाम के रूप में रेशम इत्यादि की बनी वस्तुएँ ही प्रयोग की जाती थीं, क्योंकि युद्ध में कभी-कभी महारथी लगाम को मुँह में दबाकर युद्ध करता था।

---

1. ऋग्वेद, 5/60/5
2. आर्य, लाला ज्ञानचंद : वर्ण-व्यवस्था का वैदिक रूप, (विजय गुजराल फाउंडेशन, नई दिल्ली), 1994, पृ. 4
3. ऋग्वेद, 9/112/3
4. हमीदा खातून, दी अर्बनाईजेशन, पृ. 50

पाश्चात्य लेखनी का अनुमोदन न करनेवाले यह भी समझते हैं कि सफाई का कार्य पवित्रता के लिए बहुत आवश्यक था और वह सभी घरों में घर के सदस्यों द्वारा ही किया जाता था, परंतु सफाई करनेवाले घर के लोग सफाईकर्मी नहीं कहे जाते थे। मल-मूत्र को सबसे अधिक अपवित्र माना जाता था। इसलिए उसे त्यागने के लिए लोग घरों से बहुत दूर खेत-खलिहानों एवं मैदानों में जाया करते थे। किसी हिंदू के घर में कभी भी शौचालय नहीं होते थे। बल्कि चर्म-संस्कृति और शौचालय-व्यवस्था इत्यादि विदेशी अरेबियन मुसलिम शासकों की देन हैं। उन्होंने ही वर्ण एवं जाति के आधार पर हिंदू समाज में भेदभाव को जन्म दिया, क्योंकि अपने आक्रमणों के समय वे आक्रांता स्वयं भी हिंदुस्थान में विधर्मी जाति के माने जाते थे और हिंदू उनके साथ भेदभाव करते थे। अपने शासनकाल में उन इसलामिक विदेशी शासकों ने शासनादेश जारी करके विविध प्रकार के कार्यों को प्रारंभ कर दिया और जिन लोगों से उन कार्यों को दमन, दलन एवं उत्पीड़न करके बलपूर्वक कराया गया, उनको उस कार्य पर आधारित जाति का नाम प्रदान किया। तभी से यह एक महामारी के रूप में एकाएक हिंदू समाज में फैली हुई है।

सनातन धर्म एवं वैदिक व्यवस्था काल में कार्य के आधार पर व्यक्तियों की पहचान अवश्य थी, किंतु इस व्यवस्था में सम्मान या अपमान का चिंतन नहीं था, अपितु सभी कार्यों को महत्त्वपूर्ण समझा गया था। रामराज्य में शबरी जैसी पाकशास्त्र में निपुण स्त्रियों से भोजन बनवाने में कोई भेदभाव नहीं था। निषाद को भी राजा की उपाधि थी। महाभारत ग्रंथ, कठोपनिषद् और व्याघ्र गीता में वर्णित महर्षि व्याघ्र दिन भर मांस बेचने का काम करते एवं उसके बाद ब्राह्मणों तक को मंत्र एवं दीक्षा दिया करते थे। कर्म-प्रधान वह युग मध्ययुग में जाति-प्रधान बना दिया गया, जिसके लिए पूरी तरह विदेशी मुसलिम आक्रांता एवं शासक उत्तरदायी हैं।

वैदिककाल में एक ही परिवार में सभी वर्ण के लोग पाए जाते थे, जिसके सापेक्ष ऋग्वेद का[1] उद्धरण पूर्व प्रस्तुत है। वर्ण के आधार पर लोगों के कर्म नहीं निर्धारित किए गए थे, बल्कि कर्म के आधार पर ही वर्ण की कल्पना की गई थी। कर्म के आधार पर शूद्र को ब्राह्मण और ब्राह्मण को शूद्र वर्ण में स्थानांतरित किया जाता था।[2] किसी भी वर्ण के कार्य को कम अथवा अधिक महत्त्व देने का प्रश्न नहीं था। सभी कार्य महत्त्वपूर्ण और समान सम्मान के योग्य होते थे, यद्यपि सभी कार्यों का स्वरूप और उपयोगिताएँ भिन्न-भिन्न होती थीं। मध्यकाल में विदेशी शासकों ने बलपूर्वक लोगों के स्वकर्मों

---

1. ऋग्वेद, 9/112/3, मत्स्य पुराण (अ.4) हरिवंश पुराण (अ. 31) तथा वायु पुराण
2. मज्झिम निकाय 93/6, महाभारत (शांतिपर्व) 188/10 एवं सोशल ऑर्गनाइजेशन इन ईस्ट इंडिया, पृष्ठ 209

में परिवर्तन किया और ब्राह्मणों को धार्मिक द्वेषवश तथा क्षत्रियों को युद्ध के द्वेषवश अस्वच्छ, अपवित्र और मलिन कार्यों में लगाया तथा उनको अपवित्र और अस्पृश्य बनाकर उन्हें नया अपमानजनक जाति नाम भी प्रदान किया।

वैदिककाल मानव संस्कृति का प्रथम उदाहरण है, जहाँ समाज एवं लोकजीवन परिलक्षित हुआ। आज मनुष्य इस बात को जानने के लिए उत्सुक है कि संस्कृति एवं समाज की रचना कब हुई? इसके बारे में लोग बढ़-चढ़ अपनी बातों को रखने का प्रयास कर रहे हैं, किंतु हिंदू समाज में वैदिककाल में ही व्यक्ति, समाज एवं सामाजिक क्रियाकलापों को सामाजिकता का पैमाना मानकर उत्तम और अनुत्तम व्यक्तित्व इत्यादि सभी प्रकार के भावों का निरूपण हो चुका था। प्राचीन वैदिक समाज अत्यंत विकसित समाज का स्वरूप था एवं वैज्ञानिक स्वरूप का उदाहरण भी था।

ज्ञान-विज्ञान का पूर्ण व्यवहार्य स्वरूप वैदिककाल में विद्यमान था। आधुनिक विज्ञान हिंदू धर्म को सत्यापित करने के अलावा और कुछ नहीं है। भृगु ऋषि का वैमानिक शास्त्र (पुष्पक विमान इत्यादि), वैदिक अंकगणित, शून्य का गूढ़ ज्ञान, ज्योतिष एवं खगोल शास्त्र में ग्रहों-नक्षत्रों की हजारों साल पहले वर्णित दूरियाँ, भ्रूण प्रत्यारोपण के उदाहरणस्वरूप अत्रि ऋषि की चमड़े के पात्र में उत्पत्ति अथवा कौरवों की स्वर्ण कलशों में उत्पत्ति इत्यादि कई महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं जो हिंदू सभ्यता एवं संस्कृति के प्राचीन ज्ञान-भंडार की समृद्धि की ओर संकेत करते हैं।

हिंदुस्थान में संसार की सबसे प्राचीन सभ्यता सिंधु तथा सरस्वती घाटी की सभ्यता है, जहाँ विभिन्न प्रकार का सामाजिक विकास एवं सामाजिक संबंधों का प्रमाण प्राप्त है।[1] जब तक इस सभ्यता का प्राकट्योत्सव हिंदुस्तान के निवासी नहीं मना पाए थे, तब तक पश्चिमी देश अपनी ही सभ्यता की प्राचीनता की ढोल पीटा करते थे। सैंधव सभ्यता से प्राप्त पुरातात्विक सामग्रियों ने सिद्ध कर दिया है कि संसार का प्रथम सामाजिक विकास हिंदुस्तान में हुआ था और ग्रामीण ही नहीं, अपितु नगरीय सभ्यता भी पूर्ण विकसित थी तथा हिंदू मानव समाज में भेदभावविहीन सामाजिक संबंध पाए जाते थे।

उक्त सभ्यता वेद एवं सनातन धर्म पर आधारित थी, जिसमें किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं पाया गया। किसी भी विदेशी अथवा भारतीय लेखक, पुरातत्त्ववेत्ता एवं इतिहासकार ने यह नहीं लिखा है कि सैंधव सभ्यता यानी सिंधु के लोगों में आपसी किसी प्रकार का भेदभाव था और वे उसी भेदभाव के कारण आपस में टकराकर समाप्त हो गए थे। वास्तविकता तो यह थी कि खुदाई में प्राप्त प्रत्येक वस्तुएँ आपसी सौहार्द एवं समरसता के ही भाव प्रकट करती है। वह सभ्यता किसी आक्रमण अथवा प्राकृतिक

---

1. कौशांबी : दि स्ट्रक्चर ऐंड सिविलाइजेशन इन एंशियएंट इंडिया, पृष्ठ 79

दुर्घटना से समाप्त हुई होगी, यही वैचारिकी सर्वमान्य है।

वर्तमान हिंदू समाज में प्राप्त सामाजिक भेदभाव उक्त सभ्यता में कहीं भी दिखाई नहीं देते, जिसके आधार पर इसे आदिकालीन सामाजिक परंपरा के दोष का नाम दिया जा सके। वैदिककाल में भी अस्पृश्यता संबंधित कोई भेदभाव का उल्लेख नहीं है। अतः यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि वर्तमान भेदभाव हिंदूविरोधी शक्तियों, मुसलिम आक्रांता शासकों एवं ब्रिटिश शासकों के द्वारा समय-समय पर रचे गए षड्यंत्र का ही परिणाम है।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी सिख एवं रुखी समाज को हिंदू समाज से भिन्न कदापि नहीं माना जा सकता है, क्योंकि इस जाति का जन्म मात्र इसीलिए हुआ कि इसने इसलाम अस्वीकार किया और हिंदू धर्म में अपनी निष्ठा व्यक्त की। हिंदू धर्म और हिंदू समाज से जुड़े रहने की इसकी कटिबद्धता का ही परिणाम है कि पराजित एवं युद्धबंदी धर्मरक्षक ब्राह्मणों एवं देशरक्षक क्षत्रियों का मानमर्दन करने के लिए उनसे मल-मूत्र साफ करने का कार्य विदेशी मुगल शासकों द्वारा बलपूर्वक कराया गया। पूर्व मध्यकाल में इस देश में शौचालय की परंपरा थी ही नहीं और सभी लोग शौचादि के लिए बस्ती से दूर जाया करते थे। घरों में शौचालय का निर्माण उस समय किया गया, जब हजारों की संख्या में मुगल शासकों की बलपूर्वक बनाई गई बेगमें बाहर जाने पर अपने यौन-सुख के लिए सुरक्षाकर्मियों से संपर्क करने लगीं। इतना ही नहीं, कभी-कभी वे सेवकों के साथ भाग जाती अथवा गर्भधारण कर लेती थीं। ऐसी स्थिति में नवाबों द्वारा उनके इन कृत्यों के कारण उनका महलों से बाहर जाने पर प्रतिबंध लगाया गया। उन्हें महल के अंदर ही मल-मूत्र त्याग करने के लिए अस्थायी शौचादि की व्यवस्था करनी पड़ी। अस्थायी शौचालय को साफ करने एवं मैला को ढोने के लिए निकृष्ट नौकर लगाए गए। कालांतर में मल-मूत्र साफ करने का कार्य केवल निकृष्ट नौकरों से ही नहीं, अपितु युद्ध में पराजित हिंदू सैनिकों यानी धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी हिंदुओं से कराया गया। धर्म और मैला ढोने के मूल्य पर उन्होंने मैला ढोना स्वीकार किया किंतु हिंदू धर्म का परित्याग नहीं किया। ऐसे धर्मनिष्ठ एवं राष्ट्रभक्त लोगों को हिंदू समाज का अभिन्न अंग मानना न्यायसंगत है।[1]

वाल्मीकि एवं सुदर्शन इत्यादि समाज की कमजोर और दयनीय सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा राजनैतिक स्थिति का कारण मध्यकाल में हुए अत्याचार एवं उत्पीड़न है। इस ध्रुव सत्य को कोई झुठला नहीं सकता है कि विदेशी आक्रांताओं को मुँहतोड़ उत्तर तो संपूर्ण देश ने दिया था, किंतु वे मुख्य रूप से ब्राह्मणों और क्षत्रियों को

1. आगरा के लालकिला में शाहजहाँ के शयनकक्ष के पास लगे एक शिलापट्ट पर आज भी लिखा है कि अकबर की छह हजार बेगमें थीं।

ही अपना प्रमुख शत्रु मानते थे। बार-बार और लगातार छल-छद्मपूर्वक होते रहे विदेशी आक्रमणों से थककर कभी हारने और युद्धबंदी बनाए जाने का बुरा दिन भी धर्मरक्षक और देशरक्षकों को ही देखना पड़ा था। मंदिरों-मूर्तियों का विध्वंस एवं नगरों की लूटपाट को रोकते समय सबसे अधिक बलिदान उन दोनों जातियों को ही करना पड़ा था।

विदेशी आक्रांता मुख्य रूप से इन्हीं दोनों (ब्राह्मण और क्षत्रियों) से वैरभाव रखते थे, इसलिए उन्होंने युद्धबंदियों के रूप में उनका सामाजिक उत्पीड़न किया, अपवित्र और अस्वच्छ कार्य बलपूर्वक कराके उनका मानमर्दन करने के उद्देश्य से उनको समाज में अपवित्र अथवा अस्पृश्य बनाया, उनके सामाजिक मान-प्रतिष्ठा को रौंद डाला, उनका सबकुछ छीनकर दरिद्र बना दिया और वे दर-ब-दर जीवन जीने के लिए विवश हुए अथवा बंदी अवस्था में विदेशी आक्रांता शासकों के महलों एवं किलों में चर्म-कर्म तथा मल-मूत्र साफ करने हेतु बलपूर्वक लगाए गए।

मल-त्याग करने के बाद व्यक्ति स्वयं को भी अपवित्र भाव से आभास करता है यदि वही व्यक्ति समाज के मलमूत्र की सफाई करता है, तो समाज उसे अपवित्र भाव से उपेक्षित करता है। यहाँ अस्पृश्यता का आधार स्वाभाविक पवित्रता के भाव में है, न कि तिरस्कार अथवा भेदभाव के अर्थ में है।

बलपूर्वक सफाईकर्मी बनाए गए लोग शिक्षा का लाभ प्राप्त करने की स्थिति में नहीं रह गए। विद्यालयों में उनके बच्चों को अस्पृश्य कहकर पढ़ने से रोका गया। उनके लिए मंदिरों, विद्यालयों, अस्पतालों, सार्वजनिक कुँओं, तालाबों तक की सुविधाएँ समाप्त होती चली गईं। कालांतर में वे बस्ती में नहीं रह सकते थे, इसलिए वे अपनों में ही अस्पृश्य हो गए। फिर उन्हें सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक आधार पर निम्न होने के कारण धीरे-धीरे गाँव अथवा नगर की तत्कालीन राजनीति से संबंध रखने का औचित्य नहीं रह गया।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी सिख एवं रुखी जाति धार्मिक, स्वाभिमानी एवं योद्धा जातियों से बनी है। विदेशी इसलामिक आक्रांताओं ने अपना प्रथम आक्रमण हिंदू आस्था के प्रतीक मंदिरों एवं उनमें स्थापित देवी-देवताओं पर ही किया, जहाँ धर्मरक्षा के निमित्त धर्मपरायण हिंदू ब्राह्मण नियुक्त होते थे। उनके पास कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं होते थे। उन दिनों शस्त्र रखने का प्रावधान केवल देशरक्षा में संलग्न राजन्य परिवारों यानी क्षत्रियों के लिए और सैनिकों के लिए ही था।[1] अतएव देवल का देवालय, ज्वालादेवी का नगरकोट मंदिर, सोमनाथ मंदिर, इत्यादि सभी टूट गए और ब्राह्मणों को युद्धबंदी बना लिया गया। इसलाम अस्वीकार कर देने पर बहुतों को मौत के घाट उतार दिया गया और जो रह गए उन्हें चर्म-कर्म में बलपूर्वक लगाकर चर्मकार तथा मलमूत्र

1. प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट-'ख' द्रष्टव्य।

ढोने के कार्यों में लगाकर सफाईकर्मी बना दिया गया। वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि जाति में ब्राह्मण वर्ण के अनेक गोत्र पाए जाते हैं, जिनके आधार पर यह सहज में अनुमान लगाया जा सकता है कि वर्तमान सफाई-कर्मी जाति की दस प्रतिशत जनसंख्या ब्राह्मण जैसी स्वाभिमानी जाति को ही बलपूर्वक सफाई-कर्म में लगा देने से बनी है।[1]

योद्धा जातियों में क्षत्रिय एवं राजपूतों का नाम गर्व से लिया जाता है, जिनके पास चतुरंगिणी सेनाएँ भी होती थीं। विदेशी आक्रमणों के समय वे हिंदू राजा एक-दूसरे से द्वेष रखते थे और आपस में ही छोटी-छोटी बातों में लड़ा करते थे। विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के आक्रमणों को उन्होंने सदैव संबंधित हिंदू राजा पर आक्रमण माना और उसे देश पर आक्रमण के रूप में न स्वीकारने की भूल की, जिसका परिणाम अंततः उनको भी भुगतना पड़ा। विदेशी मुसलिम आक्रांताओं ने पहले छोटे-छोटे राज्यों पर आक्रमण किया। बड़े हिंदू राज्यों का सहयोग न पाने के कारण कभी-कभी छोटे राज्य का राजा जनहित में बिना युद्ध किए ही समर्पण कर देता रहा। कई छोटे राज्यों को बिना युद्ध किए ही अपने अधिकार में कर लेने के बाद विदेशी इसलामिक आक्रांताओं का जब बड़े राज्यों पर आक्रमण होता था तब उन बड़े राजाओं की तंद्रा खुलती थी, परंतु तब तक बहुत देर हो चुकी होती थी।

स्पष्ट है कि प्रारंभ में केवल कुछ ही छोटे राज्यों पर विदेशी इसलामिक आक्रांताओं द्वारा आक्रमण हुए थे और बिना युद्ध हुए ही वे विजित कर लिए गए थे, क्योंकि लघु हिंदू राज्यों द्वारा आक्रांताओं का सामना ही नहीं किया गया था।[2] अधिकृत नगरों को लूटने और मंदिरों को तोड़ने का कार्य तो इसके बाद किया गया, परंतु वस्तुस्थिति को न जानने के कारण इतिहासकारों ने प्रत्येक युद्ध को महासंग्राम कहकर उल्लेख किया है। साक्ष्य के लिए डॉ. रामधारी सिंह दिनकर की निम्न पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं—

'मुसलिम आक्रामक दो-चार लाख फौज लेकर हिंदुस्तान में नहीं आते थे। बाबर सिर्फ बारह हजार आदमी लेकर हिंदुस्तान आया था। सन् 1199 ई. में बख्तियार खिलजी ने उदंतपुरी, (बिहार शरीफ) पर चढ़ाई केवल दो सौ सवारों को लेकर की थी। और बंगाल के इतिहास के बारे में मुसलिम लेखकों की चलाई हुई यह कहानी प्रसिद्ध है कि सिर्फ अठारह सवारों के साथ, जिन्हें लोग घोड़े बेचनेवाले समझते रहे, बख्तियार के बेटे ने नदिया के राजमहल के रक्षकों पर एकाएक हमला कर दिया और राजा लक्ष्मण सेन महल की दूसरी तरफ से भाग निकला।[1]'

हिंदू योद्धा जाति चाहे जैसे भी पराजित हुई, फिर भी इसके अनेक कारण थे।

---

1. दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय (लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004), पृ. 257
2. डॉ. अंबेडकर : रानाडे, गांधी एंड जिन्ना (ठक्कर ऐंड कं., बॉम्बे, 1943), पृ. 12-20

पराजित योद्धा इसलाम न स्वीकार करने के कारण मार दिए गए अथवा उनको बलपूर्वक अपवित्र और अस्वछ कार्यों में लगाया गया जो कि आज तक चर्मकर्मी (चमार) और सफाईकर्मी (भंगी) के रूप में विद्यमान हैं। युद्धबंदियों की संख्या बहुत अधिक थी और सभी धर्मरक्षक ब्राह्मण एवं राजवंशीय राजपूत तथा क्षत्रिय थे, इसलिए यह कहना उचित होगा कि तथाकथित सफाईकर्मी (वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि) जाति की वर्तमान जनसंख्या का 90 प्रतिशत भाग हिंदू क्षत्रिय जाति से संबंधित पाया गया है, जैसा कि वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति के क्षत्रिय गोत्रों से भी पुष्ट है।[2]

हिंदू वाल्मीकि यानी सफाईकर्मी जाति आक्रामक तथा युद्धकला में कुशल एवं योद्धा जाति है। यह विशेषताएँ उसे जन्म से मिली यानी अनुवंशिक है, क्योंकि इस जाति का निर्माण ब्राह्मण और क्षत्रिय जातियों का (समाज में स्थापित) स्वाभिमान भंग करके विदेशी इसलामिक आक्रांताओं द्वारा इसलाम अस्वीकार करने के कारण बलपूर्वक मल-मूत्र साफ करने में लगाए जाने से हुआ है।[3] आज भी इनका स्वभाव पूर्णतः आक्रामक पाया जाता है। किसी भी विवाद में इनके हाथ तुरंत मारपीट करने हेतु उठ जाते हैं। सांप्रदायिक दंगों के समय शस्त्रसज्जित मुसलिम जत्थों पर वे निर्भीक होकर टूट पड़ते हैं। उन्हें उनके अचेतन मन में याद आ जाता है वह दिन, जब कभी विदेशी मुसलिम आक्रांताओं द्वारा ही भारी उत्पीड़न एवं अत्याचारों से वे ब्राह्मण और क्षत्रिय से तथाकथित सफाईकर्मी अथवा भंगी बनाए गए।

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि जातियों के लोग अपने उत्सवों में शौर्य-प्रदर्शन को प्रमुखता के साथ लोकार्पित करते हैं। हाथ में लाठी अथवा तलवार लिए वे पैंतरा बदल-बदल कर घात-प्रतिघात की कला का प्रदर्शन करते हैं। उनकी निर्भीकता एवं साहस यह सिद्ध करते हैं कि पूर्वकाल में वे किसी योद्धा जाति के थे। शरीर से हृष्ट-पुष्ट लोगों के सामने भी एक वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जाति का बालक बड़े साहस के साथ प्रतिकार करता पाया जाता है। यही विशेषता उनकी स्त्रियों में भी देखने को मिलती है। वे भी किसी की बात का कड़ा प्रतिकार करती हैं और पुरुषों की भाँति लड़ने के लिए तैयार हो जाती हैं। उनकी बस्ती में स्वाभिमान की रक्षा के नाम पर लोगों को ईंट-पत्थर चलाते और हथियार भाँजते देखा गया है।

हिंदुस्थान के जाति-इतिहास में मध्यकाल के पूर्व वाल्मीकि, सुदर्शन (भंगी) इत्यादि नामक कोई जातियाँ नहीं थीं। इस जाति का नाम किसी हिंदू धर्म-ग्रंथों में ढूँढना निरर्थक प्रयास होगा, क्योंकि हिंदू धर्म-रक्षा हेतु संघर्ष करनेवाली अनेकानेक जातियों

1. प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट-'ख' द्रष्टव्य
2. वही, पृष्ठ 257
3. जनसत्ता, 14 अप्रैल, 1994 (संपादकीय)

एवं योद्धाओं को उनके हिंदू स्वाभिमान को भंग करने के प्रयास में उनको गंदे यानी अस्वच्छ कार्य एवं मैला ढोने के कार्य में बलपूर्वक लगाकर उनका स्वाभिमान भंग करके उनको भंगी, चमार इत्यादि का नाम दिया गया।[1]

विदेशी इसलामिक आक्रांताओं द्वारा हिंदू धर्मरक्षकों (ब्राह्मण पुजारियों) एवं देशरक्षकों (क्षत्रिय सैनिकों) को हिंदू धर्म त्यागने एवं इसलाम अपनाने के लिए जिहाद (धर्मांतरण एवं युद्ध की ललकार) के साथ बाध्य किया था और जो लोग ऐसा नहीं करते थे, उन्हें प्रताड़ित करके बलपूर्वक अस्वच्छ कार्यों में लगाकर उनका स्वाभिमान भंग करके उन्हें भंगी यानी सफाईकर्मी इत्यादि बनाया गया तथा उनके स्वाभिमान एवं सामाजिक मान-सम्मान को समाप्त किया गया। विदेशी आक्रांता शासकों ने जिहाद के नाम पर हिंदुओं के धर्म-युद्ध को अस्वीकार करते हुए उनके उपकारों तक की सदैव अनदेखी की।

डॉ. दिनकर ने अलबैरूनी के हवाले से लिखा है कि हिंदू जन्मजात अहिंसक थे। अनेक धर्मों का स्वागत करते-करते वे धार्मिक मामलों में बहुत ही सहिष्णु हो गए थे। महमूद गजनवी से पहले जो भी विदेशी मुसलमान भारत में आए थे, उन्हें यहाँ के राजाओं ने अच्छा प्रश्रय दिया था। उन्हें सपने में भी यह ख्याल न था कि दुनिया की एकाध जाति ऐसी भी है, जो मूर्तियों को तोड़ने और मंदिरों को भ्रष्ट करने में ही सुख मानती है। जब मुसलिम आक्रमण के साथ मंदिरों और मूर्तियों पर विपत्ति आई, हिंदुओं का हृदय फट गया और वे इसलाम से तभी जो भड़के, सो अब तक भड़के हुए हैं।[2]

यही कारण है कि वर्तमान हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी, मखियार, रुखी इत्यादि जाति और इसी प्रकार के कुछ अन्य दलित जातियों के लोग भूख की असह्य पीड़ा न सह सकने के कारण तथाकथित सवर्णों के यहाँ का अवशेष अन्न यहाँ तक कि जूठन तक खा लेते थे, परंतु किसी मुसलमान के हाथ का छुआ पानी भी नहीं पीते थे, भले ही जल के बिना उनके प्राण क्यों न निकल जाएँ। इस शपथरूपी कटुता का मूल था—तलवार की शक्ति से इसलाम स्वीकार कराने की मनोवृत्ति।[3]

हिंदू वाल्मीकि एवं सुदर्शन जैसी अनेक दलित जातियों का इतिहास वर्तमान समय में अप्राप्त है। जिनके उपलब्ध भी हैं, वे उस दलित जाति के लोगों द्वारा न लिखा होकर किसी विदेशी अथवा अन्य लेखकों द्वारा लिखे गए हैं। विदेशी इतिहासकार भला भारतीय उस जाति के गौरवशाली अतीत की क्यों चर्चा करेगा? उसने तो वही लिखा जिसे विदेशी आक्रांताओं, शासकों और उन ब्रिटिश हुक्मरानों ने बताया था। यही कारण है कि दलित जातियों का इतिहास अस्वस्थ, अयथार्थ और अस्वीकार्य पाया जाता है।

---

1. दि कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वॉल्यूम-51, Pub. न्यू दिल्ली, 1972, पेज 144
2. डॉ. दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 268
3. अंबेडकर : राइटिंग्स ऐंड स्पीचेज, वॉल्यूम-8, पेज 56 एवं 63-64

ऐसे इतिहास केवल भ्रम फैलाने और सामाजिक भेदभाव को उत्पन्न करने के लिए ही लिखे गए हैं। उदाहरणार्थ 'दी चमार' शीर्षक नामक पुस्तक 1920 ई. में अंग्रेज लेखक द्वारा लिखी गई, जो अत्यंत आपत्तिजनक है।[1]

तथाकथित वाल्मीकि एवं सुदर्शन इत्यादि समाज का सौभाग्य है कि उसके विषय में किसी विदेशी ने कभी स्वतंत्र लेखनी नहीं चलाई, अन्यथा इस जाति के गौरवशाली अतीत की उपेक्षा हुई होती। परंतु दुर्भाग्य की बात यह भी है कि इस समाज के तथाकथित बुद्धिजीवी लोग भी अपना इतिहास लिखने की बजाय अपने को बुद्धिजीवी साबित करने में ही अपना समय गवाँ डाले हैं। उन्होंने अन्यान्य काम तो किए किंतु स्व-समाज का इतिहास, उसकी उत्पत्ति, उसके स्वाभिमानी राजवंश, उसके धार्मिक पुरोधा, उसके अतीत से संबद्ध वर्तमान इत्यादि पर तथ्य संकलित करने में पीछे रह गए, जबकि यह कार्य उनको वरीयता के आधार पर करना चाहिए था। स्वजातीय समाज के सम्मान को वापस दिलाना था। आनेवाली पीढ़ी को प्रत्यक्ष दीनहीन गंदगी एवं अस्वच्छतायुक्त दिनचर्या तथा निम्न समाजीकरण से मुक्ति दिलाने और उन्हें उनका गौरवशाली इतिहास प्रस्तुत करना आवश्यक था, जो कथमपि न्यायसंगत भी कहा जा सकता है।

जब जागो तभी सबेरा। अब इस समाज को जाग उठने की आवश्यकता है। विकास की राह पर अग्रसर होने के लिए उसे स्वयं में शक्ति पैदा करने की जरूरत है। समाज-सुधारक और बुद्धिजीवी लोगों का भी दायित्व है कि वे इनकी प्रत्येक बस्ती में जाकर लोगों को समझाएँ और उनके पढ़े-लिखे नौजवानों को यह आभास कराएँ कि वे अपने समाज के प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाने में जुटें, संसार में हो रहे विकास और उनसे मिलनेवाले सुख-समृद्धि तथा अच्छे एवं सुखद भविष्य की ओर स्वजातियों का ध्यान आकृष्ट करें और लोगों की दीनहीन बने रहने की मानसिकता में परिवर्तन लाएँ। यह कार्य तीव्र गति से यानी युद्धस्तर पर होना चाहिए, ताकि हिंदुस्थान का यह स्वाभिमानी और गौरवशाली वंश अपनी पूर्व परिस्थिति एवं भूमिका में वापस लौट सके।

तथाकथित हिंदू सफाईकर्मी समाज वर्तमान समय में सफाई कार्य को ही अपनी जीविका का मुख्य आधार मान बैठा है जो नितांत त्रुटिपूर्ण सोच है। स्वच्छता एवं सफाई की भी प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है। सफाई का कार्य स्थान-विशेष के अनुसार भी पवित्रता की अलग अवधारणा रखता है। वर्तमान समय में अनेक जाति के शिक्षित युवकों को सफाई की वैज्ञानिक विधियों का प्रशिक्षण देते हुए सफाई कार्य हेतु नियुक्त किया जा रहा है। ऐसे में हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी, मथियार, रुखी इत्यादि जाति ही क्यों पीछे रहे? नालियों की सफाई-धुलाई के लिए चमड़े के मशक में पानी पीठ

---

1. डब्ल्यू.एस. ब्रिग्रस : दी चमार

पर लादकर अब कोई नहीं चलता है, बल्कि यह कार्य ट्रकों पर लदे पानी के टैंकरों में बने फौव्वारों से लिया जा रहा है। उसी तरह से सफाई-कार्य में वैज्ञानिक उपकरणों को प्रयोग में लाने के लिए प्रतिष्ठानों के प्रबंधकों द्वारा प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। ऐसे कार्यों में उच्चतम तकनीकी संसाधनों की माँग प्रस्तुत होनी चाहिए, जिससे उनकी जीविका प्रभावित नहीं होगी, वैज्ञानिक विधियों को उपयोग में लाने से उनके प्रति समाज की भावना में भी परिवर्तन आएगा। यह कार्य और लोग भी करने लगेंगे तो पेशे के नाम पर इस जाति के प्रति असम्मान की स्थिति भी समाप्त हो जाएगी। सफाई-कार्य के लिए स्वतंत्र भारत में कोई सामाजिक बंधन भी नहीं रह गया है, इसलिए वाल्मीकि समाज की अन्यान्य कार्यों में हस्तक्षेप करने की मनोवृत्ति भी बनेगी। इससे वे समाज की तथाकथित उच्च जातियों की समकक्ष परिस्थिति सरलतापूर्वक प्राप्त कर सकेंगे।

वर्तमान समय में संपूर्ण दलित समाज का विकास आवश्यक है। देश का विकास दलित समाज के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। देश की एक-तिहाई जनसंख्या दयनीय स्थिति में होने के कारण दलित कहलाती है और उसकी आर्थिक स्थिति अविकसित अथवा अर्द्ध विकसित है। केवल 25 प्रतिशत विकसित लोगों के बल पर यह देश कितना विकास कर सकेगा, जबकि पंचवर्षीय उसके साथ 75 प्रतिशत अर्द्धविकसित लोगों की विशाल जनसंख्या खड़ी है? अनेक योजनाओं के व्यतीत हो जाने के बाद भी देश आर्थिक दृष्टि से न तो संपन्न हो सका है और न ही आत्मनिर्भर बन पाया है। इसका मूल कारण है दलित समाज का अविकसित होना।

आज सभी लोग यह स्वीकार कर चुके हैं कि वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी, मखियार, रुखी इत्यादि के साथ ही संपूर्ण दलित समाज का विकास अति आवश्यक है। परंतु व्यवहारत: यही देखने में आता है कि शासन-सत्ता में जिस जाति का प्रतिनिधित्व अधिक है, उस जाति के लिए विकास-संसाधनों के अत्यधिक पैकेज प्रदान किए जाते हैं। और जिनका प्रतिनिधित्व असक्त या निर्बल होता है, उस जाति के विकास पर कम ध्यान दिया जाता है। यही कारण है कि समाज का सबसे निम्न स्तर का यह दलित अथवा सफाईकर्मी समाज, शासन-सत्ता में प्रभावहीन होने के कारण अभी तक अपने लिए कोई विशेष सुविधा अथवा स्थान नहीं प्राप्त कर पाया है। यह न्यायसंगत नहीं है। अंत्योदय-पद्धति का अभिप्राय यदि समाज के सबसे निम्न स्तर के व्यक्ति के विकास से हो तो दलितों में सफाईकर्मी दलित संवर्ग को प्रथम वरीयता प्रदान करके उसके सर्वांगीण विकास के लिए प्रयास किया जाना चाहिए। यह पुस्तक इसी उद्देश्य के लिए एक प्रयास है।

□

अध्याय-1

हिंदू लोक जीवन एवं वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी इत्यादि जातियाँ

वंश एक व्यापक तथा विशिष्ट वैचारिकी है एवं वंशविहीन कुछ है ही नहीं। यदि कुछ है तो वह अव्यावहारिक और अप्राकृतिक है। वंश प्राकृतिक है यानी प्रकृति ही है। जड़, चेतन, स्थावर, जंगम इत्यादि सभी के वंश होते हैं। वंश वर्तमान है, तो मूल की निरंतरता बनी हुई है। हिंदू की निरंतरता इसलिए है कि उसका भी एक वंश है।[1] वंशविहीन हिंदू धर्म तो अकाल्पनिक हो जाता है। वंश का स्वरूप हिंदू धर्म-व्यवस्था का प्राण है। हिंदू धर्म-व्यवस्था के अनुगामी सभी हिंदू जातियों की वंश-परंपरा उसके उत्पत्ति-काल से ही पाई जाती है। मध्ययुग में बलपूर्वक सृजित (तथाकथित सफाईकर्मी) वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी, मखियार, रुखी इत्यादि जातियाँ भी कुछ ऐसी ही जातियाँ हैं जो प्राचीनकाल में नहीं थीं, बल्कि उत्पत्ति एवं नामकरण विदेशी मुसलिम आक्रांता शासकों द्वारा हिंदुस्थान के स्वाभिमानी, धर्माभिमानी हिंदुओं का दमन, दलन एवं पचंड उत्पीड़न करके बनाया गया, क्योंकि इन जातियों के अति स्वाभिमानी एवं धर्मपरायण लोगों ने इसलाम स्वीकार नहीं किया और हिंदू धर्म में ही समर्पित रहे थे।

हिंदू लोकजीवन का स्वरूप अति प्राचीन है। प्राचीनकाल में एकमात्र सनातन धर्म था। विश्व के प्रथम पुनीत और महनीय धर्म-ग्रंथ ऋग्वेद[2] में हिंदू धर्म एवं उस पर आधारित लोकजीवन की प्राचीनता स्वत: निहित है। ऋग्वेद के परिप्रेक्ष्य में ही हिंदू धर्म का प्राचीन स्वरूप परिलक्षित हो जाता है। यह धर्म पूर्णत: प्रकृतिपरक एवं आध्यात्मिक

1. जनसत्ता, 14 अप्रैल, 1994 (संपादकीय)
2. मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 62

तथा भौतिक चिंतन एवं विचारों पर आधारित है, जिसका निर्माण हमारे ऋषियों और मुनियों ने मानव जीवन के सुख, शांति और समृद्धि के लिए किया है। यहाँ मानव जीवन का अर्थ हिंदू लोकजीवन से है।

हिंदू लोकजीवन का तात्पर्य हिंदुत्व के दस तत्त्व पर आधारित जीवन-पद्धति से है।[1] हिंदुस्थान में रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को इसका लाभ स्वतः प्राप्त हो जाता है, परंतु तभी तक, जब तक कि वह व्यक्ति या समुदाय हिंदू धर्म के अनुकूल आचरण करता रहता है। तथाकथित सफाईकर्मी यानी वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी इत्यादि जातियों का तो इतिहास ही हिंदू धर्म की अटूट श्रद्धा में रत रहने से मध्ययुग में विदेशी मुसलिम आक्रांता शासकों द्वारा बलपूर्वक अस्वच्छ वृत्ति में लगाकर आरेखित किया गया।

हिंदू धर्म में वैदिक-व्यवस्था के परे कुछ भी सोचना औचित्यहीन है। हिंदू संस्कृति सदैव हिंदू धर्म में ही अनुरक्त रहती है। वह हिंदू धर्म के जिन दस तत्त्वों[2] को आधार बनाकर सारे संसार की संस्कृतियों का नेतृत्व करती है, उनको किसी-न-किसी प्रकार से बिना अंगीकार किए विश्व की कोई भी संस्कृति जीवित रह ही नहीं सकती। हिंदू धर्म में सनातन काल से कुल धर्म की भी मान्यता है यानी सभी हिंदू कहीं-न-कहीं से एक ही कुल यानी मनु के वंशज हैं। हिंदुस्थान की पूर्वजीय आनुवांशिकता एक ही है।[3] हिंदू संस्कृति के इसी गौरवशाली अस्तित्व-बोध को हिंदू धर्म में वर्ण, वंश, गोत्रादि के रूप में भी प्रतिष्ठित करके मानव समाज को एक विहंगम और व्यापक स्वरूप प्रदान करने का प्रयास हुआ है, जिसका प्रभाव सभी संस्कृतियों पर प्राप्य है। विश्व का कोई भी देश यह नहीं कह सकता कि उसके यहाँ मानव समाज में वर्ण, वंश और गोत्रादि का महत्त्व नहीं है और प्रत्येक मनुष्य केवल एक ही माता, पिता और वर्ण से है।

हिंदू धर्म-व्यवस्था के अंतर्गत ही वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी, मखियार, मेहतर, रुखी इत्यादि यानी तथाकथित सफाईकर्मी जाति भी अपनी कुछ उपजातियों, विविध वंशों और गोत्रों के साथ अपने स्वाभिमानी और गौरवशाली अतीत की ओर चुनौतीपूर्ण संकेत देती है। हिंदू ब्राह्मण और क्षत्रिय राजपूतों ने मैला ढोया, मान-स्वाभिमान को भंग हो जाने दिया और सामाजिक दूरी बनाए रखने के लिए विवश किए जाने के साथ ही व्यंग्यात्मक संबोधन 'भंगी' तक को खून का घूँट पीकर सह लिया, परंतु हिंदू संस्कृति के गौरवशाली आवरण को अपने शरीर से कभी उतरने नहीं दिया। शरीर की चमड़ी तक

1. मनुस्मृति, 6/92 (धृति यानी धैर्य, क्षमा, दम यानी तपस्या, अस्तेय यानी चोरी न करना, शौच यानी पवित्रता, इंद्रियनिग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य तथा अक्रोध यानी अहिंसा)।
2. वही,
3. प्रो. राकेश पांडेय, बी.एच.यू., दलित आंदोलन पत्रिका, वर्ष 4, अंक 3, मार्च 2013

छिल गई और गरदन तक कट गई[1] फिर भी वे गर्व के साथ हिंदू संस्कृति के संवाहक बने रहे। कौन इस सत्य को अस्वीकार कर सकेगा कि वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन मखियार, मजहबी, मेहतर, रुखी इत्यादि समाज के लोग प्राचीन हिंदू ब्राह्मण, हिंदू क्षत्रिय, राजपूत और मराठा वंश के नहीं हैं? बल्कि उन्होंने इसलाम अस्वीकार करने के कारण विदेशी आक्रांता इसलामिक शासकों ने उन्हीं ब्राह्मणों, क्षत्रियों (राजपूतों) और मराठों को सफाई के कार्यों में लगाकर अस्पृश्य यानी भंगी बनाया[2] जिन्होंने हिंदू धर्म और संस्कृति को अपने मान-स्वाभिमान से ऊँचा समझा और क्रूर विदेशी आक्रांता अरब के शासकों द्वारा अपना मान भंग कराने तथा मल-मूत्र तक ढोने को तुच्छ समझा।

उपरोक्त शोधपरक वैचारिकी न तो वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी, रुखी, मेहतर इत्यादि जाति के प्रति तिरस्कार है और न ही किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय (राजपूत) और मराठा जाति के मान-सम्मान पर प्रहार अथवा कुठाराघात है। यह सत्य तो इस वैचारिकी को जन्म देने के अभिप्राय से प्रकट किया गया है, ताकि वर्तमान वाल्मीकि एवं सुदर्शन तथा अन्य यानी तथाकथित सफाईकर्मी समाज को तथाकथित उच्च जातियों से कम गौरवशाली न समझा जाए बल्कि उसे हिंदू समाज का प्रशंसनीय तथा स्वाभिमानी एवं धर्माभिमानी मानकर उन्हें गले लगाया जाए, अपना बनाया जाए और उनको अपने साथ आत्मसात् करके हिंदू राष्ट्र के लिए सुदृढ़ आधार का निर्माण किया जाए। इसी के साथ यह भ्रमयुक्त वैचारिकी भी निरस्त हो जाती है कि हिंदू समाज के एक विशाल जनसमूह को हिंदू समाज ने ही तथाकथित सफाईकर्मी बनाया और उनका शोषण करके निरंतर उनसे मैले एवं अस्वच्छ कार्य कराया। वस्तुतः मैला ढोने की परंपरा तो मुसलिम एवं ईसाई संस्कृतियों की अभिजात्य, दबंग, उच्चता, वैभव प्रदर्शन एवं शासक वर्ग द्वारा प्रजा पर बल और शौर्य प्रदर्शन युक्त मानसिकता तथा सनक की देन है। वर्तमान हिंदू जीवन-पद्धति में शौचालययुक्त गृह-प्रबंध इन्हीं विदेशी संस्कृतियों की विलासितापूर्ण वैश्विकरण की उपज है।

प्रस्तुत अध्ययन में उपरोक्त संपूर्ण तथ्यों पर साक्ष्यों के साथ हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी इत्यादि जातियों के वंश-गोत्रादि के गौरवशाली इतिहास को प्रस्तुत किया गया है।

1.1 हिंदू धर्म का प्राचीन स्वरूप

हिंदू धर्म का आधार शाश्वत वेद है।[3] वेद सबसे प्राचीन है,[4] अतएव स्वाभाविक

1. गुरु तेगबहादुर सिंह एवं उनके साथियों का रोमांचकारी बलिदान (द्रष्टव्य—वी.डी. महाजन : मुगलकालीन भारत, भाग 2, पृष्ठ 269-270
2. अंबेडकर स्पीचेज एंड राइटिंग्स, भाग 8, पृष्ठ 56
3. डॉ. विजय सोनकर शास्त्री हिंदू वैचारिक, पृष्ठ 1
4. मिश्र, जयशंकर प्रसाद : प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ 1

ही हिंदू धर्म प्राचीन है। हिंदू धर्म का प्राचीन स्वरूप वैदिक धर्म के नाम से ख्यात् था, इसलिए भी कि वैदिक समाज धर्मप्रधान था। उससे पूर्व वह 'वर्ण-धर्म' और तदुपरांत 'आश्रम-धर्म' के नाम से अभिहित था। प्राचीनकाल में हिंदू धर्म का स्वरूप नैतिकता, आस्तिकता, सदाचारिता, ज्ञानता, बौद्धिकता और मर्यादित आचरण से युक्त था। धर्म के सापेक्ष ही दार्शनिक चिंतन प्रारंभ हो चुका था।[1] परवर्ती काल में आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ तर्क विद्या (न्यायशास्त्र) का विकास हुआ।[2] याज्ञिक क्रियाओं ने ब्रह्मवेत्ताओं को सम्मानित किया और उनकी उपस्थिति किसी भी यज्ञ-कर्म के लिए अनिवार्य कर दी गई।[3] वेद पारंगत को उस समय ब्रह्मवेत्ता एवं ब्राह्मण कहते थे और यह गुण अथवा ज्ञान धारण करनेवाला कोई भी हो सकता था। उन दिनों यज्ञानुष्ठानयुक्त हिंदू धर्म को 'वैदिक धर्म' कहा गया है।

वैदिक धर्म का अर्थ वेद को मानना, उनमें आस्था एवं विश्वास करना और वेदविहित नियमादेशों का अनुपालन करना था। जो वैदिक धर्म के अनुसार आचरण करते थे उनको आस्तिक और जो नहीं करते थे उनको नास्तिक कहा गया।[4] वैदिक धर्म में दिव्य और अलौकिक सत्ता को वैचारिकी अथवा चिंतन का विषय बनाया गया। प्रकृति और सृष्टि जैसे गूढ़ विषयों पर चिंतन और मनन करने के साथ ही वैदिक धर्म को हिंदू समाज में व्यावहारिक और आध्यात्मिक आधार पर आभासित किया गया। प्रकृति को जहाँ वैदिक धर्म-भावना का प्रेरक तत्त्व माना गया, वहीं पर जगत के स्रष्टा के रूप में दिव्य शक्ति को स्वीकार किया गया—'शक्तिमेव विश्वस्य मूले' वैदिक देवमंडल को आतस्थिवासः (स्थिर रहनेवाले), अनंतासः (अनंत), अजिरासः, उरवः, विश्वतस्परि (संसार से ऊपर रहनेवाला) कहा गया।[5] मानव में देवत्व और वैदिक देवमंडल, दोनों को स्वीकार किया गया। सूर्य, सविता, विष्णु, वरुण, मित्र, अश्विन, उषा, इंद्र, अपानपात, पर्जन्य, रुद्र, अग्नि, वृहस्पति, सोम आदि के लिए स्तुति, प्रार्थना, अनुष्ठान और यज्ञादि कार्य करने का नियम बना।

वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मेहतर इत्यादि (सफाईकर्मी) जातियाँ हिंदू वर्ण-धर्म, हिंदू गृहस्थाश्रम धर्म और हिंदू वैदिकधर्म का पालन करते हुए अतिथि देवता, पितृदेवता और वैदिक देवताओं के प्रति आज भी हवन, पूजा, स्तुति, प्रार्थना इत्यादि करती हुई पाई जाती है। सूर्य और चंद्र ग्रहण के अवसर पर इस जाति की

---

1. ऋग्वेद, 1/164, 10/90, 121, 129
2. मैक्सवेबर : रिलिजंस ऑफ इंडिया, पृष्ठ 161
3. ऐतरेय ब्राह्मण, 40/1
4. मनुस्मृति, 12/94, 97
5. ऋग्वेद, 5/47/2

डोमवर्गीय शाखाएँ दान-दक्षिणा भी स्वीकार करती है। इससे पता चलता है कि ब्राह्मण एवं क्षत्रियों की भाँति डोम-डौंबार वर्गीय और भी कुछ जातियों को युद्ध में भाग लेने के कारण बलपूर्वक सम्मान भंग करके अरब के विदेशी मुसलिम आक्रांताओं एवं शासकों द्वारा तथाकथित सफाईकर्मी यानी भंगी जातियों का बनाया गया था।

हिंदू धर्म जब आध्यात्मिक संदर्भों का रहस्य शोध करने लगा, तो वेदों का मंथन करके उपनिषद् साहित्य का विकास किया गया, जो वेदरूपी समुद्र का मथा हुआ अमृत तत्त्व माना गया है। उसमें वैदिक ज्ञान एवं चिंतन सन्निविष्ट है, साथ ही आध्यात्मिक विचार एवं तर्क-दृष्टि का भी उसमें सुंदर समन्वय है, फिर भी वेदांतरूपी उपनिषदों पर आधारित होने के कारण उसे औपनिषदिक धर्म कहा गया। इसमें द्वैतवाद[1] की मान्यता प्रबल हुई, जैसे—ब्रह्म अथवा परमब्रह्म मूर्त भी है और अमूर्त भी है।[2] आत्मा की सत्ता स्वीकार की गई और उसे भी परमात्मा का ही रूप माना गया—समस्त संसार आत्मा है।[3] परमात्मा को ब्रह्म और जीवात्मा को मनुष्य की संज्ञा दी गई और यह कहा गया कि धर्मोचित कार्य करने पर ही जीवात्मा का मिलन ब्रह्म से संभव है। इस प्राचीन हिंदू धर्म में कर्म और ज्ञान के संयोग से ही जीवन में उत्कर्ष की संभावना व्यक्त की गई है। इस धर्म में ओंकार की उपासना का विशेष महत्त्व माना गया। आश्चर्य की बात नहीं है कि हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी इत्यादि जातियों में औपनिषदिक धर्म का आचरण निरंतर हुआ था, क्योंकि उस काल में यह जाति ब्राह्मण थी और क्षत्रिय भी थी, और यह दोनों जातियाँ वैदिककाल से लेकर अब तक प्राचीन हिंदू औपनिषदिक धर्म में पूरी निष्ठा रखती थी।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना उचित होगा कि अध्यात्म और ज्ञान को अलग-अलग करने से ही वैदिक और औपनिषदिक धर्मों के नामोल्लेख इतिहासकार अलग-अलग करते हैं, वैसे 'आध्यात्मिक ज्ञान' को एकीकृत करने पर हम हिंदू धर्म के प्रारूप को वैदिक धर्म ही कहते हैं, क्योंकि उपनिषदों को वेदांत ही कहा जाता है। वेद से भिन्न वे नहीं हैं। अतएव उनसे संबंधित उपनिषद् धर्म भी वैदिक धर्म का ही अंग है।

उपनिषद् ग्रंथों के बाद, हिंदू धर्म-ग्रंथों में वेदांग (शिक्षा, व्याकरण छंद, ज्योतिष, निरुक्त, कल्प), महाकाव्य (रामायण, महाभारत), पुराण, धर्मशास्त्र (स्मृतियाँ) के नाम समादरणीय माने गए हैं और ठनसे संबंधित प्राचीन हिंदू धर्म को पौराणिक धर्म, स्मृतिधर्म, आदि नामों से इंगित करते हैं। परंतु वास्तव में इसे ब्राह्मण धर्म कहा गया था किंतु यह उचित नहीं था, क्योंकि जहाँ चार वर्ण थे वहाँ एक वर्ण के नाम पर व्यवस्था

---

1. मुंडकोपनिषद् 3/1
2. वृहदारण्यकोपनिषद् 2/3/1
3. छांदोग्यापनिषद् 5/13/1

का नाम संबोधन कैसे उचित माना जा सकता है एवं उसे त्रुटिपूर्ण सामाजिक स्वीकृति किस प्रकार प्राप्त हुई होगी? उस समय में धर्मरक्षा का कार्य ब्राह्मण को और देशरक्षा यानी क्षात्रधर्म का कार्य क्षत्रिय को, जनरक्षा (पालन-पोषण) का कार्य वैश्य को तथा श्रम-प्रबंधन का कार्य शूद्र के लिए सुनिश्चित किया गया था। कार्य-श्रेणी के नेतृत्व को कार्य-श्रेणी पर एकाधिकार प्राप्त नहीं था, अतएव धर्म-कर्म (धर्मरक्षा), देशरक्षा और जनरक्षा में चतुर्थ वर्ग भी सहभागी होता था, केवल नेतृत्व नहीं करता था। नेतृत्व वह अपने कार्य-क्षेत्र का करता था। आपत्तिकाल में ब्राह्मण-क्षत्रियों के साथ शूद्रवर्गीय जातियों ने भी विदेशी इसलामिक शासकों से युद्ध किया था, किंतु धर्म एवं देशरक्षा के नाम पर सीधे टकराने के कारण ब्राह्मण एवं क्षत्रियों को वे अपना प्रमुख शत्रु मानते थे और बलपूर्वक उन्हें ही बंदी बनाकर प्रखर हिंदू होने का उनका मान-मर्दन करते हुए भंगी बनाकर उन्हें अस्वच्छ वृत्ति में लगाया गया था।

ब्राह्मण-नेतृत्ववाले धर्म (धारयति इति धर्मः) को ही हिंदू धर्म कहा गया, जिसमें ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम को भौतिक जीवन से और वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम को आध्यात्मिक जीवन से संबंधित करते हुए तपश्चर्या को विशेष महत्त्व दिया गया। महाकाव्य-काल से गृहस्थों के लिए पंचमहायज्ञ[1] और राजन्य वर्ग के लिए राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञ[2] का प्रावधान किया गया। वैदिक हिंसा (पशु-बलि) के स्थान पर हविष्यान्न प्रतिष्ठित किया गया। कर्म की महत्ता में अनासक्त और निष्काम कर्म तथा भक्ति एवं मुक्ति के विधि-विधान, जगत् और ईश्वर (परमात्मा) का रहस्य, अवतारवाद की अवधारणा को सामान्यजन की स्वीकृति मिली। वेदकालीन यज्ञों के समय सुनाए जानेवाले पारिप्लव-आख्यानों पर सृजित पुराणों ने हिंदू धर्म को जन-जन तक पहुँचाया और उसे लोक-कल्याणार्थ प्रस्तुत किया। उसी में आगे चलकर अवतार-परंपरा के अनुसार वैष्णवधर्म, पाँचरात्र अथवा भागवत धर्म, शैवधर्म, शाक्तधर्म और लोकधर्म आदि का प्रचलन हुआ। चूँकि ये सभी धर्म सनातन अथवा हिंदू धर्म की ही शाखाएँ हैं अतएव इनको एक साथ करके सनातन अथवा सदातन यानी 'हिंदू धर्म' के रूप में ही समझना युक्तिसंगत है।

धर्मज्ञ लोगों ने उपरोक्त क्रम से विकसित हिंदू धर्म के प्राचीन स्वरूप को सनातन कहा है, यानी वेद, वेदांगादि अनेक धर्मग्रंथोंवाला, ऋषियों-मुनियों वाला, तत्त्व मीमांसाओंवाला, साधना पद्धतियोंवाला, अध्यात्म-साक्षात्कारवाला इत्यादि।[3] उसके

---

1. रामायण, 13/37/17
2. महाभारत, 3/33/78-79
3. सोनी, सुरेश : हमारी सांस्कृतिक विचारधारा के मूलस्रोत, पृष्ठ 140-141

प्राचीन स्वरूप में प्रकृति के नियमानुसार जीवन जीने का नियम विद्यमान था, जिसमें ये दस तत्त्व हिंदू जीवन-पद्धति के आधार माने गए थे—धृति (धैर्य), क्षमा, दम (तपस्या), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (पवित्रता), इंद्रियनिग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य तथा अक्रोध (अहिंसा)।[1]

हिंदू धर्म के प्राचीन स्वरूप में सत् (प्रकृति), ऋत् (प्रकृति नियम) और ब्रह्म (प्रकृति नियंता) का चिंतन था। जीव-जंतु, पशु-पक्षी, वृक्षादि पूजे जाते थे। यज्ञ-हवनादि का प्रचलन था।[2] वह जीवन का मुख्य संबल था।[3] उसमें वर्णाश्रम, पुरुषार्थ, षोडश संस्कार की वैधानिक व्यवस्था थी। उसमें दूसरों को सताने[4] अथवा किसी पर बलपूर्वक थोपे जाने की प्रवृत्ति नहीं थी और न ही उसे विश्व के ऊपर लादने की आवश्यकता थी। वह अच्छी थी, सर्वोत्तम थी, इसलिए अहिंदू के लिए वह असहनीय भी नहीं थी। किसी भी काल में, किसी भी हिंदू या अहिंदू के लिए हिंदू संस्कृति त्याज्य नहीं थी, इसलिए यही कारण था कि स्वाभिमानी जातियों को विदेशी मुसलिम आक्रांताओं द्वारा बलपूर्वक बनाई गई तथाकथित भंगी समाज यानी वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखि, मजहबी इत्यादि जाति ने हिंदू धर्म नहीं छोड़ा, भले ही मैला ढोने का दंड स्वीकार किया। सिख पंथ में वे ही धर्माश्रित होने के कारण मजहबी सिख कहलाए थे।

1.2 हिंदू संस्कृति, हिंदू तत्त्व एवं वैदिक व्यवस्था

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी इत्यादि जाति का हिंदू संस्कृति से अन्योन्याश्रित संबंध अनवरत बना हुआ है। मनुस्मृति में उल्लिखित हिंदू धर्म के जिन दस तत्त्वों का नामोल्लेख पूर्व परिच्छेद में किया गया है, उन सभी का अनुपालन भी यह जाति लगातार करती आ रही है। हिंदू समाज और धर्म तथा हिंदू जीवन-पद्धति के लिए जो व्यवस्था वैदिककाल में निर्मित की गई थी, उसे भी यह जाति अपनी पूर्व जातियों के सापेक्ष निर्वहन करती आई है। इसे इन तीनों के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है।

संस्कृति मूलत: जीवन-पद्धति का समुच्चय है जिसमें हम सत्, ऋत् और ब्रह्म का अवलोकन करते हैं। हिंदू संस्कृति इस परिभाषा को धारण करती है। इसमें आचार-व्यवहार, मर्यादित आचरण, प्रकृति का संरक्षण, दृश्य सत्ता के प्रति सम्मान इत्यादि मूल

1. मनुस्मृति, 6/92
2. डॉ. राधेशरण : भारत की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना और संस्कृति के मूलतत्त्व, पृ. 184
3. डॉ. कृष्णगोपाल : बाबा साहब व्यक्तित्व और विचार, पृष्ठ, 239
4. डॉ. दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 268

तत्त्व के रूप में पाए जाते हैं।[1] हिंदू वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति, अन्य हिंदू जातियों की ही भाँति अपनी दिनचर्या को प्रकृतिपरक बनाए रखती है। अपने मर्यादित आचरणों से वह सभी को पसंद आती है। इस जाति के लोग दृश्य-अदृश्य सत्ता में निरंतर विश्वास भी करते हैं। हिंदू संस्कृति में जहाँ प्रकृति संरक्षण की भावना पाई जाती है,[2] इस जाति के लोग जहाँ कहीं भी रहते हैं, पंच तत्त्वों से बने शरीर एवं उसके माध्यम से मानव एवं प्रकृति की सेवा करके उसका निरंतर अनुमोदन करते रहते हैं।

हिंदू संस्कृति की विशालतम् सहृदयता का भाव वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि जातियों में कूट-कूटकर भरा पाया जाता है। वे लोग सर्वे भवन्तु सुखिनः और सर्वे सन्तु निरामयाः तथा वसुधैव कुटुम्बकम् की सद्भावनाओं से ओत-प्रोत पाए जाते हैं। जब भी लोग अपनी समस्याओं के साथ उनके समक्ष उपस्थित होते हैं, वे पूर्णतः सहयोग की ही भावना से उनके साथ चल देते हैं। अपने सफाई व्यवसाय के कारण वे स्पृश्य माने जाए अथवा अस्पृश्य, सभी रूपों में वे प्रत्येक घरों में जाते हैं, अपनापन की भावना से ही काम करने के बाद दो रोटी तक माँगकर खाने में संकोच नहीं करते और न ही उनमें किसी की अवज्ञा के दुर्गुण ही मिलते हैं। केवल उनके स्वाभिमान को चुनौती न दी जाए तो वे सदैव समर्पित भाव से अपनी सेवाएँ देते हैं। इसे अप्रत्यक्ष रूप से परोपकार को भावना भी मान सकते हैं।

हिंदू संस्कृति धर्म पर आधारित है और धर्म में सत्य को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि समाज में मिथ्याचारिता का लेशमात्र भी अवगुण नहीं पाया जाता है। उनमें हिंदू संस्कृति की भाँति सामाजिक सहिष्णुता, समरसता और सर्वहित चिंतन की झलक मिलती है।

हिंदू संस्कृति में व्याप्त कुरीतियों, भेदभाव, ऊँच-निम्न के भाव तथा धनी-निर्धन के अंतर अतार्किक एवं अर्थहीन हैं। लगभग आठ सौ वर्षों की लंबी दासता, प्रचंड उत्पीड़न एवं नर-संहार ने हिंदू समाज को उक्त बुराइयों के साथ स्वार्थयुक्त चरित्र की दिशा में ढकेल दिया है, अन्यथा हिंदू परंपरा तो मर्यादित आचरण, सत्यनिष्ठ व्यवहार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, भ्रातृत्व की भावना, पड़ोसी व्यवहार तथा विश्व-परिवार यानी वसुधैव कुटुम्बकम् जैसी विशेषताओं पर अडिग है। ये कथन स्वाभिमानी वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी इत्यादि जातियों के लिए अनौचित्यपूर्ण नहीं हैं। ये जातियाँ हिंदू संस्कृति के कालातीत एवं सर्वदा कल्याणकारी[3] प्रवृत्ति में अनुरक्त पाई जाती हैं।

---

1. डॉ. विजय सोनकर शास्त्री, 'हिंदू वैचारिकी', पृष्ठ 19
2. महाभारत (भीष्म पर्व) 5/11-12
3. उपाध्याय, बलदेव : वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृष्ठ 426

हिंदू संस्कृति के जिन आधारों—पृथ्वी, अंतरिक्ष, आकाश (तीन माता), अग्नि, वायु और सूर्य (तीन पिता), छह ऋतुएँ, बारह राशियाँ, 360 दिन और उतनी ही रात्रि के वर्ष, चार वर्ण, मेघ, वायु और किरण के योग से पृथ्वी की उत्पत्ति—का वैदिक वाङ्मय में उल्लेख है[1] और जिन आधारों को आध्यात्मिक और भौतिक दृष्टि से आवश्यक माना गया है[2] उनसे धर्मपरायण वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जातियाँ अप्रभावित नहीं हैं और न ही यह उन आधारों के महत्त्व को कभी अस्वीकार करती है।

हिंदू संस्कृति अर्थहीन भेदभाव की विशेषताओं से युक्त है, ठीक उसी तरह से समरसता की वैचारिकीयुक्त हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जातियाँ भी अपने संपूर्ण उपजातियों के साथ बिना किसी भेदभव के सुदृढ़ है। यह अपने साथ किए गए अथवा किए जा रहे भेदभाव पर कोई ध्यान दिए बिना ही आपस में एकता के साथ स्थापित है। हिंदू संस्कृति की भेदभावरहित विशेषता का हिंदू भंगी जाति पूरी तरह से निर्वाह करने में संलग्न है।

हिंदू संस्कृति में सहिष्णुता, समरसता और समन्वयधर्मिता के प्राकृतिक गुण पाए जाते हैं। हिंदू धर्मरक्षक वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जातियाँ हिंदू धर्म में और सबके साथ ही सदैव सहिष्णु रही है, उसमें पूरी आत्मीय समरसता पाई जाती है। वह अनेकानेक संस्कृतियों के समन्वयवादी विशेषण स्वयं में धारण किए हुए हैं। हिंदू वाल्मीकि इत्यादि जातियाँ पूर्वकालिक ब्राह्मण एवं विभिन्न राजवंशी क्षत्रिय जातियों का समन्वित रूप है। विदेशी इसलामिक आक्रांताओं द्वारा बलपूर्वक बनाई गई इस महान् धर्माभिमानी हिंदू जाति में भी विविधता में एकता की विशेषता पाई जाती है। इस तरह यह जाति हिंदू संस्कृति की उपरोक्त विशेषता का पूर्ण वाहक प्राप्त होती है।

हिंदू संस्कृति में जिस प्रकार से स्वतंत्रता की भावना मर्यादित है, इसी प्रकार से यह स्वाभिमानी एवं योद्धाओं की पराजय के बाद अरब के विदेशी आक्रांता शासकों द्वारा उन्हें दंडस्वरूप बलपूर्वक अस्वच्छ कार्यों में लगाकर बनाई गई तथाकथित हिंदू वाल्मीकि इत्यादि यानी सफाईकर्मी जातियाँ भी स्वतंत्रता और स्वाभिमान की प्रतिमूर्ति है। हिंदू संस्कृति की ही भाँति ये जातियाँ भी सदैव प्रकृतिपरक रही और जिस समय जिस भी प्रकार की व्यवस्था उसके सम्मुख एक चुनौती बनकर खड़ी हुई, उसने धैर्यपूर्वक उसे आत्मसात् किया और सदैव अडिग बनी रही। हिंदू संस्कृति वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति, समुदाय और देश के लिए महत्त्वपूर्ण है, और वह कालातीत तथा सर्वदा मंगलकारी है। हिंदू संस्कृति ने जिस तरह से अनेकानेक उत्थान और पतन देखे हैं,

1. ऋग्वेद 1/22/164/9-15
2. चट्टोपाध्याय, के.सी. : वैदिक रिलीजन, बी.एच.यू. वाराणसी, 1975, पृष्ठ 57-63

मध्यकाल में बलपूर्वक बनाई गई हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि सफाईकर्मी (भंगी) जातियों ने भी अपने पतन एवं अपने ऊपर हुए प्रचंड अत्याचार तथा उत्पीड़न का साक्षात्कार किया है।

हिंदू संस्कृति सनातन है, किंतु मध्यकाल में बलपूर्वक विदेशी मुसलिम आक्रांता शासकों द्वारा अस्वच्छ कार्यों में लगाई गई हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि यानी बलपूर्वक बनाई गई भंगी जातियाँ भी ब्राह्मण-क्षत्रिय वर्ण एवं जातियों के सापेक्ष सनातन है। हिंदू संस्कृति में हिंदू के दस तत्त्वों धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, अशौच (पवित्रता), इंद्रियनिग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य, अक्रोध (अहिंसा) का अनुशासन है, तो हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि जातियाँ इन सभी के अनुपालन में संलग्न है। इनके पालन में ही विदेशी आक्रांताओं द्वारा इन्हें बलपूर्वक अस्वच्छ कार्यों में लगाकर इनका मान-मर्दन तथा इन्हें उपेक्षा एवं उपहास का पात्र और हिंदू सभ्यता का सबसे बड़ा अभिशाप बनाया, फिर भी उसने हिंदू धर्म में अपनी निष्ठा को शाश्वत बनाए रखा। यही कारण है कि जिस तरह हिंदू संस्कृति को विनष्ट करने के लिए उस पर चहुँओर से कुठाराघात किए गए और आज भी किए जा रहे हैं, ठीक उसी प्रकार से स्वाभिमानी हिंदू (ब्राह्मण और क्षत्रिय) पूर्व में बनाई गई तथाकथित सफाईकर्मी (भंगी) जाति यानी वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जातियों पर भी अनेक प्रकार के कुठाराघात हुए और अंग्रेजों के काल तक होते रहे। इसने इस विषम परिस्थिति को भी सहन किया।

हिंदू संस्कृति में उसकी विविधता के कारण अनेकानेक कुरीतियाँ भी व्याप्त हुईं जिसके कुप्रभाव का शिकार संपूर्ण हिंदू समाज को होना पड़ा और इनका कुप्रभाव हिंदू भंगी जाति पर भी पड़ा, परंतु उसने कभी पश्चात्ताप नहीं किया। अपनी कुरीतियों के कारण जिस तरह हिंदू संस्कृति में क्षणिक ह्रास की स्थिति उत्पन्न हुई, उसी तरह धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी इत्यादि जातियाँ भी परिवर्तित परिवेश में कुरीतियों की शिकार हुई और उसके प्रति समाज का जो समादर-भाव था, उसमें ह्रास हुआ। इस तरह से इस जाति ने हिंदू संस्कृति की विशेषताओं का भी पूर्णरूपेण संवहन किया है। हिंदू संस्कृति की परंपरा के पूर्ण वाहक इस जाति के लोग हैं। उनकी दृढ़ निष्ठा और अटूट श्रद्धा से आज तक हिंदू संस्कृति भी मर्यादित है।

हिंदू समाज की अभिन्न स्वाभिमानी वाल्मीकि, सुदर्शन एवं मजहबी सिख इत्यादि समाज में हिंदू संस्कृति एवं हिंदू तत्त्वों का पावन समन्वय वैदिक व्यवस्था की ही देन रही। वैदिककाल के हिंदू धर्म की वैज्ञानिक उपलब्धियों को सामान्य व्यक्ति भी सहजभाव से स्वीकार कर सकता है, इसलिए वह इस समाज के लिए पूर्वकाल की भाँति मध्यकाल से उत्पीड़न के उपरांत भी सहज ग्रहणीय थी। यह समाज सदैव वैदिक

व्यवस्था के अनुसार चलता रहा। उसने धर्मप्रधान वैदिक व्यवस्था का सतत् अनुमोदन किया। देवताओं की सत्ता, प्रभाव और उनकी व्यापकता में विश्वास किया। त्रिलोक (पृथ्वी, अंतरिक्ष और आकाश) की अवस्थिति, ग्रहों का पृथ्वी पर प्रभाव और तद्नुसार प्राकृतिक नियमों की प्रतिष्ठा में ब्रह्म का अस्तित्व, उसकी वैचारिकी के मुख्य विषय पर आश्रित यह समाज निरंतर गतिशील रहा। तत्कालीन भेदभावरहित हिंदू समाज में कर्म की प्रधानता प्रखर थी।

कर्म भी धर्मयुक्त होते थे। अर्थोपार्जन का उद्देश्य धर्म-कर्म में उसका सदुपयोग ही था। पितृऋण से मुक्ति यानी वंश वृद्धि हेतु ही काम सुख यानी वासना की प्रतिष्ठा थी। गृहस्थाश्रम में भी साधुचारिता और संन्यास की व्यवस्था थी। अधर्मी भी मुख्यतः शाप-अस्त्र द्वारा ही निष्क्रिय, निर्बल अथवा मारे जाते थे, जो मात्र वाणी के रूप में प्रयुक्त होता था।

वैदिक व्यवस्था को आर्यों की सभ्यता से सत्यापित किया जा सकता है। इसके अनुसार यह व्यवस्था ईसा मसीह के जन्म से 2500 वर्ष पहले से लेकर ईसा के 600 वर्ष पहले तक की मानी जाती है।[1] यह आदि वैदिक व्यवस्था अथवा ऋग्वैदिक व्यवस्था तथा उत्तर वैदिक व्यवस्था नामक दो भागों में विभक्त थी। इसका क्षेत्र पश्चिमोत्तर भारत से लेकर गंगा की प्रायः पश्चिमी घाटी तक विस्तृत था। ऋग्वैदिक व्यवस्था का समय अधिकांशतः लोगों ने 1500-1000 ई.पू. मान्य किया है।[2] उत्तर वैदिक व्यवस्था 600 ई.पू. तक समाप्त हो चुकी थी।

उत्तरवैदिक-व्यवस्था में समाज जटिल हुआ। वर्ण को गुण धर्म के अनुसार कर्म के लिए स्वीकृति मिली। वर्णों की श्रेणीबद्धता का विकास हुआ, जो कालांतर में वर्ण-व्यवस्था के रूप में प्रभावी हुआ। हिंदू लोकजीवन में अनावश्यक विषमताओं में वृद्धि, सत्ता और शक्ति की सनक के परिणामस्वरूप समाज में वर्ण-व्यवस्था के साथ-साथ विभिन्न कार्यों को संपादित करनेवाले वंशानुगत समूहों का जन्म हुआ।[3] उस समय चूँकि कार्य विशेष के लिए कौशल प्राप्त करना सामान्यजन के लिए अपने परिवार एवं कुटुंब में ही संभव था, परिणामतः वंशानुगत एवं वृत्ति आधारित जातियाँ भी अस्तित्व में आईं। जातियों की संख्या कर्मानुसार सीमित ही थीं। एक ही वर्ण में कई जातियाँ समाहित थीं। परंतु सामाजिक धरातल पर उनमें समरसता व्याप्त थी। वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन, मेहतर, मखियार इत्यादि यानी तथाकथित भंगी समाज उस समय क्रमशः ब्राह्मण एवं क्षत्रियों की भाँति धर्मरक्षा और देशरक्षा का उत्तरदायित्व

---

1. इतिहास तिमिरनाशक, भाग-1, पृष्ठ 5
2. डॉ. राधेशरण : भारत की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना और संस्कृति के मूल तत्त्व, पृष्ठ 9-20
3. अथर्व. 12/2/54, 18/3/6, 9/17/4, 3/14/5

निर्वहन करने में संलग्न था।

वैदिक व्यवस्था पितृमूलक एवं पितृप्रधान थी और पिता अपनी संतति का आचार्य (कुरु) हुआ करता था। वर्ण-व्यवस्था यदि थी भी तो उतनी जटिल नहीं थी। वर्ण भी केवल तीन थे।[1] चौथे वर्ण की कल्पना बाद में प्रक्षिप्त की गई।[2] अधर्म से सभी डरते थे और पाप से मुक्त होने के लिए केवल प्रार्थना (इसलामिक नमाज और ईसाई प्रेयर) नहीं बल्कि प्रायश्चित्त करना पड़ता था। अतएव लोग पाप करने से डरते थे। हिंदू संस्कृति पर आधारित जीवन-पद्धति में प्रायश्चित्त स्वरूप कभी-कभी लोगों को अपने जीवन तक को अर्पित कर देना होता था। अन्यान्य विदेशी संस्कृतियों में प्राणरक्षा प्रथम धर्म है, पाप का प्रायश्चित्त गौण है।

1.3 हिंदू धर्म में वर्ण, वंश एवं गोत्र

वर्ण शब्द की उत्पत्ति 'वृञ् वरण' अथवा 'वरी' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है चुनना या वरण। वर्ण और वरण शब्दों में साम्य भी है। वर्ण का तात्पर्य वृत्ति अर्थात् किसी विशेष व्यवसाय को चुनने से है। समाजशास्त्र में वर्ण को वर्ग कहते हैं। ऋग्वेद में यह शब्द रंग अथवा आलोक के अर्थ में प्रयुक्त है।[3] कहीं पर इसका प्रयोग आर्य और दास के रूप में होना मान्य है,[4] परंतु यह सत्य नहीं है। हिंदू समाज में वर्ण, वंश, गोत्र, जाति संबंधी अवधारणा अथवा मान्यता, मात्र समाज की सुव्यवस्था के लिए आंशिक रूप से स्वीकृत रही। इस व्यवस्था को हिंदू धर्म एवं समाज की एकता और सुदृढ़ता को छिन्न-भिन्न करने के लिए कभी स्वीकार नहीं किया गया।

हिंदू धर्म में वर्ण का उद्देश्य किसी भेदभाव के संकेत से परे था। इसकी संख्या भी अनुमानित थी—कहीं दो,[5] कहीं तीन,[6] कहीं चार[7] और कहीं पाँच।[8] फिर भी वर्ण की अवधारणा हिंदू धर्म में अत्यंत सारगर्भित, सत्य के अधिक निकट और सर्वमान्य है। वर्ण की उत्पत्ति को मानव की उत्पत्ति के समान ही विवेचित किया गया है। मानव

---

1. दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 74
2. शास्त्री मंगलदेव: भारतीय संस्कृति का विकास, पृष्ठ 43-44
3. ऋग्वेद 1/73/7, 2/3/5, 9/97/15
4. मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 52
5. वही, पृष्ठ 52
6. दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 74
7. ऋग्वेद 2/24
8. जो बाहर से आए उनको पाँचवें वर्ण में रखने की सोच बनी थी, पर वे भी चार में ही विलीन हो गए।

की उत्पत्ति प्राकृतिक पंच तत्त्वों से निर्मित मानव शरीर और ईश्वर प्रदत्त प्राण के संयुक्त स्वरूप से संबंधित है। मनुष्य को जिस विराट् पुरुष ने उत्पन्न किया है, उसी ने अपने महत्त्वपूर्ण अंगों के आधार पर मानव-वर्ण का भी निर्धारण किया है। प्राचीन हिंदू धर्म-ग्रंथ ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में यही उल्लिखित है कि विराट् पुरुष ब्रह्मा का मुख ब्राह्मण था, बाहु क्षत्रिय था, उरू यानी जंघा वैश्य था और पैरों से शूद्र बना। यह अवधारणा वैदिक परंपरागत अवधारणा के नाम से जानी जाती है।

वैदिक युग में अध्यात्म एवं अध्यात्म का व्यावहारिक रूप लोकजीवन में व्याप्त था। ऋग्वैदिक समाज में वर्ण-व्यवस्था का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। ऋग्वैदिक समाज में किसी प्रकार की जटिलता नहीं थी। वैदिक कालखंड में स्वार्थी, अव्यावहारिक, अपहरण करनेवाले, लुटेरों एवं चोरों का भी विवरण प्राप्त होता है। परंतु संपूर्ण हिंदू लोकजीवन धैर्य, क्षमा, इंद्रियों पर नियंत्रण, पवित्रता, चोरी न करना, बुद्धिमत्ता, ज्ञान, सत्य, अक्रोध, अहिंसा जैसे मूलभूत मूल्यों से संचालित था। जातियाँ भी नहीं थीं। अतएव वैदिक परंपरागत आधार पर हिंदू धर्म में वर्ण अथवा वर्ण-व्यवस्था की कल्पना कपोलकल्पित है।

हिंदू धर्म में वर्ण को पुष्पों के रूप में मान्य किया गया है, जिनकी माला को संयुक्त रूप से समाज के गले में डाला गया है। दूसरा चिंतन यह है कि वृ=वरणे धातु से वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति हुई है, जिसका अभिप्राय है वरण करना अथवा चयन करना, अर्थात् अपनी शक्ति क्षमता तथा योग्यता के अनुरूप स्वेच्छा से कार्य का चुनाव करना। इसी परिप्रेक्ष्य में अन्यत्र यह उल्लिखित है कि वर्ण शब्द बरी धातु से बना है, जिसका अर्थ है धारण करना।[1] इसका अर्थ यह हुआ कि आरंभ में जो व्यक्ति एक निश्चित व्यवसाय को चुनते थे, वे एक विशेष वर्ण के सदस्य कहलाते थे।

तीसरे चिंतन के अनुसार, वर्ण का अर्थ है 'व्यक्ति की प्रवृत्ति' अथवा व्यक्तियों का स्वभाव। इसका अर्थ है कि आरंभ में जो व्यक्ति समान व्यवहार प्रदर्शित करते थे अथवा जिन व्यक्तियों की स्वभाव संबंधी विशेषताएँ एक-दूसरे के समान थीं, उनसे एक-एक वर्ण का निर्माण हुआ।

हिंदू धर्म में वर्ण की अवधारणा का चौथा चिंतन यह है कि वर्ण का संबंध रंग से हुआ और जिन व्यक्तियों का रंग एक समान था वे एक वर्ण के सदस्य हो गए। इसी आधार पर आरंभ में ही वर्ण हुए—गौर वर्ण अर्थात् आर्य और काला वर्ण अथवा दास या अनार्य। काले और गोरे लोगों को अलग रखने के लिए आरंभ में रंग के आधार पर वर्ण के निर्माण की बातें मिथ्या प्रचार हैं, क्योंकि यहाँ रंग-भेद कभी भी दृष्टिगोचर

1. गुप्ता एवं अग्रवाल : समाजशास्त्र (साहित्य भवन, आगरा, 2004), पृ. 298

नहीं हुआ। श्वेत अथवा गौर रंग के ब्राह्मण, लाल अथवा रक्त रंग के क्षत्रिय, पीत रंग के वैश्य और काले रंग के शूद्र की वैचारिकी हिंदू समाज में अनौचित्यपूर्ण चिंतन है।

ऋग्वेद के दसवें मंडल के सातवें अनुवाक के नब्बे क्रम संख्या के सूक्त को पुरुष सूक्त कहते हैं। पुरुष सूक्त में सोलह ऋचाएँ (श्लोक) हैं। ऋचा संख्या बारह में मात्र एक जगह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति का उल्लेख है। ये पुरुष, वर्ण, जाति, वर्ग या समुदाय थे। इसका कुछ भी विवरण नहीं है कि यह एक अनुमान ही लगाया जाता है कि ये चार वर्ण उस विराट् पुरुष के विभिन्न अंग थे। वहाँ भूतकाल का उल्लेख है। जैसे—उसका मुख ब्राह्मण था। (मुखम् आसीत्)। जहाँ तक वर्ण-व्यवस्था की बात है, वह संपूर्ण वेद में कहीं नहीं है। उस ऋचा के अंतर्गत मुख ब्राह्मण, भुजाएँ क्षत्रिय, जंघे वैश्य और चरण शूद्र था, का उल्लेख किया गया है। पुनः एक ऋचा बाद यानी ऋचा संख्या चौदह में सिर का स्वर्ग, नाभि को अंतरिक्ष एवं चरण को पृथ्वी दरशाया गया है। चरण से पृथ्वी और शूद्र दोनों की उत्पत्ति से भी स्पष्ट है कि वैदिक ऋषि का मंतव्य शूद्रों का अपमान करना नहीं रहा होगा। वेद स्वयंभू है, किंतु इसका संकलन महर्षि व्यास ने किया था, इसीलिए उन्हें वेदव्यास भी कहते हैं। शूद्र शब्द की वर्तमान व्याख्या के अनुसार वेदव्यास स्वयं शूद्र ऋषि थे। इसलिए वे शूद्र की पैर से तुलना करके अनावश्यक रूप से शूद्रों को क्यों निम्न पहचान देने का प्रयास करते।

हिंदू धर्म में वर्ण की अवधारणा के सापेक्ष वैदिककाल के शूद्रों की परिस्थिति को उन्नत पाया जाता है। वैदिक व्यवस्था में शूद्र तिरस्कृत नहीं थे। ऐलुष को कुछ विद्वानों ने शूद्र सिद्ध किया है। उन्होंने ऋग्वेद के अनेक मंडलों का दर्शन किया है। वैदिक राजा सुदास शूद्र थे, जबकि वे राजर्षि विश्वामित्र के संरक्षक थे। सुदास का राज्याभिषेक ब्रह्मषि वशिष्ठ ने किया था एवं स्वयं सुदास ने सफल अश्वमेध यज्ञ किया था। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि यदि वैदिककाल में वर्ण-व्यवस्था थी तो भी वर्णों में आपस में किसी तरह का भेदभाव नहीं था और शूद्र वर्ण की स्थिति निम्न नहीं मानी गई थी, उसे पृथ्वी का सहोदर माना जाता था, क्योंकि पृथ्वी और शूद्र दोनों पुरुष सूक्त में वर्णित विराट् पुरुष के चरण थे। यहाँ डॉ. बी.आर. अंबेडकर के विचार भी महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने कहा है कि 'भारत में शूद्र कभी भी अस्पृश्य नहीं थे। यहाँ तक कि मनुकाल में भी।"[1]

अतः कहा जा सकता है कि वैदिक युग भेदभावरहित था। न कोई जाति थी और न ही असमानता से युक्त वर्ण बोध का कोई अलग महत्त्व था। तत्कालीन समाज में वर्ण थे, लेकिन उनमें स्नेह एवं समरसता थी। वे एक व्यवस्था के पोषक नहीं थे। वर्ण की

---

1. डॉ. बी.आर. अंबेडकर, अछूत कौन और कैसे (दी अनरथवल), पृ. 99

अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं थी अपितु उनका उल्लेख सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत ही की गई एक विशेषता थी।

उत्तर-वैदिककाल में पुरुषों का वर्ण सुनिश्चित था एवं नारी का वर्ण नहीं था। वह जिस वर्ण के पुरुष के साथ विवाह संस्कार में बँधती थी, उसे उसी वर्ण का माना जाता था। त्रेता एवं द्वापर युग तक इस परंपरा का उल्लेख मिलता है। सीता एवं द्रोपदी स्वयंवरों में इस स्वरूप का दर्शन किया जा सकता है। सीताजी के पिता राजा जनक क्षत्रिय थे परंतु सीता-स्वयंवर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णों के राजागण आए थे। द्रौपदी स्वयंवर में तो ब्राह्मण भेष में अर्जुन ने क्षत्राणी द्रौपदी को प्राप्त भी किया था।

उत्तर-वैदिककाल में विकसित वर्ण-व्यवस्था के बारे में कहा जाता है कि प्रारंभिक काल में वर्ण-व्यवस्था में काफी लचीलापन था। वर्ण-परिवर्तन भी असंभव नहीं था। इतिहास में सैकड़ों उदाहरण वर्ण-परिवर्तन के मिलते हैं। गाधि क्षत्रिय वंश में जन्मे थे, किंतु गाधि की कन्या सत्यवती से परशुराम के पितामह ऋचिक ने विवाह किया। इस प्रकार एक ही गाधि के पुत्र विश्वामित्र क्षत्रिय और जमाता ऋचिक ब्राह्मण कैसे कहे गए? अत: कहा जा सकता है कि जब समाज में नारी की जाति नहीं निर्धारित थी, तो उस समय मानव समाज में समरसता और संगठन का अलौकिक स्वरूप रहा होगा। किसी की बेटी किसी के घर जा सकती थी, जैसा कि आज पश्चिम जगत् में हो रहा है। इसमें अनेक सामाजिक समस्याओं का समाधान है। परंतु आज, जातियों में बँटकर हिंदू समाज विघटन को प्राप्त है।[1]

हिंदू धर्म में वर्ण अथवा वर्ण-व्यवस्था की अवधारणा के बारे में पौराणिक एवं स्मृतियों के उद्धरणों का अवलोकन किया जाए तो उनमें भी अधिकांशत: स्मृतियों में चारों वर्णों की उत्पत्ति को दैवी अवधारणा को माना गया है और भेदभाव का आधार केवल कर्म-विभाजन ही है। कालांतर में उनमें सर्वाधिक प्रक्षिप्तता लाकर यह कहलवाया गया है कि चारों वर्णों में भेदभाव था, जो ऊँच-निम्न, पवित्र-अपवित्र, स्वच्छ-अस्वच्छ वृत्ति और ज्येष्ठता-कनिष्ठता को लेकर था।

महाभारत में कहीं चार वर्णों का उल्लेख है तो कहीं पंद्रह वर्णों का।[2] यह मनुस्मृति में भी उल्लेख है।[3] सन् 1935 ई. में अंग्रेजों ने भारत में अछूत जातियों की संख्या 439 बतलाई थी, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णों के लोग थे। कृषकों, पशुपालकों और शिल्पियों को निम्न जाति श्रेणी में रखने का कार्य उन्होंने ही किया

1. मुखर्जी, पी. : वियांड दि फोर वर्णाज दि अनटेचुल्स इनंडिया (मोतीदास बनारसी दास दिल्ली), 1986
2. महाभारत (अनुशासनपर्व) 48/181
3. मनुस्मृति 10/4

होगा, जिन्होंने इन पेशों को निम्न श्रेणी का पेशा और सरकारी गुलामी (नौकरी) को उच्च श्रेणी का पेशा प्रचारित करने का कार्य किया था। ऐसे लोग मुसलिम शासनपरस्त अथवा इसलामिक और अंग्रेज शासक ही हो सकते थे।

हिंदू धर्म में जिन चार प्रकार के वर्णों का प्रादुर्भाव हुआ (बताया गया है) उनमें भी किसी तरह का भेदभाव नहीं किया गया था। वर्णों की उत्पत्ति के काल्पनिक आधारों पर बाद में की गई उनकी व्याख्याएँ भ्रामक थीं। वास्तव में समाज की व्यवस्था को समरस बनाए रखने के लिए ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णों को समाज में स्थापित किया गया था। सामाजिक शरीर के ये चारों अंग एक-दूसरे के पूरक एवं एक-दूसरे के लिए आवश्यक थे। धार्मिक एवं साहित्यिक पठन-पाठन का कार्य ब्राह्मण वर्ण के लिए, समाज की रक्षा यानी क्षात्र धर्म का कार्य क्षत्रिय वर्ण के लिए, समाज के भरण-पोषण का कार्य वैश्य वर्ण के लिए और शिल्प एवं श्रम का कार्य शूद्र वर्ण के लिए नियत था। संक्षिप्त में कहा जा सकता है कि ब्राह्मण विद्या, क्षत्रिय क्षात्र यानी रक्षा, वैश्य व्यवसाय और शूद्र शिल्प एवं श्रम वृत्ति से संबंधित थे। किसी भी एक के अभाव में समाज की व्यवस्था चल नहीं पाती थी। अतएव सभी को सवर्ण अर्थात् 'वर्ण' के साथ कहा गया। जो वर्ण के साथ नहीं थे उनको अवर्ण अथवा अहिंदू कहा गया था। वर्णाश्रम काल में चारों वर्णों में कोई भेदभाव अथवा लघुता-ज्येष्ठता की दुर्भावना नहीं थी। चारों वर्णों में समानता-समरसता बनी हुई थी और वैदिक युग जातिविहीन स्वर्णिम युग के नाम से ख्यात् था।

वर्णों में जन्म का आधार गौण था और कर्म के आधार पर लोगों के वर्ण परिवर्तित होते रहते थे। वर्णों के अनुलोम-प्रतिलोम संबंध भी समरस थे। हिंदू समाज की इस प्राचीन व्यवस्था पर कुठाराघात करनेवालों ने उपवर्णों एवं उपजातियों के अंत: संबंधों को भेदभावयुक्त बनाने का प्रयास किया। स्वाभिमानी जातियों ने इसलाम स्वीकार नहीं किया तो उनको अरब के विदेशी इसलामिक शासकों ने अस्वच्छ कार्यों में बलपूर्वक लगाकर उनका स्वाभिमान भंग करते हुए उनको चमार, भंगी जैसे तथाकथित जाति-नाम देते हुए, जातिप्रथा के साथ ही अस्पृश्यता अथवा छुआछूत को भी बढ़ावा दिया।[1]

हिंदू धर्म में वर्ण का अर्थ उपनिषदों के आधार पर भी प्रतिपादित है। वृहदारण्यक में उल्लेख है कि ब्रह्मा ने एक साथ ही चारों वर्णों का निर्माण नहीं किया। सबसे पहले ब्राह्मणों को जन्म दिया। केवल ब्राह्मणों द्वारा जब सामाजिक जीवन की समस्त आवश्यकताएँ पूरी न की जा सकीं, तो क्षत्रिय को जन्म दिया, और जब क्षत्रिय वर्ण से भी समाज की समस्त आवश्यकताएँ पूरी न हो सकीं तो क्रमश: वैश्य और शूद्र वर्ण को जन्म दिया। इस अवधारणा से भी यही सिद्ध होता है कि आरंभ में भी सभी वर्णों को पृथक्-पृथक् कार्य करके सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पन्न किया

1. म. गां. काशीविद्यापीठ को स्तुभ ग्रंथ, 1996, पृष्ठ 282

गया था। इस प्रकार वर्ण-विभाजन का कारण समाज की सभी उपयोगी आवश्यकताओं को सर्वोत्तम ढंग से पूरा करना रहा, जबकि वर्ण-विभाजन का कोई दुष्परिणाम वर्ण-भेद भाव के रूप में नहीं था। छांदोग्य उपनिषद् में रैक्व ने ज्ञानश्रुति को वेद पढ़ाया, जबकि रैक्व गाड़ीवान था। महाऐतरेय उपनिषद् के अनुसार कावषेय लोग दासी पुत्रों के वंशज हैं। कितु वे यज्ञों के आध्यात्मिक रहस्य का उद्घाटन करते थे।

हिंदू वर्ण-व्यवस्था के बारे में महाकाव्यों की पवित्रतावादी अवधारणा विचारणीय है। रामायण में राम-राज्याभिषेक के अवसर पर सभी वर्ण के लोग सादर आमंत्रित किए गए थे।[1] इस आधार पर कहा जा सकता है कि उस काल में कार्यविभाजन, आजीविका विशेषीकरण तथा प्रवासी जीवन के संगतिकरण के लिए वर्ण-व्यवस्था, वर्ण-धर्म पर निर्भर थी। महाभारत में वर्ण-उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई मानी गई है।[2] यह भी माना गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमशः श्वेत, लाल, पीला और काला रंग के थे।[3] पूर्व में उनमें कोई भेद न था, बाद में कर्मों के कारण उनमें वर्ण (रंग) का भेद हो गया।[4] कर्मों के अनुसार वर्ण-परिवर्तन होता था।[5] गीता में भी गुण-कर्म के आधार पर चारों वर्णों की उत्पत्ति मानी गई है—'चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः'।[6]

हिंदू धर्म में वंश का महत्त्व अत्यधिक होता है। कुल अथवा वंश का संबंध कुटुंब यानी परिवार से है। मनुष्य का कुल अथवा वंश अथवा स्वयं मनुष्य भी अपने पारिवारिक जीवन के माध्यम से ही उत्कर्ष को प्राप्त होता है।

कुल अथवा वंश के संबंध में परिवार अथवा कुटुंब सामाजिक जीवन की ईकाई ही नहीं, बल्कि आधारशिला भी है।[7] परिवार का निर्माण पुरुष (पिता), स्त्री (माता) और उनके पुत्र-पुत्रियों से होता है। यही कुटुंब, परिवार अथवा कुल, वंश इंगित है। कालांतर में इसी अवधारणा पर आधारित सिद्धांत को कुल धर्म के नाम से संबोधित किया गया। डॉ. लालजी सिंह, कुलपति, बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी एवं प्रो. राकेश पांडेय, बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी ने एक अनुवांशिकता का सिद्धांत प्रतिपाद्य किया जो इस अवधारणा को पुष्ट करता है।[8]

---

1. रामायण (अयोध्या कांड), 13/20
2. महाभारत, शांतिपर्व मोक्षवर्ग, अध्याय 188, श्लोक 4
3. वही, अ. 188, श्लोक 5
4. वही, अ. 188, श्लोक 10
5. वही, अ. 188 श्लोक 11
6. गीता 4/13
7. मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 375
8. दलित आंदोलन पत्रिका, वर्ष 4, अंक 3, 2013 का प्रथम लेख

हिंदुस्थान प्रारंभिक काल में पुरुषप्रधान देश रहा, इसलिए यहाँ पितृसत्तात्मक वंश-परंपरा स्वीकृत हुई। पिता का पुत्र ही पिता के कुल अथवा वंश का संवर्द्धक माना जाता है। पुत्रियाँ अथवा स्त्रियाँ अन्य घरों की माताएँ बनकर उस अन्य कुल अथवा वंश के संवर्धन में सहायक हुआ करती हैं। महाभारत काल को छोड़कर सदैव ऐसा ही था। महाभारत काल में प्राय: मातृसत्तात्मक व्यवस्था थी।

उपरोक्त दृष्टि से वंश ही मानव संस्कृति का मूल है। जिसका वंश नहीं होता वह निरवंश समाप्त हो जाता है। दुर्भाग्य से प्रत्येक जीव-योनि में वंशविहीनता के कुछ अपवाद पाए जाते हैं। पाश्चात्य वैश्वीकरण की प्रवृत्ति तो अब मानवीय वंश-परंपरा का भी परित्याग करने लगी है। अप्राकृतिक संबंधों के परिप्रेक्ष्य में समलैंगिकता का विधिसम्मत पाश्चात्य विकृत मानसिकता ने तो मानव-संस्कृति को ही खतरे में डाल दिया है। सिंगल अभिवाहक परिवार की अवधारणा समाज में फैल रही है। हिंदू संस्कृति और हिंदू धर्म में इसकी घोर भर्त्सना की गई है।

वंश सदैव जन्मना ही होता है। कर्म वंशगत हो सकते हैं और प्रायोजित भी। वंशगत् कर्म को कथमपि स्वधर्म भी कहा गया है। स्वधर्म पालन सामाजिक उत्तरदायित्व से जुड़ा है, परंतु परिवर्तित परिवेश में अब वह स्थिति भी नहीं रह गई है। वंशगत व्यवसाय का पूर्वनियोजित स्वरूप समाप्त हो गया है, परंतु वंश-परंपरा फिर भी जीवित है और जीवित रहेगी भी। इसी की अवस्थिति से मानव समाज को एक-सा माना जाना दुष्कर हो गया है।

वंश रक्त-संबंध का प्रतिपाद्‌य विषय है। यह केवल सामाजिक अथवा मानविकी प्रावधान ही नहीं, अपितु एक धार्मिक व्यवस्था का भी समीकरण है। वंश ही धर्मपुत्र और धर्मपिता का सर्जक है। लोगों की पहचान उसके धर्म और वंश से ही अलग-अलग हो पाती है। अतएव हिंदू धर्म में वंश को सम्मानजनक स्थान प्राप्त है।

हिंदू धर्म में कार्य के स्वरूप को ध्यान में रखकर सर्वप्रथम वर्णानुसार ही अलग-अलग कुटुंब, कुल अथवा वंश की रचना की गई। सभी कुटुंब अथवा वंश अपने-अपने वर्णों के नाम से जाने गए, जैसे—ब्राह्मण-कुल अथवा ब्राह्मण-वंश, क्षत्रिय-कुल अथवा क्षत्रिय-वंश, इत्यादि। प्रत्येक कुटुंब अपने मुखिया सदस्य के नाम से सृजित हुआ, जिसे कुल अथवा वंश कहा गया। ऋषि-कुल, राजवंशीय-कुल, ब्राह्मण-कुल, क्षत्रिय-कुल, वैश्य-कुल, शूद्र-कुल की उत्पत्ति इसी प्रकार हुई। प्रारंभ में तो वर्णों को वृत्ति से निर्धारित किया गया, किंतु कालांतर में इसे जन्मना मानकर इसे कर्म के स्थान पर जन्म से जोड़ दिया गया, यही हिंदू लोकजीवन में कर्म की जगह जन्म से वर्ण निर्धारण की परंपरा का प्रादुर्भाव हुआ एवं कालांतर में यह एक सामाजिक विकृत के रूप में स्थापित होती चली गई।

यह व्यवस्था विवाह संबंधों को स्थापित करने हेतु की गई थी। विवाह संबंध स्थापित करते समय अपने कुल अथवा वंश को ध्यान में रखा जाता था और कन्या का पाणिग्रहण तभी करते थे, जब वह विवाह योग्य कुल अथवा वंश की होती थी। विवाह की रीतियों अथवा प्रकारों के अनुसार किसी विवाह में इसका ध्यान रखा जाता था, तो मानवीय समरसता के आधार पर यदाकदा इसका ध्यान नहीं भी रखा जाता था, जिसके कारण कभी-कभी समाज में अंतरजातीय, अंतरवंशीय विवाह भी हुआ करते थे। हिंदू समाज में कुल का निर्धारण प्रजनन के आधार पर होता था और यह माना जाता था कि संतान की उत्पत्ति कुल और वंश के अनुरूप होती है। कुलीन परिवारों को महाकुल और उसके सदस्य को महाकुलीन कहते थे। कुल अथवा वंश अपने यश, प्रतिष्ठा, सदाचार, ज्ञान, संपत्ति आदि के मानदंड होते थे।

हिंदू समाज में वंश दो प्रकार के होते थे—एक विद्या से संबंधित और दूसरा योनि से संबंधित। विद्या का वंश गुरु और शिष्य की परंपरा से संबंधित था, जहाँ वेद आदि विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। योनि का वंश पिता और पुत्र से संबद्ध था, जहां मूल संस्थापक पुरुष के नाम से वंश चलता था।[1] पतंजलि ने महाभाष्य में गुरुकुल, पितृकुल और विवाहिता के लिए पतिकुल की अन्विति की है।

हिंदू समाज में पति अथवा पितृकुल का महत्त्व अधिक था और आज भी है। अतएव पिता के नाम से प्रतिष्ठित परिवार का वंश भी वही हो जाया करता था, जैसे—राजा यदु का यदुवंश, चंद्रदेव का चंद्रवंश, रघु का रघुवंश, चंवरसेन का चंवर वंश, वाल्मीकि का वाल्मीकि वंश और सुदर्शन का सुदर्शन वंश इत्यादि। प्रारंभ में लोग अपने वंश के नाम से ही जाने जाते थे।

हिंदू धर्म में गोत्र का भी महत्त्व है, मुख्यतः वैवाहिक संबंधों को स्थापित करने में। गोत्र का साधारण अर्थ पूर्वपुरुष को व्यक्त करता है।[2] इसके अन्य अर्थ भी मिलते हैं। कहीं इसे गायों को एकत्र कर पालन करना अर्थात् गोशाला (गायों का समूह) है तो कहीं यह शूद्र व्यक्तियों का समूह भी इंगित किया गया है।[3] पाणिनि ने इसे वंश अथवा कुल संबोधित किया है।[4] गोत्र का अर्थ दुर्ग अथवा पर्वत भी माना गया है।[5] वस्तुतः गोत्र उस आदि पुरुष के लिए प्रयुक्त किया गया है जिन्हें कुल या वंश की संज्ञा दी गई, जो विद्या, धन, शौर्य, औदार्य आदि गुणों के लिए विख्यात हुआ और कालांतर में जिसके नाम से

---

1. शब्दानुशासन, 6/1/31, 6/3/150
2. शब्दकल्पद्रुम, द्वि.खं., पृ. 355
3. ऋग्वेद, 2/3/18, 6/65/5, अथर्ववेद 5/21/3
4. पाणिनि : अष्टाध्यायी, 4/1/93
5. मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 326

वंश अथवा कुल का विकास हुआ।[1] हिंदू धर्म में गोत्र दो प्रकार के माने गए हैं—एक, सगोत्र और दूसरा, बहिगोत्र। सगोत्र का अर्थ प्रायः एक ही परिवार, कुल अथवा वंश की ओर संकेत करता है, इसीलिए द्विज जातियाँ कभी सगोत्र विवाह नहीं करती हैं। गोत्रवहिर्विवाह ही हिंदू धर्म में मान्य है। यदि कहीं ऐसा होता है, तो उसे अपवादस्वरूप ही माना जाता है। शूद्र के लिए गोत्र का वैवाहिक बंधन नहीं माना गया है। परंतु उनके भी गोत्र माने गए हैं। यह भी अवधारणा है कि मनुष्यों का रूप पुराना हो जाता है, उसके नाम और गोत्र पुराने नहीं होते।[2]

गोत्र का नाम उपनिषदों में पुरोहितों के नाम पर प्रतिष्ठित पाया जाता है, यथा— भारद्वाज गोत्र, शिमित्र गोत्र, भृगु गोत्र, वत्स गोत्र, शांडिल्य गोत्र, कुसिक गोत्र, अत्रि गोत्र, मित्रगोत्र, गार्ग्य गोत्र, आश्वलायन गोत्र, भार्गव गोत्र, कात्यायन गोत्र, गौतम गोत्र, कौंडिव्य गोत्र, सावर्णि गोत्र, कश्यप गोत्र इत्यादि। गोत्रों का नामकरण धार्मिक पवित्रता को ध्यान में रखकर करते थे।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदू धर्म में वर्ण, वंश और गोत्र का विशेष महत्त्व है। इनसे ही मनुष्य के कुल एवं मूल आदि स्वरूप का पता चलता है। वह कहीं भी जाए और किसी भी दशा में पड़ा हो, साथ ही उसकी जाति आदि भी क्यों न बदल दी जाए, किंतु इन तीन आधारों पर उसकी पहचान बनी रह जाती है और इनके आधार पर लोग यह जान लेते हैं कि वर्तमान में जो उसका स्वरूप दृष्टिगोचर हो रहा है, वही प्राचीन में भी था, अथवा वर्तमान से कुछ भिन्न था। वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मेहतर, डोम इत्यादि यानी तथाकथित हिंदू भंगी जाति को इसी आधार पर पहचाना जाता है। इनके वर्तमान उप-जातियों एवं गोत्रों के नाम को देखकर यह सरलता से कहा जा सकता है कि मध्यकाल के पूर्व यह जाति ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय आदि जातियों के रूप में थी।

1.4 वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति का गौरवशाली अतीत एवं अंधकारमय भविष्य

वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि समकक्षीय जातियों का गौरवशाली अतीत, हिंदुस्थान की प्राचीन धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के सापेक्ष, अत्यंत सुंदर, सुखद और सर्वांगीण विकास को प्राप्त था। वाल्मीकि जाति का पंजाब और राजस्थान में जो (वर्तमान में) बाहुल्य देखा जाता है, वह इस ओर ध्यान आकृष्ट करता है कि विदेशी आक्रांता मुसलमान शासकों का आगमन पश्चिम दिशा से ही हुआ।

---

1. मेधातिथि, मनुस्मृति 3/5, 194
2. संयुक्तनिकाय, पहला भाग, नजीरतिसुत्त, पृ. 45

विश्व का प्रथम मानव पंजाब और शिवालिक की ऊँची भूमि पर (पंजाब में हिमालय के पास) उत्पन्न हुआ था।[1] दक्षिण भारत सहित देश के अन्य भागों में वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति की विपुल संख्या में उपस्थिति से यह भी पता चलता है कि धर्म एवं देश की रक्षा में जैसे पश्चिमोत्तर भारत के तथाकथित वाल्मीकि समाज ने भाग लिया था, वैसे ही दक्षिण-पूर्वी भारत के सुदर्शन समाज ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी प्रखर हिंदुओं को अरब के विदेशी मुसलिम आक्रांता शासकों द्वारा बलपूर्वक उनका हिंदू होने का स्वाभिमान भंग करके अस्वच्छ एवं मैला ढोने के कार्यों में लगाकर भंगी यानी सफाईकर्मी जातियों के रूप में स्थापित किया गया था।

आहार-आवास आदि की तलाश में आदिमानव के वंशज समूहों में यहाँ से दूर-दूर तक गए। जहाँ-जहाँ गए, वहाँ पर्याप्त अवधि तक रहे और प्राकृतिक प्रभावों में आकर विभिन्न स्वरूपों, स्वभावों और संस्कृति-सभ्यताओं के हो गए।

जहाँ वे गए, वहाँ भी पूर्णरूपेण स्थायी नहीं रहे बल्कि अल्पाधिक संख्याओं-समूहों में वे निरंतर स्थायित्व की प्राप्ति हेतु हजारों-हजार वर्षों से भटकते या भ्रमण करते रहे।

हिंदुस्थान में (अपनी मातृभूमि में) उनकी वापसी के समय का स्वरूप नीग्रो, औष्ट्रिय, द्रविड़, आर्य, यूनानी, दुची, शक, आभीर, हुण, गोल, तुर्क, यूनानी, इत्यादि का था। यहाँ आने पर सब-के-सब हिंदू समाज के अंग हो गए। यहाँ से जब वे पुनः अपने उपनिवेश स्थानों को गए वहाँ पर उन्होंने हिंदू धर्म, संस्कृति, सभ्यता के साथ-साथ जीवन व्यतीत किया। विश्व के प्रत्येक देश में पूजा-पद्धति का प्रचलन ऐसे ही लोगों द्वारा किया गया, जो अभी भी पाया जाता है।

कालांतर में कुछ हिंदू उपनिवेशों में 'अपूजक-वर्ग' का उदय हुआ, जिसने अपूजक-वर्ग को कई देशों तक व्यापक बनाने का कार्य किया। उसने युद्ध और हिंसा तथा लूटपाट का भी सहारा लिया।[2] दुग्ध-जीवन के सापेक्ष मातृ-दुग्ध और गोमाता का दुग्ध जैसी हिंदू वैचारिकी पर पहला प्रहार हुआ और पूजास्थलों (मंदिरों) तथा उनमें पूजित प्रतिमाओं को नष्ट करने के साथ ही भयंकर नरसंहार के साथ गोवंश का भक्षण भी आरंभ हो गया। विश्व का वर्तमान इस बात का प्रमाण है कि सभी देशों में पूजक और अपूजक साथ ही गोरक्षक तथा गोभक्षक आज भी हैं। जहाँ इसलाम और ईसाई वर्ग का प्रभाव है, वहाँ गो-पूजक एवं गोरक्षक बलहीन हैं अथवा मिटा दिए गए हैं। वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति विश्व मानवता के प्रतिनिधि हिंदू समाज का एक ऐसा ही

---

1. मुखर्जी, राधाकुमुद : भारतीय इतिहास, कांग्रेस ग्वालियर अधिवेशन, 1952 ई.) में सभापति पद से दिया गया वक्तव्य।
2. दिनकर, डॉ. रामधारी सिंह : संस्कृति के चार आध्याय, पृ. 4

गोरक्षक एवं पूजक अंग है, वह उसके गौरवशाली अतीत को और भी गौरवान्वित कर देता है कि उसका संबंध हिंदू से है।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जातियों का गौरवशाली अतीत सनातन वैदिककाल से संबद्ध रहा है, जहाँ न तो वर्ण-भेद का प्रदूषण रहा और न ही जाति-वर्ग वैचारिकी थी। विविध वर्ण-वृत्ति के लोग एक ही परिवार के सदस्य तक होते हैं।[1] सभी लोग प्रकृतिपरक हिंदू जीवन-पद्धति से अपना निर्वाह करते थे। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' की वैचारिकी थी, जिसमें नारी को शक्ति का प्रतीक मानकर अत्यधिक सम्मान दिया गया था। राजा तभी तक सिंहासन पर रहता था जब तक वह अपनी प्रजा, देश और धर्म की रक्षा के प्रति सबद्ध, विनम्र तथा सेवारत रहता था। शिक्षा का स्तर इतना उन्नत था कि विदेशी ज्ञानार्थी छात्र-समुदाय अत्यधिक संख्या में हिंदुस्थान के गुरुकुलों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में वर्षों तक पड़ा रहता था।[2] ज्ञानगुरु का विश्व-सम्मान एकमात्र इसी देश को प्राप्त था, जिसके द्वेषवश विदेशी मुसलिम शासकों ने लाखों दुर्लभ हस्तलिखित ग्रंथोंवाले बहुमंजिलें नालंदा जैसे पुस्तकालयों को जलाकर राख कर डाला[3] और अंग्रेज एवं यूरोप के अनेक शासकों ने वहाँ जलने से बचे शेष उन ग्रंथों से ज्ञान आहरित करके उनको अपने देश का ज्ञान बताया तथा हिंदू ग्रंथों को प्रक्षिप्त एवं प्रदूषित किया।

वाल्मीकि एवं सुदर्शन इत्यादि जातियों का गौरवशाली अतीत धनधान्य संपन्न था। यह देश सोने की चिड़िया के रूप में प्रसिद्ध था। यहाँ के व्यापारी उन दिनों के अरबों-खरबों के स्वामी थे, जब विश्व के किसी देश में लक्षपति तक न थे। अरब के वर्तमान इसलामिक वंशज हिंदुस्थान के पश्चिमी तटों पर शरणार्थी के रूप में रहते और इस देश की रोटी को स्वर्ग सुख से भी अधिक महत्त्व देते थे। दान के रूप में पूरा बगीचा ही स्वर्ण-मुद्राएँ बिछाकर दिया जाता था। अनाथपिंडक ने गौतम बुद्ध का सम्मान ऐसे ही किया था।

विदेशी इसलामिक लुटेरे केवल पश्चिमोत्तर भारत के हिंदू देवालयों से न्यूनतम 3 करोड़ दिरहम एवं दीनारें, 10 लाख मन सोना, 90 लाख मन चाँदी ले गए। सैकड़ों बार यहाँ शासन करते हुए जो कुछ भी लूटे-खाए सो वह अलग था। अंग्रेजों ने भी यहाँ की वस्तुओं को अपने देश ले जाकर इस देश को निर्धन बनाया। आज इनका केवल ब्याज

1. ऋग्वेद, 9/1112/3
2. धर्मपाल : भारत की लूट एवं बदनामी (हिंदी अनुवाद), पुनरुत्थान, ट्रस्ट, काकरिया, अहमदाबाद, 2007, पृ. 10, 18, 21, 22, 24, 38-39 एवं : रमणीय वृक्ष (18वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा), प्रकाशन-उक्त, 2007, पृ. 13।
3. सिंह परमानंद : बौद्ध साहित्य में भारतीय समाज, पृ. 24

माँगा जाए तो पूरे अरब और इंग्लैंड को बेच देने पर भी भरपाई नहीं हो सकेगी। इतने समृद्धशाली देश के मूल निवासी रहनेवाले सफाईकर्मी आज दो जून की रोटी के लिए विवश हैं और दलित के रूप में चिह्नित हैं। इसके लिए पूर्णरूप से विदेशी इसलामिक आक्रांता और अंग्रेज शासक ही उत्तरदायी हैं।

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी इत्यादि जातियों का गौरवशाली अतीत हिंदू धर्म-ग्रंथों, हिंदू देवी-देवताओं, हिंदू ऋषियों-मुनियों एवं धर्म-गुरुओं (जो विश्व में अपना अद्वितीय स्थान रखते थे) से जुड़ा हुआ था। यहाँ धर्मरक्षकों की पवित्र एवं विश्वहित चिंतन की वैचारिकी थी। केवल उनके नामोल्लेख हों तो संख्या हजारों-लाखों में होगी। देश की रक्षा और प्रजा के हित में प्राणोत्सर्ग कर देनेवाले राजवंशीय राजपूतों का क्षत्रियत्व यही था। विजित होने पर भी वे साहस के साथ अजेय बने हुए थे। स्वधर्म का पालन करने में कोई पीछे न था। पुरुषार्थ के चारों साधन और गृहस्थाश्रम का प्रत्येक पक्ष धर्म से अनुप्राणित था। हिंदुस्थान में चारों ओर सुख, शांति थी। शस्यश्यामला धरती माँ की गोद में कोई नंगा और भूखा न था। दूध की नदियाँ बहती थीं। कृषक-मजदूर सभी खुशहाल थे।[1]

अतीत का पूर्वार्द्ध जितना सुखद था, उत्तरार्द्ध उतना ही दुःखद था। उस उत्तरार्द्ध का नाम है मध्ययुग। यह हिंदुस्थान पर विदेशी आक्रमणों से प्रारंभ होकर सच पूछिए तो अंग्रेजों के देश-निष्कासन तक का माना जा सकता है। युद्धबंदी धर्मरक्षक (ब्राह्मणों) और देशरक्षक (क्षत्रियों) को इसलाम न स्वीकार कर पानेवाले अरब के इसलामिक आक्रांता एवं शासक उनका प्रचंड सामाजिक उत्पीड़न किए तथा समाज में उनका जो स्वाभिमानयुक्त उच्च स्थान यानी सामाजिक श्रेष्ठता थी, उससे नीचे गिराने के लिए उनको अपवित्र एवं अस्वच्छ कार्यों में बलपूर्वक लगाया। उनको गृह-शौचालयों की सफाई एवं मल-मूत्र फेंकने का कार्य भी बलपूर्वक करवाया और जीवन के लिए दो में से कोई एक काम चुनने का आदेश दिया—इसलाम अथवा मैला ढोना। जिन ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों ने इसलाम अस्वीकार्य किया उन्होंने विवश होकर सफाई का कार्य स्वीकार किया और कालांतर में वे तथाकथित सफाईकर्मी (भंगी) कहलाए। कालांतर में भी ब्राह्मण एवं क्षत्रियों की भाँति ही वे विभिन्न जाति, उपजाति एवं गोत्रों के नाम से जाने गए। इनकी विस्तृत सूची ग्रंथ के परिशिष्ट क एवं ख में द्रष्टव्य है।

मुगल और अंग्रेज शासन का अंत हो गया और अब देश आजाद भी हो चुका है। संविधान में इस प्रकार की दलित जातियों के लिए अस्पृश्यता का कानून भी बना है कि कोई इनको अपमानित करने के लिए इनके जाति-नाम से संबोधित नहीं कर सकता है।

---

1. अथर्ववेद 6/142/3 एवं यजुर्वेद, 35/13

और न ही छुआछूत यानी अस्पृश्यता का भेदभाव कर सकता है। शिक्षा एवं रोजगार-नौकरी आदि में इनको आरक्षण का लाभ भी देना अनुमन्य है, फिर भी यदि देखा जाए तो इस समाज की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थिति अत्यंत दयनीय है। शिक्षा का स्तर तो बहुत ही न्यून है। किंतु भारत सरकार ने कभी उन पक्षों पर ध्यान नहीं दिया कि जिन स्वाभिमानी लोगों का दलन करके दलित शब्द की सीमा में बंद कर दिया गया उन्हें इसे कैसे मुक्त कराया जाए। न तो देश में आज विदेशी आक्रांता मुसलमान शासक हैं, न ही विदेशी अंग्रेज शासक हैं, फिर भी दलितों को स्वतंत्र करके उन्हें उनके प्राचीन सामाजिक स्तर में पुनः पहुँचाने का प्रयास क्यों नहीं हुआ?

वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मेहतर, मजहबी इत्यादि यानी सफाईकर्मी जातियों के कुछ अर्थ-संपन्न विकसित एवं प्रबुद्ध वर्ग के लोग अपने को वाल्मीकि और सुदर्शन लिखकर संतुष्ट हैं, किंतु सफाई-कर्म से जुड़े हुए और मैली बस्ती में सरकारी आवासों में अत्यंत संसाधनों के साथ गुजर-बसर करनेवाले अभी भी ऐसे लोग हैं, जिनकी शैक्षिक और आर्थिक स्थिति दयनीय बनी हुई है और इसके कारण उनकी सामाजिक स्थिति भी ज्यों-की-त्यों निम्न बनी हुई है। सभी दृष्टि से हीन होने के कारण उनकी राजनैतिक स्थिति भी चिंतनीय है। पंचायत से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक की शासन-सत्ता में इनकी भागीदारी नगण्य है। सरकारी सेवाओं में इनकी संख्या केवल सफाईकर्मी के रूप में ही सर्वाधिक देखने को मिलती है। उच्च प्रशासनिक पदों पर सेवारत भंगी जाति के लोग बहुत कम मिलते हैं।

इस आधार पर अभी तो यही कहा जा सकता है कि सफाईकर्मी (भंगी) जातियों का भविष्य बहुत अच्छा नहीं है। देश का जो वर्ग शैक्षिक और आर्थिक दृष्टि से सशक्त होने के कारण अपनी सामाजिक और राजनीतिक स्थिति को मजबूत बना रहा है, उसकी तुलना में उन्हीं सब कारणों यानी सुविधा के अभावों से इस जाति के लोग बहुत पीछे रह गए हैं। इसलिए इनका भविष्य अंधकारमय दिखलाई देता है। यदि इनके जीवन को प्रकाशमय बनाना है, तो विपुल धनराशि की एक विशेष भावी कार्य योजना बनानी होगी। इस जाति के लगभग 97 प्रतिशत लोग जो केवल नगरों में ही रोजगार पाने के लिए निवास करते हैं, उनको जीविका के अनेक संसाधन उपलब्ध कराके गाँवों की ओर भी भेजना होगा। कृषि, लघुकुटीर-उद्योग, व्यापार आदि में लगने से इनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। सफाई-व्यवस्था में इनकी कमी होने पर वैज्ञानिक तथा यांत्रिक विधियों के उपयोग की विवशता उत्पन्न होगी। इससे सफाई-कार्य की प्रचलित अस्वच्छ विधि की ओर से लोगों का ध्यान हटेगा तो ही पूर्व स्थापित मानसिकता में परिवर्तन एवं समाज के द्वारा व्यवहारित घृणा से मुक्ति मिल सकेगी।

वाल्मीकि, सुदर्शन या अन्य सफाईकर्मी जातियों के वर्तमान आवासों में सुधार

करना होगा। नवयुवकों का जाति-संगठन बनाकर उनमें जागृति पैदा करनी होगी। शिक्षा का समुचित प्रबंध और कुछ लोगों के आहार की त्रुटिपूर्ण आदतों में परिवर्तन लाना होगा। समाज के अन्य लोगों को भी केवल उनके वोटों के लिए ही नहीं बल्कि उनके साथ सदैव के लिए अटूट संबंध स्थापित करना होगा। इस जाति के लोगों को भी अपने मन से हीन भावना निकाल देनी होगी। वे सभी लोगों के बराबर हैं, इसलिए उनको प्रत्येक वही कार्य करना चाहिए जो सभी नागरिकों द्वारा किए जाते हैं। उन्हें अपने गौरवशाली अतीत एवं पूर्ववर्तीय जाति स्वाभिमान का आभास करना होगा। ऐसे ही अनेक उपायों द्वारा उनके अंधकारमय भविष्य को बदलकर प्रकाशमय एवं उत्तम भविष्य बनाया जा सकेगा।

1.5 वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति के वंश, उपजातियाँ एवं गोत्र

वंश अथवा कुल कुटुंब अथवा परिवार की पृष्ठभूमि में इस जाति की वंश-परंपरा एक विचारणीय विषय है। वर्तमान समय में वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य सफाईकर्मी जातियों की वंश-परंपरा को ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जाति की वंश-परंपरा से संबंधित माना जाना चाहिए, क्योंकि इस जाति के नाम से कोई अलग से प्राचीन जाति नहीं थी, बल्कि धर्मरक्षक ब्राह्मणों[1] एवं देशरक्षक क्षत्रियों[2] को जब अरब के विदेशी मुसलिम आक्रांताओं ने युद्धबंदी बनाया, परंतु उन्हें इसलाम स्वीकार कराने में असमर्थ रहे तब उन युद्धबंदियों को ही सफाई-कर्म यानी मल-मूत्र साफ करने हेतु बलपूर्वक नियोजित किया और उनका स्वाभिमान भंग करके उनको तथाकथित भंगी यानी सफाईकर्मी जाति-नाम से संबोधित किया था।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी इत्यादि जातियाँ जिस प्रकार से प्रायोजित रूप से मध्यकाल में बनाई गई थीं उससे स्पष्ट है कि इस जाति में ब्राह्मण-वंश और क्षत्रिय वंश, दोनों ही सम्मिलित हैं। यही कारण है कि संयुक्त रूप से सभी सफाईकर्मियों को तथाकथित भंगी नाम से भले कहा जाता है, परंतु उनकी अनेकशः उपजातियों को उनके अलग-अलग वंश और गोत्रों के आधार पर ही आज भी अलग किया जा सकता है। आज के वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि सफाईकर्मी जाति में अनेक उपजातियाँ, वंश, गोत्र और नाम-संबोधन यानी टाइटिल देखने को मिलते हैं। इनकी संयुक्त संख्या कुल 623 है, जिसका अवलोकन ग्रंथ के परिशिष्ट-'क' में किया गया है।

---

1. सभाशृंगार,पृ. 184 एवं शब्दानुशासन (हेमचंद्र), 5/3/11, 7/3/107।
2. सभाशृंगार, पृ. 149, शब्दानुशासन, 6/1/116, पृ. 756, 7/4/81, एवं राजतरंगिणी, 7/16-17

वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि समाज अपनी उपजातियों के अनुसार ही अपने-अपने वंश-गोत्रों के साथ संबंधित है। इनको अब ब्राह्मण और क्षत्रिय जातियों के लोग अपने वंश-कुल का स्वीकार नहीं करते हैं। ब्राह्मण एवं क्षत्रियों के वंश-गोत्र चूँकि सैकड़ों वर्षों से वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जाति के सदस्य के रूप में हैं, फिर भी वही वंश-गोत्र बने हुए हैं इसलिए वे भले ही ब्राह्मण एवं क्षत्रियों के ही वंश-गोत्र हैं, फिर भी उनको वर्तमान समय में इसी समाज का ही सदस्य माना जाता है, जबकि ग्रंथ के परिशिष्ट-'ख' से पूरी तरह स्पष्ट है कि सनातन ब्राह्मण शाखा और सोमवंशी ब्रह्मर्षि शाखा के ब्राह्मणों में से जिन लोगों ने धर्म की रक्षा हेतु युद्ध में भाग लिया और बंदी बनाए गए उनमें से कई प्रकार के ब्राह्मणों के गोत्रों एवं वंशों को विदेशी मुसलिम शासकों द्वारा बलपूर्वक मैला ढोने एवं सफाई-कर्म में नियोजित करके तथाकथित सफाईकर्मी जाति का बनाया गया। ठीक उसी प्रकार से 25 राजपूत-राजवंशों (क्षत्रियों) की बहुत सी उपजातियों को भी युद्धबंदी की स्थिति में बलपूर्वक उन्हें सफाईकर्मी यानी वाल्मीकि, सुदर्शन, मेहतर, डोम, मखियार, रुखी, मजहबी इत्यादि जाति का बनाया गया था, जिसका सत्यापन परिशिष्ट 'ख' से हो जाता है।

वर्तमान सफाईकर्मी समाज मुख्यत: 2 ब्राह्मण एवं 25 क्षत्रिय जातियों की उपजाति में से जिससे भी संबंधित पाई जाती हैं, लगभग उसका नाम भी उसी जाति के उपनाम से मिलता-जुलता पाया जाता है। परंतु संपूर्ण ब्राह्मण एवं क्षत्रियों की संपूर्ण उपजातियों का नाम वर्तमान इस समाज की संपूर्ण सफाईकर्मी यानी तथाकथित उपजातियों से नहीं मेल खाता है। परिशिष्ट-'क' में वर्णित संपूर्ण भंगी-उपजातियों में से बहुत सी उपजातियाँ ब्राह्मण एवं क्षत्रिय संवर्ग की उपजातियों से मेल नहीं खाती है। ये सभी उपजातियाँ निश्चित रूप से वैश्य और शूद्र संवर्ग की उपजातियों से बनी होंगी, क्योंकि संक्रमण में ब्राह्मण और क्षत्रियों के साथ वैश्य और शूद्र संवर्ग की जातियों तथा उपजातियों ने भी युद्ध में भाग लिया था और युद्धबंदी बनाई गई थी। इनको भी ब्राह्मण-क्षत्रियों की ही भाँति सफाईकर्मी बनाया गया था। इसका जीवंत प्रमाण डोम जाति है। जिसकी बहुत बड़ी जनसंख्या सुदर्शन समाज के रूप में सफाईकर्मी (भंगी) है।

सुदर्शन समाज कुल 69 उपजातियों में विभक्त है। देश के प्रत्येक प्रांतों में उसके कई संबोधन हैं। इन उपजातियों को उनके प्रांतों के साथ आकारादिक्रम से प्रस्तुत किया गया है।

1. अनरियाबंध (उड़ीसा), 2. आदि डोम्मारोल्लू (आंध्र प्रदेश), 3. आर्ढकुट्टडी (तमिलनाडु), 4. आर्य कूथाड़ी-अथवा-कुडी डोंबारा (तमिलनाडु) 5. आर्ढ डोंबारा या कुडी डोबारा (तमिलनाडु), 6. इग्गोरेड्डी (आंध्र प्रदेश), 7. ओडिया (आंध्र प्रदेश), 8. कजाई यानी तमिलनाडु काडोंबारा, 9. कजहाई कूथाडी यानी कुडी डोंबारा,

(तमिलनाडु), 10. कलाई (तमिलनाडु), 11. कलैकुट्टडी (तमिलनाडु), 12. कुठारा (आंध्र प्रदेश), 13. कुडी डोंबारा (तमिलनाडु), 14. कूथाडी (तमिलनाडु), 15. कौटा-कोंडाबाल्लू (आंध्र प्रदेश), 16. कोथूलोलू (आंध्र प्रदेश), 17. कोल्हाटी (महाराष्ट्र), 18. कोहरा (आंध्र प्रदेश), 19. चांडाल (उड़ीसा), 20. चिग्सा (उड़ीसा), 21. डुम, डुमना महाशा, ढुकार, डुंबा, डुरिया डोम, डोम, डोमरा, डोमाल, डोमे, डोंब, डोंबन, डोंबरा, डोमड़ा, डोंबार, डोंबारा, डोंबारी, डोंबीदास, डोंबो, डोम्माराडोम्मारोल्लू, डोरिस, 22. तुनैहा (उत्तर प्रदेश), तुरहिया (उत्तर प्रदेश) और तुरी (उड़ीसा) 23. दास, डोंबी (कर्नाटक), 24. दुसाध (उत्तर प्रदेश) 25. धानुक (उत्तर प्रदेश) 26. नागेश्वर (उड़ीसा), 27. नाथनोत्रे (पंजाब), 28. नायक (उड़ीसा), 29. नायकरानी (आंध्र प्रदेश), 30. पन्ना (उड़ीसा), 31. पानो (तमिलनाडु, कर्नाटक), 32. पारा डोंबारा (तमिलनाडु), 33. पूंछिया (जम्मू-कश्मीर), 34. पेड्डींटराजू (आंध्र प्रदेश), 35. पेंडींटगोल्लूल्लू (आंध्र प्रदेश), 36. पैडी (कर्नाटक, आंध्र प्रदेश), 37. पैडी पानो (आंध्र प्रदेश, कर्नाटक), 38. पादू (आंध्र प्रदेश), 39. वारीकी (आंध्र प्रदेश), 40. वांसफोर, 41. बेहड़ा बेहरा (उड़ीसा), 42. भंगी (उत्तर प्रदेश), 43. मंदीरी (आंध्र प्रदेश), 44. मखिआढी (मध्य प्रदेश), 45. मगहिया (उड़ीसा), 46. मन्नेपल्ली (आंध्र प्रदेश), 47. मदराजू (आंध्र प्रदेश) 48. मरांगी (उड़ीसा), 49. महोविया (महाराष्ट्र), 50. मादिगा (आंध्र प्रदेश), 51. माला (आंध्र प्रदेश), 52. मालेपुल्लू (आंध्र प्रदेश), 53. मिरगम (आंध्र प्रदेश) 54. मिरासी (मुसलिम डोम), 55. मुल्तानिया (जम्मू-कश्मीर), 56. मेहतर (उत्तर प्रदेश), 57. मोल्लादास (कर्नाटक), 58. राउत (उड़ीसा), 59. राजौरिया (जम्मू-कश्मीर), 60. रेड्डी डोंबारा (तमिलनाडु), 61. लालबेगी (उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश), 62. बालाजिगादास (कर्नाटक), 63. वाल्मीकि (आंध्र प्रदेश), 64. सलपाक्षी (आंध्र प्रदेश), 65. सिखरिया (उड़ीसा), 66. सुद्धाडोंबो (उड़ीसा), 67. सोदाविसिया (आंध्र प्रदेश), 68. हाडी (उत्तर प्रदेश), 69. हेला।

सुदर्शन समाज के लोग अलग-अलग प्रांतों में अपने अलग-अलग कुछ टोटम्स क्लान को मान्यता देते हैं। जैसे—कुकरा, नाग, बाघ, भालू, मत्स्य महुआ (वृक्ष), मूस, संध, साल, सौर, सूर्य, हनुमान इत्यादि।

सुदर्शन समाज के लोग (विभिन्न प्रांतों में) अपने नाम के साथ कई प्रकार के टाइटिल लगाते हैं, जिनका विवरण अकरादिक्रम से इस प्रकार है—

अरखेल, करिहार, कलसे, कालिंदी, कुंडे, खरे, गुमरे, गोढारे, गोरे, ग्रांवकर, घटाटे, घिचरीया, घिचरे, चुटेलकर, जगत,जनवारे, जलाले, जबारें, टांडी, डकाहा, डुमार, डेलीकर, डोंगरी, डोंबार, ताँबे, तुरई, तुरइयाँ, तुर्केल, दबादे, दामनकर, दास, दुरिया, देशमंड, धनीक, धानुक, नगाडची, नाग, नाथनोत्रे, नायक, नील, परिहार, पसेरकर,

पाटिल, परगोनइत, पैसाडेली, बंसफोर, बक्सरे, वजइयाँ बढेल, बनवारे, बसौर, बालू, बेग, बैरीया, वैरागी, भगत, भरती, भारनालेय, मातेल, मधुमटके, मखीयार, मस्ते,महतो, महानंदा, मार्वे, मिराइया, मोगरे, मोरकर, राउत, राना, रावत, लंगोटे, लाखे, वामन, शिक्कलवर, शिर्के, शुक्लवार, समुंद्रे, सागर, सिंग, सिरकिया, सिकीया, सुदर्शन, सुनैनी, सूर्या, सेट्टी, सोनकर, हल्थेन, हथगेल, हथगेन, हाडी, हाथीबैड, हातीवैड, होथीबेड।

सुदर्शन समाज के गोत्रों की सूची (अकारादिक्रम से) इस प्रकार है—

1. अफ्रोड (दिल्ली), 2. करिआर (मध्य प्रदेश), 3. करिकंड (मध्य प्रदेश) 4. कलोत्रे (जम्मू-कश्मीर, पंजाब), 5. छदाले (मध्य प्रदेश), 6. जडुका (दिल्ली), 7. जडिया (दिल्ली), 8. जैसवाल (पंजाब), 9. जोडा (दिल्ली), 10. डंडारा (दिल्ली) 11. दामड़े (दिल्ली), 12. द्वारेके (दिल्ली) 13. नन्हेत (म.पं.), 14. नाथनोत्र (पंजाब), 15. बाग्रवा (दिल्ली), 16. बावरा (दिल्ली), 17. बेंगीरी (आंध्र प्रदेश), 18. वैस (मध्य प्रदेश), 19. मर्नाबाई (पंजाब), 20. मालगोचे (जम्मू-कश्मीर), 21. मंगतोत्रे (पंजाब), 22. मजोत्रे (पंजाब), 23. मिचवर, मिचवाल 24. लालक (दिल्ली), 25. लालोत्रे (पंजाब), 26. बिपालोच (जम्मू-कश्मीर), 27. शिवोत्रे (जम्मू-कश्मीर), 28. समुद्रे (मध्य प्रदेश), 29. हैंसा (दिल्ली)।

सुदर्शन समाज की जो उपजातियाँ वर्तमान समय में अनुसूचित जाति की आरक्षण सूची में अंकित होकर आरक्षण का लाभ प्राप्त कर रही हैं, उनकी सूची (अकारादिक्रम से) इस प्रकार है—

1. डुम (जम्मू-कश्मीर), 2. डुमन, महाशा (पंजाब), 3. डुमार (मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र), 4. डुरिया, धुरिया (उड़ीसा), 5. डूम, महाश जो डोम एवं डोमरा से अपने को भिन्न मानते हैं। (जम्मू-कश्मीर), 6. डोम (आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, कर्नाटक, दिल्ली, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश आदि), 7. डोम-सिखारिया (उड़ीसा), 8. डोमार (मध्य प्रदेश), 9. डोंब (आंध्र प्रदेश, कर्नाटक), 10. डोंबन (आंध्र प्रदेश, केरल), 11. डोंबार (कर्नाटक), 12. डोंबारा (तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक), 13. डोंबो (उड़ीसा), 14. तुरई, तुरइया, 15. धानुक, 16. नागडची (महाराष्ट्र), 17. पानो पैडी (आंध्र प्रदेश), 18. बंसफोर, बसौर, 19. भंगी, 20. महाशा डुमना (पंजाब, जम्मू-कश्मीर), 21. मेहतर (उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश), 22. रुखी, ऋषि, 24. सिखारिया डोम (उड़ीसा), 25. शुद्धा-डोंबो (उड़ीसा), 26. हाडी, 27. हेला।

तथाकथित जाति में जिस प्रकार से उनकी कई एक उपजातियों को एक साथ करके सुदर्शन समाज का एक विशाल संगठन प्रकाशमान है, उसी प्रकार से वाल्मीकि समाज भी उन्नत खड़ा हुआ है। सुदर्शन समाज और वाल्मीकि समाज, दोनों ही सफाईकर्मी जातियों के उन्नत एवं प्रबुद्ध संवर्ग है। वाल्मीकि नाम को भारतीय संविधान में मान्यता

तक प्राप्त है और अनेक सफाईकर्मी जाति के सदस्य अपनी जाति वाल्मीकि लिख भी रहे हैं, क्योंकि आरक्षण-सूची में वाल्मीकि को एक तथाकथित जाति की उपजाति मान लिया गया है, जबकि सुदर्शन समाज भी इसी प्रकार की मान्यता के लिए प्रयासरत है। यहाँ एक बात और स्पष्ट कर देनी है कि वाल्मीकि समाज में सुदर्शन समाज की प्रमुख जाति डोम और उनकी उपजातियों को नहीं लिया गया है, परंतु कुछ ऐसी जातियों को लिया गया है, जिनको सुदर्शन समाज ने अपने संवर्ग में रखा है।

सफाईकर्मी जाति की जो सूची परिशिष्ट-'क' में प्रस्तुत है, उसमें अकारादिक्रम से सुदर्शन समाज तथा वाल्मीकि समाज, दोनों के ही उपजातियों, गोत्रों, उपनामों (टाइटिल) आदि का उल्लेख है। इसी प्रकार अध्याय-8 के अंतिम पृष्ठों पर वर्तमान अनुसूचित जाति की श्रेणी में आनेवाली सभी सफाईकर्मी उपजातियों की भी सूची अकारादिक्रम से प्रस्तुत है। उन जातियों को जिन-जिन प्रांतों में अनुसूचित जाति की श्रेणी दी गई है, उन प्रांतों का नाम तथा सूची की क्रम संख्या तक का उल्लेख किया जा चुका है। उसी अध्याय-8 में ही उनको प्रांतीय आधार पर भी दरशाया गया है।

वाल्मीकि समाज की जिन उपजातियों को वर्तमान आरक्षण सूची में स्थान प्राप्त है, उसे अलग से भी निम्नलिखित प्रकार से देखा जा सकता है—

क्रम सं.	जाति-उपजाति, वंश गोत्र, उपनाम	राज्यवार प्रकाशित आरक्षण सूची में जाति-परिस्थिति एवं क्रमसंख्या (सामान्य वर्ग, पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति)
1.	ओलगाना	अनुसूचित जाति—कर्नाटक—21, गुजरात—5, महाराष्ट्र—12, राजस्थान—14
2.	कोरार	अनुसूचित जाति—कर्नाटक—21, गुजरात—5, महाराष्ट्र—12, राजस्थान—14
3.	खक्रोब (स्वीपर)	पिछड़ा वर्ग—जम्मू-कश्मीर—2
4.	चुरा	अनुसूचित जाति—हिमाचल प्रदेश—3
5.	चुहरा	अनुसूचित जाति—दिल्ली—12, पंजाब—2, राजस्थान—12, हिमाचल प्रदेश—3
6.	चुहरे	अनुसूचित जाति—हिमाचल प्रदेश—3
7.	चूरा	अनुसूचित जाति—चंडीगढ़—7, छत्तीसगढ़, जम्मू कश्मीर—5, हरियाणा—2
8.	चोहरा (स्वीपर)	अनुसूचित जाति—दिल्ली—11
9.	जदमल्ली	अनुसूचित जाति—कर्नाटक—21, गुजरात—5, महाराष्ट्र—12, राजस्थान—14
10.	धरकार	अनुसूचित जाति-उत्तर प्रदेश—29, मध्य प्रदेश—11
11.	बंगी	पिछड़ी जाति—जम्मू कश्मीर—2

12. वाल्मीकि	अनुसूचित जाति—उड़ीसा—93, उत्तर प्रदेश—11, उत्तरांचल, कर्नाटक—21, गुजरात—5, चंडीगढ़—7, छत्तीसगढ़, पंजाब—2, मध्य प्रदेश—11, हिमाचल-प्रदेश—3
	पिछड़ी जाति—आंध्र प्रदेश—23, तमिलनाडु—54, पांडिचेरी
13. बेदारू वाल्मीकि	पिछड़ी जाति—कर्नाटक—6
14. भंगी	अनुसूचित जाति—अरुणाचल प्रदेश—12, आसाम—12, उड़ीसा—60, गुजरात—5, गोवा—1, चंडीगढ़—7, छत्तीसगढ़, झारखंड, दादरनगर हवेली—1, दामनद्वीप—1, पंजाब—2, पं. बंगाल—22, बिहार—12, मध्य प्रदेश—11, महाराष्ट्र—12, मिजोरम—10, राजस्थान—14, हरियाणा—2, हिमाचल प्रदेश—3
15. भंगी (मुसलिम)	पिछड़ी जाति—जम्मू कश्मीर—2, बिहार, झारखंड
16. मक्कालू वाल्मीकि	पिछड़ी जाति—कर्नाटक—6
17. मालकाना	अनुसूचित जाति—कर्नाटक—21, गुजरात—5, महाराष्ट्र—48, राजस्थान—14
18. मेहतर	अनुसूचित जाति—अरुणाचल प्रदेश—12, आंध्र प्रदेश—48, आसाम—12, उड़ीसा—60, कर्नाटक—21, गुजरात—5, झारखंड पं. बंगाल—22, बिहार—14, मध्य प्रदेश—11, मिजोरम—12, मेघालय—10, राजस्थान—14
	पिछड़ी जाति—मध्य प्रदेश—48, आंध्र प्रदेश—23
19. मेहतर (मुसलिम)	पिछड़ी जाति—बिहार, झारखंड
20. मेहतोर	अनुसूचित जाति—कर्नाटक—21, गुजरात—5, महाराष्ट्र—12, राजस्थान—14
21. रुखि	अनुसूचित जाति—कर्नाटक—21, गुजरात—5, महाराष्ट्र—12, राजस्थान—14
22. लालबेगी	अनुसूचित जाति—अरुणाचल प्रदेश—10, आसाम—10, उत्तर प्रदेश—52, उत्तरांचल, कर्नाटक—21, गुजरात—5, झारखंड, दिल्ली—23, पश्चिम बंगाल—40, बिहार—17, मध्य प्रदेश—11, महाराष्ट्र—12, मिजोरम—10, मेघालय—10, राजस्थान—14
23. लालबेगी (मुसलिम)	पिछड़ी जाति—बिहार झारखंड
24. हलालखोर	अनुसूचित जाति—कर्नाटक—21, गुजरात—5, झारखंड, पं. बंगाल—21, बिहार—13, महाराष्ट्र—12, राजस्थान—14
25. हलालखोर (मुसलिम)	पिछड़ी जाति—उत्तर प्रदेश—54, उत्तराचल, बिहार, झारखंड
26. हरी	अनुसूचित जाति—उत्तर प्रदेश—39, झारखंड, पं. बंगाल—22, बिहार—14

1. मिश्र, जयशंकर (पूर्वोद्धृत), पृ. 326

27. हेला अनुसूचित जाति—उत्तर प्रदेश—40, उत्तरांचल

सफाईकर्मियों के गोत्र के बारे में इतिहासकारों की यह मान्यता अवलोकनीय है कि ब्राह्मणों का अपना वास्तविक गोत्र होता है तथा क्षत्रिय और वैश्यों का गोत्र उनके पुरोहितों के गोत्र पर होता है, जबकि शूद्रों का गोत्र होता ही नहीं है[1]। इससे तो यह बात और भी साफ हो जाती है कि वर्तमान तथाकथित सफाईकर्मियों का वंश, जाति और गोत्र—सब-के-सब केवल ब्राह्मण एवं क्षत्रियों से ही आहरित है। श्री रामलाल सभरवाल ने सन् 1881 ई. की प्रथम जनगणना के आधार पर लिखा है कि मुसलिम काल में जिन राजपूत राजाओं को जाति से भंग करके अछूत बनाकर तथाकथित भंगी जाति का बना दिया गया था, वे भी अपने नाम गोत्र साथ ही लाए थे। इसलिए 1881 ई. की पहली जनगणना सर डेंजल एवेस्टन की देखरेख में हुई थी, उसमें वाल्मीकि के 650 के लगभग गोत्र छापे हैं, जिनमें सबसे ज्यादा ब्राह्मणों, क्षत्रियों, राजपूतों और खत्रियों के हैं।[1]

श्री रामलाल सभरवाल ने इलाका (क्षेत्र) के आधार पर सफाईकर्मियों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित करने का प्रयास किया है,[2] यद्यपि यह विभाजन राष्ट्रीय भौगोलिक आधार पर अपूर्ण प्रतीत होता है—

1. देशवाल (जो गंगा के मैदानों में रहते थे।)
2. सीत्रवाले (जो दरियाओं के किनारे पर बसे हुए हैं।)
3. बागड़ी (जो रेतीले मैदानों में रहते हैं।)
4. जंगाल के (जो जंगलों में बसे होते हैं।)

श्री सभरवाल ने यह भी लिखा है कि वाल्मीकि समाज के लगभग 600 कबीले गोत्र हैं, जिनमें बड़े कबीले इस प्रकार हैं—सहोत्रे, गिल, भट्टी, खोखर, भट्ट, धारू (खारू), कलियाणे, लदड, सिंधु, सपरीवन, अटवाल, कंडाबारी, हांस, कुसर, बुरात और धालीवाल (कुल 16)।

श्री सभरवाल ने खेद प्रकट करते हुए कहा है कि वाल्मीकि समाज के 600 कबीला गोत्रों में से 1881 ई. की जनगणना[3] के समय लगभग आधे से भी अधिक को अंकित ही नहीं किया गया था। उन्होंने 260 गोत्रों एवं उपजातियों की एक सूची प्रस्तुत

1. सभरवाल, रामलाल : भारत के मूल निवासी वाल्मीकि श्रेष्ठ लोग (चंडीगढ, 2005) पृ. 71
2. वही, पृ. 85
3. रोज, एच.ए. : ए ग्लोसरी ऑफ दि ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऑफ दि पंजाब ऐंड नार्थ-वेस्ट फ्रांटियर प्राविंस (वेस्ट ऑन दि सेंसस रिपोर्ट ऑफ दि पंजाब 1883 1892 वाई सर डेंजिल इवेट्सन ऐंड सर ई.डी. मैकलेगन) वॉल्यूम-थर्ड 1970 (लैंग्वेज डिपार्टमेंट पंजाब)।

की है[1], जिसे पुस्तक के परिशिष्ट–'क' में अकारादिक्रम से प्रस्तुत किया गया है।

श्री श्यामलाल ने इन 8 गोत्रों में संपूर्ण सफाईकर्मियों का वर्गीकरण किया है—कल्ला, गहलोत, चौहान, नाथवत्, पंडित परिहार, राठौर और सोलंकी[2] यदि चौहान आदि 8 गोत्रों को आधार बनाया जाए तो संख्या में और भी वृद्धि हो जाती है, यथा—1. कल्ला—इसकी कोई शाखा-प्रशाखाएँ नहीं हैं, 2. गहलोत—इसकी शाखा-प्रशाखाएँ मिलती हैं, 3. चौहान—इसकी शाखा-प्रशाखाएँ मिलती हैं। इसमें पडिहार की पालवंश की और भदौरिया की शाखाएँ जोड़ी जाएँ, तो संख्या और भी बढ़ जाती है। 4. नाथवत् कुछ नहीं, 5. पंडित, 6. परिहार, 70 राठौर और 8. सोलंकी।

उपरोक्त संख्याओं के सापेक्ष यह ध्यान देने योग्य है कि ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वंश को मध्य-काल में विदेशी इसलामिक आक्रांताओं एवं शासकों द्वारा बलपूर्वक सफाई- कार्य में लगाया गया था, उसी तरह से उनको चर्म-कर्म में भी लगाया गया था। अतएव स्वाभाविक रूप से ही ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वंश के लोग दो अलग-अलग सृजित व्यवसायों में लगने से अलग-अलग जाति-उपजाति के हो गए, यद्यपि उनका वंश, गोत्र आदि वही रह गया। यह स्थिति केवल उन्हीं ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जातियों के समक्ष उत्पन्न हुई जिन्होंने धर्म एवं देश की रक्षा में शस्त्र उठाए, पराजित हुए तदोपरांत युद्धबंदी बनाए गए और इसलाम को अस्वीकार करने के दंडस्वरूप बलपूर्वक सफाई-कार्य एवं चर्म-कर्म में लगाए गए। इन्हें मध्यकालीन दंडित जातियों के रूप में चिह्नित किया जा सकता है। इस ग्रंथ के परिशिष्ट-'ख' में 2 ब्राह्मण एवं 25 क्षत्रिय राजवंशों की सूची देते हुए उनमें भंगी (सफाईकर्मी) जाति में रूपांतरित एवं स्थानांतरित जातियों का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार से वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी इत्यादि समाज से जुड़ी हुई सफाईकर्मी जाति की संपूर्ण उपजातियों, उनके वंश एवं गोत्रों तथा नाम-संबोधनों एवं टाइटिलों की भी एक सम्मिश्रित एवं समन्वित सूची ग्रंथ के परिशिष्ट-'क' में दी गई है। इनमें वर्तमान आरक्षण सूची की तथा कुछ विशेष व्यवहृत उपजातियों का परिचय आगे प्रस्तुत है।

आज तीव्र सामाजिक परिवर्तन का कालचक्र घूम रहा है। वर्तमान जातियों एवं वंशों का गर्वबोध भी लगभग औचित्यहीन एवं मृतप्राय: प्रतीत हो रहा है। ऐसे में सफाईकर्मी जाति की सामाजिक स्तरीकरण में स्वत: परिवर्तन दृष्टिगत है, किंतु उसे और गति देने एवं सामाजिक स्तरीकरण की दिशा में स्वमेव अग्रसर होने के लिए विभिन्न विद्वानों के द्वारा उल्लिखित विभिन्न तथ्यों का महती योगदान होना सुनिश्चित है। मध्यकालीन देशरक्षक, धर्मरक्षक एवं दंडित जातियों के रूप में वर्तमान तथाकथित वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति का सम्मान एवं उनसे समाज में पुन: भेदभावरहित व्यवहार

1. वही, पृ. 89-94
2. श्यामलाल (पूर्वोद्धृत), पृ. 22

कर अपने त्रुटियों के लिए उनसे क्षमायाचना करनी चाहिए।

1.6 हिंदू संस्कृति का पूर्ण संवाहक वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि समाज

हिंदू सफाईकर्मी समाज अपने संयमित और नियमित जीवन-शैली को आत्मसात् किए हुए आज तक जिस भी क्षेत्र में प्रयास किया, सदैव अग्रणी रहा। उसे हिंदू धर्म से अलग करने का मध्ययुगीन प्रयास भी असफल रहा। वाल्मीकि समाज ही इसके लिए सर्वाधिक उत्पीड़ित और प्रताड़ित भी रहा। इसलाम अस्वीकार करनेवाली जातियों में भी यह जाति अग्रणी रही। हिंदू धर्म की रक्षा में आत्मोत्सर्ग करनेवाली सभी जातियों में सुदर्शन, वाल्मीकि मजहबी इत्यादि जातियाँ सदैव अग्रणी रही। हिंदू धर्म के सम्मान को न झुकने देने के लिए यह जाति अपना तन-मन-धन लुटा देने में भी अग्रणी रही। तत्कालीन समय में विदेशी मुसलिम संस्कृति की छाया से भी दूर रहनेवाली हिंदू जातियों में यह जाति सबसे आगे रही। ऐसे कार्यों में इसने बढ़-चढ़कर भाग लिया और सफलता भी अर्जित की। अपनी राजवंशीय एवं धर्मपरायण संस्कृति को इस जाति ने दीनहीन संस्कृति में बदल लिया और दर-ब-दर का जीवन भी जीना स्वीकार किया, परंतु अरेबियन इसलामिक दासता एवं धर्मपरिवर्तन के लड्डू खाने से इनकार कर दिया। अतएव वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी इत्यादि जातियाँ हिंदू संस्कृति का पूर्ण संवाहक कहा जा सकता है।

हिंदू संस्कृति का मूल आधार हिंदू धर्म है। इस जाति के दृढ़प्रतिज्ञ लोगों ने अपने प्राण न्योछावर कर दिए और अंततोगत्वा विदेशी शासकों की गंदगियों की सफाई तक का कार्य स्वीकार कर लिया, परंतु बलपूर्वक भी थोपे जा रहे इसलाम को कभी स्वीकार नहीं किया। वैसे भी देश की सभी दलित जातियाँ निर्धनता एवं अभाव में अपनों के जूठन भी खाए, किंतु विदेशी अथवा धर्मांतरित मुसलमानों के हाथ का छुआ पानी भी नहीं पीया। देश के धर्म और संस्कृति के लिए इतना महान् त्याग साधारण नहीं है। इसलामिक शासकों ने हिंदू सफाईकर्मियों के इसलामीकरण हेतु कुछ मुसलमानों को भी सफाईकर्मी बनाकर उनके पीछे लगाया जो उनके साथ घुल-मिलकर सोबरात, मुहर्रम आदि मजहबी उत्सवों में भाग लेने हेतु प्रोत्साहित करते रहे, परंतु हिंदू सफाईकर्मी उनके झाँसे में नहीं आ सके। इसका परिणाम उलटा हुआ। हिंदू सफाईकर्मी तो मुसलमान बन नहीं पाए, परंतु भंगी का कृत्रिम आवरण धारण करनेवाले मुसलमान ही सफाईकर्मी बन गए। अपनी कुल्हाड़ी अपने पाँव लगने पर उन्हें घोर पश्चात्ताप हुआ। मुसलिम लालबेगी, मुसलिम हलालखोर आदि इसी प्रकार के भंगी मुसलमान हैं, जबकि तथाकथित हिंदू जाति के धर्मांतरित एक भी मुसलमान नहीं पाए जाते हैं।

1. ह्यूम किंग्सले डैविड : सोसाइटी, पृ. 78

हिंदू संस्कृति में धर्म के साथ-साथ नैतिकता पर विशेष बल दिया जाता है। सामाजिक सुव्यवस्था इसी नैतिकता से है। नैतिकता समाज-स्वीकृति है। नैतिक नियमों का अनुपालन कर्तव्य-भावना से किया जाता है। उसके लाभ-हानि को बुद्धि एवं तर्क द्वारा जाना भी जा सकता है। नैतिकता आवश्यकता एवं परिस्थिति के अनुसार परिवर्तनशील है। उसका संबंध वर्तमान से है। नैतिकता बलपूर्वक किसी पर भी थोपी नहीं जाती, परंतु सामाजिक समरसता की बाधाओं को नियंत्रित करने में सहयोग प्रदान करती है। यह कथमपि रूढ़िवादी भी नहीं होती। यह एक प्रकार से आत्मा की आवाज होती है। उसमें उचित और अनुचित को समझने को अवसर होता है और क्षमता भी। वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि समाज ने धर्मयुक्त नैतिकता का आदर्श प्रत्येक क्षेत्र में प्रस्तुत किया। अपने नैतिक आचरणों के आधार पर ही आज यह जाति विदेशों में भी हिंदुस्थान का तिरंगा फहरा रही है। आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि इसी सफाईकर्मी वर्ग की अनेक शाखाओं के लोग देश-विदेश में अच्छे-अच्छे पदों पर आज भी विद्यमान हैं।

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जातियों की नैतिकता में एक विशेषता यह भी पाई जाती है कि धर्म, देश और उनके व्यक्तिगत स्वाभिमान पर आँच आने की अवस्था में वे अपनी सारी नैतिकता (उचित-अनुचित)[1] भूल जाते हैं और उस समय उनके सम्मुख केवल यही नैतिकता होती है—'जान देकर भी धर्म और देश की रक्षा करना।' वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जातियों के लोग एक बार अपने प्रति अपशब्द सुनकर सह भी लेते हैं, किंतु उनके धर्म एवं परंपरा को किसी ने कुछ कह दिया तो वे उसे सह नहीं सकते हैं। यही कारण है कि उन्हें हिंदू संस्कृति का पूर्ण संवाहक माना जाता है।

हिंदू संस्कृति में स्वधर्म का पालन आवश्यक माना गया है। यह समाज अपने व्यवसायों में दत्तचित्त होकर संलग्न पाया जाता है और कार्य के प्रति कभी भी उदासीनता इनमें देखने को नहीं मिलती। इससे समाज और समाज के साथ पूरा देश निरंतर गतिमान रहता है। देश के विकास में सबसे बड़ी बाधा अकर्मण्यता है, तथाकथित सफाईकर्मी समाज की कर्तव्य परायणता का लाभ पूरा देश प्राप्त करता है। जिस दिन ये अपनी माँगों के समर्थन में काम रोकते हैं, उस दिन हाहाकार मच जाता है। स्वयं को प्रदूषण के खतरे में डालकर राष्ट्रीय प्रदूषण को मिटाने में इनकी वर्तमान सहभागिता प्रशंसनीय है। हिंदू संस्कृति में स्वच्छता एवं पवित्रता का संरक्षण यह समाज अत्यंत सामान्य भाव से करता रहता है। पं. मदन मोहन मालवीय अपने जीवनकाल में प्रत्येक वर्ष प्रयाग में कुंभ के अवसर पर समाज में वर्तमान व्यवस्था के अनुरूप तथाकथित सफाई की व्यवस्था को सुचारु रूप से निष्पादन करने हेतु इनके साथ एक सहभोज करते थे, ताकि वे अलग-थलग या उपेक्षित न समझें। करोड़ों लोगों के एकत्रित होने के बाद भी अति उत्तम ढंग

1. उपाध्याय, बलदेव (पूर्वोद्धृत), पेज 426

से प्रयोज़न समाप्त होने पर धन्यवाद के पात्र भी इस जाति के लोग होते थे। पं. मदन मोहन मालवीय द्वारा इन्हें धन्यवाद एवं उपहार दिया जाता था और सहयोग के लिए हिंदू समाज पर इनका उपकार माना जाता था।

हिंदू संस्कृति को पूरा समाज सामूहिक रूप से नमन् करता है। यह सर्वविदित है कि हिंदू संस्कृति व्यक्तिवादी न होकर समूह की संस्कृति है जिसमें व्यक्ति गौण, जबकि परिवार एवं उससे उन्नत सामाजिक संस्थाएँ मुख्य होती हैं और जिसमें प्राकृतिक नियमों से युक्त सामाजिक व्यवस्था के भावों को सर्वमान्य किया जाता है। सफाईकर्मी समाज हिंदू जीवन-पद्धति के अनुसार ही अपना संपूर्ण जीवन प्रकृतिपरक बनाए रखता है और परिवार तथा समाज के लिए त्याग की भावना भी रखता है।

सफाईकर्मी समाज पर आधुनिक वैश्वीकरण का प्रभाव आंशिक रूप में पड़ा है और कुछ तकनीकी व्यवस्था के चलते उनके कार्यों की विधा में भी परिवर्तन आया है। जैसे—पाठ पर पानी की मशक लेकर नालियों की सफाई दो लोगों द्वारा साथ-साथ कराने की प्रथा समाप्त हो गई है। कूड़ा घरों से हाथ द्वारा कूड़ा उठाकर पशुचलित गाड़ियों द्वारा निषप्रयोज्य किया जाना बंद हुआ है। अब मशीन से कूड़ा उठाया जाता है, उसी से लादा जाता है और उसी तरह ट्रकों पर लादकर दूर फेंका जाता है। इससे उनकी कार्य-शैली में परिवर्तन आया है।

यह हास्यास्पद है कि वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी, रुखी, मखियार इत्यादि समाज सफाई-कार्य में लगने से अपवित्र और अस्पृश्य माना गया और उसको गाँव से बाहर ही रहने के लिए व्यवस्था की गई, परंतु इन्हें सर्वत्र जाने के लिए आवश्यक भी माना जाता रहा। सफाई का कार्य ऐसा था जिसके लिए सभी लोग इस वर्ग को अपने घरों में आने देते थे। हिंदू संस्कृति से अनुरक्त रहने के कारण मध्यकाल के उपरांत ये हिंदू घरों में खुशी से जाते थे, परंतु मुसलिम घरों में दबाव में ही जाना स्वीकारते थे। जाने और काम करने पर वे कभी मुसलिम घरों का जल तक ग्रहण नहीं करते थे, यह हिंदू संस्कृति के संवाहन का सबसे बड़ा उदाहरण है।

विदेशी इसलामिक शासकों से अपने घरों को सुरक्षित रखने के लिए इस जाति के लोगों ने उत्तर प्रदेश के खटिक जाति का अनुकरण करते हुए सूअर पालना आरंभ किया, ताकि उनको किसी भी कारण से कोई मुसलमान बुलाने या उनसे मिलने न आ सके। अपने दरवाजों पर गोहत्या का दृश्य वे नहीं देखना चाहते थे, जबकि आए दिन वे विदेशी मुसलिम शासक ऐसा दुष्कृत्य हिंदू मुहल्लों में कराके उनको इसलाम स्वीकारने को विवश किया करते थे।

अतः यह प्रमाणित है कि विदेशी मुसलिम आक्रांता शासकों द्वारा बलपूर्वक बनाई गई तथाकथित सफाईकर्मी समाज ने सभी प्रकार से हिंदू संस्कृति एवं धर्म के मूल्यों पर

आधारित सत्यनिष्ठ व्यवहार एवं मर्यादित आचरणों पर ही जीवन निर्वाह किया और कभी भी अशिष्यचरण एवं अभद्र व्यवहार का सहारा नहीं लिया। मध्यकाल में विदेशी मुसलिम आक्रांता शासकों के उत्पीड़न का प्रत्युत्तर भी इस जाति के लोगों ने सदैव निर्भयता एवं मानवीय सिद्धांतों पर आधारित एवं पवित्र हिंदू जीवन मूल्यों के धरातल पर खरा उतर कर दिया।

1.7 वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जातियाँ प्राचीन ब्राह्मण, क्षत्रिय (राजपूत) एवं मराठे

वर्तमान वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति की कोई प्राचीन आनुवंशिकी नहीं मिलती है। हिंदू धर्मग्रंथों में अथवा किसी प्राचीन भारतीय इतिहास ग्रंथों में भी इसका नामोल्लेख नहीं है। इतना ही नहीं, भारतीय सामाजिक इतिहास में जातियों के क्रम में भी बारहवीं सदी से पहले सफाईकर्म अथवा सफाईकर्मी जाति या जातियों के साथ तथाकथित भंगी जाति अथवा वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि का उल्लेख नहीं मिलता है। इससे स्पष्ट है कि किसी अन्य जाति अथवा जातियों का ही नवीन नामकरण सफाईकर्मी जाति यानी वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि के रूप में हुआ होगा।

ऐतिहासिक ग्रंथों से पता चलता है कि हर्ष के बाद देश में कोई शक्तिशाली हिंदू केंद्रीय राज-शक्ति नहीं रह गई थी और देश छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। हिंदू राजा आपस में ही साधारण सी बातों को लेकर युद्ध किया करते थे, जिससे उनकी सामरिक शक्ति व्यर्थ में नष्ट होती रहती थी। किसी राज्य पर कोई आपदा भी आ जाती तो पड़ोसी राज्य अपनी चुप्पी लगाए रखते थे, बल्कि पड़ोसी हिंदू राजा की संपत्ति हड़पने के लिए हर एक राजा प्रयास भी करते थे।

सिकंदर को इसी का अवसर मिला था और बाद में विदेशी इसलामिक आक्रांताओं को भी हिंदू राजाओं की इसी फूट का लाभ मिला। अरब के विदेशी आक्रांता मुसलमान यहाँ केवल लूटपाट के ही उद्देश्य से आए थे, परंतु बाद में उन्होंने यहाँ अपना शासन भी स्थापित कर लिया। उनका महत्त्वपूर्ण कार्य था हिंदू धर्म को इसलाम धर्म में परिवर्तित करना। इसके लिए उन्होंने युद्धबंदी हिंदुओं, हिंदू राजपूतों और हिंदू राजाओं को उत्पीड़ित किया। हजारों-लाखों हिंदू स्त्री एवं पुरुषों के साथ बच्चों को मार दिया गया। असंख्य लोग गुलाम बनाकर अरब और बगदाद भेज दिए गए। जो शेष रहे उनको अपवित्र और मैला ढोने के कार्यों में लगाकर उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा को नष्ट अथवा भंग किया गया। ऐसे ही अमानवीय कारण प्रयास से बनी सफाईकर्मी जाति में प्राचीन ब्राह्मणों के साथ ही राजपूत एवं क्षत्रिय अधिक संख्या में थे।

वस्तुत: विदेशी आक्रांताओं से युद्ध लड़ने और देश की रक्षा करने का परंपरागत कार्य मुख्यत: क्षत्रिय जाति पर ही था, फिर भी सेना में विविध जातियों के लोग होते

थे। साधारण सैनिकों को मार देना या बेच देना ही प्रयोग में लाया गया था। वे भयवश अथवा कभी-कभी लालच में इसलाम स्वीकार भी कर लेते थे, परंतु ब्राह्मण एवं राजपूत क्षत्रिय जातियाँ कभी सहमत नहीं हुई। उनको उनका मान-मर्दन के उद्देश्य से ही मैला ढोने के कार्यों में बलपूर्वक लगाया गया था। आज के सफाईकर्मी समाज में परीक्षण करने पर वर्तमान ब्राह्मण एवं क्षत्रिय उपजातियों के लोग लगभग 10 प्रतिशत ब्राह्मण और 90 प्रतिशत की संख्या में क्षत्रिय वंश, जाति एवं गोत्रों से जुड़े हुए पाए जाते हैं।

राजपूत भी प्रायः क्षत्रिय ही होते थे, यद्यपि किसी राज्य का स्वामित्व प्राप्त करने के लिए क्षत्रिय होना अनिवार्य नहीं था। पराजित राजपूतों के साथ भी वही व्यवहार विदेशी मुसलिम शासक करते थे। इसके परिणामस्वरूप कई राजपूतों को भी तथाकथित सफाईकर्मी जाति में बलपूर्वक ढकेल देने का काम किया गया।

क्षत्रियों और राजपूतों का अत्यधिक शोषण सल्तनतकाल (कुतुबुद्दीन से लोदी वंश के अंत तक) में हुआ। मुगलकाल के उत्तरार्द्ध में पुनः उसी तरह की स्थिति आई जब देश का शासन भ्रातृ-पितृहंता औरंगजेब के हाथों में आया। उसे क्षत्रिय एवं राजपूत नाम से चिढ़ एवं घृणा थी। सिक्ख-मराठा शब्द सुनते ही उसके शरीर में आग लग जाती थी। वह उन्हीं क्षत्रियों, राजपूतों, सिक्खों एवं मराठों को पसंद करता था जो हिंदुओं के लिए गुप्तचरी करते थे, जो वास्तव में लालची एवं कायर थे। उनके सहयोग से भी औरंगजेब ने अनेक क्षत्रिय, राजपूतों, मराठों एवं सिक्खों को बंदी बनाया, जेल में डाला, मार डाला या बलपूर्वक उन्हें सफाईकर्मी बनाया।

पाप का घड़ा एक दिन भरकर फूटता है। औरंगजेब को कड़ी टक्कर देने के लिए महाराष्ट्र में शिवाजी के नेतृत्व में मराठा शक्ति का अभ्युदय हुआ। शिवाजी की सेना के मराठों में अधिकांश खटिक एवं धनगर थे। वे हिंदू सैनिक छापामार युद्ध करके मुगल बादशाह को नाको चने चबाने पर विवश किए। औरंगजेब को सर्वाधिक कष्ट इन मराठों से पहुँचा था। इसलिए औरंगजेब इनसे अधिक चिढ़ा हुआ था। वह जब भी अवसर पाता, छल-कपट से उनको पकड़कर बलपूर्वक मान-मर्दन करने के लिए सफाईकर्मी बनाता और सर्वसाधारण के समक्ष उनका भारी अपमान करता और लोगों से कराता था। यही कारण है कि तथाकथित सफाईकर्मी समाज में मराठा लोगों की संख्या भी अधिक पाई जाती है।

औरंगजेब जिस समय मराठों को मान-मर्दन के लिए सफाई-कार्य में लगा रहा था, अंग्रेजों के लिए यह सुखद था, किंतु अपनी प्रसन्नता वे सामान्य रूप से व्यक्त नहीं करते थे। इसके पीछे मुख्य बात यह थी कि हिंदुस्थान में अपने पाँव फैलाने में सबसे बड़ी बाधा वे मराठों को ही मानते थे। यहाँ पर अंग्रेजों को अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए मुसलमान शासकों से कम, अपितु मराठों से अधिक युद्ध करना पड़ा था।

श्री जी.एस. सरदेसाई ने मराठा शब्द की उत्पत्ति 'राठा' शब्द से मानी है, जो

वीरता का परिचायक है। तथाकथित हिंदू सफाईकर्मी समाज में राठ, राठा, मराठा जैसे गोत्र आदि का पाया जाना स्पष्ट तो नहीं है, किंतु मराठे लोगों का इस कार्य में लगा होना यह स्पष्ट करता है कि इस समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजपूतों के साथ ही मराठा भी बलपूर्वक नियोजित किए गए थे।

बतलाया गया है कि वर्तमान तथाकथित सफाईकर्मी जाति की उपजातियाँ एवं गोत्र मुख्यत: दो ब्राह्मण और 25 क्षत्रिय शाखाओं से मिलते-जुलते पाए जाते हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि विदेशी मुसलिम आक्रांताओं ने उपरोक्त ब्रह्म-क्षत्र की 27 शाखाओं की उन उपजातियों को बलपूर्वक (भंगी) सफाईकर्मी बनाया, जिन्होंने धर्म, संस्कृति एवं देश की रक्षा के लिए उनसे युद्ध किया परंतु दुर्भाग्य से पराजित एवं बंदी बनाए गए थे। अधोलिखित 27 शाखाओं की जिन उपजातियों को बलपूर्वक भंगी (सफाईकर्मी) बनाया गया, उनका सत्यापन परिशिष्ट-क में प्रस्तुत सफाईकर्मी जाति की विस्तृत सूची से किया जा सकता है—

1. सनातन ब्राह्मण शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

1-अटवाल (इटावाल ब्राह्मण), 13-उतवाल (उतवट, उदवर ब्राह्मण), 16-औचेवाल (उदित ब्राह्मण), 18-कंगड़ा (कन्हड़ा ब्राह्मण), 94-गीर (गौड़ ब्राह्मण), 102-गोडीवाल (गोलवाल ब्राह्मण), 273-धनार (धनाढ्य ब्राह्मण), 335-पिरवाल (पल्लीवाल ब्राह्मण), 422-भट्ट (भटनागर ब्राह्मण), 508-रठवाल (रोड़वाल ब्राह्मण), 566-सहोत्रे (सहांद्रा, सिवोद्रा ब्राह्मण), 553-संजोतरी (संचौरा ब्राह्मण), 571-सारबन (सारस्वत ब्राह्मण), 589-सिखारिया (सिखा ब्राह्मण)।

2. सोमवंशी ब्रह्मर्षि शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

57-कुल (कण्व ब्रह्मार्षि), 60-कुसर (कश्यप ब्रह्मर्षि), 69-कौशड़ (कौशिक ब्रह्मर्षि), 89-गांचन (गौतम ब्रह्मर्षि), 149-जदमल्ली (जमदग्नि ब्रह्मर्षि), 193-डुमनामहाशा (दुर्वासा ब्रह्मर्षि), 310-नाहल (नारद ब्रह्मर्षि), 329-पारछी-पारशा (पाराशर ब्रह्मर्षि), 319-पनवाड़ (प्रह्लाद ब्रह्मर्षि), 481-माला (मालावति ब्रह्मर्षि), 544-लोहर (लोमश ब्रह्मर्षि), 415-वैस (वत्स ब्रह्मर्षि), 368-बांसफोर (व्यास ब्रह्मर्षि), 573-साहीढाए (शांडिल्य ब्रह्मर्षि), 548-शुक्लवार (शुक, संतकुमार ब्रह्मर्षि), 602-सोनकर (शौनक, सैनक ब्रह्मर्षि)।

3. कछवाहा क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

20-कंडावारी (कंभाणी कछवाहा), 31-कलयाणा (कतरौलया कछवाहा),

39-कल्ला (कन्यावत कछवाहा), 41-काकड़ी (कांकरे कछवाहा), 64-कोरार (किरार कछवाहा), 51-कुंडे (कुंडल कछवाहा), 71-खग्रोव (खंगारोत कछवाहा), 73-खड़ालीया (खितौल्या कछवाहा), 92-गिल (गुलू कछवाहा), 98-गोगड़ीया (गोंगलीव कछवाहा), 106-गोहारसूस (गोगावत कछवाहा), 120-चरनिया भाम्भी (चिनासिये कछवाहा), 151-जनवारे (जम्वूवाल कछवाहा), 164-जोडा (जून्था कछवाहा), 159-जुतली (जोतावत कछवाहा), 165-जोरीया (जोरिया कछवाहा), 180-झौनी (झाड़ी कछवाहा), 184-टांडी (टांकी कछवाहा), 201-डोंगरी (डोंगरा कछवाहा), 231-ढोगरे (ढिंगवार कछवाहा), 264-दुग्गन (दागमन कछवाहा), 277-धरकार (धारके कछवाहा), 305-नाथावत (नाथावत कछवाहा), 313-पंडन (पाँचल कछवाहा), 324-पहारोलिया (पिपरौलया कछवाहा), 393-विपालोच (विकलपोता कछवाहा), 397-बुट्ट (विहट कछवाहा), 429-भानू (भाऊ कछवाहा), 461-मधुमटके (मधुरपुरके कछवाहा), 462-मनहार (मनहोस कछवाहा), 514-रावत (रतनावत कछवाहा), 605-सोसत (सोपले कछवाहा)।

4. गहड़वाल क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

52-कुकरा (कुकरोलया, कुकरोले गहड़वाल), 60-कुसर (कुशमइया गहड़वाल), 88-गलहार (गहरवार, गहड़वाल), 180-झौनी (झाड़ीवारे गहड़वाल), 334-पिछल (पीपर गहड़वाल), 350-फरवा (फरसाटारे गहड़वाल), 373-बाग्रवा (बगवार गहड़वाल), 423-भट्टी (भट्टीवाल गहड़वाल), 503-मोहती (मोहनिया गहड़वाल), 508-रठवाल (राठौर गहड़वाल)।

5. गहलोत क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

14-ओडिया (ओडालिया गहलोत), 17-औजला (ओजाकर गहलोत), 68-कौरटाना (करेटकीर गहलोत), 89-गांचन (गनावत गहलोत), 100-गोडला (गोधड़ा गहलोत), 103-गोढारे (गोदारा गहलोत), 113-घोरिए (घोरनिया गहलोत), 149-जगन (जगावत गहलोत), 187-टींगड़ी (टीपणा गहलोत), 270-धई (धुइया गहलोत), 149-जगन (जगावत गहलोत), 187-टींगड़ी (टीपणा गहलोत), 270-धई (धुइया गहलोत), 269-नागड़ची (नादोड़या गहलोत), 416-बोमे (बोबा गहलोत), 270-धई (धुइया गहलोत), 269-नागड़ची (नादोड़या गहलोत), 416-बोमे (बोबा गहलोत), 443-भैनावाणी (भोड़ीवार गहलोत), 446-भोरडा (भोंसला गहलोत), 448-मंगतोत्रे (मंगरोपा गहलोत), 458-मंडाला (मंडावत गहलोत), 513-राना (राणावत गहलोत), 465-सहोते (सहावत गहलोत)।

6. चंदेल-चोल क्षत्रिय शाखाओं से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

15-ओलगाना (अलिगाने चंदेल), 40-कहारु (कहारु चंदेल), 114-चंडाल (चंदेल), 149-जैसवाल (जैसवार चंदेल), 286-धानुक (धानुक चोल), 321-परहार (पमार चंदेल), 480-मालकाना (मलिकाने चोल), 496-मेहतर (मोहितारे चोल), 506-रंजीला (रुहेला चंदेल), 526-लाखे (लाखोर चोल), 529-लालबेगी (लालडेगी चोल), 557-समुद्रे (समुद्रे चोल), 606-सोसवाल (सोहवाल चोल), 609-हतवाल (हथपाल चोल), 618-हाडी (हाड़ी चोल)।

7. चंद्रवंशी क्षत्रिय शाखाओं से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

55-कुडीडोंबारा (कुरी चंद्रवंशी), 62-कोटकोंडावाल्लू (कोटपाल चंद्रवंशी), 69-कौशड़ (कौशिक चंद्रवंशी), 138-छदाले (चंदेले चंद्रवंशी), 161-जैसवाल (जैसवाल चंद्रवंशी), 244-तोसमर (तमर चंद्रवंशी), 232-तम्बोली (तमोरी चंद्रवंशी), 233-ताँबे (ताँवरे, तंवरे चंद्रवंशी), 354-बंगी (बंगरवाल चंद्रवंशी), 355-बंसफोर (बंदीछोर चंद्रवंशी)।

8. चावड़ा-चूड़ामणि क्षत्रिय शाखाओं से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

6-आदिवाल (आदिवाल चावड़ा), 30-करोटिया (करौतिया चूड़ामणि), 125-चिग्सा (चिघारिया चूड़ामणि), 134-चुहड़ा (चूड़ामणि), 148-जड़िया (जारिया चावड़ा), 242-तेजी (तेगी चावड़ा), 267-देगाड़ी (देशाड़ी चावड़ा), 394-बिरकान (विक्रांत चावड़ा)।

9. चौहान क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

12-उज्जैनीवाला (ओजानिया चौहान), 35-कलसे (कचेला चौहान), 30-करोलिया, करोसे एवं करोटिया (कसरेटिया चौहान), 45-कागड़ीया (करारिहा चौहान), 102-गोडीवाल (गोलवाल चौहान), 113-घोरिए (घघोरिया चौहान), 134-चोहड़ा (चाहोड़ा चौहान), 147-जडुका (जडुडेचक), 164-जोड़ा (जोजा चौहान), 203-डोमड़ा (चाहोड़ा चौहान), 147-जडुका (जडुडेचक), 164-जोड़ा (जोजा चौहान), 203-डोमड़ा (डिमाड़ा चौहान), 262-दिलगामी (दिलवारिया चौहान), 273-धनार (धनारिया चौहान), 309-नाहर (नहरवण चौहान), 350-फरवा (पैरवा चौहान), 369-बागड़ (बंगडिया चौहान), 354-बंगी (बांग चौहान), 374-बाबरा (बाकला चौहान), 370-बागड़ी (बागड़ी चौहान), 418-ब्रोलाट (बालोत चौहान), 450-मंदीरा (मदुरिया

चौहान), 472-महानंदा (महामना चौहान), 478-मारूभाम्भी (मारू चौहान), 470-महतो (मोहिल चौहान), 556-सभरवाल (संभरवार चौहान), 558-सरपतड़ा (सरपटा चौहान), 550-संगर (सांगरी चौहान), 613-हरी (हरिया चौहान), 618-हाडी (हाड़ी चौहान)।

10. तंवर क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

233-ताँबे (तंवर क्षत्रिय), 244-तोसमर (तोमर तंवर क्षत्रिय), 357-बग्गन (वमेरवार तंवर क्षत्रिय), 378-बारू (बमेरुआर तंवर क्षत्रिय), 374-बाबरा (बरबार तंवर क्षत्रिय)।

11. नागवंशी क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

138-छदाले (छंदक नागवंशी), 140-छापरबंद (छंदपाल नागवंशी), 181-टक (टक्क नागवंशी), 183-टाक (टाँक नागवंशी), 244-तोसगर (तक्षक नागवंशी), 308-नाह (नागर नागवंशी), 309-नाहर (नागोरा नागवंशी)।

12. निकुंभ क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

30-करोटिया (कटहरिया निकुंभ), 137-चौहान (चौहान निकुंभ), 310-नाहल (नावले निकुंभ), 297-नन्हेत (निकुंभ क्षत्रिय), 411-बेरिया (बिरहिया निकुंभ), 547-शिवोत्रे (श्रीनेत निकुंभ)।

13. पंवार क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

12-उज्जैनीवाल (उजैनी पंवार क्षत्रिय), 14-ओडिया (उदिया, ओड़ पंवार क्षत्रिय), 15-ओलगाना (अलंगा पवार क्षत्रिय), 18-कंगड़ा (कंगवा पवार), 74-खरे (खरा पंवार), 155-जागरा (जागरा पंवार), 240-तुर्केल (तेका पंवार), 289-धारवती (धारवा पंवार), 308-नाह (नाहटा पंवार), 317-पड़ार (पंवार), 313-पंडन (पड़त पंवार), 338-पूछिया (पूसया पंवार), 358-बजइया (बइया पंवार), 411-बेरीया (बोरी पंवार), 428-भादर (भादुर पंवार), 488-मिरासी (मोटसी पंवार), 571-सरवन (सनवरिया पंवार), 574-सिंग (सिंघड़ पंवार), 622-हेला (हरेरा पंवार)।

14. पडिहार क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

607-हंस (कलहंस पडिहार), 78-खोखड़ (खोक्खरा पडिहार), 101-गोडीला (गोढीला पडिहार), 113-घोरिए (घोराणा पडिहार), 134-चोहरा (चोहिल पडिहार),

155-जागरा (झांगरा पडिहार), 221-पिरवाल (पिलवाल पडिहार), 235-तुरई (तरवी पडिहार), 322-परिहार (पडिहार), 335-पिरवाल (पिलवाल पडिहार), 356-बक्सरे (बच्छरी पडिहार), 359-बागड़ (बड़गाँव पडिहार), 589-सुसता (सुरावता पडिहार)।

15. परमार क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

95-गुमरे (अरख पार्श्वी क्षत्रिय), 72-खड़ालनी (खंडित पार्श्वी क्षत्रिय), 127-चिड़ाई (चिड़िमार पार्श्वी क्षत्रिय), 161-जैसवाल (जैसवार पार्श्वी क्षत्रिय), 237-तुरहिया (तिरसुलिया पार्श्वी क्षत्रिय), 329-पारछी-पारशा (पार्श्वी क्षत्रिय), 391-बिगासी (बिहारी पार्श्वी क्षत्रिय), 421-भगत (मगता पार्श्वी क्षत्रिय)।

17. पाल क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

28-करीयाणा (कराड़िया पाल-क्षत्रिय), 40-कहारू (कहारिया पाल-क्षत्रिय), 120-चरनिया भाम्भी (चौरसिया पाल-क्षत्रिय), 117-बनवारिया (चौबरिया पाल-क्षत्रिय), 207-डोमाल (दीपाल पाल-क्षत्रिय), 274-धनीक (धनगर पाल-क्षत्रिय), 371-बागड़े (बगौड़ा पाल-क्षत्रिय), 374-बाबरा (व्यावर पाल-क्षत्रिय), 430-भावन (भोंवनिया पाल-क्षत्रिय)।

18. बड़गूजर क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

83-गचंद (गजर बड़गूजर), 163-चाटे (चैतीवार बड़गूजर), 165-जोरिया (जौरिया बड़गूजर), 392-विदनार (वीदावत बड़गूजर), 409-वेदलान (बोदले गड़गूजर), 466-मलकाना (मलकपुरिया बड़गूजर), 545-शिक्कलवार (सीकरवाल बड़गूजर), 594-सेट्टी (सेकड़ी बड़गूजर)।

19. बनाफर क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

81-खोरे (खेरा बनाफर), 99-गोगलिया (गोग्गलीया बनाफर), 186-टिउघर (टिगुलया बनाफर), 358-बजइयाँ (फरेंजिया बनाफर), 352-फल (बनाफर), 475-महोविया (महुविया बनाफर)।

20. भदौरिया क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

30-करोटिया (करोचिया भदौरिया), 99-गोगालिया (गागलिया भदौरिया), 115-चंदालिया (चंदेरिया भदौरिया), 137-चौहान (चौहान भदौरिया), 369-बुगर (बुकरोले भदौरिया), 428-भादर (भदकारिया भदौरिया), 426-भनोलाई (भदौरिया)।

21. मराठा क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

53-कुकी (कुली सुर्वे मराठा), 70-खकार (खटके मराठा), 112-घिलौट (घोरपुड़े मराठा), 146-जगत (जगताप मराठा), 233-ताँबे (ताँवड़े मराठा), 256-दामड़े (दामाड़े मराठा), 292-धालीवाले (धलाएधुले मराठा), 474-महोती (मोहिते मराठा), 546-शिके (शिंदे मराठा), 570-साहबतोरी (सावंतकुल मराठा), 582-सिर्की (सिरंके मराठा)।

22. यदुवंशी क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

13-उतवाल (उड़न यदुवंशी), 31-कलयाण (कराड़ यदुवंशी), 46-कागरा (कावा यदुवंशी), 64-कोरार (किरार यदुवंशी), 33-कल्याणी (कैलण यदुवंशी), 148-जड़िया (जड़िचा यदुवंशी), 338-पूछिया (पुंगलिया यदुवंशी), 392-विदनार (विदमान यदुवंशी), 423-भट्टी (भट्टी यदुवंशी), 442-भेटा (भाटी यदुवंशी), 493-मुही (मुदैचा यदुवंशी), 541-लोटो (रावलोत यदुवंशी), 559-सरवती (सरवइया यदुवंशी), 583-सीरसबड़ा (सातवाहन यदुवंशी), 569-सादीसाद्धू (सुबाहु यदुवंशी), 591-सूरीलाहोतनी (सूरसेन यदुवंशी), 598-सोढ़ा (सोहा यदुवंशी), 615-हालेय (हाला यदुवंशी)।

23. राठौर क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

13-उतवाल (ऊदावत राठौर), 141-छिपा (छिपाड़िया राठौर), 190-डींगरे (डांगी राठौर), 285-धाचंद (धाँधल राठौर), 291-धारू (धूल राठौर), 324-पहारोलिया (पहरोले राठौर), 357-बग्गन (बागुण राठौर), 441-भेटल (भड़ेल राठौर), 458-मडाला (मंडला राठौर), 483-मिचवार (मिलतवार राठौर), 503-मोहती (मुहाती राठौर), 508-रठवाल (रतवाहा राठौर)।

24. सनातन क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

43-कागड़ा (कागवा, गवा क्षत्रिय), 64-कोरार (कोरड क्षत्रिय), 78-खोखड़ (खरपड़ क्षत्रिय), 81-खोरे (खेरमोरी, खयरमोरी क्षत्रिय), 107-गोसार (गोड़ क्षत्रिय), 118-चनार (चंद्रावत क्षत्रिय), 137-चौहान (चौहण क्षत्रिय), 174-झावा (झावा, भाला क्षत्रिय), 220-डोरिस (डोडिया क्षत्रिय), 251-दवादे (देवड़ा क्षत्रिय), 320-परतान (परमार, पमार क्षत्रिय), 322-परिहार (पड़िहार क्षत्रिय), 403-बोरत (बोडर, बारड़ क्षत्रिय), 504-मोही (मोहिल क्षत्रिय), 445-भोर (भोज क्षत्रिय), 507-रंटी (रघुवंशी क्षत्रिय), 512-राती (बोरीबीर क्षत्रिय), 518-रोहीवन (रोहर क्षत्रिय), 569-सोड़या

(सेणचा क्षत्रिय), 60-सोमी (सोनिगरा क्षत्रिय), 604-सोलंकी (सोलंकी क्षत्रिय), 613-हरी (हरिअड़ क्षत्रिय)।

25. सीसोदिया क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

15-ओलगाना (अलगचा सीसोदिया), 16-औचेवाल (अचलपोता सीसोदिया), 59-कलीना (कुलमोर सीसोदिया), 95-गुमरे (गुठला सीसोदिया), 115-चंदालिया (चंदपुरिया सीसोदिया), 186-टिउहार (टीला सीसोदिया), 202-डोमारे (डाहिया सीसोदिया), 272-धनकवाल (धनदंध सीसोदिया), 305-नाथावत् (नाथावत सीसोदिया), 325-पाटिल (पटाफार सीसोदिया), 361-बढेल (बद्धेल सीसोदिया), 406-बेग (बघेले सीसोदिया), 413-बेहेरा (बहला सीसोदिया), 348-पोदू (भोदू सीसोदिया), 378-बारू (वीरपुरा सीसोदिया), 440-भूंवक (भरसूड़ा), 518-रोहीवन (रहोरा सीसोदिया), 521-लदड़ (लघा सीसोदिया)।

26. सेन-सगर क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

1-अटवाल (अटवाल क्षत्रिय), 4-अरखेल (अरिखाल क्षत्रिय), 24-कजहाई (कजहाई क्षत्रिय), 47-कालिंदी (कमानी क्षत्रिय), 71-खग्रोव (खत्ती क्षत्रिय), 138-छदाले (भाले क्षत्रिय), 190-डींगरे (डोंगरे क्षत्रिय), 411-बेरिया (बेरीयार क्षत्रिय), 447-मंग (मंगत क्षत्रिय), 506-रंजीला (राजौरिया क्षत्रिय), 554-सनातर (श्वपच क्षत्रिय), 557-समुद्रे (सागर क्षत्रिय), 586-सुदर्शन (सेन क्षत्रिय), 593-सूसगोसार (सेंगरवाल क्षत्रिय), 613-हरी (हरिशचंद्रे क्षत्रिय)।

27. सोलंकी (चौलुक्य) क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

2-अनयिाबंधा (उनियारिया सोलंकी), 27-करिकंठ (कटूंकड़ा सोलंकी), 38-कलोत्रे (कलेचा सोलंकी), 55-कुणीडोंबारा (कुणीदरा सोलंकी), 77-खारू (खेराडा सोलंकी), 158-जिझूंया (जुझौतिया सोलंकी), 225-ढाएसाही (ढाई सोलंकी), 232-तंबोली (तंबकरा सोलंकी), 242-तेजी (तेजावत सोलंकी), 309-नाहर (नरहरदास सोलंकी), बढेल (बघेल, बघेला सोलंकी), 373-बाबरा (बवार सोलंकी), 367-बहुलान (वहेला सोलंकी), 393-विपालोच (बालनोत सोलंकी), 420-भंदारा (भड़गरा सोलंकी), 481-माला (मलरो सोलंकी), 513-राना (राणकिया सोलंकी), 536-लुहात (लाहा सोलंकी), 580-सिर्किया (सरकिया सोलंकी), 600-सोथती (साथेल सोलंकी), 582-सिर्की (सुरकी सोलंकी)।

28. जाट क्षत्रिय शाखा से सफाईकर्मी बनाई गई उपजातियाँ

156 जाट भांभी (जाट भ्रमर), 79 खोखर (खोखर जाट), 317 पड़ार (पंकर जाट), 134 चूहंडा (चौहान जाट), 244 तोसमर (तोमर जाट)।

1.8 मैला ढोना मुसलिम एवं ईसाई शासकों की देन

पवित्रता की अवधारणा विश्व की प्रत्येक संस्कृतियों में पाई जाती हैं, परंतु प्रत्येक का स्वरूप और तद्नुसार उसकी व्याख्या एक जैसी नहीं पाई जाती है। किसी के धर्म को प्रदूषित करना, किसी के शरीर और आत्मा को प्रदूषित करना, किसी के घर में आग लगाकर सब कुछ राख कर देना, किसी का अपहरण करके मार डालना अथवा शीलहरण करना, किसी का लूटकर खा जाना, किसी की आस्थाओं पर कुठाराघात करना इत्यादि हिंदू संस्कृति में पवित्र नहीं माना जाता है, परंतु इसलाम और ईसाई संस्कृति के माननेवाले विदेशी शासकों ने इन कुकृत्यों को किया है। अर्थात् हिंदू-दृष्टि में जो अपवित्र है, इसलाम और ईसाई विदेशी आक्रांताओं की दृष्टि में वही पवित्र है।

मैला ढोने के बारे में भी यही स्थिति है। गैर-हिंदू संस्कृतियों में मैला स्वयं में अपवित्र है, परंतु उसको ढोने अथवा साफ करनेवाला अपवित्र नहीं माना जाता है। उन संस्कृतियों में मैला ढोकर कागज अथवा मिट्टी से हाथ साफ कर लिया जाता है, जबकि हिंदू संस्कृति में जल से प्रक्षालन पर ही शुद्धि का विधान है। वह भी स्व-मल के बारे में ही यह नियम है। हिंदू सामाजिक परंपरा में स्थापित दूसरों का मल साफ करने पर सामाजिक अपवित्रता का दोष लगता है। इसी अभिप्राय से विदेशी शासकों ने अपने विरुद्ध प्रमुखता से संघर्ष करने के कारण स्वाभिमानी ब्राह्मण एवं क्षत्रियों को अपना प्रमुख शत्रु मानते हुए उन्हें इस कार्य में लगाकर उनको सामाजिक आधार पर अपवित्र अथवा अस्पृश्य बना दिया था।

विदेशी मुसलिम शासकों के यौन-सुख भोग के लिए हजारों बेगमें हुआ करती थीं। उनकी संख्या वृद्धि से उनकी शान-शौकत में वृद्धि मानी जाती थी। बादशाह अकबर के पास 6 हजार बेगमें थी।[1] प्रारंभ में उनके शौचादि की व्यवस्था बाहर थी, किंतु कालांतर में भ्रष्टाचार रोकने हेतु उनके शौचादि की व्यवस्था आवासों में ही कर दी गई। उनके द्वारा त्याग किए गए मल-मूत्र को उठाकर बाहर फेंकने के लिए कुछ निकृष्ट प्रकार के घरेलू नौकरों को प्रयुक्त किया जाता रहा। उनकी संख्या अल्प थी। ऐसे में हिंदू युद्धबंदियों को मलमूत्र एवं सफाई के कार्यों में बलपूर्वक लगा दिया जाता था। उन्हें इसलाम या अपमान—दो में से एक चुनना होता था। इसमें से मुक्ति पाने के लिए स्वाभिमानी हिंदुओं ने मल-मूत्र ढोना एवं सफाई-कर्म यानी अपमान को स्वीकार किया पर इसलाम को अस्वीकार कर दिया।

---

1. आगरा के लालकिले में अवस्थित एक शिला पर उत्खनित अभिलेख।

इसलाम को ठोकर मारकर अपने हिंदुत्व की रक्षा करनेवाले वे ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वंश के लोग बहुत अधिक दिनों तक अपवित्र कार्यों को करते रहने के कारण पवित्रता के परिप्रेक्ष्य में अपनों में अस्पृश्य यानी अछूत बन गए और हिंदू समाज में ही उनका जीवन अभिशाप बन गया। धर्म रक्षार्थ विदेशी आक्रांता शासकों के अत्याचार, उत्पीड़न, आर्थिक शोषण इत्यादि के परिणामस्वरूप उनका हर प्रकार से दलन हुआ और वे दलित के रूप में आज चिह्नित किए गए। इसी प्रकार कालांतर में विदेशी मुसलिम शासकों ने अनेक उच्च श्रेणी की स्वाभिमानी जातियों से भी ऐसे अपवित्र कार्यों को कराया और उनकी सामाजिक प्रस्थिति को निम्न स्तर का बना डाला, जिसके परिणामस्वरूप बारहवीं सदी के बाद हिंदू समाज में भारी संख्या में दलित जातियों की उत्पत्ति हो गई।

हिंदू संस्कृति में कभी मैला ढोने का कार्य मध्ययुग से पूर्व नहीं हुआ था। यहाँ की दो तिहाई आबादी गाँवों में रहती थी, जो शौच आदि के लिए गाँव से बाहर दूर खेतों में जाया करती थी और उधर ही नदी, तालाब आदि के जल से स्वच्छ होकर घर आती थी। आज भी गाँवों में अधिकांश रूप में यही स्थिति है। सरकारी सहायता से अथवा अपने प्रयास से गाँवों में भी अब महिलाओं, बच्चों और रोगी लोगों के लिए गृह-शौचालय होने पर भी बहुत से लोग आज भी घरों से दूर स्थित खेतों में ही जाना पसंद करते हैं।

नगरों में जिस समय मध्ययुग में शौचालयों का प्रबंध किया गया उस समय कोई सीवर आदि की व्यवस्था नहीं थी, बल्कि शौच के लिए पात्र रख दिया जाता था। सुबह-शाम सफाईकर्मी उसे साफ करते और मल को सिर पर रखकर दूर जाकर फेंका करते थे। मनुष्य का सिर (मस्तक) ब्रह्म-क्षेत्र माना जाता है। जाने-अनजाने पश्चिमी देशों में एवं उन्हें सार्वजनिक जीवन में प्रचलित सिर को ढककर रखना एवं टोपी इत्यादि का प्रयोग उसी ब्रह्म क्षेत्र का सम्मान है। हिंदुस्थान में भी पगड़ी प्रथा उसी की द्योतक है। किंतु मध्यकाल में विदेशी आक्रांता मुसलिम शासकों ने सिर पर मैला ढोने की प्रथा प्रारंभ करके उस परम ब्रह्म का अपमान किया। कालांतर में अंग्रेजों ने भी इसे चलते रहने दिया। उस पर मल-मूत्र रखकर बाहर ले जाने के लिए किसी को भी बाध्य करना यानी सिर पर मैला ढोना ब्रह्म का अपमान करना होता है। ऐसे लोगों को दैवयोग से ही दंड का प्रावधान होता है। सल्तनत, मुगल, अंग्रेज—ये सभी उसी ब्रह्म-दंड से समाप्त हो गए। यदि यह प्रथा तत्काल समाप्त नहीं होगी, तो धीरे-धीरे इस प्रथा का समर्थक समाज भी समाप्त हो जाएगा।

मानव-मल-मूत्र को वैज्ञानिक विधि से अथवा किसी भी तरह से साफ करना सर्वप्रथम विदेशों में ही प्रचलित हुआ। जैसे चोरी और लूट तथा मार-काट और शोषण की शिक्षा विदेशों की देन है, उसी प्रकार से गृह-शौचालय का निर्माण भी इसलाम एवं ईसाई संस्कृति की देन है। हिंदू संस्कृति में बच्चों का मलमूत्र साफ करना वात्सल्य-जीवन का एक ममतामय अंग था। पुरुष-स्त्रियाँ घर में कभी गंदगी नहीं करते थे।

दूसरी ओर शासक वर्ग किसी से कुछ भी सेवाएँ ले सकता था, अतएव युद्धबंदियों से यह कार्य बलपूर्वक लिया गया और जब ऐसी व्यवस्था मुगलों ने बना दी, तो समय के साथ-साथ उसका लाभ अंग्रेजों ने भी उठाया। अंग्रेजों ने तो उन सफाईकर्मियों को ईसाई बनने पर और भी अधिक सुविधाएँ देने का वादा किया था, किंतु तथाकथित सफाईकर्मी हिंदू समाज ने लुभावनी वस्तुएँ लेना अस्वीकार कर दिया और आज तक हिंदू धर्म में रहकर सफाई-कार्य में लगे हुए हैं। वैसे वह भी यह अच्छी तरह से जानते हैं कि यह व्यवस्था मुसलिम और ईसाई संस्कृतियों की ही देन है।

अत: संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदू धर्म का प्राचीन स्वरूप आज तक विद्यमान है। हिंदू संस्कृति, हिंदू तत्त्व (जीवन-यापन की 10 विधियाँ), और वैदिक व्यवस्था का प्राचीन स्वरूप आज भी पल्लवित-पुष्पित-फलित है। हिंदू धर्म में वंश, वर्ण, गोत्र की जो व्यवस्था हमारे पूर्वजों ने स्थापित की थी, वह आज भी समाज में प्रचलित है। मध्यकाल में विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के द्वारा बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन, लूटपाट आदि के कारण जो अव्यवस्था उत्पन्न हुई, उसका प्रभाव सभी जातियों पर पड़ा है। उनसे टकरानेवाली सभी जातियों का मानमर्दन किया गया और उनकी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक आदि परिस्थितियों को निम्न एवं अपवित्र बनाकर आज के युग में उनको दलित की स्थिति में पहुँचा दिया है।

इसलामिक उत्पीड़न के शिकार ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जाति के लोग जो वर्तमान में सफाई-कर्म में लगकर वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी, रुखी इत्यादि जातियों की नई पहचान में देखे जाते हैं, अपने गौरवशाली अतीत की तुलना जब अंधकारमय भविष्य से करते हैं, तो उनकी आँखों से रक्त टपकने लगता है। वे ब्राह्मण एवं क्षत्रिय अनेकों की संख्या में थे इसलिए वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जातियों की वंश, जाति एवं गोत्र भी बहुत अधिक संख्याओं (623 उपजातियों) में प्राप्त होता है। फिर भी यह गर्व की बात है कि इस जाति ने हिंदू संस्कृति का पूर्णरूपेण संवहन किया और उससे अलग नहीं हुई। सफाईकर्मियों की जाति-विभिन्नता में ढूँढा गया तो उसमें राजपूत, क्षत्रिय और मराठे जाति के लोग भी प्राप्त होते हैं, जिनसे बलपूर्वक मैला ढोने का कार्य मुगलों ने लिया अन्यथा इस देश में यह प्रथा प्राचीनकाल में कभी न थी, बल्कि यह ईसाई और इसलाम की संस्कृति में ही देखी जाती थी। इसे देश पर थोपा गया। अब तो इस प्रथा के कारण हिंदू समाज भी आध्यात्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक पतन के कगार पर है। सिर पर मैला ढोने की प्रथा अविलंब समाप्त होनी चाहिए। वैसे भी संवैधानिक रूप में इसे समाप्त घोषित किया जा चुका है। यदि ऐसा कहीं होता है या समाज द्वारा कराया जा रहा है, तो वह सामाजिक, धार्मिक एवं संवैधानिक रूप से यानी हर प्रकार से दंडनीय एवं अमानवीय है।

□

अध्याय-2

विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के शासन में भयानक हिंदू उत्पीड़न

अत्यधिक भला होना भी बुरा होता है—कदाचित् खतरनाक भी। सहृदयता कभी-कभी दुर्बलता को प्रकट करने लगती है, जिसका शोषण भी हो सकता है। ऐसे ही स्वामिभक्ति भी कभी-कभी स्वामिभक्तों के लिए हानिप्रद नहीं होती। हिंदुस्तान भी अत्याधिक भला,[1] अत्याधिक सहृदय[2] और अधिकाधिक स्वामिभक्त[3] बनने में दास हो गया। इस देश की समृद्धि लूटने के लिए हजारों हजार आक्रमण हुए। यह देश निरंतर अपने बचाव में लगा रहा। एक बार भी यदि यह देश अपने किसी भी आक्रामक को उसके घर में घुसकर धूल चटा देता तो उस पर आँख उठाकर देखने का किसी को साहस नहीं हुआ होता। चूँकि ऐसा नहीं हुआ, इसलिए इस पर अनवरत आक्रमण होते रहे।

हिंदुस्थान पर लगभग दो हजार साल से भी अधिक समय से लगातार विदेशी आक्रमण होते रहे। प्रारंभ काल के आक्रमणों का उद्देश्य इस देश की समृद्धि को लूटना था, किंतु बाद के आक्रमणों में यहाँ शासन करने की कुत्सित मानसिकता का भी पुट था। यह मानसिकता मुख्य रूप से अरब में इसलाम के उदय और उसके विश्वव्यापी प्रचार के बहाने संसार की समृद्धि को लूटने के अभियान से उत्पन्न हुई थी। इसके पूर्व के आक्रमणों की दिशा में न तो नर-संहार था, न ही धर्मांधता और न ही लूट-पाट की भावना थी।

---

1. भगवानदास (संपादक) : दस स्पोक अंबेडकर, वॉल्यूम-2, पृ. 105-106
2. राइटिंग्स एंड स्पीचेज, वॉल्यूम-8, पृ. 268-269
3. वही, पृ. 274-275

ईस्वी संवत् प्रारंभ के कुछ पूर्व ही भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिमी द्वारों के पार कई प्रदेश शक-कुषाणों के हाथ में आ चुके थे। कपिश (काबुल) अथवा कामिश (काबुलिस्तान) तक उनका राज्य था।[1] काबुल एवं पंजाब के शाही भी उन्हीं षाहानुषाहियों (शक कुषाणों) के वंशज थे, जिन्होंने भारत में प्रवेश करने के पूर्व ही अथवा उसके साथ-साथ वर्णाश्रम, हिंदू धर्म अथवा बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। सातवीं शताब्दी में सिंध के उत्तर और पश्चिम के क्षेत्रों पर अधिकार रखनेवाले ये लोग राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीयता में पूर्णतः रंग चुके थे। उस समय जाबुल और काबुल के प्रारंभिक हिंदू राजाओं को तुर्कीशाही अथवा शाहिय कहा जाता था। कनिष्क उन्हीं शाही राजाओं में था।[2]

विदेशी मुसलिम आक्रांता न तो मिलिंद बन सके और न ही कनिष्क। वे हिंदू धर्म, हिंदू संस्कृति, हिंदू जीवन-पद्धति और संपूर्ण हिंदू मानव समाज के लिए जल्लाद बनकर आए थे। उनके आक्रमणों का एक लंबा इतिहास है। उन्होंने आक्रमण के बहाने यहाँ की समृद्धि को लूटा। स्त्रियों-बच्चों एवं युद्धबंदियों को कत्ल किया। लाखों-लाख हिंदू नर-नारी को दास बना अरब ले जाकर उनको बगदाद की गलियों एवं सड़कों पर कौड़ियों के मोल बेच दिया। हिंदुओं ने संघर्ष तो किया परंतु शासन और सत्ता से टकराने के उपरांत उन्हें पराजय का सामना करना पड़ा। उनको इसलाम न स्वीकारने पर बहुविधिं उत्पीड़ित किया गया। इसके लिए हिंदुओं ने कड़ा विरोध किया और मुँहतोड़ उत्तर भी देने का प्रयास किया।

डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने कहा कि भारत की प्रत्येक जाति स्वाभिमानी और योद्धा थी। केवल अस्त्र-शस्त्र क्षत्रिय और सैनिकों के पास होते थे। निहत्था होने से ही साधारण जनता युद्धबंदी बना ली जाती थी, यदि प्रत्येक के पास अस्त्र होते थे तो युद्ध कभी भी हारा नहीं जा सकता था।[3] फिर भी निहत्थे होकर जितना संघर्ष इस देश की हिंदू जातियों ने किया, वह पूरे विश्व के लिए एक उदाहरण है।

यह भी गर्व की बात है कि जिस समय हिंदू धर्म को मटियामेट कर देने के लिए विदेशी इसलामी ताकत लगी हुई थी, उस समय भी धर्मरक्षक ब्राह्मणों ने अपना धर्म-कर्म जारी रखा। वे निरंतर धर्मपरायण बने रहे। धर्म-रक्षा के लिए वे अगली पंक्ति में होते थे। गरदन कटने की उनको चिंता न थी। यही कारण है कि मृत्युदंड के स्थान पर उन्हें मल-मूत्र साफ करने का काम मिला, पर ब्राह्मण और स्वाभिमानी क्षत्रिय राजवंशीय

1. बील, जिल्द-4 (सुशील गुप्त प्रकाशन), पृ. 568 एवं वाटर्स, जिल्द-2, पृ. 264
2. सचाऊ, जिल्द-2, पृ. 10-12
3. लाइफ एंड मिशन, पृ. 502

राजपूत अपने प्राणों से भी प्रिय धर्म यानी हिंदू धर्म पर अडिग रहे और इसलाम को ठुकरा दिया।

अपने उक्त दोनों ही पूर्वजों के प्रति आज का वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी, रुखी इत्यादि समाज अपनी श्रद्धा अर्पित करता है। इस जाति के लोगों को गर्व है कि उनमें अपने पूर्वजों की गुणवत्ता आज भी विद्यमान है और वे आज भी धर्मपरायण हैं, धर्मरक्षा के अग्रणी दूत हैं और हिंदू धर्म की रक्षा में उन्होंने अपने स्व का बलिदान कर दिया है।

प्रस्तुत अध्याय में उपरोक्त प्रमाणित तथ्यों पर विस्तार से विचार व्यक्त किया गया है।

2.1 विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के आक्रमण का इतिहास

हिंदुस्थान में मौर्यों और गुप्तों का राजनीतिक स्वरूप जब तक अखिल भारतीय था, यह देश एकसूत्र में आबद्ध था। पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उत्तर-पश्चिमी भागों पर हूणों के आक्रमण से गुप्त साम्राज्य का ह्रास हुआ। छठीं शताब्दी में उत्तर भारत में केंद्रीय सत्ता का लोप हो गया और देश राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं तथा सैनिक साहसिकों एवं विदेशी आक्रांता लुटेरों का उन्मुक्त चरागाह बन गया और दक्षिण भारत की भी यही अवस्था थी।

सातवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में हर्षवर्धन ने विघटक तत्त्वों को कुछ समय तक दबाए रखने में सफलता अर्जित की थी, परंतु 648 ई. में हर्ष के निधनोपरांत 150 वर्षों तक हिंदू राजाओं का आपसी संघर्ष चलता रहा। देश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया था और राजागण एक-दूसरे को समाप्त करने में ही लगे थे। इतना ही नहीं, वे आपस में लड़कर अपनी शक्ति खो चुके थे। शत्रुओं की संख्या भी उन्होंने काफी बढ़ा ली थी, जो विदेशी आक्रमण के समय विश्वासघाती हो जाते थे।

विदेशी मुसलिम आक्रांताओं ने देश की इस कमजोर स्थिति का लाभ उठाने हेतु इस देश पर 636 ई. में आक्रमण कर दिया। यहाँ यह उल्लेख कर देना उचित है कि इसलाम स्वीकारने के पूर्वकाल तक विदेशी अरबी लुटेरे हिंदुस्थान के पश्चिमी तटों पर स्वर्ग-सुख के समानवाली हिंदू की रोटी[1] पाने के लिए दीनहीन बने हुए थे। परंतु सीरिया, फिलिस्तीन, मिस्र, अफ्रीका का उत्तरी भाग, स्पेन और फारस आदि देशों पर इसलामिक शासन स्थापित करते हुए नृशंस अरबी शैतानों ने जब इसलाम की सीमाएँ

---

1. अरबवासियों के लिए रोटी ऐश्वर्य की वस्तु थी—प्रो. अशोक श्रीवास्तव : दिल्ली सल्तनत का उत्थान एवं पतन, पूर्वांचल प्रकाशन, गोरखपुर, पृ. 2

विस्के की खाड़ी से लेकर सिंधु नदी और चीन के सीमावर्ती क्षेत्रों तक एवं अरब सागर तथा नील नदी के उत्तरी झरने तक फैला लिया[1] तो हिंदुस्थान के पश्चिमी तटों के अरबी शरणार्थी भारत के उपकारों को भूल गए और आस्तीन का साँप बनकर वे इस देश को डँसने हेतु खड़े हो गए। यहीं से उनके आक्रमणों का क्रम आरंभ होता है।

पैगंबर मुहम्मद (570-632ई.) और उनके उत्तराधिकारी अबूबक्र (632-634ई.) की मृत्यु के बाद जब हजरत उमर (634-644 ई.) खलीफा बने, उस समय (636 ई. में) पहली बार अरबी फौजों ने समुद्री मार्ग से अपने सेनापति मुधिरातदेवल के नेतृत्व में हिंदुस्थान के पश्चिमी तीन प्रमुख नगरों (बंबई के निकट थाना तथा वर्तमान पाकिस्तान स्थित भड़ौच एवं देवल) पर एक साथ आक्रमण कर दिया। वे पश्चिमी तट पर रहकर हिंदुस्थान के साथ व्यापारिक संबंधों के सापेक्ष रोटी प्राप्त करते थे। अतएव पश्चिम का अनुभव उनको था और उन्होंने उसी का लाभ उठाते हुए अपना पहला आक्रमण किया था। युद्ध में अरब सेनापति मुधिरातदेवल मारा गया और अरबी मुसलिम आक्रांता जान बचाकर भाग निकले थे। सेनापति पहले देवल का हिंदू सैनिक था। उसने लालच में इसलाम स्वीकार करके आक्रमण का नेतृत्व किया। परंतु मारा गया। इस पराजय के बाद कई सौ वर्षों तक अरबी सैनिक हिंदुस्थान पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सके थे।[2]

तदुपरांत अरबों ने स्थल मार्ग से आक्रमण किया और मुख्यत: पास में पड़नेवाले पश्चिमी भारत के राज्यों को ही पहले अपना निशाना बनाया। खलीफा उमर के ही समय में सेनापति अब्दुल्ला के नेतृत्व में 643-644 ई. में अरबों ने स्थल मार्ग से किरमान, सिसनान और मेकरान आदि को जीतने के बाद सिंध पर आक्रमण की इच्छा व्यक्त की, परंतु पूर्वकाल के अनुभवों से भयभीत खलीफा उमर ने अनुमति नहीं दी और अब्दुल्ला वापस चला गया।

खलीफा उस्मान (644-656) के समय सौदागरों एवं गुप्तचरों द्वारा हिंदू सैनिकों ने उसे कैकान में ही पराजित करके वापस भेज दिया। तदुपरांत वर्षों तक और बार-बार अरबी फौजें मेकरान और कैकान के मार्ग से भारत में प्रवेश करने का प्रयत्न करती रहीं, किंतु 8वीं शताब्दी के प्रथम दशक तक लगभग 75 वर्षों तक उसे भारत में सुई के अग्रभाग के बराबर भी भूमि पाँव रखने को न मिली।

खलीफा मुआवियाह (667-680 ई.) के समय अरबों ने काबुल के सिजिस्तान

---

1. हिट्टी, फिलिप के. : ए शाट हिस्ट्री ऑफ दी अरब्स (हिंदी अनुवाद—अरब का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 9)।
2. बिलाधुरी (किताब-फुतूहुल-बुलदान), हिती और मुरगाटेन का अंग्रेजी अनुवाद, जिल्द-2, पृ. 210।

और जाबुलिस्तान पर आक्रमण किया था।[1] उसमें उन्होंने बुरी तरह हानि उठाई थी। दमिश्क के खलीफा वालिद प्रथम (705–715) के समय में इराक का प्रांतपति अलहज्जाज था। इस पद पर उसकी नियुक्ति खलीफा मलिक (685–705 ई.) के समय (695 ई.) में हो चुकी थी। उसने नए खलीफा वालिद प्रथम से भारत पर आक्रमण हेतु अनुमति माँगी। इसका एक कारण उसने ढूँढ़ रखा था। कहते हैं कि एक बार दमिश्क के खलीफा प्रथम वलीद और उसके इकारी प्रांतपति हज्जाज की अय्यासी के लिए सिंहल के राजा द्वारा बलपूर्वक एक जहाज में भरकर सिंहल देश की सैकड़ों नवयुवतियों को अरब भेजा जा रहा था। देवल के पास हिंदू लोगों से उन युवतियों ने रक्षा के लिए आर्तनाद किया। इस पर हिंदुओं ने उनका उद्धार किया था। इसी को हज्जाज ने बहाना बनाकर और खलीफा की अनुमति लेकर सिंध पर चढ़ाई की। उस समय वहाँ का राजा दाहिर था।

दाहिर एक कट्टर हिंदू ब्राह्मण था। वह जिस वंश-परंपरा का था उस वंश ने सैंधव सभ्यता के प्रतीक सिंधु-सौर्वी[2] पर 137 वर्षों तक राज किया था। उन बहादुर हिंदू राजाओं में राय दीवाजी, राय सिंहरस और राय साहसी का नाम सम्मान से लिया जाता है। राय साहसी के चच नामक ब्राह्मण मंत्री ने राय साहसी की मृत्यु के बाद उसकी विधवा से विवाह किया और राज्य सँभाला। दाहिर इसी चच का पुत्र था।

दाहिर ने अलहज्जाज का कड़ा प्रतिरोध किया। उसने हज्जा के दो सेनापतियों औबेदुल्लाह और बुदैल इब्नु तहफा को बारी-बारी से मार दिया।[3] अंत में मुहम्मद बिन कासिम (711 ई.) भेजा गया। हिंदू सैनिक अभी तक अपनी बराबरीवालों से युद्ध करते आए थे, इसलिए उस 17 वर्षीय बालक को देखकर उसे मार देने से विरत रहे। इसका परिणाम गंभीर हुआ। वह बालक मुहम्मद बिन कासिम अपने साथ 50 हजार सैनिकों को लाया था और उसकी तुलना में दाहिर के पास बहुत कम सैनिक थे। दूसरी बात यह थी कि इस आक्रमण के समय वह देवल से 150 मील दूर अपनी राजधानी आलोर में पड़ा था।

दाहिर ने यह सोचकर भूल की थी कि पिछले दो युद्धों में उसने अलहज्जाज के दोनों सेनापतियों को मार दिया था, तो तीसरा 17 वर्ष का सेनापति उसका क्या बिगाड़ लेगा? अतएव वह निश्चिंत पड़ा रहा। उसके सैनिक भी लगातार दो युद्ध लड़कर थक चुके थे और विश्राम चाहते थे। दाहिर ने इस तीसरे त्वरित और अप्रत्याशित आक्रमण के मुकाबले के लिए नए सैनिकों की भरती भी नहीं की थी। उसे अपनी जिस अरबी सेना

1. बिलाधुरी (किताब-फुतूहुल-बुलदान) हिती और मुरगाटेन का अंग्रेजी अनुवाद, जिल्द-2, पृ. 143।
2. कनिंघम : एंशिएट ज्योग्रैफी इंडिया, पृ. 285, 690 एवं वाटर्स, जिल्द-2, पृ. 252, 254
3. बिलाधुरी (किताब-फुतूहुल) बुलदान, हिती और मुरगाटेन का अंग्रेजी अनुवाद, जिल्द-2, पृ. 216)

की टुकड़ी पर भरोसा था, वे सैनिक भी शत्रु-पक्ष में चले गए। पड़ोसी हिंदू राजाओं यहाँ तक कि उत्तर भारत के शक्तिशाली प्रतिहारों को भी दाहिर के पराजित होने की इच्छा थी। फिर भी देवल में मुहम्मद-बिन-कासिम को सफलता नहीं मिल रही थी। उस समय देवल मंदिर पर लहराती पताका को देवलवासी भगवान् का आशीर्वाद मानकर जी जान से जूझ रहे थे। दुश्मन के पाँव उखड़ने ही वाले थे कि किसी बौद्ध ने शत्रु को बताया कि जब तक पताका फहराती रहेगी, देवल जीतना कठिन होगा। बस क्या था, दुश्मनों ने पताका को गिरा दिया। इष्ट के कोप और अनिष्ट होना तय समझ देवलवासी शस्त्र रख दिए। जीती हुई लड़ाई को इस एक अंधविश्वास ने हरा दिया और इस प्रकार भारत ने दासता की ओर प्रथम पग बढ़ाया।

देवल के बाद अन्य राज्यों को जीतता हुआ मुहम्मद बिन कासिम सिंध के राजा दाहिर की ओर बढ़ा। उसे आदेश था कि दाहिर की कन्याओं को वह खलीफा के भोग-विलास के लिए भेजेगा। गजनी के खलीफा को गुप्तचरों द्वारा यह सूचना दी गई थी कि दाहिर को मारकर उसकी पत्नी और कन्याओं को मुहम्मद बिन कासिम ने स्वयं अपवित्र कर दिया है। इस पर मुल्तान के विजेता मुहम्मद-बिन-कासिम को वापस बुलाकर कैद कर लिया गया। उसे मेसोपोटामिया भेजा गया। कहते हैं कि बैल की खाल में उसे बंद करके मार दिया गया। 715-16 ई. में वह मार डाला गया।[1] उधर दाहिर के पुत्र जयसिंह ने बाद में अपना राज्य जीतकर अरबों की सत्ता को पुनः सीमित कर दिया।[2]

खलीफा हिशाम (724-16 ई.) के समय सिंध के प्रांतपति जुनेद ने राज्य-विस्तार किया, किंतु चालुक्य-प्रतिहार शक्ति ने उसे हराकर वापस भेज दिया।[3] कश्मीर-काँगड़ा की ओर से ललितादित्य ने भी मार भगाया और वे एक झील के किनारे अलमहफूज नगर बसाकर उसमें उसने निर्वाह किया।[4]

अब्बासी खलीफा अल्मन्सूर (745-775 ई.) के समय एक बार पुनः अरबों ने सिंध में फैलने का असफल प्रयास किया था, किंतु तीन सौ वर्षों के अथक प्रयास के बाद भी वे मंसूरा और मुल्तान की दो छोटी रियासतों तक सीमित रह गए थे।[5] अब्बासी खलीफा मंसूर (754-775 ई.) के समय जाबुल के हिंदू राजा पर इसलिए आक्रमण किया था कि उसने 714 ई. से ही ईरान के गवर्नर हज्जाज को 9 लाख दिरहम की वस्तुएँ

---

1. चचनामा; समीक्षार्थ ग्रंथ—मजूमदार, रमेशचंद्र : दि क्लासिकेल एज, पृ. 172
2. इलियट एंड डाउसन, जिल्द-2, पृ. 209, एवं पृ. 438
3. बंबई गजेटियर, जिल्द-1, पृ. 109, भाग-2, पृ. 187-88, 310, एनल्स ऑफ भंडारकर ओ. इंस्टीच्यूट, जिल्द-10, पृ. 31, एवं एइ. जिल्द-18, पृ. 102-107 एवं जिल्द-23, पृ. 151 (पादटिप्पणी-7)
4. बॉम्बे गजेटियर्स, भाग-2, पृ. 228-229
5. पाठक, विशुद्धानंद (पूर्वोद्धत), पृ. 211

भेंट में देना बंद कर दिया था। राजा ने नकद देना अस्वीकार किया था, परंतु उतने मूल्य की वस्तुएँ देने को तैयार था। जब हज्जाज ने नकद की माँग पर दबाव बनाया तो हिंदू राजा ने वस्तुएँ देना भी बंद कर दिया। इस पर क्रुद्ध खलीफा ने स्वयं उस पर आक्रमण किया, परंतु बुरी तरह पराजित हुआ। इस तरह 7वीं शताब्दी के मध्य से 9वीं शताब्दी के मध्य तक लगभग 200 वर्षों के बीच अरबों को काबुल और जाबुल पर अधिकार करने के लिए सफलता नहीं मिली।[1] किंतु वहाँ एक विशेष घटना यह हुई कि मुसलमान बनाए गए लोग पुनः हिंदू बन गए।

सफ्फारी वंश के संस्थापक याकूब-बिन-लय्थ ने 870 ई. में जाबुल पर अप्रत्याशित रूप से आक्रमण करके उसे जीत लिया और सभी हिंदुओं को बलपूर्वक फिर से मुसलमान बनाया।

काबुल के हिंदू शासक जयपाल के समय गजनी के तुर्की मुसलमानों ने भारत की सीमाओं पर पुनः आक्रमण आरंभ किया। अल्पतगीन (933-963 ई.) ने मुल्तान और लमगान पर धावा बोलकर लूटपाट एवं आतंक का वातावरण बनाया। उस समय शाही हिंदू राजाओं ने एक मोर्चा बनाकर 973 ई. में गजनी को जीतने का उपक्रम किया, किंतु मोर्चा (संगठन) टूट जाने से प्रयास असफल रहा।

नवीं शताब्दी में गुर्जर, प्रतिहारों ने केंद्रीयकरण का प्रयास किया परंतु वे भी केवल उत्तरापथ तक ही सीमित रह गए थे। महमूद गजनवी के आक्रमण से समय प्रतिहारों के शत्रु राजा (चंदेल आदि) ने सहयोग नहीं किया, जिसका परिणाम था प्रतिहारों का पतन।

उपरोक्त के अतिरिक्त त्रिपुरी अथवा दाहल के कलचुरी, मेवाड़ के गुहिल राजपूत, नाडौल तथा जालौर के चाहमान राजपूत, असम और कामरूप के हिंदू शासक आदि ने भी विदेशी आक्रांताओं को मुँहतोड़ उत्तर दिया था। दुःख का विषय यह था कि वे हिंदू राजा आपस में भी अधिक लड़कर अपनी शक्ति विनष्ट कर डाले थे और विदेशी आक्रांताओं के आक्रमणों का सामना हिंदू होने के नाम पर एकजुट होकर नहीं करते थे, यही कारण था कि वे बारी-बारी से सत्ताच्युत होते गए और भयंकर युद्ध करने के बाद अंततः पराजित होते रहे।

मुल्तान में अरबों की स्थिति पर्याप्त मजबूत थी, परंतु वे वहाँ भी अपने को असुरक्षित महसूस कर रहे थे। प्रतिहारों द्वारा उन्हें समाप्त करने का जब भी प्रयास हुआ, अरबों ने मुल्तान स्थित सूर्य मंदिर को नष्ट कर देने की धमकी देकर धार्मिक राजनीति करके प्रतिहारों के आक्रमण से अपने को बचा रखा था।[2] वहाँ रहकर उन्होंने गरीब और

1. बिलाचुरी (किताब फुतूहल बुलदान) हित्ती और मुरगाटोन का अंग्रेज अनुवाद, भाग-2, पृ. 145-155
2. इलियट एंड डाएसन, जिल्द-1, पृ. 23

पिछड़े वर्ग के हिंदुओं को लालच और भय दिखाकर मुसलमान बनाया और अपना पक्ष मजबूत किया।

अरबवासियों ने मुल्तान में रहकर भारतीय भू-भागों से संपर्क एवं संबंध बनाए रखा था। गरीब, उपेक्षित, बहिष्कृत हिंदुओं एवं बौद्धों को लालच देकर मुसलमान बनाया और बहादुर हिंदुओं को उच्च पद दिया, सिद्धांत ज्योतिष एवं गणितशास्त्र की बहुत सी बातें भारतीयों से सीखीं। बगदाद के अबू मशर ने बनारस आकर सिद्धांत ज्योतिष सीखा था। हिंदुओं का अपनत्व पाने के लिए अरबवालों ने हिंदू संस्कृति में जीवन-यापन करना भी सीखा था।[1]

देवल, मुल्तान, सिंध आदि नगरों पर अरबों का शासन चलने लगा। हिंदुओं के साथ उत्पीड़न की कारवाहियाँ की जाने लगीं। तदुपरांत एक नई तुर्क शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। अब्बासी खलीफाओं का अंत हुआ। तुर्क इस्माइल ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र अहमद और अहमद का एक दास अल्पतगीन तथा उसका पुत्र इब्राहीम शासक बने।

पिरस्तगीन के स्थान पर अल्पतिगीन का दामाद सुबुक्तगीन 20 अप्रैल, 977 को गजनी का शासक हुआ। भारत पर उसका कुछ क्षेत्रों पर अधिकार रहा। परंतु हिंदुस्थान में स्थायी शासन की बुनियाद अभी तक नहीं पड़ सकी थी। उसने फूट डालकर शाहियों से शेख हमीद लोदी को अलग कर लिया। युद्ध के समय भारी हिमवर्षा से जयपाल विवश हो गया और उसे संधि करनी पड़ी। अपने संधिपत्र में उसने यह लिखा था—

'तुमने भारतीयों (हिंदुओं) के इस उत्तम चरित्र को सुना और जाना है कि किस प्रकार अत्यंत घोर स्थिति में भी वे विनाश एवं मृत्यु से नहीं डरते। अपमानित करनेवालों से यदि बचने का उनके पास कोई उपाय नहीं होता तो वे उनके विरुद्ध तलवार की धार पर चढ़ जाते हैं। अपनी प्रतिष्ठा और यश के लिए हम आग पर मांस की तरह भुन जाने अथवा तलवार पर सूर्य की किरणों की तरह चमकने को तैयार रहते हैं।'[2]

सन् 997 ई. में सुबुक्तगीन की मृत्यु के बाद गजनी का शासक उसका पुत्र महमूद गजनी हुआ। बगदाद के खलीफा-अल-कादिर बिल्लाह ने उसे मान्यता दी। महमूद गजनवी ने देश पर लगातार आक्रमण जारी रखा। हिंदू राजाओं की आपसी कलह से

1. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इसलाम, जिल्द-2, पृ. 257
निकल्सन : लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ दि अरब्स, पृ. 361
निकल्सन : मिस्टिक्स ऑफ इसलाम, 1914, पृ. 16 48, 61, 149
अल्बरूनी : किताबुलहिंद, सखाऊ, जिल्द-1, पृ. 124, 156
2. हबीब-सुल्तान महमूद ऑफ गजनी, पृ. 14 एवं नाजिम : लाइफ एंड टाइम्स ऑफ महमूद ऑफ गजनी, पृ. 29

उसने सदैव लाभ उठाने का प्रयास किया—अनेक असफलताओं में कभी-कभी उसे सफलता भी मिल जाती थी।

सन् 999 ई. में तो जयपाल के पुत्र आनंदपाल ने लाहौर तक को जीत लिया था।[1] काबुल 1000 ई. तक हिंदू अथवा ब्राह्मणशाहियों (गौर बौद्ध) के अधिकार में ही रहा। परंतु 27 नवंबर, 1001 ई. को महमूद गजनवी का जयपाल से युद्ध हुआ। जयपाल को बंदी बनाकर अपमानित किया गया। क्षुब्ध होकर उसने आनंदपाल को राज्य दिया और चिताग्नि में प्रवेश कर गया।[2] भाटियाह के राजा विजयराय (विजयराज) ने भी इसी तरह आत्मदाह किया था।

महमूद ने 1005 ई. में मुल्तान के दाऊद को हराया और 1008 ई. में आनंदपाल पर आक्रमण किया। घक्करों (खोकर) के वार से महमूद के हजारों सैनिक मारे गए। मुसलमानों ने अलकतरे की अग्नि ज्वालाओं को हाथियों पर छोड़ा, जिससे आनंदपाल का हाथी भागा। बस, भ्रमवश आनंदपाल की सेना ने उसे राजा का पलायन मानकर युद्ध बंद कर दिया। इस तरह महमूद गजनवी जीता। उसने 1009 ई. में नगरकोट का मंदिर लूटा और फिर 1011-12 ई. में थानेश्वर का मंदिर लूटा।

सन् 1012 ई. में आनंदपाल की मृत्यु होने पर उसका पुत्र त्रिलोचनपाल राजा बना। महमूद गजनवी ने 1012-1013 ई.[3] में पंजाब के त्रिलोचनपाल पर आक्रमण किया। त्रिलोचनपाल ने कश्मीर के राजा संग्रामराज (1003-1028 ई.) से सहायता माँगी। संग्रामराज ने अपने मंत्री तुंग के नेतृत्व में एक सेना त्रिलोचनपाल की सहायता के लिए भेजी।[4] तुंग मनमाने स्वभाव का था। उसने युद्ध में भाग तो लिया, परंतु त्रिलोचनपाल के सुझावानुसार युद्ध नहीं किया। परिणामस्वरूप वह तो हारा ही, साथ में त्रिलोचनपाल को भी हार का मुँह देखना पड़ा।[5] युद्ध में जीत के बाद भी महमूद की हिम्मत छूट गई थी इसलिए उसने तुंग के विरुद्ध कश्मीर की ओर बढ़ने का साहस नहीं किया।[6] काफी समय बाद 1339 ई. में कश्मीर पर मुसलमानों का अधिकार हो पाया।[7]

सन् 1018-19 ई. में महमूद जब चंदेलों पर चढ़ाई करने चला तो त्रिलोचनपाल

---

1. पाठक, विशुद्धानंद (पूर्वोद्धृत), पृ. 220
2. हबीब (पूर्वोद्धृत), पृ. 22, उत्बी (पूर्वोद्धृत), पृ. 25 एवं फिरिश्ता (पूर्वोद्धृत), पृ. 38
3. हिस्ट्री ऑफ इंडिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, जिल्द-2, पृ. 450-51
4. कल्हण : राजतरंगिणी, सप्तम, 47-60
5. कल्हण : राजतरंगिणी, सप्तम, 64
6. कल्हण : राजतरंगिणी (अंग्रेजी अनुवाद—स्टाइनर), भूमिका, पृ. 108
7. पाठक, विशुद्धानंद (पूर्वोद्धृत), पृ. 205

ने रास्ते में उससे भयानक युद्ध किया और चंदेलों से मिल गया।[1] परंतु किसी शत्रु हिंदू ने उसकी हत्या कर दी। त्रिलोचनपाल 1021 ई. तक जीवित रहा और महमूद से बराबर लड़ता रहा। उसके बाद उसका पुत्र भीम 1026 ई. तक राज्य करता रहा।

चंदेल शासक गंड का पुत्र विद्याधर (1018-1029 ई.) महमूद गजनवी द्वारा मचाए बवंडरों को चीरने में लग गया। उसने कन्नौज के प्रतिहारराज राज्यपाल को 1017-18 ई. में महमूद के आक्रमण से भयभीत होकर भागते देखा तो बहुत क्रुद्ध हुआ था। अंत में राज्यपाल को खुद ही मार दिया।[2]

विद्याधर की बढ़ती ख्याति से चिंतित महमूद गजनी ने 1019 ई. में उस पर चढ़ाई हेतु प्रस्थान किया, परंतु रास्ते में उसे त्रिलोचनपाल से युद्ध करना पड़ा। त्रिलोचनपाल पराजित होकर चंदेलों की ओर भागने लगा, किंतु रास्ते में कुछ हिंदुओं ने उसे मार दिया।[3] युद्ध में विद्याधर दिन भर लड़ा। रात में दूसरे स्थान का चयन करने चला गया तो महमूद ने सोचा कि वह भाग गया है, अत: वह भी वापस लौट आया। वस्तुत: वह भी थक चुका था और इसी बहाने से लौटना अपने हित में समझा था, क्योंकि दूसरे स्थान पर यदि युद्ध होता तो महमूद अवश्य हार गया होता। पूरी तैयारी करके उसने 1022 ई. में पुन: विद्याधर पर आक्रमण किया। परंतु पराजय की स्थिति में उसने विद्याधर से मैत्री कर ली। कालंजर में चंदेलों की शक्ति का भेदन न कर सका।[4] 1202 ई. में कुतुबुद्दीन और इल्तुतमिश ने चंदेल सत्ता को समाप्त किया।[5]

गुजरात के चौलुक्य राजा मूलराज के वंश में भीम प्रथम (1021-64 ई.) के समय में ही महमूद गजनवी ने 1025 ई. में उस समय सोमनाथ मंदिर को लूटा था, जब भीम युद्ध की तैयारी में लगा था। आने में विलंब के कारण मंदिर और मूर्ति तोड़कर महमूद भाग चुका था।

अजमेर का चहमान राजवंश सपादलक्ष (जंगलदेश) में स्थापित हुआ। इस वंश के विग्रहराज चतुर्थ ने गजनी और लाहौर के शासक बहरामशाह (1117-1157 ई.) और उसके उत्तराधिकारी खुशरूशाह (1157-64 ई.) को भी लगातार पराजित किया था। उसने मुसलिम राज्यों को भी जीता और 1152 ई. में दिल्ली पर भी अधिकार कर लिया था। परंतु उसे एक ओर हिंदू राजाओं से तो दूसरी ओर गजनी के यामिनी शासकों

---

1. नाजिम (पूर्वोद्धृत), पृ. 94 एवं फिरिश्ता, बिग्स का अंग्रेजी अनुवाद, जिल्द-1, पृ. 63
2. एई.जि. 2, पृ. 237
3. इब्नुल-अतहर, पूर्वोद्धृत, पृ. 116
4. मजूमदार, रमेशचंद्र : एंशिएंट इंडिया, पृ. 351 एवं मुहम्मद इकबाल, राहत-उस-सुदूर, पृ. 103
5. इलियट एंड डाउसन : हिस्ट्री ऑफ इंडिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, जिल्द-2, पृ. 231-232, एवं ब्रिग्स, जिल्द-1, पृ. 197

से निरंतर युद्ध करना पड़ा था।[1]

चाहमान राजवंश के अजयराज (1105–1130 ई.) का भी तुर्कों से संघर्ष होता रहा। एक बार कुछ समय के लिए गजनी के सुल्तान बहराम शाह (1117–1157 ई.) ने चहमान के नागौर पर अधिकार किया था, परंतु मार भगाया गया था। अजमेर नगर इसी अजयराज ने बसाया था। अजयमेरू से अजमेर हुआ।

अजयराज के पुत्र अर्णोराज ने भी तुर्कों को मार भगाया था। तब से लगातार पृथ्वीराज तृतीय के समय तक तुर्कों ने चाहमान राज्य की ओर आँख उठाकर नहीं देखा।

मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय (बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में) उत्तर भारत की राजनैतिक दशा चिंतनीय थी। सन् 1173 ई. में शासक बनने के बाद मुहम्मद गोरी ने 1175 ई. में क्रमशः मुल्तान एवं कच्छ पर अधिकार किया। उसके बाद वह भारत पर आक्रमण के लिए चल पड़ा।

मूलराज द्वितीय (मूलराज के चौलुक्यराज) के शासनकाल में जब राज्य का कार्य उसकी माता (नायकी देवी) देख रही थी, तो मुहम्मद गोरी ने मुईनुद्दीन के नेतृत्व में 1178 ई. में चौलुक्य राज्य पर आक्रमण कर दिया।[2] आबू पर्वत के निकट गदरघाट (काशाद मैदान) पर रक्तरंजित युद्ध हुआ जिसमें मुहम्मद गोरी बुरी तरह घायल हो गया और अपने शेष बचे सैनिकों के साथ भाग गया।[3]

दूसरी बार मुहम्मद गोरी ने सन् 1179 ई. में पेशावर और 1181–82 ई. में लाहौर पर आक्रमण किया। 1182 ई. में ही वह सिंध पर आ पहुँचा और 1186 ई. में पंजाब पर अधिकार करके वहाँ के महमूद गजनवी द्वारा नियुक्त प्रशासक को मार भगाया।

गोरी ने पृथ्वीराज पर कई आक्रमण किए और बराबर हारता रहा।[4] 1191 ई. तराइन का प्रथम युद्ध हुआ। गोरी पराजित होकर भागा। भूल यह हुई कि उसका पीछा करके उसका अंत नहीं किया गया, अतएव 1192 ई. में वह पुनः आ पहुँचा। सूर्योदय के पूर्व ही आक्रमण करके उसने युद्ध जीत लिया। पृथ्वीराज को बंदी बना लिया। बाद में मुहम्मद गोरी की हत्या अंधा बना दिए जाने के बाद भी पृथ्वीराज द्वारा तीर मारकर कर दी गई थी। किंतु पृथ्वीराज की पराजय एवं उसकी हत्या के पीछे छिपे उन तथ्यों पर इतिहासकारों की नजर मुसलिम तुष्टिकरण की नीति के पोषण के कारण नहीं जाती है। औलिया सलीम चिश्ती द्वारा युद्ध की पूर्व संध्या पर पृथ्वीराज की ऊँटों की सेना के मध्य में जाकर बैठ जाना, हटाने पर भी न हटना, प्रातः तक सभी ऊँटों का अस्वस्थ

1. श्रीवास्तव, प्रो. अशोक : डिसइंटग्रेशन ऑफ नार्थ इंडियन हिंदू स्टेट्स, खंड-1, पृ. 8
2. रैवर्टी, तबकाते-नासिरी, जिल्द-1, पृ. 449-453
3. इए. जिल्द-1, पृ. 451-452
4. हम्मीर महाकाव्य, तृतीय, 1-49, पुरातन प्रबंध संग्रह, जिल्द-2, पृ. 87 एवं इए. जिल्द-8, पृ. 60

होना, एक भी ऊँट का न उठना तथा पृथ्वीराज का सूर्योदय के पूर्व पराजित हो जाना जैसे अनेको तथ्यों की अनदेखी करके हिंदुस्थान का इतिहास लिखा जाना आश्चर्यजनक है।

कुतुबुद्दीन ने 1194 ई. में जयचंद पर आक्रमण किया। जयचंद की आँख में कुतुबुद्दीन का तीर लगा, वह गिर पड़ा, मारा गया। जयचंद का फतेहपुर के पास स्थित असनी के दुर्ग में रखा हुआ सारा धन लूट लिया। कन्नौज, असन, काशी इत्यादि की लूट का इतना धन था कि देखकर आँखें थक जाती थीं। काशी के 100 मंदिर को तोड़ा गया। कुतुबुद्दीन 1197-98 ई. तक मिर्जापुर-वाराणसी-जौनपुर क्षेत्र पर राज्य करता था।

चौलुक्ययुगीन गुजरात पर 1195 ई. में कुतुबुद्दीन ने आक्रमण किया और बुरी तरह घिर गया। नाहरवाला की सेनाओं ने अजमेर तक पीछा किया, मगर वह नगर में छिप गया। उसने सूचना गजनी भेजी, वहाँ से 1197 ई. में एक विशाल सेना आई। जहाँ एक बार 1178 ई. में गोरी हारा था, वहीं युद्ध हुआ। गोरी विजयी रहा। भीम ने पुनः वह जीता और 1201 ई. तक शासन किया। तुर्कों को उसके 100 वर्षों तक गुजरात पर आक्रमण का साहस नहीं हुआ।

भारतीय इतिहास में मुहम्मद-इब्न बख्तियार खिलजी ने मगध और उत्तरी बंगाल हस्तगत करके 1202 ई. में सेनवंशी राजा लक्ष्मणसेन (राय लखमनिया) की राजधानी लखनौती पर आक्रमण किया। उसे जीतकर उसने दक्षिण-पूर्वी बंगाल पर भी अधिकार कर लिया। 1205 ई. में वह तिब्बत और तुर्किस्तान अथवा चीन की विजय के लिए चल पड़ा और कामरूप पहुँचा। वहाँ के राजा ने उसे वापस लौटने की सलाह दी, परंतु वह न माना। अंत में वहाँ के लोगों ने उसे घेरकर मारना आरंभ किया। लोगों ने जंगलों, खेतों में स्वयं आग लगा दी ताकि खिलजी के सैनिकों और घोड़ों को कुछ भी खाने को न रहे। जिस पुल से बख्तियार आया था वह तोड़ दिया गया, ताकि उसे पीछे भागने का भी रास्ता न रह जाए। वे नदी में कूद पड़े। खिलजी एक मंदिर में छिपा, पर वहाँ से भी भागना पड़ा। वह भी नदी में कूदा। संयोग से बचकर लखनौती पहुँचा, वहाँ उसके किसी सैनिक ने उसे 1206 ई. में मार डाला।[1]

विदेशी इसलामिक शासन स्थापित होने के बाद भी किसी-न-किसी बहाने से हिंदू राज्यों पर आक्रमण होते रहे। शासन-सत्ता से टकराने का साहस किसी में नहीं था। यही कारण है कि अनवरत और असंख्य आक्रमणों में इसलामिक आक्रांताओं को कभी-कभी तो सफलता मिल ही जाती थी। इसके कई कारण थे—हिंदू केंद्रीय सत्ता का अभाव, छोटे-छोटे राज्यों का आपसी टकराव, लोगों में राजनैतिक चेतना का अभाव, धर्म की बाधा, अंधविश्वास, जातिभेद, ब्राह्मण-बौद्ध संघर्ष, शस्त्रों का अभाव,

---

1. इलियट एंड डाउसन (पूर्वोद्धृत, जिल्द-2, पृ. 215)

हिंदुओं की दयालुताभरी दुर्बलता, अत्यधिक उदार एवं सरल होना, केवल सुरक्षात्मक युद्ध—आक्रांताओं के घर में घुसकर कभी मारे नहीं यानी प्रथम शत्रुओं पर आक्रमण नहीं किया इत्यादि।[1]

2.2 हिंदुस्थान में भयानक लूट-पाट एवं हिंदुओं से संघर्ष

विदेशी मुसलिम आक्रांताओं का मुख्य उद्‌देश्य इसलाम का प्रचार नहीं, अपितु प्रत्येक आक्रमण द्वारा कुछ-न-कुछ लूटकर लाना ही उनका अभिष्ट था। यदि धर्म-प्रचार की बात होती तो जैसे बौद्ध धर्म सत्य और अहिंसा के बल पर अनेक देशों में प्रचारित हुआ और हिंदुस्थान में एक समय वह भी था जब सर्वत्र बौद्ध ही बौद्ध दृष्टिगोचर होते थे। बुद्ध को एक अवतार तक मान लिया गया। उसी प्रकार इसलाम थोपने के बदले यदि शांतिपूर्ण ढंग से लोगों को ले जाया गया होता। ईसाई धर्म आज भी हिंसा में विश्वास नहीं रखता है। परंतु मार-काट की संस्कृति स्वयं इसलाम में भी पैगंबर मुहम्मद साहब ने भी सृजित नहीं की थी। उसने भी अपने रिश्तेदारों, परिवारों और कुछ गरीबों को धन देकर ही इसलाम में परिवर्तित किया था। वस्तुतः इसलाम का स्वरूप बिगाड़ा गया और उसका कारण केवल लूट-पाट ही था। वह लूट भी कई प्रकार की थी। अरब के खलिफाओं के भोग-विलास हेतु स्त्रियाँ लूटी जाती थीं। इसी बात का विस्मय है कि इसलाम धर्म के मुख्य स्तंभ खलीफा तक इसमें पीछे नहीं रहते थे। अलहज्जात ने सिंहल द्वीप से पूरी जहाज भरकर युवतियों को मँगाया था। ब्राह्मण राजा दाहिर की पत्नी और कन्याओं को भी खलीफा ने अपने लिए मँगाया था, परंतु हिंदू बालाओं ने अपने अस्तित्व की रक्षा इस तरह की कि अपने पितृहंता मुहम्मद-बिन-कासिम को स्वयं खलीफा के हाथों मरवा दिया। इतिहासकार लिखते-लिखते थक गए कि विदेशी इसलामिक आक्रांताओं ने युद्धबंदी हिंदू स्त्रियों और बच्चों को पैसों के लिए अरब, ईरान और बगदाद में कौड़ियों के मोल बेचा था। अपने अस्तित्व एवं सतीत्व रक्षा के लिए हजारों हिंदू नारियों ने जौहर-व्रत किया और आग को आत्मसात् किया। ये घिनौने कलंक इसलाम के नाम पर ऐसे धब्बे हैं, जो कभी पवित्र नहीं किए जा सकते।

विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के कोई भी आक्रमण ऐसे न थे, जिसमें लूट-पाट न की गई हों अथवा अन्न भंडार न लूटे गए। पशुओं को लूटा गया और उनको काटकर खा डाला गया। सेठ-महाजनों की संपदा एवं सारी वस्तुएँ लूट ली गईं। लोगों के वस्त्राभूषण भी लूटे गए। मंदिरों की दैवी संपदा तक लूटी गई। पराजित राजाओं से मुद्राएँ एवं वस्तुएँ बलपूर्वक छीन ली गई। और यह सब लूटपाट केवल अपने सुखोपभोग के लिए किया

---

1. इलियट एंड डाउसन, जिल्द-2, पृ. 215

गया। शासन में आने पर भी विदेशी आक्रांता शासकों द्वारा लगातार किसी-न-किसी पर आक्रमण और लूटपाट होते रहे। सैनिकों को पारिश्रमिक के बदले लूट के माल में हिस्सा दिया जाता था। लूटपाट के संपूर्ण विवरण का उल्लेख किया जाए तो वह स्वयं एक पुस्तक बन सकती है। केवल अरब के खलीफाओं के प्रमाण-पत्र प्राप्त डकैतों एवं लुटेरों में लुटेरा महमूद गजनवी की छिनैती और लूटेरा मुहम्मद गोरी की लूट लोलुपता पर भी ध्यान दें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि जितना धन वे लूटकर अरब में ले गए हैं उसी के ब्याज से उनकी संतानें आज तक समृद्धिशाली देशों में गिनी जा रही हैं। यदि अरब द्वारा हिंदुस्थान के लूट की वापसी करनी हो तो पूरे अरब देश को बंधक रखने पर भी उतनी पूँजी नहीं जुट पाएगी। इतिहास लिखनेवाले ऐसे देशों पर अंतरराष्ट्रीय प्रतिबंध लगाने के लिए कब लिखेंगे, यह एक विचारणीय प्रश्न है। जिस संस्कृति में आज भी विश्व की किसी भी गैर-इसलामिक संस्कृति को फूटी आँख देखने की भावना नहीं है, उसके साथ किसी भी गैर इसलामिक देश की मैत्री क्यों और कैसे हो सकेगी?

अब केवल हिंदुस्थान में उन विदेशी मुसलिम आक्रांताओं की लूट का विवरण देखें—सन् 711 ई. में मुहम्मद-बिन-कासिम के हजारों सैनिकों ने देवल नगर को लगातार तीन दिनों तक लूटा। दाहिर को मारने के बाद अलोर में भी काफी लूटपाट की गई। ब्राह्मणबाद में भी अच्छा धन हाथ लगा। मुल्तान के मंदिरों से तो केवल सोना ही 13,200 मन लूटा था। अन्य संपदा की तो थाह ही नहीं थी।

अल्पतगीन और सुबुक्तगीन ने भी मुल्तान, लमघान, काबुल आदि पर आक्रमण करके वहाँ की विपुल संपदा को लूट लिया था। सुबुक्तगीन ने तो काबुल को कई दिनों तक लूटने के बाद भी जयपाल से 1000000 शाहिदा दिरहम और 50 हाथी तथा अन्य संपदा माँगी थी। इसे कहते हैं—लूटे को भी लूटना। ऐसे जघन्य अपराधियों का यदि इसलाम में स्थान है, तो ऐसा इसलाम शायद मानवता के नाम पर अनुपयोगी एवं कलंक ही होगा।

बेटे बाप से बढ़कर—यह कहावत हकीकत कर दिखाई महमूद गजनवी ने। सैकड़ों आक्रमण, श्रम-शक्ति का अपव्यय और भयानक रक्तपात—कारण केवल एक, धन लूटना था। पिता ने रास्ता दिखा दिया था, अत: वह भी जयपाल पर टूटा। उसके गले का हार तक उतरवा लिया, जिसकी कीमत दो लाख दीनार थी। इतना धन लूटा कि ले जाने के लिए साधन कम पड़ गए। फिर भी 25,000 दीनार, 50 हाथी बतौर हरजाना माँगा। जयपाल ने असमर्थता व्यक्त की तो उसे जला दिया और इतिहासकार लिखते हैं कि जयपाल ने स्वयं ही आत्मदाह कर लिया था।

महमूद ने मुल्तान के दाऊद का 20,000,00 दिरहम लूटा, सुखपाल का 400,000 दिरहम लूटा तथा पूरे नगर को लूटने से प्राप्त धनराशि जिसकी गणना नहीं की जा

सकती थी। जयपाल के पुत्र आनंदपाल को भी लूटा। नगरकोट से तो इतना धन लूटा कि केवल मुख्य-मुख्य वस्तुओं का नाम और उनकी मात्रा सुनकर लोग आश्चर्य में डूब जाते हैं—सोना, चाँदी, हीरा, मोती, बहुमूल्य पत्थर, खजाना, शाही दिरहम 70,000,000 तथा 700,400 मन सोना, चाँदी की ईंटें, 30 गज लंबा और 15 गज चौड़ा एक चाँदी का कक्ष, 40 गज लंबी और 20 गज चौड़ी लीनेन की छतरी जो सोने एवं चाँदी के खंभों पर टिकी हुई थी, बहुमूल्य सिंहासन यानी इतना सामान कि जब उसके सभी वाहन लद गए तो उसने सैनिकों को शेष लूटकर आपस में बाँट लेने को कह दिया।[1]

इतनी लूट के बाद भी विदेशी मुसलिम आक्रांताओं की आत्मा संतुष्ट नहीं हुई। उधर भारत के व्यापारिक केंद्र नारायणपुर को भी लूटा, थानेश्वर के मंदिर की विपुल संपदा भी अपहृत की और नंदना को भी लूटा। सिरसा, वरन, मथुरा, कन्नौज, दोआब, कलिंजर आदि को भी लूटने के बाद उसने सोमनाथ को लूटने का मन बनाया। वहाँ लुटेरे महमूद को 14 सोने के गुंबज और दो सौ मन की एक सोने की सिकड़ी देखकर आश्चर्य हुआ था। अन्य विपुल संपदा तो वह ले जाने में सफल ही रहा। ऐसे विदेशी मुसलिम आक्रांता डकैत को इतिहासकार लिखते हैं कि वह डकैत नहीं, बल्कि इसलाम का प्रचारक था।[2]

इतनी लूटपाट के बाद भी मुहम्मद गोरी के लिए पर्याप्त संपदा बची हुई थी। उसने भी मुल्तान और कच्छ को लूटा। परंतु गुजरात में नाइकी देवी नामक एक वीरांगना के हाथों बुरी तरह मार खाकर भाग निकला। जिस जयचंद के सहयोग से उसने पृथ्वीराज तृतीय को पराजित करके उसकी अपार संपदा को लूट लिया, ठीक उसी तरह एक समय जयचंद को भी वैसे ही लूटा और मार डाला। इतिहास में अनेक उदाहरण मिलेंगे कि किसी हिंदू ने यदि किसी मुसलिम अधिपति को शरण दी तो उसकी रक्षा के लिए उसने खुद को मिटा दिया, परंतु अपने जीते जी उस शरणागत मुसलिम पर आँच नहीं आने दी। परंतु ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता है कि किसी विदेशी मुसलिम शासक ने किसी हिंदू राजा के साथ विश्वासघात न किया हो।

ऐसे लुटेरों से हिंदू वर्ग ने सर्वत्र संघर्ष किया और मर मिट जाने पर ही उनको लूटपाट करने दिया। उस संघर्ष में वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियाँ तो नहीं थीं, क्योंकि न तो इन जाति की उत्पत्ति हुई थी, न ही उसका नाम था, परंतु उसके पूर्व ब्राह्मण और क्षत्रिय के रूप में वे अवश्य थे।

---

1. महाजन, वी.पी. : मध्ययुगीन भारत, एस. चंद कं., दिल्ली, 1995, पृ. 4
2. श्रीवास्तव, अशोक : दिल्ली सल्तनत का उत्थान और पतन, पूर्वांचल प्रकाशन, गोरखपुर, पृ. 2

2.3 हिंदुस्थान में इसलाम की स्थापना एवं हिंदुओं का प्रचंड उत्पीड़न

वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी इत्यादि यानी सफाईकर्मी समाज के लिए सबसे बड़ा अभिशाप था—हिंदुस्थान में इसलाम की स्थापना। न विदेशी इसलामिक आक्रांता यहाँ आते और न हिंदू समाज को इस नवीन जाति-स्वरूप का मैला आवरण शरीर पर विवश होकर डालना पड़ता। मैले और अपवित्र कार्यों के स्थान पर वे अपने पूर्ववंशीय कार्यों (धर्मरक्षा और देशरक्षा) में लगे रह गए होते। परंतु, दुर्भाग्य में अपावन कर्म और सामाजिक निम्न प्रस्थिति थी, इसीलिए इसलाम काली रात्रि बनकर आया था।

इसलाम के संस्थापक पैगंबर मुहम्मद साहब का जन्म 570 ई. में हुआ और उसके 40 वर्षों बाद यानी 610 ई. के लगभग उनको फरिश्ता जिबराईल ने ईश्वर का संदेश दिया कि पैगंबर साहब को अल्लाह ने अपने प्रचार के लिए उत्पन्न किया है।[1] उस समय तक अरब के निवासी हिंदुस्थान के पश्चिमी तट पर हिंदुस्थान की रोटी के याचक थे।[2] अरब में इसलाम का प्रसार होते ही वे सबके सब याचक शस्त्रसज्जित लुटेरे बन गए। दूसरी तरफ मुहम्मद साहब के निधनोपरांत उनका प्रतिनिधि बनने हेतु भयानक युद्ध छिड़ गया। एक को मारकर दूसरा तथाकथित पवित्र खलीफा बनता था। यानी इस पंथ में किसी को मार डालना पवित्र कर्म एवं मजहबी कर्तव्य माना जाता है।

हजरत अली को 661 ई. में समाप्त करके उमय्यद वंश (661-750 ई.) के 14 खलीफाओं ने सुखोपभोग किया, जबकि अब्बासियों (खलीफाओं) ने भी 750-1258 ई. तक सदाबहार जीवन बिताया। इनके अंतिम खलीफा मुस्तसिम (1242-58 ई.) को यदि चंगेज खाँ का पौत्र हलाकू हलाक (हत्या) न किया होता तो वे सब बहादुरशाह जफर के शासनकाल तक हिंदुस्थान से भेजी गई रोटी खाते रहते। ये इसलाम पंथ के प्रचारक अपने कुकर्मों की सजा स्वयं अपनों द्वारा ही पाया करते थे। आठवें अब्बासी खलीफा अलमोतासिम (833-842 ई.) के बाद 29 खलीफाओं का हश्र यह हुआ कि 8 की हत्या की गई, 2 को अंधा बनाया गया और 2 को पदच्युत किया गया।[3]···और अब्बासियों ने उमय्यदों के साथ भी कुछ कम नहीं किया था—उनको मारकर, उनके शवों को एकत्रित करके, उस पर चमड़े का गलीचा बिछाकर उस पर अब्बास एवं उसके परामर्शदाता मनोरंजन कर रहे थे, उत्सव मना रहे थे। उत्सव भी क्या था—उमय्यद खलीफाओं के मकबरे खोदकर उनकी हड्डियाँ निकालकर उनको जलाया और चारों

---

1. मोहम्मद हबी-खालिम अहमद निजामी : दिल्ली सल्तनत, हिंदी संस्करण, 1978, पृ. 28, 111 का फुटनोट 23
2. एच.जी. वेल्स, उद्धृत—बी.डी. महाजन, पूर्वोद्धृत, पृ. 9
3. इलियट एंड डाउसन, जिल्द-2, पृ. 210-217

दिशाओं में फेंका जा रहा था।[1]

दूसरी तरफ चींटी को भी भूल से पीड़ा न पहुँचानेवाले हिंदू धर्मवाले देश हिंदुस्थान में इसलाम की स्थापना अपने जीते जी कोई भी हिंदू भला कैसे होने देता? लालची और कायरों ने ही इसे स्वीकार किया और अधिकतर बौद्धों ने ही। वाल्मीकि वंश के ब्राह्मण भी सिर कटा दिए, परंतु इसलाम अस्वीकार किया। इनके क्षत्रिय गोत्रों ने तो खून-पसीना एक कर दिया। चर्मकर्मी, सफाईकर्मी, कुछ भी बनाए गए, परंतु इसलाम स्वीकार नहीं किया।

इसलाम के प्रथम खलीफा अबूबक्र का निधन हो जाने पर हजरत उमर (634-644 ई.) ने पहली बार हिंदुस्थान में इसलाम की स्थापना का प्रयास किया। 636 ई. में मुधिरातदेवल के सेनापतित्व में तीन पश्चिमी नगरों (थाना, भड़ौच और देवल) पर एक साथ आक्रमण हुआ। सेनापति मारा गया, और सेना किसी तरह जान बचाकर भागी। सबने शपथ ली कि भविष्य में वे कभी भी जल-मार्ग से हिंदुस्थान पर आक्रमण नहीं करेंगे। वैसे 7वीं शताब्दी तक अरबी फौजों को भारत की सीमा में पाँव रखने का साहस नहीं हुआ। 711 ई. में मुहम्मद-बिन-कासिम ने देवल, ब्राह्मणाबाद, अलोर, मुल्तान आदि में भयंकर लूटपाट और मार-काट मचाई तथा स्त्री-बच्चों एवं हजारों हिंदू युद्धबंदियों को पकड़कर उनके साथ दुर्व्यवहार किया। फलस्वरूप कुछ कायरों और विवश लोगों को इसलाम धर्म में परिवर्तित भी कर लिया गया।

उसके बाद, यहाँ की समृद्धि और संपत्ति का अनुमान अरबवासियों को लग ही चुका था। फिर क्या था, इसे लूटने के बहाने वे धर्म-प्रचार के नाम पर आते रहे। महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी तक का समय तो लूटपाट का ही रहा। उसके बाद कुतुबुद्दीन और कुछ समय तक के शासक सत्ता-संघर्ष में उलझे रहे, परंतु बीच-बीच में हिंदुओं को तरह-तरह से उत्पीड़ित करके इसलाम स्वीकार कराया जाता रहा।

हिंदुस्थान में इसलाम स्थापना के प्रयास हिंदुओं के भयानक उत्पीड़न से जुड़ा हुआ है। हिंदू स्त्रियों की गोद से उसके बच्चे लेकर दो टुकड़े कर दिए जाते थे। उनके सामने उनके पति की चमड़ी छीली जाती, खौलते कड़ाहे में डाला जाता, शेर जैसे नरभक्षी पशुओं के सामने डाला जाता, हाथी से कुचला जाता, कोड़े मारे जाते, शूली पर लटकाते, पंक्ति में खड़ा करके गरदनें उड़ा दी जाती, खेत-खलिहान और घर-मकान जला दिए जाते, करों के बोझ बढ़ा दिए जाते ताकि लोग घर छोड़कर जंगलों में भाग जाएँ। जंगलों में भी उनको ढूँढकर जानवरों की तरह मार दिया जाता था।[2] युद्धबंदियों

1. इलियट एंड डाउसन, पृ. 210-217
2. कुरेशी, दी एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ देलही सल्तनत, पृ. 122

से चमड़े का काम, मरे हुए पशुओं को ढोना, मल-मूत्र की सफाई जैसे काम लिए गए। यह कार्य केवल उन स्वाभिमानी ब्राह्मणों और राजपूत राजाओं से कराया गया जिन्होंने किसी भी मूल्य पर इसलाम स्वीकारने से इनकार कर दिया था। वे ही उत्पीड़ित ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्तमान वाल्मीकि एवं सुदर्शन समाज के अंग हैं।

धन और धर्म, दोनों ही विदेशी आक्रांताओं को चाहिए था। जब यह नहीं मिलता तो वे द्वेष रखने लगते थे। हिंदू किसी भी कीमत पर धन देने को तैयार न थे। यही कारण है कि हिंदुओं के प्रति किसी भी मुसलमान में आज भी द्वेषपूर्ण मानसिकता पाई जाती है।[1] किसी-न-किसी प्रकार का कारण निकालकर वे हिंदुओं से सदैव संघर्ष करने की भी मानसिकता रखते हैं।[2]

किसी भी धर्म की स्थापना अथवा उसका प्रचार-प्रसार सदैव मार-काट से ही नहीं होता। इस प्रकार की आर्थिक और राजनैतिक क्रांतियाँ भी स्थायी नहीं होतीं। धार्मिक क्रांति तो आस्था से जुड़ी होती है। हिंदू समाज यह देख चुका था कि वे राक्षस किस तरह से नरसंहार करते और लोगों को लूटते हैं, इसलिए उनके शासन-काल में भी उनका जितना भी उत्पीड़न हुआ, उसे वे लोग यह मानकर झेल लिए कि यह जाति स्वभाव से ही दंगाई होती है।[3] अतएव उत्पीड़न रोकने के लिए उनसे कहा भी जाता तो उसकी कीमत एक ही थी—धर्म-परिवर्तन और जकात के नाम पर सुल्तान के राजकोष को उपहार। अर्थात् शांति किसी कीमत पर न हो सकती थी,[4] इसलिए उपद्रव-उत्पीड़न सहजभाव बन चुका था। हाँ, यह सच है कि यदि हमारे योद्धा असत्य अफवाहों में आकर युद्ध न करने की स्थिति में न आए होते और यदि प्रत्येक घरों में अस्त्र-शस्त्र रहे होते[5] तो इसलाम की गड़ी नींव भी उखाड़ दी गई होती। हिंदू का हृदय कोमल होता है,[6] इसका अनुमान आज भी भारतीय मुसलमानों को है, जिसका वे कदाचित लाभ भी उठाया करते हैं। इसलाम में कहीं भी भाई-चारा का भाव देखने को नहीं मिलता है[7]। अपने ही लोगों की हत्या करके राज्य भोगनेवाले दूसरों को भला कैसे भाई मान सकते हैं?

2.4 विदेशी मुसलिम आक्रांताओं का विरोध एवं मुँहतोड़ जवाब

विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के लूट-पाट, धर्म-परिवर्तन, नर-संहार, उत्पीड़न

1. डॉ. बी.आर. अंबेडकर, राइटिंग एंड स्पीचेज, भाग-8, पृ. 236
2. वही, पृ. 269
3. भगवानदास, संपा. : दस स्पोक अंबेडकर, भाग-1, पृ. 119
4. लाइफ एंड मिशन, पृ. 502
5. राइटिंग्स एंड स्पीचेज, भाग-8, पृ. 268
6. वही, पृ. 330-331
7. वही, पृ. 333

आदि को इस देश में शांति के साथ नहीं सहा गया, बल्कि उनका निरंतर विरोध और उत्तर भी दिया जाता रहा। ब्राह्मणों ने धर्मरक्षा का दायित्व निर्वहन किया और मैला ढोना तक स्वीकार किया, परंतु इसलाम सदैव अस्वीकारते रहे। क्षत्रियों ने भी जब तक हाथ में तलवार थी, कड़ा प्रत्युत्तर दिया परंतु निहत्था और युद्धबंदी हो जाने पर अस्वच्छ, अपवित्र एवं अपावन कर्मों को करने और स्वाभिमान समाप्ति को प्राप्त होने पर भी इसलाम अस्वीकारते ही रहे। हिंदुओं ने घर-परिवार त्यागकर जंगली जीवन पसंद किया, परंतु इसलाम स्वीकार नहीं किया। इस तरह सभी वर्ग ने आक्रामकों का अपने-अपने ढंग से विरोध किया और मुँहतोड़ जवाब दिया। इसे कुछ इस प्रकार से देखा जा सकता है।

हिंदू स्वाभिमान और मर्यादा की रक्षा में हिंदुस्थान के सम्राटों, सैनिकों, वीरांगनाओं और नवयुवकों ने सदैव निर्भीक होकर और बढ़-चढ़कर भाग लिया था। उन्होंने पीठ कभी नहीं दिखाई और सारे प्रहार अपने सीने पर झेले। पतियों के वीरगति प्राप्त करने के बाद उनकी अर्द्धांगिनियों ने अपने सिंदूर पोंछे और सिर पर कफन बाँधकर युद्ध क्षेत्र में नेतृत्व सँभाला। नन्हे-मुन्ने हिंदू बालक-बालिकाओं ने अपनी गरदन कटा दी, परंतु मुसलिम आक्रांताओं के धर्म-परिवर्तन की अपेक्षाओं का मुँहतोड़ उत्तर दिया। युद्ध क्षेत्र में अपने पति का ध्यान एकाग्र रखने के लिए सुहागिन नारियाँ अपना सिर अपने हाथों काटकर पति के सम्मुख दे दिया करती थीं और हजारों हजार की संख्या में एकत्रित होकर जौहर व्रत करके अपने पवित्र शरीर को भस्म कर देती थीं, ताकि मुसलिम आक्रांताओं के हाथों वे जीवित न पड़ सकें और वे आक्रांता अपनी भोग-विलासपूर्ण आकांक्षाओं का मुँहतोड़ उत्तर पा सकें। उन वीरांगनाओं के अनेक उदाहरण हिंदुस्थान की वीरोचित संस्कृति की कहानियाँ बन चुके हैं। युद्ध से भागकर घरों अथवा दुर्गों में शरण पाने आए हुए पुत्रों को माताओं की कड़ी फटकार मिलती थी और पत्नी अपने कमरे का दरवाजा तक नहीं खोलती थी। जालौर के राजा कान्हड़देव के विरुद्ध अलाउद्दीन खिलजी को भेद देने के कारण दहिया राजपूत वीका की पत्नी हीरादेवी ने अपने हाथों से अपने पति की हत्या कर दी और अपने राजा में निष्ठा व्यक्त की थी। मुसलिम आक्रांताओं का मुँहतोड़ उत्तर देने की यह भी एक त्यागपूर्ण घटना थी।

सिकंदर के सम्मुख नतमस्तक ईरानियों का हौसला हिंदुकुश के हिंदू राजा शशिगुप्त ने बुलंद किया और सिकंदर की सेना के दाँत खट्टे कर दिए थे। कपिशा के अश्वक अथवा अश्वाहक नामक पर्वत प्रदेशीय जनजातियों ने भी सिकंदर का मार्ग अवरुद्ध किया था। कैकेय देश के हिंदू राजा पोरस को बलपूर्वक बंदी बनाने के बाद भी सिकंदर को पोरस ने हिंदू मर्यादा के अनुरूप ही सगर्व अपना प्रत्युत्तर दिया था। सिकंदर ने उससे जब यह पूछा कि उसके साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाए तो उस हिंदू

राजा पोरस ने बिना विचलित हुए सहज़भाव से मुँहतोड़ उत्तर दिया—जैसे राजा लोग राजा के साथ करते हैं। पुरू की निर्भीकता, उसके पौरुष, साहस और स्वाभिमान की उच्च भावना के आगे विश्वविजय के अभियान पर निकला सिकंदर नतमस्तक हो गया और अन्य हिंदू राज्यों पर आक्रमण करने का साहस त्याग दिया।

हिंदू सैनिकों ने अरबवासियों के आक्रमणों को निरंतर विफल किया और सैकड़ों वर्षों तक उनको हिंदुस्थान की पावन भूमि पर पैर रखने नहीं दिया। देवल के स्त्री-बच्चे तक कत्ल हो गए, किंतु इसलाम स्वीकार नहीं किया। दाहिर की हिंदू पुत्रियों ने अपने सफल षड्यंत्र द्वारा मुहम्मद-बिन-कासिम को बैल की खाल में डलवाकर मार डाला और अपने पिता की हत्या का बदला लिया। तुर्कों के आक्रमण का प्रत्युत्तर सिंध के शासक जयपाल ने सुबुक्तगीन के राजदूतों की हत्या करवा कर दिया। लुटेरे महमूद गजनवी का धन हिंदू जाटों और खोखरों ने छीना और सोमनाथ, नगरकोट आदि मंदिरों की लूट का बदला लिया। उन्होंने महमूद को युद्ध में इतना थकाया कि अपने घर (गजनी) लौटते-लौटते उसकी मृत्यु हो गई। नायकी देवी, पृथ्वीराज चौहान, परमाल और आल्हा-ऊदल आदि ने लुटेरे मुहम्मद गोरी को अनेक बार क्षमादान प्रदान किया, यद्यपि उनकी इस उदारता को मुहम्मद गोरी ने कभी भी उनका उपकार नहीं मान्य किया।

मुसलिम आक्रांता बलवन 1257 ई. में हाँसी के युद्ध में एक मेवाती हिंदू महिला के नेतृत्व में हुए युद्ध में पराजित हुआ और लूटा गया था। कटेहर के राजपूतों ने रामगंगा नदी के तट पर अवस्थित तिक्रलावबनी स्थान पर विदेशी मुसलिम आक्रांताओं को बुरी तरह परास्त करने के साथ ही उनके सेनापति मलिक रबीउलमुल्क हज्जुद्दीन दुर्मशी की हत्या कर दी थी। हिंदू राजा हम्मीरदेव भट्टी, राजपूत दूदा, गुहिल राजा रत्न सिंह आदि को भला कौन नहीं जानता है कि उन्होंने विदेशी मुसलिम आक्रांताओं को कभी चैन से रहने नहीं दिया और उनके हर उत्पीड़न का प्रत्युत्तर बहादुरी के साथ दिया।

विदेशी मुसलिम आक्रांताओं द्वारा प्रायोजित उत्पीड़न की पराकाष्ठा को हिंदुओं ने भी चुनौती दे डाली और प्रचंड विरोध भी किया था। उनके द्वारा धार्मिक कर दिए गए, किंतु धर्म-यात्राएँ निरंतर होती रहीं। आर्थिक दंड अथवा अन्य किसी भी भय के आगे लोगों ने अपने तीर्थों में जाने की परंपरा को अविच्छिन्न यानी बेरोकटोक रखा। छल-कपट से छीनी गई संपत्तियों के लिए किसी भी हिंदू महाजन ने कभी आँसू नहीं बहाए बल्कि और भी अधिक उत्साह से अर्थोपार्जन में लगे रहे। कृषि-भूमि छिन जाने पर भी लोग हतोत्साहित नहीं हुए, बल्कि दुर्गम पठारी क्षेत्रों एवं जंगलों को साफ करके कृषियोग्य भूमि तैयार करने का काम करते रहे। गाय, भैंस, भेड़, बकरियों की हत्याएँ होती रहीं, फिर भी हिंदू समाज पशु-पालन की गौरवशाली परंपरा को सजीव बनाए रखने में जुटा रहा और दूधो नहाओ, पूतो फलो की कहावत को औचित्यहीन अथवा

मिटने नहीं दिया। धर्मप्राण हिंदू अपनी आस्था के प्रतीक अपने मंदिरों और मूर्तियों के विध्वंस को रोकने में आत्माहुति देने से कभी पीछे नहीं रहे। हिंदू धर्म और संस्कृति की रक्षा में निरंतर संलग्न रहे और विदेशी आततायियों में विद्रोह हो जाने का भय उत्पन्न करने में सफल भी रहे। उनके प्रचंड विरोध का ही परिणाम था कि आज भी हिंदू धर्म और संस्कृति अपनी विजय पताका पूरे विश्व में लहरा रही है।

मध्ययुगीन सांस्कृतिक संकट के संक्रमणकाल में इसलाम स्वीकारने हेतु हिंदुओं पर प्रचंड बल प्रयोग किया गया। विदेशी मुसलिम आक्रांताओं एवं शासकों ने उनका भयंकर उत्पीड़न किया। लोगों को खुलेआम फाँसी दी गई। हजारों-लाखों हिंदू, रक्तपिपासुओं की तलवारों के शिकार हुए। हिंदुओं ने इसका प्रबल विरोध भी किया। विद्रोह की भयानक आशंकाओं को ध्यान में रखकर तलवारें तो म्यान में रख ली गईं, किंतु शासन एवं सत्ता से टकरानेवालों के साथ अमानवीय व्यवहार जारी रहे। परिणामस्वरूप स्वाभिमानी हिंदुओं को सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक रूप से अस्पृश्य, विपन्न-दलित अैर पतित बनाया गया। यही इसलाम की दुष्कर्म आज हिंदू-मुसलिम कटुता के मूल बन गए हैं।[1]

विदेशी मुसलिम आक्रांताओं ने जब हिंदू मंदिरों और देव प्रतिमाओं को तोड़कर उनके मलबे से मसजिदों का निर्माण कराया और देवशिलाखंडों के विग्रह यानी देवी-देवताओं के खंडित या टूटी हुई मूर्तियों को उन मसजिदों की सीढ़ियों में लगवाया तथा देवालयों में मल-मूत्र और गोरक्त आदि प्रवाहित करके उनको गंदा और अपवित्र करना चाहा, साथ ही धर्मयात्राओं पर प्रतिबंध लगाने और पूजा-पाठ को रोकने, हिंदुओं को शिखा रखने पर जजिया कर लगाया, तो ऐसे प्रचंड धार्मिक उत्पीड़न का उत्तर भी उन हिंदुओं ने अहिंसात्मक विधि से देकर आततायियों के मनोबल को तोड़ दिया। प्रत्यक्ष पूजा-पद्धति के स्थान पर निराकार उपासना के माध्यम से अपनी दैव निष्ठा को शाश्वत रखा। यदि हिंदुओं के पास शस्त्र होते[2] और उनकी देव-आरती से ज्वालाएँ उगलती होतीं तो सभी विदेशी आक्रांता भस्म हो गए होते।

2.5 हिंदू योद्धा जातियाँ एवं उनका प्रचंड विरोध

हिंदू वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति में स्वाभिमान का प्रश्न आने पर उसका रुख आक्रामक हो जाता है। जो भी बातें उनको स्वभावानुसार पसंद नहीं आतीं, उनका भी वे प्रचंड विरोध करते हैं। ऐसा इसलिए है कि यह स्वभाव उनको जन्म से मिला है तथा

---

1. टाइटस, इंडियन इसलाम, पृ. 63-65
2. अंबेडकर-रानाडे, गांधी और जिन्ना, (ठक्कर : कं., बॉम्बे 1943) पृ. 12-13

अपने पूर्वजों से भी प्राप्त है। उनके पूर्वज भी विदेशी इसलामिक आक्रांताओं, शासकों और अंग्रेज शासकों का जमकर विरोध करते थे।

इतिहास के पृष्ठों को पलटकर देखा जाए तो हिंदुस्थान पर प्रथम आक्रमण से लेकर औरंगजेब के समय तक, जब भी विदेशी शासकों ने अत्याचार और उत्पीड़न किया, कुछ विशिष्ट योद्धा-प्रवृत्ति की जातियों ने उनका जमकर विरोध किया और शासन-सत्ता से भले वे टकराकर चूर-चूर हो गई, परंतु शासकों को चैन की वंशी बजाने का अवसर कभी नहीं दिया। इसकी केवल संक्षिप्त कथाएँ लिखी जाएँ तो एक मोटी पुस्तक बन सकती है, अतः मात्र घटनाओं को संदर्भित किया जा रहा है।

हिंदू योद्धा जातियाँ अनेक थीं, जिन्होंने विदेशी इसलामिक शासकों का प्रचंड विरोध किया, परंतु इसलाम के सापेक्ष वे सभी एक यानी हिंदू थीं। वे सभी अपने को एख वंश[1] यानी हिंदू वंश का मानती थीं। देश के लिए दुःखद बात यह है कि वे सभी अल्प संख्या में, असंगठित और दूर-दूर तथा साधन-संपन्न नहीं थीं, अन्यथा दिल्ली का सिंहासन विदेशी आक्रांता शासकों को प्राप्त नहीं होता।

ब्राह्मण जाति के बहादुर हिंदू राजा दाहिर के पूर्व भी सिंध में राजवंशीय हिंदू योद्धा जातियों के आगे अरबों की दाल नहीं गलती थी। 636 ई. में जिस समय पहला अरबी आक्रमण थाना, भड़ौच और देवल पर हुआ, दाहिर के पिता चच द्वारा नियुक्त ब्राह्मण गवर्नर ने ही अरब सेनापति मुधिरादेवल को दौड़ाकर मार डाला था और उसकी सेना को समुद्रतटीय जातियों ने जाल में बाँध-बाँधकर समुद्र में बहा दिया था। उसके बाद वे कभी समुद्री मार्ग से हिंदुस्थान पर आक्रमण करने का साहस नहीं जुटा पाए थे।[2]

अपने समय में गुर्जर[3] एवं प्रतिहार भी एक महान् योद्धा जातियों में थीं। प्रतिहार राजा नागभट्ट ने तो अरबों को अंदर तक खदेड़कर मारा था।[4] जाबुल और काबुल के हिंदू राजागण जो तुर्कीशाही या शाहिय कहे जाते थे, 714 ई. में अब्बासी खलीफा मंसूर को ही पछाड़ डाला था।[5] बख्तियार खिलजी अपने को बहुत बड़ा तीसमारखाँ समझता था और लाख समझाने पर भी नहीं माना और उसने तिब्बत-आसाम पर चढ़ाई कर दी। योद्धा असमिया जाति के लोगों ने समस्त हरियाली जला डाली। शत्रु के घोड़े घास खाए बिना मरने लगे। सैनिकों को पीने का पानी तक सुलभ नहीं हुआ। पीछे मार्ग जो जिस पुल से गए थे, वह पुल भी ध्वस्त मिला। नदी में कूद अनेक बह गए। खिलजी बच

---

1. राइटिंग एंड स्पीचेज भाग-7, पृ. 304
2. एइ.जि. 23, पृ. 151
3. विलाधुरी, किताब-फुतूहल-वुलदानस हिमी और मुरगाटेन का अंग्रेजी अनुवाद, जिल्द-2, पृ. 210
4. वही, जि. 18, पृ. 102-106
5. वही, पृ. 145-155

तो गया, परंतु कुछ ही समय बाद उसे लोगों ने मार डाला।[1] योद्धा जाति हिंदू चंदेलों ने भी विदेशी शासकों का प्रचंड विरोध किया था। विद्याधर ने तो महमूद गजनवी से लोहा मनवा दिया था। 1019 ई. के अनिर्णीत युद्ध को निर्णीत करने के उद्देश्य से वह 1022 ई. में पुनः विद्याधर से जोर आजमाइश करने आया, परंतु पार न पाया तो मैत्री का हाथ बढ़ा लिया।[2]

योद्धा जाति हिंदू चाहमान (चौहान) ने भी अनेक बार विदेशी मुसलिम आक्रांताओं को धूल चटाई थी। अजयराज, अर्णोराज, विग्रहराज आदि ने बहुत से विदेशी मुसलमानों को गाजर-मूली की तरह काट डाला था। मुहम्मद गोरी को भी तराइन के मैदान में 1191 ई. में दौड़ाकर मारा गया था। भूल यह हुई कि उसे पीछा करके जान से नहीं मारा गया। परिणाम यह हुआ कि 1192 ई. में वह पुनः आ गया और गहड़वाल चंद्रवंशी राजा जयचंद से मिलकर पृथ्वीराज को हरा दिया। बाद में जयचंद को भी मार दिया। उसके पूर्व उसे सन् 1178 ई. में एक महिला शासक (नाइकी देवी) ने इतनी बुरी तरह से मारा था कि जमीन से उठने तक की शक्ति उसमें न थी। एक मुसलिम सिपाही उसे उठाकर भागा न होता तो तराइन का दूसरा युद्ध हुआ ही न होता।

बलवन को 1269 ई. में जूदपर्वत के हिंदू वनवासियों ने बुरी तरह मारा था। दक्षिणी हिंदू स्थान की योद्धा जातियों के दो बहादुर हिंदुओं (कापय तथा बल्लाल) ने मुहम्मद बिन तुगलक की नाक में दम कर दिया था और कठ तथा पार्स्विय जातियों ने तो तैमूरलंग को छापामार युद्ध में पटखनी दी थी। इनकी मार से उसके सैनिक इतने भयभीत थे कि दिल्ली से सीधे वे अपने देश ही जाकर रुके। दिल्ली पर अधिकार कर लेने के बाद भी तैमूर की हिम्मत नहीं हुई, जो वहाँ रुककर शासन करता। गौड़ जाति की शेरनी महारानी दुर्गावती भी महान् थी, जिसने अकबर के सामने घुटने नहीं टेके।

बूंदी के हाड़ा जाति के योद्धा औरंगजेब से तब तक लड़ते रहे, जब तक कि मेवाड़ उससे छीनकर उस पर अजीत सिंह को सिंहासन पर नहीं बैठा लिया। मथुरा के जाटों, सतनामियाँ, बुंदेले राजपूत और शिवाजी की मराठी सेना, सभी ने मुगलों की अंतिम कील को हिला डाला। बंदा बैरागी ने तो तहलका मचाकर रख दिया था। उसके सामने उसके बेटे मारे गए। उसको घुमाते हुए गर्म चिमटों से उसके शरीर का मांस नोचा गया और जब तक मरा नहीं तब तक यह यातना दी गई।[3] कैसे भूलेंगे इसे हिंदू योद्धा जाति के लोग?

---

1. क.ल. वरुआ, पृ. 211
2. मजूमदार, रमेशचंद्र : एशिएंट इंडिया, पृ. 351
3. महाजन, बी.डी. : मध्ययुगीन भारत, पृ. 210-163

हिंदू योद्धा जातियों में कभी कोई भेदभाव नहीं रहा। किसी भी जाति के योद्धा प्रवृत्ति को समाज में सम्मान प्राप्त था। सिक्खों में जब गुरु परंपरा समाप्त हो गई, तो 12 मिस्लें बनीं। जिनके नामों से भले ही पता चले कि समाज में उनकी प्रस्थिति बहुत उच्च नहीं थी, किंतु कार्यों (देशरक्षा) के आधार पर वे सभी एक समान महत्त्वपूर्ण मानी जाती थीं। उनके नाम ये—सिंहपुरिया मिस्ल, कन्हैया मिस्ल, सुकरचकिया मिस्ल, फुलकियाँ मिस्ल, डल्लीवासिया मिस्ल, करोड़सिंधिया या पंजगढ़िया मिस्ल, निशानवालिया मिस्ल, नक्कई मिस्ल, भंगी मिस्ल और शहीद मिस्ल।[1]

भंगी मिस्ल के संस्थापक श्री हरिसिंह थे। संख्या और क्षेत्र की दृष्टि से सर्वाधिक शक्तिशाली इस भंगी मिस्ल की सीमा का पाक पट्ठन तक विस्तार था। लाहौर और अमृतसर (वर्तमान पाकिस्तान के भू-क्षेत्र) तक इसमें मिला लिए गए थे। हरिसिंह के बाद इस मिस्ल का सरदार झंडा सिंह बना और इसकी शक्ति को उच्च शिखर तक पहुँचा दिया। उसने कसूर, रामगढ़ और जम्मू पर विजय पाई थी। उसने जमजमा नाम से प्रसिद्ध तोप भी छीनी थी। 1782 ई. के बाद अन्य मिस्लों की भाँति यह मिस्ल भी रणजीत सिंह के राज्य का अंग बन गई।

यह एक ऐसा उदाहरण है, जो किसी भी वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति के सदस्य के लिए गर्व का विषय हो सकता है। यह जाति मुगलकाल में एक गौरवशाली राजवंश के रूप में अपने वर्तमान जाति नाम के साथ भी अपने योद्धा प्रवृत्ति का परिचय देती थी। हरिसिंह, झंडासिंह, गंडासिंह आदि नामों से क्या स्पष्ट नहीं हो जाता है कि वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी (सफाईकर्मी) जातियों में राजपूतों की ही नस्लें विद्यमान हैं ?

2.6 धर्मपरायण वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी इत्यादि जातियाँ

धर्मपरायणता का तात्पर्य है धर्म के प्रति संपूर्ण प्रकार से समर्पण की भावना रखना एवं उसी के अनुसार व्यवहार करना। इसे धर्मांधता से भी दूर और अन्य धर्मों के प्रति निष्ठुरता से भी परे की अवधारणा कहते हैं। कोई भी धर्मपरायण व्यक्ति किसी के भी पंथ एवं पूजा-पद्धति में कभी हस्तक्षेप नहीं करता है और वह केवल हिंदू समाज में ही पाई जाती है। यह वह धर्म है जो कभी भी निष्प्राण नहीं हुआ, नष्ट नहीं हुआ और नीतिविरुद्ध नहीं हुआ। इसकी रक्षा में करोड़ों हिंदुओं ने अपने प्राण उत्सर्ग किए होंगे, दर-ब-दर हुए होंगे और सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक पद-प्रतिष्ठा गँवाएँ होंगे, परंतु इस धर्म का परित्याग उन्होंने नहीं किया। वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार मजहबी इत्यादि जातियाँ भी उनमें से ही हैं।

---

1. महाजन, बी.डी. : मध्यकालीन भारत, पृ. 278

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी इत्यादि जातियों का निर्माण दो ऐसी सशक्त वंशावलियों को बलपूर्वक अस्वच्छ कार्यों में लगाने से हुआ है, जिन पर पूरे हिंदुस्थान की धर्मरक्षा और देशरक्षा का दायित्व था। बार-बार के आक्रमणों को कभी-कभी कुछ विशेष परिस्थितियों में न झेल पाने के कारण इनको युद्धबंदी बनना पड़ा और विवश अवस्था में वह सब करना पड़ा जो उनके मान-सम्मान और जाति-स्वभाव के अनुरूप नहीं था, परंतु हिंदू धर्म का परित्याग न करने की स्थिति में उनको अस्वच्छ, निम्न और अपवित्र श्रेणी के कार्य भी बलपूर्वक कराए जाने के कारण करने पड़े। अस्वच्छ और अपवित्र कार्यों को करने से वे ब्राह्मण एवं क्षत्रिय (ब्रह्मक्षत्र) अपने ही समाज में अपवित्र और अस्पृश्य हो गए। उन्हें चमार, भंगी, खटिक, दुसाध, पासी राजभर, वियार, मुसहर, धोबी जैसे अनेक पेशागत निम्न भाव में संबोधन प्रदान किए गए। पवित्र और स्वाभिमानी जातियों से इन जातियों को स्थानांतरित लोगों ने विदेशी आक्रांता मुसलिम शासकों का हर उत्पीड़न को बड़े धैर्य से सहा, किंतु इसलाम स्वीकार नहीं किया और अंत तक हिंदू धर्मपरायण की प्रतिमूर्ति बने रहे।

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जातियों के लोग आज भी अपने भगवान् श्रीराम और उनके प्रियभक्त महर्षि वाल्मीकि में अपनी अटूट निष्ठा रखते हैं। हिंदू धर्म उनके जीवन का उद्देश्य है, क्योंकि धर्म ही जीवन का संबल भी कहा गया है। वह जीवन के अंतः और बाह्य, दोनों पक्षों से संबंधित होता है।[1] वह सामाजिक शक्ति का स्वरूप है।[2] उसमें परमार्थ का भाव है।[3] उससे व्यक्ति पर सामाजिक नियंत्रण का प्रभाव पड़ता है,[4] सामाजिक मूल्यों का महत्त्व बढ़ता है[5] और आर्थिक उन्नति में कहीं अनीति नहीं होती। धर्म प्रतिक्रियावादी नहीं है।[6] वह व्यक्ति के मन को शुद्ध बनाने का पवित्रतम मार्ग है। धर्म मलिन मन को निर्मल करता है। वह (धर्म) मनुष्य के लिए है न कि मनुष्य धर्म के लिए है।[7] जो निर्धन को निर्धन और अज्ञानी को अज्ञानी रहने दे, वह धर्म नहीं है। परंतु धर्म अफीम भी नहीं है, जिससे किसी को पीड़ा मिलती अथवा संस्कार नष्ट होता है—जैसा कि मार्क्सवादी कहते हैं। वस्तुतः समाज की धारणा केवल रोटी से नहीं वरन् धर्म से होती है।

---

1. जाटव, डॉ. डी.आर. : डॉ. अंबेडकर का धर्मदर्शन (जयपुर, 1993), पृ. 27-28
2. राइटिंग्स एंड स्पीचेज, भाग-3, पृ. 23-24
3. संकेत रेखा, पृ. 254
4. राइटिंग्स एंड स्पीचेज, भाग-5, पृ. 410-411
5. वही, पृ. 409-411
6. सोर्श मैटेरियल, वॉल्यूम-1, पृ. 367
7. दस स्पोक अंबेडकर वॉल्यूम-4, पृ. 60-61

धर्मपरायणता के उपरोक्त तथ्य आत्मसात् करने के कारण ही हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जातियों को सदैव धर्मपरायण पाया जाता है। उन्हें इसलिए भी धर्मपरायण माना जाता है कि वे आदिकाल से स्वधर्म का अनुपालन करते आए हैं—प्राचीनकाल में धर्मरक्षा और देशरक्षा का कार्य और मध्ययुग में विदेशी इसलामिक शासकों द्वारा बलपूर्वक थोपे गए अपवित्र कार्य (मलमूत्र की सफाई का कार्य) इसे ही कार्य-मूलक व्यवस्था के अंतर्गत जीविकोपार्जन हेतु स्वधर्म पालन, अर्थात् कर्म करना कहा गया है।[1]

धर्मपरायण का अभिप्राय केवल पूजा-पाठ नहीं है। हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जातियों के लोग पूजा-पाठ करते हैं। यदि किसी कारण से कभी नहीं कर पाते तो इसका अर्थ यह नहीं कि वे धर्मपरायण नहीं हैं। वास्तव में धर्म का अभिप्राय केवल पूजा-पाठ ही नहीं है।[2]

धर्मपरायण का अर्थ वह है, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। आगे, संक्षेप में यह दिखलाया जा रहा है कि वर्तमान समय में तथाकथित सफाईकर्मी जातियाँ किस प्रकार से अस्वच्छ कार्य करते हुए भी अपने को पवित्र एवं धर्मपरायणता बनाए हुए हैं।

वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि समाज जैन पंथ, बौद्ध पंथ को भी हिंदू धर्म की ही तरह सम्मान देता रहा, किंतु जैनियों ने उनके शैक्षिक विकास के लिए अपने प्रयास तो जारी रखे, परंतु स्वयं उस समाज को अपने पांडालों में बैठा देखना पसंद नहीं किया।[3] मुसलिम, ईसाई धर्मों का तो कटु अनुभव इस जाति को है ही। इनके हिंदू धर्म में सदैव बने रहने का दृढ़निश्चय कुछ इन्हीं कारणों से है कि कोई भी पंथ इनको प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार नहीं किया। ये जानते थे कि इसलाम स्वीकारने पर भी एक हिंदू के प्रति जो घृणा भाव मुगलों में पाया जाता है, उसके शिकार वे निरंतर होते रहेंगे। उनके हिंदू धर्मपरायण होने का यही कारण है।

हिंदू धर्म में गाय को माता के समान पूजा जाता है। वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि समाज भी गो-माता को धार्मिक आधार पर सम्मान देता है। सन् 1950 ई. की बात है कि मैनपुरी के पास एक जमींदार की जीप से एक गाय दबकर मर गई। उसने हिंदू धर्म के अनुसार उसका प्रायश्चित्त नहीं किया। गाँव के लोगों के अतिरिक्त वहाँ के सफाई-कर्मचारी तक ने उसके घर का अन्न-जल लेना बंद कर दिया। कई दिनों तक वे भूखे-प्यासे रहे, अंत में काम बंद कर दिया। ठाकुर ने उनको मारा-पीटा तो उन्होंने भी जमकर मार-पीट किया। मुकदमा चला। सफाईकर्मियों ने साफ तौर पर कह दिया कि

1. आर्य, लाल ज्ञानचंद : वर्ण-व्यवस्था का वैदिक रूप, पृ. 130
2. सोनी, सुरेश : हमारी सांस्कृतिक विचारधारा के मूल स्रोत, प्रस्तावना, पृ. 3
3. तोमर, देवेंद्रपाल सिंह : हिंदू अछूत जातियों में छुआछूत, पृ. 127-128

जब तक जमींदार हिंदू धर्म के अनुसार प्रायश्चित्त नहीं करेगा, उसे वे देखना तक पसंद नहीं करेंगे। अंत में जमींदार को गोहत्या का प्रायश्चित्त करना पड़ा।[1]

धर्मपरायण हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी इत्यादि जातियों के लोग बहुदेवतावादी हैं और लोकधर्म में आस्था होने के कारण हिंदू देवी-देवताओं की पूजा विभिन्न रूपों में करते हैं। जिस स्थान पर जिस हिंदू देवी-देवता का महत्त्व होता है, वहाँ वे भी जाकर अपनी श्रद्धा अर्पित करते हैं। उनके कुछ प्रमुख देवी-देवताओं के नाम इस प्रकार हैं—भैरो अथवा कालभैरो, मसानी (मसान बाबा अथवा बाबा महादेव), मसानी याने शीतला माता, जिन्हें चेचक माता भी कहते हैं, देवी माता मसानी (जिनकी एक प्रतिमा गुड़गाँव में है और जिनकी पूजा अगस्त महीने में नहीं की जाती है), चेचक माता (द्रोणाचार्य की पत्नी पर आद्धृत), ललितादेवी (एक प्रतिमा गुड़गाँव में है, जहाँ बलि नहीं चढ़ाते, बल्कि माला-फूल और नारियल से पूजा करते हैं), काली अथवा कालिका माई (दक्षिण दिल्ली में एक मंदिर है), महामाई शीतला, सेरूलाला की पूजा, सलवापवन यानी पान की पूजा, केसरमाई की पूजा इत्यादि।[2]

हिंदू वाल्मीकि एवं सुदर्शन समाज के लोग धार्मिक तीर्थयात्राएँ भी करते हैं। वाल्मीकि जयंती मनाते हैं। वाल्मीकि आश्रम और वाल्मीकि धामों पर जाते हैं। तीर्थाटन करते हैं। इसके अतिरिक्त हिंदू धार्मिक तीर्थस्थानों की भी यात्राएँ करते हैं। वाल्मीकि जयंती के अवसर पर रामायण की पूजा एवं उस पवित्र ग्रंथ का वितरण करते हैं और मानस-पाठ की भाँति रामायण-पाठ भी कराते हैं। इनकी आस्था सभी हिंदू धर्म-ग्रंथों में होती है। हिंदू धर्म के एक पंथ 'नवलपंथ' के प्रति भी इनमें गहरा अनुराग पाया जाता है। यह पंथ नवलजी द्वारा प्रशस्त है, जिसका परिचय उनके जीवन-परिचय के साथ कराया गया है। मुसलिम सफाईकर्मी, जिनको लालबेगी कहते हैं, हिंदू लालबेगी से भिन्न है। हिंदू लालबेगी सफाईकर्मी हिंदू देवी-देवताओं में आस्था रखते हैं और हिंदू जीवन-पद्धति अपनाए हुए हैं। जबकि मुसलिम लालबेगी 'लाल साहब' (मुसलिम फकीर) को मानते एवं सबेरात-मुहर्रम मनाते हैं।

2.7 धर्मरक्षा के अग्रणी दूत

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख समाज की हिंदू धर्म में अटूट निष्ठा आज भी दृष्टिगोचर होती है। विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के शासनकाल में भी उनके पूर्वजों ने इस धर्म की रक्षा हेतु आक्रांताओं एवं शासकों के अनेक उत्पीड़न

---

1. श्यामलाल : फ्राम हायर कास्ट टू लोअर कास्ट, पेज 143 एवं शर्मा, रामा : भंगी, पृ. 114-118
2. वही, पृ. 114-118

एवं शोषण बड़े ही धैर्य से सहे थे। आज भी भगवान् श्रीराम और महर्षि वाल्मीकिजी की रामायण के प्रति उनमें अपार श्रद्धा देखी जाती है। इस श्रद्धा पर किसी भी आक्षेप को वे सह नहीं पाते और मरने-मारने पर उतारू हो जाते हैं। इस दृष्टि से उनको धर्मरक्षा का अग्रणी दूत कहा जाता है।

धर्मरक्षा में उन्होंने मध्ययुग में जो दुर्गति झेली थी उसकी मात्र कहानी इतनी पीड़ादायी है कि जो किसी भी सहिष्णु के दिल को कंपित कर देनेवाली है। धर्मरक्षकों के आवास में आग लगा दिया जाता और वे जंगल में भाग जाते तो जंगल काट दिए जाते अथवा उनमें आग लगा दी जाती थी। जान बचाकर भागनेवाले धर्मरक्षकों को जानवरों की तरह दौड़ाकर मारा जाता था। भागे हुए लोगों का कर उसके पड़ोसी से लिया जाता और न देने पर उसे भी उद्वासित करके बनवासी बनाया जाता था।

धर्मरक्षकों के खेत राज्य-भूमि अथवा कर के रूप में छीन लिए जाते थे। बदले में जंगली, पथरीली, बंजर, ऊसर, ढालू आदि रद्दी भूमि देकर उसे कृषि-योग्य बनाने हेतु आदेश दिया जाता था। ऐसा करने में जो असमर्थ होते उनको बलपूर्वक मुसलमान बनाया जाता था। ऐसी स्थिति में पूरा परिवार रात-दिन परिश्रम करके हिंदू बने रहने हेतु अनुपयुक्त भूमि को कृषि-योग्य बना डालते थे।[1]

लघु-कुटीर उद्योगों से तैयार माल पहले शाही परिवारों को उपलब्ध कराए जाते थे। उनके न लेने पर ही किसी अन्य को बेचा जा सकता था। स्थिति यह थी कि सारे सामान कम मूल्य पर इसी नियम की ओट में ले लिए जाते थे। पैसे भी धीरे-धीरे दिए जाते थे। वैश्यों से उधार लिए गए धन कभी वापस नहीं किए जाते, बल्कि उनको व्यापार-कर चोरी, आयात-शुल्क, कम तौल, कालाबाजारी आदि के आरोप में सजा दी जाती थी। ये सारे प्रयास इसलिए थे कि वे हिंदू अपने धर्म की रक्षा में बने हुए थे।[2]

धर्मरक्षकों को उनके परिवारसहित बगदाद की सड़कों पर गुलाम बनाने हेतु नीलाम कर दिया जाता था। जहाँ से वे पुनः कभी नहीं लौटे, परंतु जहाँ भी रहे अपने हिंदू धर्म की रक्षा में लगे रहे। अपने देश में तो वे साहसी रहे ही, अन्य के यहाँ रहकर भी अपने धर्म की रक्षा करना, यह असाधारण साहस का कार्य था। बगदाद में सभी मुसलिम थे। उनके दास होकर भी हिंदू धर्म की रक्षा करना सामान्य बात न थी।

हिंदू धर्मरक्षकों पर प्रचंड अत्याचार किए गए थे। उनको अंधा, लूला, लँगड़ा, बहरा, विकलांग बनाया जाता था, सबकुछ छीनकर उनको गाँव और नगर से बाहर निकाल दिया जाता था, स्वाभिमानी हिंदुओं को हिंसक पशुओं के समक्ष डाला जाता

---

1. डॉ. सुमनलता शास्त्री, मध्यकालीन भारत की···, पृ. 161
2. वही पृ. 168

और जमीन में गाड़कर कुत्तों तथा गीदड़ों से नोचवाया जाता था। हिंदू नर-नारी के नाक-कान काटकर कुरूप बनाया जाता था। हाथ की अँगुलियों को काटकर उनके शिल्पगुण नष्ट किए जाते थे। उनका चरित्र भ्रष्ट करने हेतु उनको हिजड़ों और वेश्याओं के बीच भेजा जाता था। पेड़ों में बाँधकर उन पर निशाने लगाए जाते थे। भोजन और जल उनके सामने रखकर हटा लिए जाते थे तथा महीनों भूखों रखा जाता था। खाने के लिए मांस-मदिरा उपलब्ध कराया जाता था, ताकि वे खा न सकें और भूख से छटपटाते रहें। उनसे मैला साफ कराया जाता और चर्म-कर्म जैसे अपवित्र कार्यों में भी लगाया जाता था। उनको गृहसेवक के रूप में रखा जाता था। कहार, माली, नाई, पनेरी, भूजा आदि इसी प्रकार उनके द्वारा उत्पन्न की गई दासवर्गीय जातियाँ हैं। हिंदुओं को बेघर करके दर-ब-दर भटकने तथा जंगलों में छिपकर रहने हेतु विवश किया था। अंत में क्रुद्ध होकर उनको मार दिया जाता था। मृत्युदंड सार्वजनिक रूप से और क्रूरतापूर्ण विधियों से दिया जाता था, ताकि भयभीत होकर अन्य हिंदू लोग इसलाम धर्म स्वीकार कर लें।[1]

विदेशी मुसलिम आक्रांताओं एवं शासकों का कहना था कि वे हिंदू धर्मरक्षकों को केवल इसलिए प्रताड़ित एवं उत्पीड़ित करते हैं, ताकि वे इसलाम स्वीकार कर लें। वास्तव में यह बात भी नहीं थी। वे शराबी और अय्यास हो चुके थे। उनका यह स्वरूप स्वयं में इसलाम-विरुद्ध हो चुका था। हिंदू पातिव्रतधर्म पर मर मिटनेवाला स्त्रियों के बलात्कारी शासकों के दरबार में नर्तकियों, वेश्याओं और हिजड़ों की भीड़ रहती थी। कुछ सुल्तान भी स्वयं को भी रुकुनुद्दीन फीरोजशाह (1236 ई.), सत्ता के लिए याकूत, नूरतुर्क एवं अल्तूनिया से प्रेमालाप एवं विवाह रचानेवाली सुल्तान रजिया (1236-1240 ई.), मद्यप एवं विलासप्रिय बलवन (1266-87 ई.), वेश्या लाल कंवर के लिए राज्य से संन्यास लेनेवाला सुल्तान, कैकुवाद हिंदू राजा हम्मीरदेव की पुत्री देवत्लस, अल्प खाँ की बहन माहरू, देवगिरि के शासक रामचंद्र की सुंदर पुत्री छिताई, गुजरात के राजा रायकरण की रूपवती पत्नी कमलादेवी, चित्तौड़ के राजा रत्नसिंह की रूपवती पत्नी पद्मावती आदि के प्रति वासनायुक्त दूषित मनोवृत्ति रखनेवाला अलाउद्दीन खिलजी (1296-1316 ई.), उसका उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीन मुबारकशाह (1316-1320) ई.) इत्यादि ऐसे ही भोग-विलासप्रिय शासक थे। इन्होंने भी हिंदुओं पर इसलाम थोपने हेतु उनकी पुत्रियों और पत्नियों तक को अपना शस्त्र बनाया था। वंदनीय हिंदू महिलाओं ने अपना शरीर जौहर व्रत के माध्यम से धधकती अग्नि में जला डाला, परंतु बाप के और पतियों के सिर को कभी झुकने तक नहीं दिया था।

हिंदू धर्मरक्षा के ऐसे ही मध्ययुग में नवनामित हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी,

---

1. लाइफ एंड मिशन, पृ. 122

मखियार, मजहबी जातियों ने भी पूरे उत्साह, साहस और धैर्य से भाग लिया था। उनमें हिंदू और हिंदुस्थान की राष्ट्रीय भावना थी।[1] उन पर हिंदू धर्म-ग्रंथों का प्रभाव था। उसे तो लाख प्रयास करके अंग्रेज तक नहीं नकार पाए थे। क्या आज भी ये ग्रंथ इसलाम और ईसाइयों के लिए मार्ग के काँटा नहीं हैं?[2] अवश्य हैं, अन्यथा अब तक देश इसलाम या ईसाई हो गया होता। डॉ. अंबेडकर कहाँ ने धर्म-परिवर्तन किया? गौतम बुद्ध हिंदू धर्म के अवतारवाद में आते हैं, फिर उनका बौद्ध धर्म हिंदू धर्म से भिन्न कहाँ? जैन, बौद्ध ये सभी हिंदू धर्म के ही पंथ हैं। परिवर्तन तब माना जाता जब वे इसलाम या ईसाई बनते। इन दोनों में वे नहीं गए और अपने लोगों को भी मना किया।[3]

हिंदू वाल्मीकि जाति में कुछ ऐसे धर्मरक्षकों ने भी जन्म लिया, जिन्होंने मुगलों के अत्याचार से अपने को बचाते हुए हिंदू धर्म की रक्षा की। एक थे—जोगीपा अथवा अजोगिपा। 84 सिद्धों[4] में वह भी एक सिद्ध-पुरुष थे। उनका जन्म उदंतपुरी (बिहार शरीफ) के एक तथाकथित सफाईकर्मी के घर में हुआ था। बारहवीं सदी का समय विदेशी इसलामिक शासकों के अत्याचारों का चरम काल था। उदंतपुरी में अग्नि का नग्न तांडव आरंभ था। जोगिपा का घर जला दिया गया था और परिवार के लोग दर-ब-दर हो गए थे अथवा मार दिए गए थे। किंतु किसी भी मूल्य पर उन्होंने इसलाम स्वीकार नहीं किया था।

जोगिपा भगवान् में आस्था रखते थे। उन्होंने शबरिपा को अपना गुरु बनाया। शबरिपा के गुरु सरहपाद थे। शबरिपा कोल अथवा भील था। वाण बनाने का काम उनके यहाँ होता था। उसने दक्षिण की विंध्या पर्वत पहाड़ी पर साधना की थी। उनकी लिखी 26 पुस्तकों का अनुवाद मोट भाषा में उपलब्ध है। उनकी मगही (पालि) भाषा की लिखी 6 छोटी-छोटी कविताएँ भी उपलब्ध हैं। उन्होंने जोगीपा को अपना शिष्य बनाया।

अपनी साधना और गुरु के आशीर्वाद के सहारे तथाकथित सफाईकर्मी समाज के सिद्धपुरुष जोगीपा ने भी अन्य सिद्धपुरुषों की भाँति साधना के लिए 'ललितासन' और मुद्रा के लिए 'वरद मुद्रा' को प्रचलित किया तथा एक पुस्तक भी लिखी जो 'चित्त संप्रदाय व्यवस्थान' के नाम से तंजूर में उपलब्ध है।[5] इसमें साधना की वह दिशा है, जिसमें इसलाम का भय नहीं; बल्कि हिंदू धर्म की रक्षा का पूरा प्रबंध है।

---

1. सोनी, सुरेश (पूर्वोद्धृत), पृ. 15
2. राइटिंग्स एंड स्पीचेज, भाग-5, पृ. 454-456, लाइफ एंड मिशन, पृ. 399 एवं डॉ. देवेंद्रस्वरूप : पोलिटिक्स ऑफ कनवर्सन, डी.आर.आई. पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 324
3. सिद्धों का संपूर्ण साहित्य राहुल सांकृत्यायन ने संकलित किया है। यह पटना संग्रहालय की संपत्ति है।
4. विद्रोही, एम.आर. : दलित दस्तावेज, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली-63, 2004, पृ. 22-23
5. श्यामलाल : फ्रॉम अपर कास्ट्स टू लोअर कास्ट, पृ.11

हिंदू वाल्मीकि जाति में दूसरे हिंदू धर्मरक्षक थे—नवलजी[1]। उनका जन्म राजस्थान के नागौर जनपद स्थित ग्राम हरसल्ला में भाद्रपद विक्रमी संवत् 1840 (सन् 1783 ई. में) दिन बुधवार को हुआ था। उनके पिता का नाम कुशल और माता का नाम सिंगारी देवी था। वे लोग हिंदू धर्मावलंबी थे। भजन-कीर्तन गाने में उनकी रुचि थी। जीविका के लिए गोपालन का कार्य करते थे।

नवलजी जब एक वर्ष के थे, उनकी माता का निधन हो गया। स्वधर्म (कर्म) का अनुपालन आवश्यक था। नवलजी ने गोचरण कार्य आरंभ किया। जंगलों में भी वह अध्यात्म-चिंतन करते रहते थे। एक दिन जंगल में ही एक श्वेत वस्त्रधारी ने आकर उनसे अपनी चिलम जलाने को कहा। उसके जाने के बाद नवलजी को ध्यान आया कि वह तो स्वयं कबीरदासजी थे। सोचकर मन में बहुत प्रसन्न हुए। उनका मन अब और भी तीव्र गति से अध्यात्म में लग गया।

उस समय एक अछूत धार्मिक गुरु बहुत चर्चित थे। वे करता राम महाराज के नाम से प्रसिद्ध थे। मेघवाल्क ग्रामवासी उनको बहुत सम्मान देते थे। नवलजी ने उनसे संपर्क किया। वह बावनाथजी से मिले और उस समय के एक प्रसिद्ध संत आशा भारती से भी मिले। सभी लोगों से ज्ञान और साधना के सूत्र अर्जित करके नवलजी ने भी मुसलिम आततायियों से रक्षा को ध्यान में रखते हुए निर्गुण उपासना का मत प्रतिपादित किया।

हिंदू धर्म को सम्मान देने के लिए नवलजी महाराज ने राजस्थान के विभिन्न स्थलों पर लोगों के सामने कई चमत्कार कर दिखाए। जैसे—एक गाय को जिलाया, अजमेर में एक मृत बालक को प्राण-दान दिया, पत्थर के टुकड़ों को स्वादिष्ट मिठाइयों में बदल डाला इत्यादि।

नवलजी का निर्गुण-दर्शन अथवा ज्ञान-दर्शन संत कबीर का ही दर्शन है, जिसमें जीव को ब्रह्म, परब्रह्म और भगवान् माना गया है। इस धर्म को माननेवाले जाति-भेद नहीं मानते। संत श्रेणी के लोग पीतांबरी पहनते हैं, साथ ही छड़ी लगाते हैं। उनकी छड़ी का नाम 'नवलरामबाण' है। छड़ी अनुशासन का प्रतीक है। नवलधर्मी स्त्रियाँ पौड़ी महराजा, जावरीमाई आदि कहकर एक-दूसरे का सम्मान करती हैं। नवलजी की जयंती मनाई जाती है। मोका भंगीवासी टीला स्थित सुलभ शौचालय के पास स्टेशन पर महर्षि नवल आश्रम है, जो जोधपुर के दरबार के हनवंत सिंह महाराज ने 1940 ई. में बनवाया था। इस गुरुद्वारा के वर्तमान प्रबंधक बद्रीराम महाराज हैं।

2.8 हिंदू धर्मरक्षा हेतु स्व का बलिदान

विश्व में मूल्यविहीन कुछ भी नहीं है। कुछ पाने के लिए कुछ देना अथवा खोना

1. डॉ. कृष्ण गोपाल, भारत की संत परंपरा'', पृ. 287-288

ही पड़ता है। हिंदू धर्मरक्षा का भी मूल्य चुकाना पड़ा था। आजादी के लिए भी लोगों ने बहुत बड़ी कीमत चुकाई थी। वाल्मीकि एवं सुदर्शन समाज ने हिंदू धर्मरक्षा हेतु अपनी जिस सबसे बहुमूल्य वस्तु को न्योछावर कर दिया—वह था उसका 'स्व' अर्थात् 'स्वाभिमान'।

जीवन में पुरुषार्थ का मेरुदंड यही स्वाभिमान होता है। आत्मसम्मान से जीना ही स्वाभिमान है। स्वाभिमान की कीमत पर कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं स्वीकार करता है। तन, मन, धन सब चला जाए, परंतु स्वाभिमान बचा रहे—यही सभी चाहते हैं। परंतु स्वाभिमान और अभिमान में अंतर होता है।

विदेशी मुसलिम आक्रांताओं को अभिमान था अपनी तलवार पर, अपनी ताकत पर और विश्वास भी था कि भय दिखलाकर वे सारे हिंदू समाज को इसलाम में परिवर्तित कर देंगे, परंतु वे निश्चित रह गए कि शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि सभी प्रकार से उत्पीड़ित करने के बाद भी हिंदू अपने धर्म की रक्षा में दृढ़ एवं समर्पित रहे। अर्थात् एक ने अपने जैसा बनाने के लिए कठोर कदम उठाए, जबकि दूसरे ने कहा—तुम जैसा हम तभी बनेंगे जब तुम हम जैसा बनकर दिखलाओ।

धर्मपालजी का कहना है कि ऐसे समय स्वाभाविक रूप से आते हैं, जब उक्त प्रकार की ही भाँति दो संस्कृतियों के टकराने का दृश्य दृष्टिगोचर होता है। अंग्रेजों के समय भी यही स्थिति थी और उसके पूर्व मुसलिम शासनकाल में भी यही स्थिति थी—क्रमशः ईसाई और इसलाम में हिंदू धर्म के विलय की अलग-अलग स्थितियाँ। उनके ही शब्दों में 'स्व' अथवा 'स्वत्व' का चित्रण अवलोकनीय है—

'सामान्य रूप से विश्व में दो प्रकार की विचारशैली, व्यवहारशैली दिखती है। एक शैली दूसरों को अपने जैसे बनाने की आकांक्षा रखती है। अपने जैसा ही बनाने के लिए यह जबरदस्ती, शोषण, कत्लेआम आदि करने में भी हिचकिचाती नहीं, यहाँ तक कि ऐसा करने में दूसरा समाप्त हो जाए तो भी उसे परवाह नहीं। दूसरी शैली ऐसी है जो सभी के स्वत्व का समादर करती है, उसके स्वत्व को बनाए रखने में सहायता करती है। ऐसा करने में दोनों एक-दूसरे से प्रभावित होती हैं और सहज परिवर्तन होता रहता है, फिर भी स्वत्व बना रहता है।'[1]

'स्व' का सीधा अभिप्राय 'अपना' होता है। इसे अपना स्वाभिमान कहें अथवा अपनी आजादी कहें या अपना धर्म कहें, कुछ भी कह सकते हैं। स्व के ठीक विपरीत है—'पर' अर्थात् पराया। कुछ लोगों के लिए 'स्व' का बहुत साधारण अर्थ होता है और

1. धर्मपाल : रमणीय वृक्ष (18वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा), अनुवाद—रजनीकांत जोशी एवं कृष्णपाल सिंह भदौरिया, पुनरुत्थान ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2007, भूमिका-3

वे इस 'स्व' को ध्यान में रखे बिना ही कहीं कुछ ऐसा बोल अथवा कह जाते हैं, जो उस वक्त की परिस्थिति के समानांतर प्रभावशाली अथवा निष्प्रभावी (कम प्रभावी) होता है। पं. जवाहरलाल नेहरूजी एक समय कुछ ऐसा ही बोल गए थे। उनके प्रधानमंत्री होने पर जब अमेरिका के राजदूत जान गैलब्रेथ ने बधाई दी तो नेहरूजी ने इस उत्तर से अपना ही नहीं बल्कि पूरे देश के 'स्व' को ठेस पहुँचाई थी—आप ठीक कह रहे हैं कि मैं इस समय अंग्रेजों को हटाकर अपने देश का शासक बन गया हूँ। परंतु सच तो यह है कि मैं भारत पर शासन करनेवाला अंतिम अंग्रेज हूँ।[1]

हिंदू धर्मरक्षा में जिन लोगों ने अपना सबकुछ लुटा दिया और अंग्रेजों से स्वतंत्रता-प्राप्ति हुए देश के कितने नवयुवकों ने फाँसी का फंदा चूम लिया, उस देश के प्रधानमंत्री का यह उत्तर क्या हिंदुस्थान के आम नागरिकों को पसंद आएगा? किस आधार पर विदेशी पंथ के अनुयायी भारतीय शासक यह विश्वास दिलाते हैं कि वे वाल्मीकि जैसी समस्त दलित जातियों के सदैव से ही शुभचिंतक रहे हैं और आगे भी उन जातियों का कल्याण केवल वे ही कर सकते हैं? जिन अंग्रेजों ने भारत को हर तरह से लूटा और यहाँ के हिंदू समाज को गंदी-गंदी लिखित गालियाँ दीं और घोर अपमान किया,[2] भारतीय मुसलिम जो विदेशी इसलाम पंथ वह भी बलपूर्वक हिंदू से मुसलिम बनाए जाने के बाद अपनाया था। उन्हीं विदेशी आक्रांता द्वारा बलपूर्वक बनाई गई वाल्मीकि जाति उसको अपना पूर्वज बतलानेवालों का शासन कभी स्वीकारनेवाली नहीं है, क्योंकि इस समाज का 'स्व' केवल अपने देशरक्षा और हिंदू धर्मरक्षा के लिए ही रहा है।[3]

हिंदू वाल्मीकि एवं सुदर्शन समाज को इस बात पर तनिक भी ग्लानि नहीं है कि उसका 'स्व' चला गया और उससे मलमूत्र साफ करने का काम बलपूर्वक कराया गया, बल्कि उसे इस बात का गर्व है कि उसने प्रत्येक विदेशी इसलामिक शासकों के उत्पीड़न को सहने के बाद भी हिंदू धर्म की रक्षा करने में सफलता अर्जित की, जो उसके अपने 'स्व' से बहुत मूल्यवान वस्तु है।"शीश दिए जो 'स्व' मिले, तो भी सस्ता जान। भाई जैता वाल्मीकि ने अपने पिता की गरदन काटकर गुरु तेगबहादुर की धड़ से लगाई और गुरु तेगबहादुर का सिर लेकर आ गया, गोविंद सिंह ने उसे 'रंगरेटे गुरु के बेटे' का सम्मान दिया जो आज तक किसी सिक्ख को नहीं मिल पाया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि विदेशी मुसलिम आक्रांताओं ने अपनी क्रूरता का अविस्मरणीय इतिहास प्रस्तुत किया, हिंदुस्थान के हिंदू जनसमूह के शारीरिक

---

1. सोनी, सुरेश : हमारी सांस्कृतिक विचारधारा के मूल स्रोत, पृ. 21
2. धर्मपाल : भारत की लूट एवं बदनामी, अनुवाद—सरला मेहता एवं रामगोपाल सिंह जरौन, पुनरुत्थान ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2006
3. डब्ल्यू. एस. विग्रस, दि चमार,"

उत्पीड़न के अनेकानेक प्रयोगों द्वारा और उस कटे पर नमक छिड़कने का काम अपनी कलम से विदेशी इतिहासकार अंग्रेजों ने किया। एक ने तलवार से शरीर चीरा तो दूसरे ने लेखनी से दिल चीरा—धर्म-ग्रंथों में भ्रामक स्थिति लाने के लिए पर्याप्त मिलावट की (प्रक्षिप्तता लाए)। हिंदुस्थान के बारे में और यहाँ के लोगों के बारे में पूर्ण असत्य लिखा। आदिवासी और दलित जातियों पर अधिक प्रयोग किए और उनके बारे में जो भी लिखा, पुस्तक के अंत में अपना उद्देश्य स्पष्ट भी कर दिया—'दलितों का हित ईसाई बन जाने में ही है।' जिन्हें विश्वास न हो, बिग्गम की पुस्तक 'दि चमार्स' के अंतिम पन्नों का अवलोकन कर सकते हैं। इससे उन लोगों के मन से भ्रम निकल सकता है, जिनको आज भी अंग्रेज और मुसलमान ही सगे भाई लगते हैं। 'भारत की लूट एवं बदनामी' में धर्मपालजी ने अंग्रेजों का काला चिट्ठा खोल दिया है। विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के प्रचंड उत्पीड़न एवं भयानक अत्याचार जिन्हें याद नहीं उनके पास 'स्व' है भी, इसमें संदेह लगता है।

वस्तुतः यह सत्य है कि विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के शासन में हिंदुओं पर विशेषतः वाल्मीकि एवं सुदर्शन समाज पर भी भारी अत्याचार हुए थे। उनका हर प्रकार से उत्पीड़न एवं शोषण हुआ था। उनके आक्रांताओं ने बार-बार इस देश को लूटा था। इसलाम की स्थापना के बहाने यहाँ पर स्थायी शासन भी स्थापित किया था, जिसका विरोध हिंदुस्थान की योद्धा जातियों ने अपने बाहुबल से तथा धर्मपरायण एवं धर्मरक्षक लोगों ने अप्रत्यक्ष पूजा-पद्धति का सृजन करके किया था। उसमें वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति के संतों, महात्माओं और धर्म के नाम पर बलिदान हो जानेवालों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया था, इन जातियों के स्वाभिमानों ने अपना 'स्व' तक का बलिदान कर दिया मगर हिंदू धर्म की रक्षा करने में सफल रहे।

□

अध्याय-3

स्वाभिमान भंग कर बनाया सफाईकर्मी

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि जातियों को मध्ययुगीन विदेशी इसलामिक आक्रांताओं एवं शासकों ने एक ऐसा नाम दिया जिसका सीधा अर्थ था स्वाभिमान भंग होना, परंतु यह शब्द अनर्थ करनेवालों की दृष्टि में अनावश्यक त्रुटिपूर्ण विवेचना का विषय बन गया। अंग्रेजों ने भगवान् शिव को चढ़ाए जानेवाले प्रसाद (भाँग) को घिनौना स्वरूप प्रदान करते हुए उसे भंगी शब्द से जोड़ दिया और कहा—'जो भाँग खाते हैं वे भंगी कहलाए।'[1] शिवभक्तों में इस प्रसाद के सेवक भंगेड़ी कहे जाते हैं, परंतु भंगी नहीं कहे जाते। यह तो शिवभक्तों को गाली हुई। भगवान् शिव का अपमान हुआ।

भंगी (सफाईकर्मी) वे कहलाए जिनका स्वाभिमान भंग करके उनको मल-मूत्र साफ करना एवं उसे किसी बरतन में रखकर सिर पर उठाकर दूर ले जाकर फेंकना होता था। वह अस्वच्छ एवं अपावन पात्र गोमांसभक्षी इसलामिक शासकों और उनके परिवारों के उदर का कचरा होता था। जिसे देखने से घृणा होती थी, उसे हमारे धर्मरक्षक और देशरक्षकों ने किस परिस्थिति में सिर पर उठाकर फेंका होगा, सोचकर उनकी बेबसी का आभास हो जाता है, परंतु वे करते क्या? शासन-सत्ता से टकराने की शक्ति नहीं रह गई थी। इससे बचने का मात्र एक ही उपाय था कि वे इसलाम स्वीकार कर लेते। परंतु धन्य थे वे हिंदू हृदय सम्राट लोग जिन्होंने अपने स्वाभिमान को मिट्टी में मिल जाने दिया, फिर भी इसलाम थोपनेवालों को मुँहतोड़ उत्तर दिया।

उनमें हिंदू गर्व एवं हिंदू स्वाभिमान झलकता था। बोध होता था कि वे वास्तव में

1. क्रुक, डब्ल्यू : दि ट्राइब्स एंड कास्ट ऑफ नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज अवध, भाग-1, 1896, संबद्ध ग्रंथ—श्यामलाल (पूर्वोद्धृत), पृ. 16

प्रखर एवं कट्टर हिंदू हैं और आज उन पर शेष हिंदुओं को गर्व भी होता था। दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों में वे पराजित और युद्धबंदी होते गए। राजपूतों की आपसी कलह, संगठन शक्ति के अभाव और अस्त्र-शस्त्रों की अल्पता ने उन्हें अंततोगत्वा पराजय का मुँह देखने को विवश किया और उनके सामने आई धर्म तथा स्वाभिमान में से किसी एक का चयन करने की समस्या। उस परिस्थिति में भी उन्होंने धर्म चुना और धर्म की रक्षा को ही अपनी अंतिम इच्छा कहा।

इसलाम अस्वीकारने पर विदेशी मुसलिम आक्रांता शासकों ने उन पर भयानक अत्याचार किया। उनका धर्माभिमान एवं स्वाभिमान भंग करके उनको भंगी नाम दिया गया। उन्होंने मैला ढोना स्वीकार किया, परंतु इसलाम अस्वीकार कर दिया। उस कर्म से वे हमेशा के लिए अस्वच्छ एवं अपावन हो गए और स्वच्छता तथा पवित्रता के अभाव में अपने ही हिंदू समाज में उनको अछूत कहा गया, साथ ही अस्पृश्यता का भेदभाव रखा गया। प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं तथ्यों का विवेचन किया गया है।

3.1 हिंदू गर्व, बोध एवं स्वाभिमानी हिंदू

गर्व बोधगम्य है। गर्व एक मर्यादा है। यह एक प्रतिष्ठा है। गर्व स्वाभिमान का प्रत्यक्षीकरण है। गर्व अपने स्वत्व की गरिमा का बोध कराता है। जिसमें गर्व नहीं, जिसमें अपनी गरिमा को बनाए रखने का चिंतन नहीं और जिसने अपने गौरवपूर्ण गर्व को गिरवी रख दिया हो, वह तो पशु बन जाता है, मनुष्य रह ही नहीं जाता है।

गर्व वस्तुतः हिंदुस्थान की उपज है और इसका महत्त्व हिंदू समाज तक ही सीमित है। विदेशी आक्रांताओं ने अपनी क्रूरता और रक्तपिपासु तलवार पर अभिमान किया और अंग्रेजों ने अपनी लड़ानेवाली काली करतूतों पर घमंड किया। उनमें अपनी-अपनी गरिमा का ध्यान नहीं था। लेशमात्र भी होता तो एक बार क्षमायाचक बन जाने के बाद, पुनः अपनी मनहूस सूरत दिखलाने आए ही नहीं होते।

गर्व का उदाहरण प्रस्तुत किया हिंदू राजा जयपाल ने। कई बार अरबों और महमूद को मार भगाने के बाद 1001 ई. में अप्रत्याशित ढंग से पराजित हो जाने पर उसने अपने हाथों चिता लगाकर उसमें प्रवेश कर स्वयं को भस्म कर दिया।[1] परंतु 1178 ई. में चौलुक्य राजमाता नायकी देवी से बुरी तरह परास्त होकर भागनेवाला मुहम्मद गोरी इतना निर्लज्ज निकला कि 1191 ई. में तराइन में पृथ्वीराज से हारने पर भी विषपान नहीं किया।[2] गोंडवाना की रानी दुर्गावती से अकबर को और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई से अंग्रेजों को लड़ते हुए जो शर्म आई थी, उसी को वे अपना गर्व मानते थे।

---

1. श्रीवास्तव, अशोक : दिल्ली सल्तनत का उत्थान और पतन, पृ. 27
2. वही, पृ. 59 एवं 78-79

गर्व का एक ज्वलंत प्रमाण प्रस्तुत किया हिंदू वाल्मीकि जाति ने। उसे हिंदू होने का जो गर्व एवं अभिमान था, उसने अंत तक बचाए रखा। उनको यदि हिंदू गर्व का बोध न होता तो वे इसलाम स्वीकार करके आराम का जीवन व्यतीत कर सकते थे। परंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे कायर नहीं थे, इसलिए अपनी वीरता पर उनको गर्व था और उसी गर्व का बोध होने से वह हिंदू धर्मरक्षा हेतु डटे रहे।

हिंदू वाल्मीकि जाति के लोग जिस हिंदू शब्द पर अपने को बलिदान करने हेतु उद्यत थे, उस हिंदू शब्द का पूरा ज्ञान भी रखते थे। यह दो शब्दों का युग्म है—हिंदू। 'हि' शब्द मूलतः सत्यान्वेषित बीज मंत्र है। उपासना एवं कर्मकांड के विविध मंत्रों में इन बीजमंत्रों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ—भगवती दुर्गा की उपासना हेतु प्रयुक्त किए जानेवाले विविध बीज मंत्रों में 'ह्रीं क्रिं चामुंडाए विच्चे' मंत्र प्रमुख है। यानी 'हिं' का शब्दार्थ बोध है—शक्ति। वैसे ही जैसे 'हं' शब्द शिवार्थ प्रयोग होता है। 'दू' शब्द की संरचना भी भावबोधक है, यथा—दु, दू, द्वः यानी दो प्रकार।

संस्कृत व्याकरण में संज्ञा एवं सर्वनाम हेतु प्रयुक्त भावबोधक अवधारणाएँ शब्द में और क्रिया के लिए धातु रूप से इंगित की जाती हैं। प्रस्तुत विश्लेषण के अंतर्गत इन्हीं भाव रूपों का सहयोग लिया गया है। इस परिप्रेक्ष्य में हिंदू शब्द एक संक्षिप्त भावार्थ संकेत के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है, जिसका अर्थ होता है दो प्रकार की शक्ति—भौतिक शक्ति और आध्यात्मिक शक्ति। 'हिंदू' शब्द का सूत्र खोलने पर यानी 'डीकोड' करने पर शक्ति का ही प्रकारांतर भाव प्राप्त होता है। तात्पर्य यह कि दो प्रकार की शक्ति का संयुक्त भाव हिंदू है।[1]

हिंदू शब्द सिंध यानी हिंद की पहचान है। हिंद हजारों हजार पूर्व से मानवीय आकर्षण रहा। पैगंबर मुहम्मद के जन्म के लगभग 2300 वर्ष पूर्व उक्त देश के एक प्रसिद्ध कवि लवी-बिन-अखतब-बिन-तुर्फा[2] ने हिंद की सराहना में कहा था कि हे पुण्यभूमि हिंद। तू धन्य है, क्योंकि भगवान् ने स्वयं ज्ञान के लिए तेरा चयन किया है। हिंद के ऋषि-मुनियों द्वारा भगवान् के ज्ञान का प्रकाश चार वेदरूपी प्रकाशस्तंभों के जरिए समूचे विश्व को प्रकाशमान कर रहा है। यथा—

अया मुबारकेल, अरज यू रोये नोहा मिलन् हिंदे।
व अरादकल्लाहः भज्योनज्जेल् जिकरतुन॥ 1॥
वहलतजल्लीयतुन्एनानेसहवीअखअतुन्जिक।
वहाजे ही योनज्जेलुर्रसुल् मिलन् हिंदतुन्॥ 2॥

---

1. शास्त्री, डॉ. विजय सोनकर : दलित हिंदू की अग्नि परीक्षा, पृ. 4-5
2. लवी-अखतब-बिन-तुर्फा : सेअरुअल अकूल, पृ. 157

उम्र-बिन-हश्माम[1] ने भी कुछ इसी तरह से कहा है—'हे प्रभो! मेरी पूरी जिंदगी के बदले में मुझे केवल एक दिन हिंद में रहने का अवसर दो, क्योंकि वहाँ पहुँचने के पश्चात् आदमी जीवन-मुक्त हो जाता है। वहाँ (हिंद) की यात्रा के कारण सभी पावन कार्यों की सफलता मिलती है तथा (हिंदू) आदर्श-गुरुओं का सत्संग भी प्राप्त होता है। यथा—

वह सहबी केयाम फी मकामिल् हिंदे यौमन्।
व यकूलत् लातहजन् फ इकक तबज्जरू॥ 3॥
मअस्सयरे अखलाकुन् हसनन् कुत्लहुम्।
नजूमुन् अजाअत सुम्म गाबुल हिंदू॥ 4॥

हिंदू सद्गुण है। हिंदू सदाचार है। हिंदू गर्व-बोध है। हिंदू सनातन है। हिंदू आक्रोश नहीं है। हिंदू असत्य नहीं है। हिंदू हिंसा नहीं है, हिंदू इसलाम और ईसाई से बहुत ऊँचा है। इनसे हिंद की तुलना करना और इसे (हिंद को) किसी मुसलिम देश से आठवीं शताब्दी में लाए जाने[2] का दिग्भ्रमित आक्रोश की ओर संकेत है, कुंठित मानसिकता का द्योतक है और हिंदू गर्व-बोध एवं हिंदू-स्वाभिमान की अवधारणा संबंधी त्रुटिपूर्ण अज्ञानता है।

हिंदू नाम ईरानियों ने नहीं दिया है जिसका उल्लेख उनके धर्मग्रंथ अवेस्ता में मिलता है, बल्कि हिंदू नाम पूर्णतया भारतीय है जिसका स्रोत वेदों के सिंधु शब्द में मिलता है। भारतीय फारसी शब्दकोशों में हिंदू का अर्थ अपमानजनक शब्दों अर्थात् काला, चोर आदि के रूप में द्वेषवश लिखा गया है, जबकि अरबी-फारसी भाषा में हिंद का अर्थ है सुंदर एवं भारत का रहनेवाला आदि। इसका प्रयाम यह है कि बगदाद के युवक-युवतियों के नाम अलहिंद, विनत हिंद आदि रखे जाते हैं। कुछ लोग हिंदू के स्थान पर आर्य कहना अधिक पसंद करते हैं, किंतु रामकोश[3] में लिखा है कि हिंदू दुष्ट, दुर्जन एवं निंदक नहीं होता है। वह तो सद्धर्म का पालक, सदाचार, विद्वान, वैदिक धर्म में निष्ठावान और आर्य होता है। यथा—

---

1. दिल्ली स्थित बिड़ला मंदिर की गीता-वाटिका में संगमरमर की शिलाओं पर उल्लिखित उक्त पंक्तियाँ मुहम्मद पैगंबर साहब के चचाजान उम्र-बिन-हश्शाम (अबुल हकीम ज्ञान का पिता) की है जिनको इसलाम न स्वीकारने के कारण 'अवुल जिहल्' (अज्ञान का बाप) कहकर अपमानित किया गया।
2. विद्रोही, एम.आर. दलित दस्तावेज, सम्यक प्रकाशन, 2004 पृ. 21
3. रामकोश

हिंदूर्दुष्टो न भवति नानार्यों न विदूषकः।
सद्धर्म पालको विद्वान् श्रोत धर्म परायणः॥

यही हिंदू गर्व-बोध किसी भी हिंदू को हिंदू धर्म, हिंदू संस्कृति, हिंदू लोकजीवन-पद्धति, हिंदुत्व और हिंदुस्थान के प्रति स्वाभिमानी बनाता है। वाल्मीकि जाति में भी हिंदू-गर्व-बोध ने हिंदुओं को स्वाभिमानी बनाया और उसने मैला ढोना स्वीकार किया परंतु अपना हिंदू धर्म नहीं छोड़ा। विदेशी आक्रांताओं ने उनके स्वाभिमान को ही एक चुनौती रूप में लिया था और इसीलिए उनके स्वाभिमान को भंग किया था ताकि स्वाभिमान भंग हो जाने पर वाल्मीकि समाज के लोगों में से हिंदू गर्व-बोध भी विलुप्त हो जाए। परंतु ऐसा नहीं हुआ। वाल्मीकि समाज का हिंदू गर्व-बोध बना रहा, केवल स्वाभिमान ही भंग हो गया।

3.2 दुर्भाग्यपूर्ण पराजय एवं हिंदू युद्धबंदी

हिंदुस्थान पर हुए विदेशी आक्रमणों के परिणाम जब भी भारत के विरुद्ध हुए, तो उनके उस पराजय का कारण प्रायः उनका दुर्भाग्य ही होता था जिसके चलते वे पराजित और युद्धबंदी हुआ करते थे। इसके लिए क्रमशः कुछ आक्रमणों का अवलोकन करना जरूरी होगा।

देवल से 636 ई. में अरब सेना बुरी तरह मारकर भगाई गई थी, परंतु 712 ई. में जब उस पर अरब सेना ने मुहम्मद-बिन-कासिम के नेतृत्व में आक्रमण किया तो दाहिर का पुत्र भयंकर प्रतिरोध करने के बाद भी दुर्भाग्यपूर्ण तरीके से पराजित हो गया। जाटों और मेढ़ों के साथ ही अत्यधिक संख्या में बौद्धों ने भी आक्रांताओं का साथ दिया, क्योंकि वे सभी ब्राह्मण राजा दाहिर से ईर्ष्या रखते थे।

आधुनिक हथियारों के अभाव में भी देवलवासी बहादुरी से लड़ते रहे। देवल मंदिर के शिखर पर ध्वजा के पास रक्षाकवच लगा हुआ था, जिससे देवल के पूरे हिंदू सुरक्षित रहे। अरब सेना यह सोचकर परेशान थी कि उनके सारे प्रहार बेकार क्यों जा रहे हैं। किंतु 9वें दिन किसी बौद्ध ने उस रक्षाकवच की जानकारी अरब सेना को दे दी। कासिम ने पत्थर फेंकनेवाली मशीन से ध्वजसहित रक्षाकवच गिरा दिया। इसी बीच देवल के सैनिकों ने हथियार रख दिए। अपनी पराजय को इस तरह ईश्वर की इच्छा मानकर हिंदू अप्रत्याशित ढंग से पराजित हो गए।[1]

9वें दिन देवल का पतन होने के बाद उसे तीन दिनों तक आततायी लूटते रहे। 17 वर्ष से अधिक आयु के स्त्री-पुरुष मार दिए गए और सुंदर कन्याएँ बलपूर्वक

1. महाजन, बी.डी. : मध्यकालीन भारत, भाग-1, पृ. 13-14

बगदाद भेज दी गईं और लगभग दस हजार मेढ़ों एवं जाट युद्धबंदियों ने कासिम की सेना में रहकर युद्ध करने की शर्त पर अपनी जान बचा ली। 700 सुंदर बौद्ध भिक्षुणियों ने इसलाम स्वीकार कर लिया जिन्हें बगदाद भेज दिया गया। इसके अलावा 30 हजार लोगों को दास बनाया गया था।[1]

ब्राह्मणबाद का घेरा 6 माह तक चला और लगभग 30 हजार मुसलिम सैनिक मार दिए गए, परंतु मेढ़ों और जाटों की सेना ने विश्वासघात किया। दाहिर की अरब सैनिक टुकड़ी भी उस दाहिर को धोखा दे गई और उसने कासिम का साथ दिया, क्योंकि वह उनकी ही जाति-बिरादरी की थी। इस तरह दाहिर भी अनेक हिंदू राजाओं के असहयोग से मारा गया।[2] उसे विश्वास था कि अरब सेना नदी पार नहीं कर पाएगी, जबकि नावों का पुल बनाकर अरब सेना नदी पार कर गई। दाहिर को नावों का पुल तोड़ने का प्रयास करना चाहिए था और आक्रामक युद्ध करना था, किंतु उसने रक्षात्मक युद्ध किया और पराजित हुआ।

मुल्तान के लोगों ने भी कासिम की सेना को भारी क्षति पहुँचाई थी, परंतु किसी भेदी ने यह बतला दिया कि नदी का एक स्रोत किला तक जाता है और लोग उसी का जल पीते हैं। इस पर कासिम ने उस जलस्रोत को रोक दिया। नदी में जब तक पानी था, लोग पीते और लड़ते रहे, परंतु पानी के अभाव में स्त्री-पुरुष और बच्चे जब दम तोड़ने लगे तो कासिम को मुल्तान जीतने और लूटने का अवसर मिला।

सन् 986-87 ई. में गजनी के शासक सुबुक्तगीन ने हिंदूशाही शासक जयपाल पर आक्रमण कर दिया। जयपाल भी स्वाभिमानी था। लगमान के पास दोनों ओर की सेनाएँ लड़ने लगीं। जयपाल बहादुरी से लड़ता रहा। युद्ध कई दिनों तक चला। मुसलमानी सेना पराजय की ओर जाती नजर आई, परंतु उसी समय बर्फ गिरने लगी। इतना हिमपात हुआ कि जयपाल की सेना त्रस्त हो गई।

जयपाल ने इसे देवी की अकृपा माना और सोचा कि शायद ईश्वर उसे संधि के लिए प्रेरित कर रहा है। यही सोच सुबुक्तगीन के मन में भी आ रही थी। दुर्भाग्य से पहला प्रस्ताव जयपाल ने कर दिया। उसके अंधविश्वास ने बहुत शीघ्र उसे नतमस्तक कर दिया। सुबुक्तगीन को अच्छा अवसर मिला और उसने संधि कर ली। अनेक वस्तुएँ संधि के अनुसार प्राप्त कीं और छल करके जयपाल को कमजोर करके उसके नगर को लूटा और अनेक लोगों को युद्धबंदी बनाया।[3] 991 ई. में उसने पुनः जयपाल पर आक्रमण किया और अनेक लोगों को पुनः युद्धबंदी बनाया।[4]

---

1. श्रीवास्तव, अशोक : दिल्ली सल्तनत का उत्थान व पतन, पृ. 15-16
2. महाजन, वी.डी. (पूर्वोद्धत), पृ. 15
3. महाजन, वी.डी. (पूर्वोद्धत), पृ. 41
4. श्रीवास्तव, अशोक : दिल्ली सल्तनत का उत्थान और पतन, पृ. 26

हिंदू शाही शासक जयपाल अभी सँभल भी नहीं पाया था कि सुबुक्तिगीन के पुत्र महमूद ने जयपाल की कमजोरी का नाजायज फायदा उठाते हुए 1000-1001 ई. में उस पर पुनः आक्रमण कर दिया। इस बार उसने जयपाल के गले से दो लाख दीनार के मूल्य का हार तक उतरवा लिया और 5 लाख स्त्री-पुरुषों को युद्धबंदी बनाया। 27 नवंबर, 1001 ई. को यह सब कुकृत्य करने के बाद उसने जयपाल को 250,000 दीनार और 50 हाथी देने की शर्त पर मुक्त किया। जयपाल एक स्वाभिमानी शासक था। इतिहास में यह उल्लेख है कि तीन बार पराजित होने के कारण उसने 1002 ई. में अपने हाथों चिता बनाकर उसमें जीते जी अपने को भस्म कर दिया।[1]

जयपाल की ही तरह उसके पुत्र आनंदपाल की भी दुर्भाग्यपूर्ण पराजय हुई थी और उस समय भी लाखों हिंदू युद्धबंदी बनाए गए थे। यह घटना सन् 1089 ई. की है। यह महमूद का छठवाँ आक्रमण था।[2] युद्ध में 30 हजार खोखरों ने अचानक आक्रमण करके महमूद के 3-4 हजार सैनिक पल भर में मार दिए। इसलामिक सेना में भगदड़ मच गई। हिंदू विजय की ओर अग्रसर हुए। परंतु दुर्भाग्य से प्रज्वलित अलकतरा का गोला आनंदपाल के हाथी के मस्तक पर चिपका और हाथी भड़ककर भाग चला। आनंदपाल के हाथी के भागने को हिंदू सैनिकों ने गलत समझ लिया। उन्होंने सोचा कि उनके राजा का आदेश भागने को हुआ है। युद्ध से विमुख हुए हिंदू बंदी बना लिए गए, नगर लूटा गया और जब तक आनंदपाल वापस आता, विजय पराजय में बदल चुकी थी।[3] लाखों हिंदू युद्धबंदी हो चुके थे।

हिंदुओं की उक्त दुर्भाग्यतापूर्ण पराजय से उत्साहित महमूद ने नगरकोट को लूटा और अपार संपदा के साथ अनेक युद्धबंदी (स्त्री और पुरुष) भी साथ ले गया। लूट का माल इतना अधिक था कि उसके पास ढोने के लिए कोई साधन नहीं रह गया था इसलिए उसे बहुत सा धन विवश होकर छोड़ देना पड़ा था। 7 लाख स्वर्ण दीनार, 700 मन चाँदी के पात्र, 200 मन शुद्ध स्वर्ण मुद्राएँ, 2 हजार मन अपरिष्कृत रजत और 20 मन पन्ने, हीरे, मोती आदि बहुमूल्य मणियाँ, सूस की पोशाक, सफेद चाँदी का मकान, रूमी वस्त्र का चंदोवा, सिंहासन—ये सब ले जाए गए। उसने गजनी में इनकी प्रदर्शनी लगवाई, जिसका वर्णन इन शब्दों में हुआ—'अग्नि की भाँति चमकनेवाले रत्नों, पन्ने, मोतियों और हीरों और हिमखंडों में जमाई गई मदिरा जैसा आभावाले लालो, मरकत मणियाँ और भार व आकार में अनार की भाँति रत्नों की सार्वजनिक प्रदर्शनी की।'[4]

---

1. महाजन, पृ. 43 एवं श्रीवास्तव, पृ. 27
2. महाजन, पृ. 44
3. श्रीवास्तव अशोक (पूर्वोद्धृत), पृ. 28
4. महाजन, वी.डी., पृ. 45

1014 ई. में थानेश्वर स्थित चक्रस्वामिन मंदिर लूटा और अपार धन-दौलत के साथ 2 लाख युद्धबंदियों (जिसमें स्त्रियों की संख्या अधिक थी) को साथ ले गया। दोआब के अभियान में भी 53 हजार युद्धबंदी ले जाए गए थे।[1] बी.डी. महाजन ने यह संख्या 55 हजार बतलाई है।[2] 1178 ई. में चौलुक्य रानी नाइकी देवी के हाथों मरते-मरते जीवनदान प्राप्त करने और 1191 ई. में पृथ्वीराज चौहान से बुरी तरह पराजित मुहम्मद गोरी[3] जब 1192 ई. में पुनः तराइन के मैदान में आ पहुँचा, उस[4] समय पृथ्वीराज का सेनापति स्कंद आंतरिक युद्धों में फँसा हुआ था। दुर्ग की रक्षा के लिए बहुत कम सैनिक थे। मुहम्मद गोरी के पास 1 लाख 20 हजार अच्छे घुड़सवार थे, जिन्होंने इसके पूर्व के पराजयवाले युद्ध में भाग नहीं लिया था। इसीलिए पिछली मार की भयानक घबराहट उनमें न थी। दूसरी ओर पृथ्वीराज से चौलुक्य और चंदेल दोनों खार खाए बैठे थे। जयचंद तो हाथ धोकर पीछे पड़ा था। गोरी को तुरंत युद्ध के लिए उसी ने बुलाया था और उसके पूर्व पृथ्वीराज चौहान के सेनापति स्कंद को गहड़वाल राज्य के राजा जयचंद के साथ युद्ध में फँसा दिया था। इस तरह का षड्यंत्र होने पर बहुत कम सेना पृथ्वीराज के पास थी, परंतु मुसलिम इतिहासकारों ने असत्य उल्लेख किया है कि हिंदू राजा के सहयोग हेतु अनेक हिंदू राजा और उनके सैनिक आए हुए थे और कुल 3 लाख सेना पृथ्वीराज के साथ लड़ने हेतु मैदान में डटी थी।[5] चौहान ने तुर्कों को मारने या अपने प्राण दे देने की शपथ ली थी।[6] वास्तव में केवल 20 हजार ही सेना पृथ्वीराज चौहान के पास उस समय विद्यमान थी।

पृथ्वीराज को चाहिए था कि स्कंदगुप्त के वापस आ जाने तक वह युद्ध को टालता, परंतु उसने हिंदू स्वाभिमान को चुनौती मिलते ही थोड़े से ही सैनिकों के साथ अभियान शुरू कर दिया। पूर्व युद्ध में भी उसकी लापरवाही का ही नतीजा था कि यह नया युद्ध शुरू हुआ था। यदि उसने पिछली बार मुहम्मद गोरी को भागकर लाहौर सुरक्षित लौटने न दिया होता और उसी समय वहीं घेरकर मार डाला होता तो यह दिन न आया होता।[7] 13 महीने तबरहिंदा पर घेरा डाले रहने के बदले उसे लाहौर घेरना चाहिए था।

---

1. श्रीवास्तव, अशोक, पृ. 32
2. महाजन, पृ. 48
3. तबकातये नासिरी, खंड-1, पृ. 460
4. इलियट एंड डाउसन, खंड-2, पृ. 212, 200, मूविया, एस.के. : एनल्स ऑफ डेली बादशाहत, पृ. 68-74 तथा तबकात-ए-नासिरी (रैवर्टी अनुवाद), खंड-1, पृ. 457-69 केवल इसी युद्ध का आक्षेप है पूर्व के युद्धों एवं छापे का उल्लेख नहीं है।
5. रासो सार, पृ. 415
6. ब्रिग्स, फरिश्ता, खंड-1, पृ. 175
7. श्रीवास्तव, अशोक : डिसइंटीग्रेशन ऑफ नार्थ इंडियन हिंदू स्टेट्स, वॉल्यूम-1 पृ. 65

दूसरी बात यह कि जब मुहम्मद गोरी की सेना दुबारा आ ही गई तो उसे पत्र देकर वापस जाने के लिए कहने की क्या आवश्यकता थी? चौहान ने पत्र दिया था कि वह वापस लौट जाए अन्यथा उसे समाप्त कर दिया जाएगा। इस पर गोरी ने उत्तर दिया कि उसने अपने भाई को पत्र लिखा है, जो उत्तर आएगा तद्नुसार वह युद्ध करेगा या वापस लौट जाएगा।[1] ऐसा उत्तर देकर वह मैदान में अपनी स्थिति को व्यवस्थित करने लगा था। चौहान को भरोसा था कि उसके भाई का उत्तर अवश्य वापस आ जाने का ही आएगा।

यह गलत सोच चौहान के पराजय का कारण बनी। समय लेकर जिस तरह मुहम्मद गोरी ने तैयारी की वैसे ही चौहान को भी अपने स्कंद सेनापति एवं सेना को बुला लेना चाहिए था और अधीनस्थ सामंती सेनाओं को भी एकत्रित कर लेना चाहिए था। परंतु अपने थोड़े से राजपूतों के सहारे लाखों मुसलिम आक्रांताओं से युद्ध करना बहुत महँगा पड़ा। इस तरह छलपूर्वक एवं दुर्भाग्यपूर्ण तरीके से यह युद्ध पृथ्वीराज हार गया। वह खुद युद्धबंदी बना[2] अथवा मारा गया।[3] लाखों हिंदू युद्धबंदी बनाए गए।

जयचंद ने जब गोरी के लाखों सैनिक देखे थे तो उसे चौहान सेनापति स्कंद से युद्ध न करके उसके साथ ही चौहान के सहयोग से तराइन पहुँच जाता। इस तरह चौहान से हमेशा के लिए मित्रता भी हो जाती और मुहम्मद गोरी बुरी तरह मारा गया होता। परंतु, दुर्भाग्य ने उसके मन में यह अच्छी सोच पैदा न होने दी। स्कंद से पराजित होकर वह आराम भी नहीं कर पाया था कि चौहान को हराने के बाद, गोरी सेना ने उस पर भी आक्रमण कर दिया। हाथी पर बैठे जयचंद का दुर्भाग्य था कि गोरी के एक सैनिक कुतुबुद्दीन का तीर उसके आँख में लगा और वह हाथी से नीचे गिरकर मर गया। गोरी विजयी हुआ और लाखों हिंदुओं को युद्धबंदी बना लिया गया।[4]

3.3 धर्म और स्वाभिमान में एक का चुनाव

हिंदू वाल्मीकि समाज में धर्म और स्वाभिमान, दोनों का महत्त्व है, परंतु दोनों में से किसी एक के चयन की बात आती है तो इस जाति के लोग सर्वप्रथम धर्म का चयन करते हैं। यह प्रवृत्ति प्राचीन हिंदू सभ्यता और संस्कृति में भी विद्यमान पाई जाती है। इसे धर्म और स्वाभिमान की अलग-अलग व्याख्याओं में देखा जा सकता है।

हिंदू संस्कृति में धर्म को पृथ्वी पर स्वयंभू और पूर्णतः प्रकृतिमार्गी बताया जाता है। इसका आधार वेद ग्रंथ हैं। धर्म का अभिप्राय धारण करने से होता है। धारयः इति

---

1. इलियट एंड डाउसन का हिंदी अनुवाद, भाग-2, पृ. 157
2. वही
3. वही, पृ. 215
4. महाजन, बी.डी., पृ. 70

धर्मः। यानी सामाजिक नियम-कानून को धारणा करना धर्म है, क्योंकि इससे एक व्यवस्थित समाज का स्वयमेव संचालन संभव होता है।

धर्म का नामकरण हिंदुस्थान के ऋषियों, मुनियों एवं देवताओं ने किया है। धर्म का अभिप्राय रिलीजन नहीं है, क्योंकि धर्म संज्ञा है और संज्ञा का अनुवाद किसी भाषा में नहीं होता। अतएव धर्म का अनुवाद किसी भी राष्ट्रीय अथवा अंतरराष्ट्रीय भाषा में धर्म ही होता है, रिलीजन, मजहब अथवा अन्य कुछ भी शब्द धर्म के लिए उचित प्रयुक्त नहीं हो सकते हैं।

ऋग्वेद में धर्म शब्द का प्रयोग हुआ है। दयानंद भाष्य के अनुसार ऋग्वेद (1-22-28) में धर्म शब्द का अर्थ 'वस्तु का अभाव' से किया गया है। धर्म शब्द का अर्थ है जिसके द्वारा संसार का धारण एवं रक्षण किया जाए। महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन के प्रथम सूत्र में लिखा है कि धर्म वह है जिससे अभ्युदय, श्रेय एवं सिद्धि प्राप्त हो सके। महर्षि दयानंद सरस्वती और कणाद ने धर्मभाव को क्रियाभाव में देकर यह तो स्पष्ट कर दिया है कि समाज में रहकर कुछ विशिष्ट कार्य करने के फलस्वरूप ही धर्म का अनुपालन होगा। यानी धर्म मनुष्य की वह धारण करने योग्य जीवन-पद्धति है जिससे उसे लौकिक भोगों एवं मृत्यु के उपरांत पारलौकिक कामनाओं की पूर्ति होती है।

धर्म के इतिहास को काल-सीमा से आबद्ध करना अत्यंत दुष्कर है। यह भी प्रश्न अनुचित है कि धर्म का निर्माण किसने किया। प्राकृतिक संस्कृति के निर्माण का कार्य क्या मानव के बस की बात है? ब्रह्मांड के सृजन के साथ ही प्रकृति और प्राकृतिक नियमन भी अस्तित्व में आए। यह सब ब्रह्म-सत्ता के अधीन है। ऐसे में प्रकृति की क्रिया तथा प्रतिक्रिया ही स्वयं में सिद्धांत बनकर मानव समाज के समक्ष दृष्टिगोचर हुआ है।

धर्म और संस्कृति की तुलना में नैतिकता (मोरिलिटी) कुछ अधिक व्यवहृत होती है, क्योंकि सामाजिक व्यवहारों के आदान-प्रदान में उसका विशेष महत्त्व होता है। इसका नियंत्रण भी एक अनुरोध ही होता है। नैतिकता कर्तव्य की भावना, अर्थात् उचित और अनुचित पर बल देती है।[1] नैतिकता का तात्पर्य नियमों की उस व्यवस्था से है जिसके द्वारा व्यक्ति का अंतःकरण अच्छे और बुरे का बोध प्राप्त करता है। नैतिकता का संबंध किसी अलौकिक शक्ति से नहीं होता है। जिस समाज के लिए जो भी व्यवहार कल्याणकारी होते हैं, क्रमशः वे ही नैतिकता का रूप ले लेते हैं। ये दस धर्म-तत्त्वों में क्रियाचित होते हैं—धृति, क्षमा, दम (साधन-तपस्या), आस्तेय (चोरी न करना), शौच (पवित्रता), इंद्रिय-निग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य तथा अक्रोध यानी अहिंसा।[2]

धर्म का वेदकालीन स्वरूप सदैव सनातन ही बना रहा, परंतु उत्तर-वैदिककाल

---

1. ह्यूम, किंग्सले डेविस : सोसाइटी, पृ. 78
2. मनुस्मृति, 6/92

में सनातन धर्म के मौलिक गुणों के स्थान पर वैयक्तिक हितों को संतुष्ट करनेवाले मानवीय गुणों को प्रश्रय दिया जाने लगा, जिससे कुछ विकृत मान्यताएँ भी समाज में स्थापित और व्यवहृत होने लगीं। हिंदू जीवन-शैली में यज्ञ की प्रधानता स्थापित होने के साथ ही शुद्धता एवं स्वच्छता यानी पवित्रता को अत्यधिक महत्त्व दिया जाने लगा। समाज में बहिष्कृत लोगों का भी एक समूह था जो किसी-न-किसी असामाजिक कृत्य के लिए सामान्य जन से अलग जीवन निर्वाह करने को बाध्य थे, परंतु उस समय भी दलित अथवा भंगी जैसी जातियों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था।[1]

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि सफाईकर्मी जैसी जातियों का प्रादुर्भाव मध्ययुग में हुआ। उस समय अरब के विदेशी आक्रांता शासकों द्वारा बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन कराया जा रहा था। उस समय इसलाम अस्वीकार करनेवालों को मार दिया जाता था या उनका स्वाभिमान भंग करके अपवित्र कार्यों में बलपूर्वक लगाकर उनकी सामाजिक प्रस्थिति को नीचा बनाया जाता था। बलपूर्वक मुसलमान बनाए गए हिंदू अवसर पाते ही पुनः हिंदू धर्म में लौट आते थे। हरिहर-बुक्का ने यही किया था।[2] सन् 1320 ई. में सुल्तान खुसरोशाह ने यही किया था। वह प्रथम भारतीय मुसलमान था जो उन्नति करके सुल्तान बना था। उसके समय में महलों में मूर्ति पूजा प्रारंभ हो गई थी। जिस पर कहा गया है कि उसने हिंदू राज्य स्थापित करने का प्रयास किया था, क्योंकि वह हिंदू से मुसलमान बनाया गया था।[3] सन् 1305 ई. में जब ऐनुल्मुल्क मुल्तानी के हाथ लगे थे। खुसरोशाह बचपन से ही इसलाम में दीक्षित था। उसका नाम हसन रजा रखा गया था। वह गुजरात का पटवारी था, किंतु पूर्व में बरबारी जाति का हिंदू था जिसे परमार राजपूत कहते हैं। बरनी, इसामी, याहिया बिन सरहिंदी, निजामुद्दीन, ब्रिग्स, थामस, डब्ल्यू. हेग इत्यादि इतिहासकार हसन राजा को तुच्छ मानते एवं उससे घृणा करते पाए जाते हैं। उसे मूर्तिपूजक, मुसलिम लड़कियों का अपहर्ता, कुरान की प्रतियाँ टुकड़े-टुकड़े करनेवाला और अपदस्थ हिंदू राजा को पुनरुद्धारक कहते हुए जियाउद्दीन ने उसकी बहुत निंदा की है। हालाँकि यह निंदा गलत थी। केवल ईर्ष्यावश बरनी ने ऐसा लिखा है। उसे ईर्ष्या यह थी कि खुसरोशाह प्रथम भारतीय मुसलमान था जो उन्नति करके सुल्तान के पद तक पहुँचा था।[4]

धर्म की व्याख्या से स्पष्ट है कि वह व्यापक वैचारिकी रखता है, जबकि स्वाभिमान का संबंध वैयक्तिक है। किसी के पास स्वाभिमान होता है तो किसी के पास

---

1. श्रीवास्तव अशोक (पूर्वोद्धृत), पृ. 506
2. श्रीवास्तव, अशोक (पूर्वोद्धृत), पृ. 78
3. वही, पृ. 434
4. वही, पृ. 437

नहीं भी होता है। धर्म सबके पास और सदैव ही रहनेवाला होता है।

अतएव जब धर्म और स्वाभिमान में से किसी एक का चयन करने की बात होती है तो लोग असमंजस में पड़ जाते हैं। जो अपने स्वाभिमान की रक्षा करना चाहते हैं अथवा अपने हित की सोचते हैं, वे धर्म का त्याग कर देते हैं, परंतु जो धर्म के प्रति अपने को समर्पित करते हैं, वे स्वाभिमान को विस्मृत कर देते हैं।

दुर्भाग्यपूर्ण पराजय के कारण भारी संख्या में युद्धबंदी बनाए गए हिंदू सैनिकों से जब पूछा गया कि यदि वे अपना हिंदू धर्म चाहते हैं तो स्वाभिमान को शासन के हाथों में सौंप दें और यदि स्वाभिमान चाहते हों तो धर्म बदलकर इसलाम स्वीकार कर लें। इस पर हिंदू युद्धबंदियों ने फैसला लेने में तनिक भी देर नहीं की और कह दिया कि उनको हिंदू धर्म ही प्रिय है। अतएव उनका स्वाभिमान ले लिया जाए, परंतु हिंदू धर्म में बने रहने दिया जाए। तत्पश्चात् स्वाभिमानी एवं धर्माभिमानी हिंदू युद्धबंदियों को मलमूत्र साफ करने का अस्वच्छ एवं अपावन कार्य देकर उनको वाल्मीकि यानी भंगी बनाया गया, परंतु हिंदू धर्म में बने रहने दिया गया।

धर्म और स्वाभिमान में से एक का चुनाव करने के कारण वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज को भले ही आज के हिंदू समाज में निम्न प्रस्थिति पर लाकर खड़ा कर दिया गया है, परंतु यह तथाकथित उच्च जातियों के लिए एक चुनौती बन गया है कि संभवत: ये भंगी यानी धर्माभिमानी अथवा स्वाभिमानी लोग आज के उन तथाकथित उच्च जाति के ब्राह्मण और क्षत्रिय कहलाए जानेवाले लोगों से बहुत ही उच्च स्थान पर हैं। अतएव कहा जा सकता है कि आज के तथाकथित ब्राह्मण, क्षत्रिय जाति के हिंदू ही नहीं बल्कि संपूर्ण हिंदू समाज हर प्रकार से वाल्मीकि समाज के ऋणी हैं, क्योंकि जिस हिंदू धर्म पर उनको आज गर्व होता है, उसकी रक्षा वाल्मीकि समाज जैसी जातियों ने ही अपने स्वाभिमान की कुर्बानी देकर है, अन्यथा आज न कोई ब्राह्मण होता और न ही क्षत्रिय, सब-के-सब मुसलमान बना दिए गए होते।

3.4 धर्म की रक्षा अंतिम इच्छा

हिंदू वाल्मीकि जाति के सम्मुख भी विदेशी मुसलिम आक्रांताओं एवं शासकों ने वही प्रश्न रखा जो वे किसी भी पराजित एवं युद्धबंदी हिंदू जातियों के सम्मुख रखा करते थे। वे एक तरफ हिंदू धर्म को रखकर दूसरी ओर मार-काट, उत्पीड़न, दर-बदर जीवन, स्त्रियों की बगदाद में कौड़ियों के मोल नीलामी, धनहीनता, अपवित्रता, सामाजिक अवनति, राजनैतिक तबाही, शूली, फाँसी, कत्लेआम, नरभक्षी जानवरों के आहार, हाथियों से कुचलना, पहाड़ों से गिराया जाना, खौलते जल या तेलवाले कड़ाहों में डाला जाना, दीवारों में जिंदा चुन दिया जाना, प्राण रहते शरीर की चमड़ी छुड़ाना,

गर्म चमटों से शरीर का मांस नोचकर कुत्तों को खिलाना, स्त्रियों का शीलहरण, बच्चों की हत्या जैसे भयानक दंड प्रचंड हिंदू उत्पीड़न के लिए रखते थे। धर्म चुननेवाले हिंदू युद्धबंदियों को ये दंड अंगीकार करने होते थे, अर्थात् चुनना था धर्म या दंड। ऋणी है आज का हिंदू समाज उन लोगों का, जिन्होंने केवल धर्मरक्षा ही चयन किया और बदले में जो भी दंड मिला स्वीकार किया। धर्माभिमानियों एवं स्वाभिमानियों ने धर्मरक्षा की ही अंतिम इच्छा व्यक्त की।

धर्मरक्षा पर दृढ़ तत्कालीन ब्राह्मण एवं क्षत्रिय एवं आज का वाल्मीकि समाज जब दंड से भयभीत नहीं हुआ तो पुरस्कारों की घोषणा की गई—'हिंदू धर्म का त्याग करके इसलाम ग्रहण करनेवाले युद्धबंदी परिवारसहित तुरंत मुक्त कर दिए जाएँगे, उनके घरों को वापस कर दिया जाएगा, क्षतिग्रस्त होंगे तो बनवाकर नया कर दिया जाएगा, लूटी गई सारी संपत्ति वापस कर दी जाएगी बल्कि उसमें और भी वृद्धि कर दी जाएगी, अत्यधिक कृषि-भूमि एवं पशु-धन दिए जाएँगे, राज्य की सेवाओं में रख लिया जाएगा इत्यादि।'

उक्त पुरस्कार भी उन प्रखर धर्मरक्षकों को लुभा नहीं सके। उन्होंने ये सारे उपहार ठुकरा दिए। बस, एक ही उद्घोष था उनका—'धर्म की रक्षा, अंतिम इच्छा।' भले ही जान चली जाए, किंतु वे अपना पावन हिंदू धर्म नहीं छोड़ेंगे। इसके कई कारण उन्होंने बतलाए और सारे कारणों में हिंदू धर्म की अच्छाइयाँ प्रमुख थीं। जैसे—

1. हिंदू धर्म की रक्षा ही अंतिम इच्छा इसलिए क्योंकि इस धर्म में अनेक प्रकार की उत्तमोत्तम मानवीय विशेषताएँ (गुण) पाई जाती हैं। यह धर्म सार्वभौम धर्म है। इसकी सार्वभौमिकता पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता है। यह एकमात्र मानव धर्म है जो अनादि, सनातन तथा चिरंतन है। यह मानव धर्म का पर्याय है। यह एक संवेदनशील धर्म है, क्योंकि वह चिन्मय तत्त्वों को भौतिकता के संचालन के लिए सजगतापूर्वक प्रयुक्त करता है। इस धर्म का आत्मबोध है—सभी प्राणियों के संतुलित विकास के लिए प्रकृति का संरक्षण करना।
2. यह धर्म इसलिए रक्षणीय है, क्योंकि इसका दार्शनिक आयाम विस्तीर्ण है इसमें अद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा द्वैतवाद का अप्रतिम चिंतन समाहित है। इस धर्म की आधारभूमि वेद और उपनिषद् है। यह धर्म केवल विश्वासों और सिद्धांतों का समुच्य नहीं है। हिंदू धर्मग्रंथों में विश्व के मानव के कल्याण की जो संभावनाएँ निहित हैं वह किसी मतविशेष से आबद्ध नहीं है। इस धर्म के वैदिककाल की वैज्ञानिक उपलब्धियों को सामान्य व्यक्ति भी सहजभाव से स्वीकार करता है। इसे धर्म के समस्त उपांग प्राकृतिक नियमों के अनुपालन करते हैं और अपनी सनातन आध्यात्मिक

ऊर्जा को बनाए रखते हैं। यह धर्म प्रकृति का पोषक एवं उससे पोषित रहा। यह प्राकृतिक मानकों पर आधारित सामाजिक व्यवस्थाओं का सिद्धांत है।

3. यह धर्म इसलिए रक्षणीय है, क्योंकि यह धर्म प्रबुद्ध तथा एकताबद्ध मानव समूह और परिवेश का सम्यक् भावदर्शन है, जिसमें मानवता के ज्ञात, अज्ञात, भौतिक, आध्यात्मिक इत्यादि सभी तत्त्व अपनी संपूर्णता के साथ निरंतर सक्रिय तथा प्रवाहमान रहते हैं। यह धर्म चिन्मय तत्त्वों को भौतिकता के संचालन के लिए सजगतापूर्वक प्रयुक्त करता है। वैदिक वाङ्मय में धर्म के जिन तत्त्वों का उल्लेख है उनसे यह स्पष्ट होता है कि भौतिक एवं आध्यात्मिक जगत् की समष्टि को इस सनातन धर्म ने आत्मसात् कर रखा है।

4. यह धर्म मानवता के हित संवर्द्धन से जुड़ा हुआ है। यह पाश्चात्य शब्द रिलीजन से परिभाषित नहीं किया जा सकता है। रिलीजन तो किसी-न-किसी मत या समुदाय को संबोधित करता है जो किसी एक समूह की मान्यता हो सकती है। उसमें न तो सार्वभौमिकता पाई जाती है और न ही यह सर्वग्राही होता है। यह धर्म व्यक्तिगत जीवन को धारण करनेवाले नियमों, सामाजिक क्रियाओं को धारण करनेवाले नियमों और समस्त संसार को धारण करनेवाले नियमों के लिए प्रयुक्त है। यह धर्म समस्त मतों की जननी है, जिसका प्रसार संस्कृत वाङ्मय में निहित है। यह धर्म हिंदू जीवन पद्धति को विकसित करनेवाला एकमात्र कारक है। इस धर्म को संपूर्ण जगत धारण करके मानवीय कल्याण सुनिश्चित कर सकता है।[1]

उपरोक्त विशेषताओं से युक्त हिंदू धर्म सदैव पोषणीय और ग्रहणीय है। इसे पूर्वकाल से आज तक दो ग्रहण लगते रहते हैं जिनको सामान्य अर्थों में इसलाम और ईसाई जैसे राहु-केतु नाम दिए गए हैं। इन दोनों ही विदेशी धर्मों ने हिंदू धर्म को समाप्त करने के अनेक प्रयास समय-समय पर किए, परंतु प्रत्येक समय इसकी रक्षा के विकल्प तैयार किए गए।

विदेशी इसलामिक आक्रांताओं के काल में लूटपाट के साथ ही हिंदू समाज को इसलाम स्वीकारने और हिंदू धर्म को त्याग देने के लिए बहुविधि प्रयास किए गए। सन् 1206 ई. से 1707 ई. तक जब सुल्तानों और बादशाहों ने स्थायी रूप से यहाँ शासन कार्य किया। उस समय भी हिंदू धर्मावलंबियों को तरह-तरह से उत्पीड़ित करके हिंदू धर्म को छोड़ने और इसलाम स्वीकारने के लिए विवश किया गया। अनेक लोगों को

1. डॉ. विजय सोनकर शास्त्री, हिंदू वैचारिकी : एक अनुमोदन, पृ. 11

जघन्यता के साथ मारा गया, उनके परिवारों को प्रताड़ित किया गया, उनको गंदे एवं अपवित्र कार्यों में लगाकर उनकी पद-प्रस्थिति को निम्न किया गया, उनको उजाड़कर दर-बदर और जंगली जीवन व्यतीत करने हेतु विवश किया गया। इसके हजारों दृष्टांत इतिहास-ग्रंथों में भरे पड़े हैं। ऐसी परिस्थितियों में संतों एवं महात्माओं ने हिंदू धर्म की रक्षा की।

हिंदू धर्म की रक्षा का कारण यह था कि यह धर्म हमारे पुरुषार्थ-चतुष्टय में प्रथम स्थान पर प्रतिष्ठित है और धर्मयुक्त अर्थ-संग्रह, धर्मयुक्त कामोपभोग आदि की प्रकृतिपरक जीवनपद्धति से संबंधित है। इसलिए एक हिंदू के लिए इस धर्म की रक्षा आवश्यक है। इस धर्म का संबंध आध्यात्मिक और भौतिक, जीवन के दोनों पक्षों से है, इसलिए भी इस धर्म की रक्षा आवश्यक है। मानव जीवन में नैतिकता, परंपराएँ, प्रथाएँ, संस्कृति, सभ्यता आदि का जो स्वरूप दिखलाई देता है वह सभी हिंदू धर्म से ओत-प्रोत है। अतएव इस धर्म की रक्षा अपरिहार्य मानी गई है। हिंदू धर्म हिंदू राष्ट्र अर्थात् हिंदुस्थान का गौरव है। यह प्रत्येक हिंदू का स्वाभिमान है। अतएव यह धर्म रक्षणीय है। यह धर्म हिंदू मानव जगत का प्राण है, इसलिए भी इसकी रक्षा के लिए किसी भी स्तर का प्रयास सराहनीय है।

हिंदू धर्म रक्षा का वाल्मीकि जाति से भी गहरा संबंध् है। इस जाति ने हिंदू धर्म की रक्षा हेतु अनेक आक्रांताओं से घोर युद्ध किए, स्वाभिमान भंग कराकर भंगी बने तथा अपने और अपने परिवारों के साथ शहीद हो गए, परंतु किसी भी मूल्य पर हिंदू धर्म की रक्षा करने में सफल रहे। इस जाति ने सामाजिक, आर्थिक सभी प्रकार के उत्पीड़न सहे और जंगली जीवन तक बिताया, मल-मूत्रों की सफाई करके अपावन तक बने, परंतु हिंदू धर्म की रक्षा में लगे रहे। अपने हिंदू आवासों और परिवारों को सुरक्षित रखने हेतु खटिक जाति की ही तरह इस जाति ने भी इसलाम के शत्रु-पशु सूअर को पालने तक का कार्य किया, जो व्यावहारिक दृष्टि से सर्वोत्तम उपाय रहा। इससे उनके ऊपर होनेवाली हिंसा रुकी और हिंदू धर्म की रक्षा भी हो गई।

3.5 पराजितों एवं युद्धबंदियों पर भयानक अत्याचार

मध्ययुगीन विदेशी इसलामिक उत्पीड़न काल में पराजित एवं युद्धबंदी हिंदुओं पर आक्रामकों एवं शासकों ने भयानक अत्याचार किए। उन्हीं अत्याचारों में एक था—उनके महलों में मलमूत्र आदि की सफाई का कार्य हिंदू ब्राह्मण (धर्मरक्षक) और हिंदू क्षत्रिय राजपूत (देशरक्षक) को बलपूर्वक सौंपा गया और 'भंगी' नाम से संबोधित किए गए। आक्रामकों एवं शासकों ने विभिन्न प्रकार के उत्पीड़न एवं अत्याचार किए थे, जिनको सुनकर हृदय काँप उठता है और पूरी मानवता शर्मसार हो जाती है।

पराजितों एवं युद्धबंदियों के आवास उजाड़ दिए जाते थे। घर का सामान या तो उठा ले जाते थे या आग के हवाले कर दिए जाते थे। उनके स्त्रियों एवं बच्चों को भी कैद कर लिया जाता था। उनके सामने ही स्त्रियों के शीलहरण एवं शीलांगोच्छेदन के कार्य किए जाते थे। नवजात शिशुओं को छीनकर मुसलमान बनाने हेतु अन्यत्र भेज दिया जाता और शेष को छाँटा जाता था। इसमें जो सुंदर होते उनको बेचने के लिए रखकर शेष को मार दिया जाता था।

युद्धबंदी अपने परिवार का अंत अपनी किन आँखों से देखते रहे होंगे, यह हृदयविदारक दृश्य कल्पनामात्र से किसी भी हिंदू का हृदय दग्ध कर देता है। क्रूरता की चरम-सीमा थी वह दशा। परंतु शासन और सत्ता के सम्मुख कोई कर भी क्या सकता था। कभी-कभी परिवारों के सामने वे स्वयं भी शूली पर लटकाए जाते, खौलते कड़ाहे में डाले जाते, शेर और हाथी के सामने मर जाने के लिए फेंक दिए जाते, उनकी आँखें निकाल ली जातीं, हाथ काट दिए जाते, कोड़े मारे जाते, गर्म चिमटों से उनके मांस नोचे जाते, शरीर की चमड़ी उधाड़ी जाती और पंक्तियों में खड़ा करके गरदनें काट दी जाती थीं। पानी में डूबोकर मारना, पानी के बिना तड़पाकर मारना, आग में जिंदा भून देना, पहाड़ों से ढकेलकर मारना तो साधारण सजा थी।

सभी बंदी पराजित और युद्धबंदी की श्रेणी में ही रखे जाते थे। स्त्रियाँ, बच्चे और युद्ध से विरत रहनेवाले भी। कायरों और दलालों को सारे दृश्य देखने के लिए सम्मुख रखा जाता था, और नग्न तांडव समाप्त होने पर उनको दूर-दूर तक जाकर इसलामिक खूँखारता का प्रचार करने हेतु भेज दिया जाता था। वे चिल्लाते हुए भागते जाते थे और पीछे मुड़कर देखने का साहस तक उनमें न था। निगरानी के लिए उनके पीछे घोड़े भी दौड़ाए जाते थे, ताकि वे और भी तेजी से समाचार पहुँचाकर लोगों में दहशत पैदा कर सकें।

हिंदू किसानों के लहलहाते खेत उनके घोड़ों के लिए चरागाह बन गए थे। रोकनेवाले की जिह्वा और हाथ, दोनों काट दिए जाते थे। घर में रखा अनाज उठाकर सैनिक आराम से ले जाते थे। कर-वसूली सैनिकों की इच्छा पर होती थी और वे जब चाहते कर माँगने आ जाते थे। करों के इतने प्रकार थे कि करदाता स्वयं याद नहीं रख पाते थे। केवल देते रहना ही उनकी जिंदगी थी। कर न देना दंडनीय अपराध था और मृत्युदंड तक दिया जा सकता था।[1]

हिंदू व्यापारी अपनी वस्तुओं का वही मूल्य ले सकते थे, जो कोई मुसलिम निर्धारित कर देता था, उसमें घाटा ही लगता था। कुछ वस्तुएँ राजपरिवारों के नाम पर निःशुल्क ले ली जाती थीं। आंतरिक व्यापारी रास्ते में लूटे जाते थे, जिसकी जिम्मेदारी

1. डॉ. सुमन शास्त्री, मध्यकालीन भारत की...., शोधग्रंथ, पृ. 188

सरकार की नहीं थी। बड़े व्यापार की अनुमति केवल मुसलिम वर्ग को मिलती थी। रुपए उधार देने का काम हिंदू महाजन के जिम्मे था जो किसी हिंदू को ना कर सकता था, किंतु किसी मुसलमान को नहीं। मुसलमान के लिए ब्याज माफ था और मूलधन लौटाना उसकी इच्छा पर था। इससे कितने व्यापारी आत्महत्या तक कर लेते थे।

हजारों पशुओं की बलि रोज होती थी। सभी मुसलमान मांसाहारी थे। पहले पालतू पशु तलाशे जाते थे। जंगलों में भी जहाँ घनघोर वृक्ष-लताओं के कारण मार्ग कठिन थे, आग लगाकर सबकुछ नष्ट कर दिया जाता था और तब भूने हुए पशु-मांस ले जाए जाते थे। उसमें जंगलवासी लोग भी निरपराध मार दिए जाते थे। ईंधन के लिए जंगलों को काटकर लकड़ियाँ मुसलिम परिवारों को निःशुल्क बाँट दी जाती थी।[1]

औद्योगिक उत्पादों को जब शाही परिवार के लोग देख लेते थे तभी उनको कोई बाजार में ले जा सकता था। शिल्पियों से वस्तुएँ तैयार कराने के बाद उसकी कीमत लागत से भी कम दी जाती थी। इनकार करनेवाले मारे जाते और जो लेते उनको दूसरा बनाकर देने का आदेश मिलता था। राज-मिस्त्रियों से निर्माण कराने के बाद वह कला किसी मुसलमान को सिखाना अनिवार्य था। उसके बाद हिंदू राजमिस्त्री के हाथ काट दिए जाते थे। उस युग में दुनिया के सर्वाधिक हथकटे लोग हिंदुस्थान में पाए जाते थे। हाथ काटनेवाले वे विदेशी आक्रांता एवं शासक ही तो थे।

इस संदर्भ में कुछ युद्धों के बाद के मुसलिम अत्याचारों का भी अवलोकन करना उचित होगा। 711 ई. में मुहम्मद-बिन-कासिम ने सैकड़ों वर्ष की अरब-पराजय का बदला इस तरह देवल में लिया कि सर्वप्रथम तो तीन दिनों तक लोगों को लूटा गया, हिंदू पुरुषों को कत्ल किया गया, मंदिरों और मूर्तियों को तोड़ने के साथ ही देवालयों को अच्छी तरह से लूटा गया। छोटे बच्चों तथा स्त्रियों को मुसलमान बनाया गया, जिन्होंने अस्वीकार किया उनको तुरंत मार दिया गया। सुंदर बौद्ध युवतियाँ (भिक्षुणियाँ) बगदाद भेज दी गईं तथा कुछ को सैनिकों के मनोरंजन के लिए रख दिया गया।[2]

712 ई. में दाहिर की पत्नी रानीबाई ने रावर में कासिम के नेतृत्ववाली विशाल मुसलिम सेना से मोरचा लिया और चार दिन तक वह लड़ती रही। हिंदू योद्धा कभी स्त्रियों पर हाथ नहीं उठाते, परंतु उस तुर्क राक्षस ने दलालों से दुर्ग का फाटक खुलवाया और भयंकर मार-काट करके 6 हजार हिंदुओं को मार डाला और 30 हजार लोगों को दास बनाया तथा अपार संपत्ति लूटी। 6 माह तक ब्राह्मणवाद दुर्ग का घेरा डाले रहा, परंतु सफलता से दूर रहा। भेदियों के चलते उसे असफलता मिली परंतु लगभग 20 हजार

1. डॉ. सुमन शास्त्री, मध्यकालीन भारत की..., पृ. 68
2. श्रीवास्तव, अशोक : दिल्ली सल्तनत का उत्थान और पतन, पृ. 153 धर्म और स्वाभिमान में एक का चुनाव

अरबी सैनिकों की कुर्बानी देने के बाद। नकली दासियाँ दूसरी रानी लाड़ी और दोहिर की दो पुत्रियों को आत्महत्या में बाधा पहुँचाकर जिंदा पकड़वा दिया, जिनको कासिम ने अपनी मौत बनाकर अपने खलीफा के लिए उपहारस्वरूप भेजा था।

हिंदू शाही के शासक जयपाल को सुबुक्तगीन और उसके पुत्र महमूद ने इतनी बार लूटा कि उसके गले तक का हार भी ले लिया और अंत में जब उनकी प्यास नहीं बुझी तब जयपाल ने इनसे ऊबकर आत्मदाह कर लिया। करों के लिए आक्रामक इतने बड़े लालची थे कि लोगों की जान ले लेने के बाद भी संतोष नहीं करते थे। जयपाल के आत्मदाह करने के बाद उसके पुत्र आनंदपाल से पैसे माँगे गए। नहीं देने पर उसे भी युद्ध थोपकर पराजित किया गया।

इसी तरह के अनेक उदाहरण महमूद गजनवी से औरंगजेब तक मिलते हैं, जिनमें पराजित एवं युद्धबंदियों के साथ भयानक अत्याचार किए जाने की घटनाएँ प्राप्त होती हैं।

3.6 स्वाभिमान भंग होने से भंगी नाम पड़ा

स्वाभिमान और अभिमान में अंतर होता है। अभिमान समाज में स्वीकृत नहीं है, परंतु स्वाभिमान किसी भी समाज का भूषण कहलाता है। जिस समाज में अभिमानी लोगों की संख्या अधिक होती है वह समाज अतिशीघ्र नष्ट हो जाता है और जब तक नष्ट नहीं हो जाता तब तक वहाँ अशांति बनी रहती है। परंतु जहाँ स्वाभिमान होता है वह समाज दीर्घायु होता है और दर्शनीय भी होता है। कोई बाहरी शक्ति उस समाज पर आँख उठाकर देख भी नहीं सकती है।

स्वाभिमान की प्रशंसा हमारे धर्म-ग्रंथों में भी मिलती है। इतिहास के पन्नों पर हिंदू स्वाभिमान के प्रतीक अनेक अमरशहीदों के नाम उल्लिखित हैं, जिन्होंने अपनी जवानी न्योछावर करके अपने परिवार, अपने समाज, अपने देश के स्वाभिमान को बढ़ाया और मर्यादित किया।

विदेशी आक्रांताओं एवं शासकों के लिए विद्याधर, नाइका देवी महारानी, पृथ्वीराज चौहान, राणाप्रताप, छत्रपति शिवाजी जैसे लोग सदैव स्वाभिमानी बने रहे। लोगों ने भूखों रहकर भी संधि-पत्र नहीं लिखा और मरते दम तक इसलामिक शक्तियों से टकराते रहे। पराजित एवं युद्धबंदी धर्मरक्षकों तथा देशरक्षकों ने किसी भी मूल्य पर इसलाम स्वीकार नहीं किया, भले ही उनको बलपूर्वक मैले एवं अपावन कार्यों में लगाकर उनके स्वाभिमान को भंग किया गया और उनको भंगी नाम दिया गया।

भंगी कोई और नहीं बल्कि हिंदू वाल्मीकि जाति के ही लोग कहे गए और यह नाम उनको दिया था विदेशी मुसलिम आक्रांताओं एवं शासकों ने। अपमानजनक पराजय

का बोध करानेवाले और अपने मन से बढ़ा-चढ़ाकर इतिहास लिखनेवाले मुसलिम इतिहासकारों और अंग्रेज लेखकों ने कहा कि जो हिंदू भाँग खाकर दिन-रात मतवाले झूमते रहते थे उनको भंगी कहा गया था। कुछ ने लिखा कि जो युद्ध जैसे चुनौतीपूर्ण कार्य से भाग गए उनको भंगी कहा गया।

ये सारी व्याख्याएँ तथा परिभाषाएँ पराजित और युद्धबंदी हिंदुओं का उपहास उड़ाने के लिए की गई हैं। वास्तव में भंगी वे हुए जिनका मान अथवा स्वाभिमान भंग किया गया। अर्थात् जो अपने शौर्य एवं पराक्रम से संबंधित कार्यों के लिए समाज में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे, और समाज में स्वाभिमान के साथ जी रहे थे, उनको मल-मूत्र साफ करने के काम में लगाकर उनको सामाजिक दृष्टि से नीचे गिराया गया। समाज में उनके स्वाभिमान तोड़ा गया अथवा भंग किया गया, उसी प्रक्रिया को भंगी बनाने की प्रक्रिया और उससे बनी नवीन जाति-प्रस्थितिवाली जाति को भंगी जाति का नाम दिया गया।

भंगी को विभिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है। सभी नामों का क्षेत्रीय अर्थ सफाईकर्मियों से है। इनको ही वाल्मीकि भी कहा जाता है। वर्तमान में इस जाति के लोगों को भंगी न कहकर वाल्मीकि ही अधिक कहा जाता है, क्योंकि भंगी शब्द उसी तरह से एक गाली जैसा लगता है, जैसे किसी को चमार कहा जाए।

गांधीजी ने ऐसे लोगों के लिए हरिजन नाम दिया था, परंतु अंग्रेजों ने इनको दलित कहकर और भी दूषित कर दिया। दलित का अर्थ है—जिनका दलन किया गया हो। वास्तव में यह जाति तो पूर्णतः दलन का ही शिकार हुई है। पराजितों एवं युद्धबंदियों का स्वाभिमान भंग करके उनको भंगी बनाया गया, जिसे अब पेशा के आधार पर विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में विभिन्न संबोधन दिए गए हैं। इसे परिशिष्ट-1 में देखा जा सकता है। उसमें भंगी के गई गोत्र दिए गए हैं और उन गोत्रों के अनेक शाखा-प्रशाखों का भी विवरण दिया गया है। उन सभी का भंगी नाम केवल स्वाभिमान भंग होने के कारण पड़ा।

3.7 मैला ढोना स्वीकार्य किंतु इसलाम अस्वीकार्य

हिंदू वाल्मीकि समाज के सामने विदेशी आक्रांताओं ने एक चुनौतीपूर्ण समझौता रखा था—मैला ढोना अथवा इसलाम को स्वीकारना। तब प्रश्न उपस्थित हुआ नीर-क्षीर विवेक का। पराजित एवं युद्धबंदी हिंदुओं ने दोनों की तुलना की तो मैला (मल-मूत्रादि) की अपवित्रता इसलाम की अपवित्रता से कुछ कम ही जान पड़ी। अतएव उन्होंने मैला ढोना स्वीकार किया, परंतु इसलाम नहीं।

मैला, भले ही गोमांस (पशु-मांस) और मदिरा का हो, उसमें गोमाता का दर्शन

नहीं होता। वह पशु-गोबर की भाँति मानव-गोबर कहा जाएगा। उसकी दुर्गंध से बचा जाना संभव भी था। उसे उठाना और बाहर ले जाना असंभव नहीं था। किसी बरतन में होने से उसका कुप्रभाव वस्त्रों अथवा शरीर पर भी नहीं पड़ता था। इस प्रकार मैला को बटोरकर बाहर कर देना बहुत अधिक कठिन कार्य नहीं था।

मैला ढोना जो देखेगा, केवल वही अपवित्र समझेगा, इसलिए अन्यत्रवालों को जब तक इसकी जानकारी नहीं होगी तब तक सर्वत्र से सामाजिक पतन भी संभव नहीं था। जाति भले ही बदनाम हो जाए, परंतु व्यक्ति को कौन पहचाने—यह एक सुरक्षा बिंदु था। केवल यही एक समस्या थी कि ऐसे लोगों को समाज (बस्ती) से अलग रहना होगा तो एक दिन सारे लोग जान ही जाएँगे कि वह व्यक्ति सफाईकर्मी है। सामाजिक स्तर पर निम्न स्थिति यहीं से बनी। अपवित्र कार्य ने इस जाति समाज से दूर कुछ अलग स्थान पर अलग ढंग से रहने को विवश किया तो शेष समाज ने अस्पृश्यता का व्यवहार आरंभ कर दिया।

समाज में मैला ढोने की प्रथा कभी भी नहीं थी, किंतु मैला तो मैला होता है और वह अपवित्र होता है—इसकी जानकारी सभी को थी, हिंदू समाज को भी। यह अपवित्रता प्रतिदिन सफाई करके (स्नान कर लेने से) समाप्त भी मानी जा सकती थी, परंतु जब शासक वर्ग ने यह प्रचार किया कि स्थायी रूप से मैला ढोनेवाले स्थायी रूप से अपवित्र होते हैं इसलिए उनको अलग और बाहर बस्ती में रहना चाहिए, तो पवित्रता का हिंदू सामाजिक नियम अपने में भी परिवर्तन को बाध्य हुआ। परिणामस्वरूप मैला ढोना सामाजिक आधार पर अस्पृश्यता का स्थायी मानक हो गया और सफाई-कार्य में लगा हुआ वाल्मीकि समाज स्थायी रूप से हिंदू समाज में भी अपवित्र हो गया। फिर तो छुआछूत का भेदभाव होना ही था।

वाल्मीकि समाज ने यह भेदभाव स्वीकार कर लिया। दंड अथवा पुरस्कार, जो भी था वह अपनों का ही तो था। गैर-हिंदुओं की प्रताड़ना से अपनों का प्रतिकार अधिक पसंद आया और मैला ढोना स्वीकार कर लिया गया, परंतु इसलाम नहीं। क्योंकि इसलाम में मैला से अधिक गंदगी दिखलाई दी थी उन युद्धबंदियों को।

इसलाम में असत्य ही सत्य है। चोरी न करना तो इसलाम में भी अनुचित कहा गया है, परंतु खुलेआम डकैती करना—यह घिनौना आदेश है। पालतू पशुओं की हत्या इसलाम में इसलिए मान्य है कि उसे स्वयं द्वारा खिला-पिलाकर पाला जाता है, इसलिए जब आवश्यकता हो उसे काटा-मारा जा सकता है। यह प्रयोग वे अपने परिवारों पर भी करते थे—भाई अपने सगे भाई को मार देता था, और पुत्र अपने पिता, चाचा को। मारने की क्रिया आरंभ होती थी तो किसी को छोड़ा नहीं जाता था, भले ही वह नवजात शिशु ही क्यों न हो। बहुत ही क्रूर संस्कृति है इसलाम की।

जब दुग्धपान करानेवाली अपनी माताएँ मार दी जाती थीं तो गाय से दूध और मांस लेना भी अपवित्र नहीं माना गया। भैंस, बकरे तो गाजर-मूली ही है। पशुहत्या का एक पर्व भी होता है। इसलाम स्वीकारने पर हिंदू युद्धबंदी को यह भी करना होता। सगे-संबंधियों की माँ, मौसी, बहन, बुआ लगनेवाली स्त्रियों से विवाह करना होता। वेश्यावृत्ति से भी परहेज नहीं करना होता। मदिरा का प्रयोग पानी की तरह करना होता।

इतना ही नहीं, दूसरों को सताना, उत्पीड़ित करना, अनावश्यक रूप से तलवारों द्वारा किसी की गरदन काटना, पराई स्त्री का सतीत्व लूटना, बच्चों को ले जाकर नीलाम करना और दास बनाना—यह सभी दुष्कर्म करने होते। वाल्मीकि समाज ने सोचा कि एक मैला ढोने से यदि उक्त अनेक दुष्कर्म न करने पड़ें तो यही अच्छा है। इसलिए उन्होंने इसलाम अस्वीकार किया और मैला ढोना पसंद कर लिया।

मैला ढोना विदेशी संस्कृति की देन है। इसलाम में गंदगी और सफाई (पवित्रता) साथ-साथ है, हिंदू संस्कृति में केवल पवित्रता (सफाई) है। मैला ढोने की प्रथा ने एक नई जानकारी हिंदू समाज को कराई कि गंदगी भी कोई चीज होती है और उसे स्वयं करके अपने हाथों को साफ भी करना पड़ता है अथवा किसी से साफ कराना होता है। परंतु मैला को सिर पर रखकर ढोने की बाध्यता हिंदू संस्कृति में नहीं है।

सिर को हिंदू संस्कृति में ब्रह्म की उपमा दी गई है। मुसलिम संस्कृति में सिरोच्छेद ही साधारण धर्म है इसलिए सिर पर मैला ढोने को लेकर सिर का संदर्भ इसलाम के लिए गौण है। हिंदू संस्कृति ब्रह्म पर पुष्प अर्पित करती आई है। जानकार लोग माला छोटी रखते हैं जो सिर पर रुक जाए। इसके लिए पुष्प का प्रयोग उत्तम होता है। माला गले में आई तो वह मानव को अर्पित हो जाती है। मानव पूजनीय नहीं है, बल्कि ब्रह्म पूजनीय है—सिर पूजनीय है, गला या शरीर नहीं।

सिर का संबंध स्वाभिमान से भी है। सिर ऊँचा तो स्वाभिमान उन्नत और सिर नीचे यानी स्वाभिमान समाप्त। सिर पर मैला लादने का यही उद्‌देश्य था इसलामिक शासकों का। वे सिर पर बोझ लादकर उसे झुका देना चाहते थे, ताकि हिंदू स्वाभिमान समाप्त हो, भंग हो। स्वाभिमान भंग होने से वाल्मीकि समाज के लोग भंगी भी कहे गए। यह शब्द गाली के रूप में प्रयुक्त किया गया और आज तक गाली के ही रूप में प्रयोग में लाया जाता है—मार-मार कर भंगी बना देना, यह स्पष्ट करता है कि मैला ढोने के लिए भी हिंदू युद्धबंदी कभी तैयार नहीं हुए थे बल्कि उनको मार-मार कर यह काम कराया गया था (बलपूर्वक)।

बल का प्रयोग प्रत्येक जगह हुआ। इसलाम स्वीकार कराने के लिए भी और मैला ढोने के लिए भी। विश्व का कोई भी धर्म इस प्रकार से फैलाया नहीं गया। जोर-जबरदस्ती स्वयं पैगंबर साहब को पसंद नहीं थी। होता तो वे अपने सगे-संबंधियों

पर पहले प्रयोग करते। उन्होंने मूर्तिपूजा की परंपरा में कोई दखल नहीं दिया। उनको मार-मारकर मूर्तिपूजा से अलग किया उनके अनुयायियों ने। इस मार-काट के बदले में उनको पुरस्कार तो नहीं मिला, परंतु लूट का माल अरब में भी मिला था।

यहीं से आरंभ होती है इसलाम में मार-काट और लूट-पाट की संस्कृति। आराम से हराम का खाने के लिए तमाम धन तो चाहिए ही। काम नहीं करने पर धन तो केवल लूटने से ही आ सकता था, यह भी सच है। इस तरह इसलाम के प्रचार का एक अच्छा बहाना उनके पास था। ऐसे प्रचारकों को किसी भी देश में मिट्टी में मिला दिया जाना संभव था, परंतु लोगों ने ध्यान नहीं दिया अथवा हिंसक मनोवृत्ति बना नहीं पाए। जब तक वे सोचते कि क्या करें, तब तक वे मर चुके होते या इसलाम स्वीकार कर चुके होते।

प्रत्येक देशों में भीतरघाती भी थे। अपने शत्रुओं को समाप्त करने के लिए उनको अच्छा अवसर मिला था। ऐसे लोगों ने भी इसलामिक आक्रांताओं का साथ दिया और घर का भेद दिया। सोचा था कि वे बच जाएँगे तो बाद में अपना विस्तार करेंगे, परंतु वे दिन नहीं आए और उनको भी मर जाना पड़ा या मैला ढोना पड़ा।

आज, विश्व का प्रत्येक देश जागरुक हो चुका है और इसलामिक उग्रवाद, आतंकवाद के मूल में छिपी विश्व को मुसलमान बना डालने की योजना का परदाफाश हो चुका है। बड़ी तीव्र गति से उनका संहार भी होता जा रहा है। जंग दोनों तरफ के गोमांस-भक्षकों के बीच छिड़ी है तो आपस में टकराकर टूटेंगे भी तो दोनों ही टूटेंगे। संभवतः वह दिन दूर नहीं होगा जब हिंदू अपने पुराने हिसाब चुकाने को खड़े होंगे और उसी तरह से मैला सिर पर ढोने को विवश करेंगे। यद्यपि हिंदू संस्कृति मानवीय संवेदनाओं पर आधारित है। उनके 'त्राहि माम्' पर क्षमा भी कर दिया जाए। जिन पर बीती है, उनसे पूछा जाए कि क्या वे क्षमा के पात्र हैं? एक ही उत्तर सर्वत्र से आएँगे—'नहीं।'

3.8 और अपनों में भी अछूत हो गए

विदेशी इसलामिक आक्रांताओं ने पराजित और युद्धबंदी हिंदुओं को इसलाम अस्वीकार करने पर उन्हें उनके ही हिंदू समाज और उनकी ही जाति में नीचा गिराने का उपाय ढूँढ़ा। उनका मानना था कि जब इस युद्धबंदी को उसके अपने ही लोग घृणा करके अपने से अलग कर देंगे तब वह स्वेच्छा से इसलाम स्वीकार कर लेगा।

आततायियों की सामाजिक उत्पीड़न की सोच तो बहुत अच्छी थी। फिर भी उसमें वे आंशिक रूप से भी सफल इसलिए नहीं हुए कि युद्धबंदी हिंदू अपनों द्वारा अस्पृश्य घोषित कर दिए जाने पर भी अपना एक अलग समूह बनाकर जीवन-यापन करने लगे,

परंतु इसलाम स्वीकार नहीं किया। उनका बहिष्कृत नया समाज ही वाल्मीकि अथवा भंगी समाज है जो आज भी उन मुगलों के मुँह पर तमाचा लगा रहा है जिन्होंने उनको जिस उद्देश्य से मैला ढोने में लगाया था, उसमें वे पूरी तरह से असफल रहे।

हिंदू वाल्मीकि जाति के स्वाभिमान को यहाँ सम्मानित करने की आवश्यकता है और यह कार्य पूरे हिंदू समाज को करना न्यायोचित है। किसी भी हिंदू को यह सोचने की आवश्यकता है कि यदि मैला व चर्म-कर्म में लगाए गए लोगों द्वारा उसी समय इसलाम स्वीकार कर लिया गया होता जो आज हिंदुओं की कितनी जनसंख्या रही होती? यदि तत्कालीन स्वाभिमानी ब्राह्मणों और राजवंशीय राजपूत क्षत्रियों ने इसलाम स्वीकार कर लिया होता तो शेष हिंदू मार-मारकर मुसलमान बना दिए गए होते। चूँकि उन लोगों ने मर-मिट जाना पसंद किया परंतु इसलाम नहीं, और उन लोगों ने अपवित्र कार्यों को करना स्वीकार किया परंतु इसलाम नहीं। यहीं से टूटती हैं इसलामिक क्रूरता की प्रतीक उनकी तलवारें।

हिंदू स्वाभिमान और दृढ़निश्चय के आगे आक्रांताओं की तलवारों में धार नहीं रह गई थी। म्यान से बाहर आने का कोई कारण नहीं रह गया था। इस तरह से शेष हिंदुओं को हिंदू धर्म में जजिया कर देने के बाद हिंदू बने रहने का सुअवसर मिल पाया। यदि युद्धबंदी डर गए होते अथवा मैला ढोना तथा चर्म-कर्म करना अस्वीकार कर दिया होता तो हिंदू समाप्त कर दिए गए होते। ऐसे त्याग और तपस्या को आज उपेक्षा की दृष्टि से देखना और अपने को पवित्र मानकर उन अपावन कार्यों में लगे लोगों के प्रति अछूत का भेदभाव करना किसी दूसरी संस्कृति में हो सकता है, हिंदू संस्कृति में नहीं।

हिंदू समाज इस विषय पर गंभीरता से विचार करें कि जिन लोगों ने हिंदू के लिए अपने 'स्व' को बलिदान कर दिया, मिलनेवाली प्रस्तावित सुख-सुविधाओं को ठोकर मार दिया, और नाना प्रकार के उत्पीड़न एवं अत्याचार सह लिए, उनको क्या हिंदू समाज से भी उपेक्षा मिलनी न्यायोचित है? यदि नहीं, तो वाल्मीकि समाज को अपना अंग मानने और अपना धर्मरक्षक मानना कहाँ गलत है?

स्थिति यहीं तक नहीं है कि सफाईकर्मियों के साथ तथाकथित उच्च जाति के लोग ही भेदभाव रखते हैं, बल्कि दुःख तो यह है कि उन्हीं इसलामिक ताकतों द्वारा बलपूर्वक चर्म-कर्म में लगाए गए और चमार बनाए गए हिंदू भी उनसे भेदभाव रखते हैं। वाल्मीकि समाज के विकसित लोगों के साथ चमार, डोम पासी, दुसाध, राजभर, बहेलिया, खटिक जैसी जातियाँ बाहरी संबंध तो रखती है और उनके साथ बैठकर चाय-जलपान आदि भी कर लेती है, किंतु उनके ही अंग सफाईकर्मियों (भंगी) के साथ, मेहतर के साथ, लालबेगी के साथ, हलालखोर के साथ कोई भी संबंध नहीं रखना चाहता है।

यह स्थिति शिक्षा के विकास के साथ आई है। धन के होने से भी दीनता समाप्त होती है। आवास और वस्त्राभूषणों का भी प्रभाव पड़ता है। अलग बस्ती (भंगीबस्ती) में रहना और समाज के अन्य लोगों के साथ रहना भी प्रभाव डालता है। यहाँ सोचना होगा सरकार को और विकसित वाल्मीकि समाज को भी कि सफाईकर्मियों की स्थिति में भी कुछ साधन बदलने होंगे अथवा उनमें तकनीकी-वैज्ञानिक उपकरणों को स्थान देना होगा ताकि सफाई का काम करते हुए भी मैला का प्रभाव उन पर न पड़े।

अन्य दिशा में भी कार्य होने चाहिए। सामाजिक स्तर पर पूर्वकालीन सभी अछूत जातियों को अछूत में भी अछूत ढूँढ़ने का प्रयास त्यागना होगा। संविधान में और व्यवहार में छुआछूत अवश्य समाप्त हुआ है, किंतु लोगों के मन की धारणाओं में अभी परिवर्तन नहीं आया है, इसका मुख्य कारण यही है कि अछूत रह चुकी जातियाँ भी आपस में छुआछूत का भेदभाव अभी तक बनाए रखी हैं और इस तरह उच्चतम जाति से निम्नतम स्थिति दलित भंगी जाति अपनों में ही अछूत हो गई है।

आश्चर्य की बात तो यह है कि अन्य दलित जातियाँ जब से अस्पृश्यता को संविधान में दंडनीय अपराध घोषित किया गया है, अपने शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थिति को मजबूत बनाकर उन लोगों के साथ खान-पान तक का संबंध रखने लगी हैं जिन्होंने पूर्वकाल में उनको बलपूर्वक अपावन कार्यों में लगाकर उनको अस्पृश्य बनाया था। परंतु आज भी वाल्मीकि जाति को इस बात पर गर्व है कि वह किसी भी अस्पृश्य-दलित जाति के घर का जूठन तक स्वीकार करती है। परंतु किसी मुसलमान के हाथ का छुआ पानी तक स्वीकार नहीं करती है। ऐसी स्वाभिमानी जाति को कम-से-कम अपनों से तो उपेक्षा नहीं ही मिलनी चाहिए।

अध्याय का निष्कर्ष यह रहा कि भंगी नाम उन धर्माभिमानी, स्वाभिमानी एवं राष्ट्राभिमानी लोगों को दिया गया जो पराजित और युद्धबंदी थे परंतु केवल हिंदू थे। वे लोग इसलाम किसी मूल्य पर स्वीकार नहीं कर रहे थे। अतः उनके स्वाभिमान को भंग करने के लिए उनको मैला फेंकने के कार्य में लगाया गया। नगरों और बस्तियों से अलग बसाया गया तथा छुआछूत का भेदभाव रखा गया ताकि देखा-देखी उनके जाति-धर्म के लोग भी उनके साथ अस्पृश्यता का व्यवहार करने लगें और यह भूल जाएँ कि वे उनकी जाति के हैं।

ऐसे सफाईकर्मी लोगों में वे स्वाभिमानी हिंदू भी थे, जिनको हिंदू होने के गर्व का ज्ञान था। अपनी दुर्भाग्यपूर्ण पराजय और युद्धबंदी होने के लिए वे अपने भाग्य को कोस रहे थे। धर्म और स्वाभिमान में से उन्होंने धर्म को चुनकर बड़े अभिमान के साथ हिंदू धर्म की रक्षा की थी, जो उनकी अंतिम इच्छा थी। विदेशी मुसलिम आक्रांताओं एवं शासकों ने उनका उत्पीड़न अपने-अपने ढंग से किंतु क्रूरतम विधि से किया था।

उन स्वाभिमानी हिंदू युद्धबंदियों का स्वाभिमान भंग करके उनको बलपूर्वक सफाई-कर्म में लगाकर सफाईकर्मी यानी भंगी बनाया गया था और यह नाम उनका उपहास करने अथवा उनको गाली देने के लिए प्रयोग में लाया गया था। यह कार्य भी उसी इसलामिक आक्रांता ने दिए थे जिनको इन्हीं योद्धाओं ने युद्धभूमि में मारा-काटा था, परंतु दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में पराजित हो गए थे। उनके सामने अस्वच्छ कार्य एवं मैला ढोने अथवा इसलाम स्वीकार करने की स्थिति आई तो उन्होंने साफ तौर पर इसलाम को अस्वीकार कर दिया और मैला ढोना स्वीकार किया।

हिंदू देश और धर्म के लिए अपने 'स्व' और 'अन्य सबकुछ' को न्योछावर कर देनेवाली जाति वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मजहबी सिख, मखियार इत्यादि के साथ पूरे हिंदू समाज की सहानुभूति होनी चाहिए। आज ऐसी जाति का सामूहिक सम्मान होना चाहिए। ऐसी जाति के उत्थान के लिए हिंदू समाज को स्वयं आगे आना चाहिए, परंतु अभी तक किसी का भी ध्यान इस ओर नहीं गया है कि यदि वे न होते तो यहाँ कोई हिंदू रहा ही नहीं होता-सभी मारे गए होते अथवा इसलाम स्वीकार कर लिए गए होते। अब वह समय आ गया है कि शेष समाज वर्तमान वाल्मीकि, रुखी, मखियार, सुदर्शन, मजहबी सिख समाज के साथ कंधा-से-कंधा मिलाकर उसके विकास में लगे, उसे अपनाने में लगे और उसके साथ किसी तरह का भेदभाव न करें। दलित अछूत रह चुकी जातियों को तो एक कदम आगे आकर अपने वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि भाइयों का साथ देना चाहिए ताकि वे अपनों में भी अपने को अछूत अथवा अलग-थलग न महसूस कर सके। इस संदर्भ में जो सबसे प्रमुख तथ्य है, वह यह है कि डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने अपनी पुस्तक 'शूद्रों की खोज' में यह उल्लेख किया है कि भारत के वर्तमान दलित प्राचीन अथवा वैदिककालीन शूद्र नहीं है।[1]

□

1. डॉ. बी.आर. अंबेडकर, द वेयर शूद्राज, प्राक्कथन, प्रथम पृष्ठ, चौथा पैराग्राफ

अध्याय-4

हिंदू धर्मरक्षा की सजा दलित बने

पवित्रता के आधार पर हिंदू समाज ने जिनको अस्पृश्य कहा, डॉ. अंबेडकरजी ने जिन्हें आरक्षण सूची के अविकसित लोग कहा, महात्मा गांधीजी ने जिनको परमपिता परमेश्वर की संतान अर्थात् 'हरिजन' कहा, समाजवादियों ने जिनको शोषित एवं पिछड़ा कहा, मार्क्सवादियों ने जिनको सर्वहारा समाज की ज्वाला कहा, हिंदू वैचारिकी ने जिन्हें मानवाधिकार से वंचित महामानव कहा, पं. दीनदयाल उपाध्याय ने जिन्हें दरिद्र नारायण कहकर उन्हें एकात्म मानववाद के पटल पर आरोहित किया, विदेशी इसलामिक आक्रांताओं ने जिन्हें अहंकारी कट्टर हिंदू कहा और अंग्रेजों ने जिन्हें उत्पीड़न एवं दलन के शिकार हुए 'दलित लोग' कहा, किंतु एक लंबे समय के बाद आज यह बात उठी है कि वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियाँ और अन्यान्य दलित जातियाँ वास्तव में क्या थीं। आज इन जातियों ने स्वयं ही अपने को 'हिंदू धर्मरक्षक' कहकर अपनी व्याख्या प्रस्तुत कर दी।

आज देश आजाद है। मध्ययुग में अनेक जातियाँ विदेशी इसलामिक शक्तियों के उत्पीड़न का शिकार हुई थीं। वे सारी जातियाँ उच्च सामाजिक प्रस्थिति की ही थीं, इसमें कोई संदेह नहीं है। फिर भी आज अपनी चिंतनीय एवं दयनीय दशाओं के साथ वे दलित यानी अनुसूचित जाति की श्रेणी में रखी गई हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि उन्होंने हिंदू धर्म की रक्षा में अपना सबकुछ लुटा दिया।

वे महान् जातियाँ जिस देश में निवास करती थीं उस देश को लोग गर्व से हिंदुस्थान कहते हैं। कभी इसकी समृद्धि और वैभव को देखकर पूरे विश्व की ललचाई आँखें उसे पाने को तरस रही थीं। इसी के कारण अनेक विदेशी आक्रांताओं की कुदृष्टि इस पर पड़ी। समृद्ध भारत को सोने की चिड़िया मानकर लुटेरों ने लूट लिया—अरब के तुर्क, मुसलिम एवं मुगलों और इंग्लैंड के अंग्रेजों ने भी। यहाँ के लोगों ने विदेशी

आक्रांताओं एवं लुटेरों का मुँहतोड़ जवाब दिया। परंतु सैकड़ों आक्रमणों के कारण यह देश कमजोर हो चुका था। विदेशी लूटपाट से उत्पन्न हुए अभाव एवं आपसी कलह के कारण लोग क्रमशः पराजित होते चले गए थे। जिन्होंने हिंदू धर्म के लिए निरंतर संघर्ष किया उनका विविध प्रकार से प्रचंड उत्पीड़न किया गया, साथ ही उनका सामाजिक और आर्थिक स्तर पर भी पर्याप्त शोषण हुआ। निरंतर उत्पीड़न एवं दयनीय स्थिति के कारण ही इस जाति के लोग दलित कहे गए, जिसमें वाल्मीकि, सुदर्शन, चमार, खटिक, मजहबी सिख इत्यादि अनुसूचित जाति की सूची की 1208 अनेक जातियाँ शामिल हैं।

प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं तथ्यों पर विचार किया गया है कि अंततः तथाकथित दलित जातियों की उत्पत्ति कैसे हुई। विशेष रूप से वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति के उत्थान एवं पतन के कारण एवं कारक क्या थे?

4.1 हिंदुस्थान पर पड़ी दुनिया की कु-दृष्टि

दृष्टि के दो स्वरूप होते हैं—सुदृष्टि और कुदृष्टि। हिंदुस्थान की सुदृष्टि उसके 'सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः, वसुधैव कुटुम्बकम् और विश्वबंधुत्व' भावना की वैचारिकी में स्वतः स्पष्ट परिलक्षित है। कदाचित् स्वाभिमान पर आघात से कोप करने अथवा कुपित होने की सामान्य संस्कृति यहाँ है, किंतु कुदृष्टि की संस्कृति का सदैव लोप मिलता है। उदारता हिंदुस्थान की विशेषता है। सबका हित चिंतन हिंदू संस्कृति का मूल है, परंतु बहुत दयावान होना भी इसके लिए अहितकर है।[1] अपने ऊपर पड़ी दुनिया की कुदृष्टि का प्रति उत्तर यदि हिंदुओं ने दिया होता और कुदृष्टि डालनेवाले देशों के प्रति आक्रामक रुख अपनाया होता तो हिंदुस्थान पर कुदृष्टि डालने की किसी भी देश की हिम्मत नहीं हुई होती।

हिंदुस्थान पर संसार के कुल चार प्रकार के देशों द्वारा कुदृष्टि डाली गई थी। प्रथम श्रेणी के कुदृष्टि डालनेवाले वे देश थे, जिनकी जनसंख्या यत्र-तत्र भूखों मर रही थी। उनके पास जीवन-यापन के लिए आवश्यक संसाधन तक नहीं थे। भूले-भटके किसी तरह यहाँ आ गए। उन्हें देखकर करुणा जाग उठी। उन्हें भोजन, वस्त्र, आवास की तात्कालिक सुविधाएँ प्रदान की गईं। कुछ ही दिनों में वे यहीं के होकर यहीं पर रह गए और यहीं के लोगों में घुल-मिल गए। इनकी कुदृष्टि केवल क्षुधाग्नि तक ही थी। वे लालची नहीं थे। स्वामिभक्त भी थे। इसलिए आसानी से समन्वित हो गए।

दूसरी श्रेणी के कुदृष्टिवाले किसी दिवास्वप्न से जागे थे और चल पड़े थे विश्व-विजय को। अपने आस-पास के देशों को ही उन्होंने पूरा विश्व मान लिया था। उनको

1. भगवानदास (संपा.) : दस स्पोक अंबेडकर, वॉल्यूम-1, पृ. 105

महाद्वीपों का ज्ञान नहीं था। सिकंदर उनमें से एक था। पोरस की दुर्भाग्यपूर्ण पराजय को ही उसने विश्वविजय मान लिया। उसके सैनिकों ने एक ही हिंदू राजा का पराक्रम देख आगे जाने से इनकार कर दिया और आक्रांता सिकंदर को हिंदुस्थान के प्रति अपनी कुदृष्टि अपने में ही समेटकर अपने देश वापस लौटना पड़ा।

तीसरी श्रेणी के कुदृष्टिवाले कुछ धनलोलुप लुटेरे थे। वे तो अपने धर्म-प्रसार पर निकले थे, जो मानते गए उनको छोड़ते गए और जो नहीं माने उनको लूटा तथा मार-काट दिया और दास बना लिया। ये हरकतें शतप्रतिशत धृष्टतापूर्ण, अनुत्तरदायित्वपूर्ण और निर्लज्जतापूर्ण थीं। सन् 636 ई. में इनको पश्चिमी तटों के थाणे, भड़ौच और देवल पर लूट-पाट करने पर दंडित किया गया था और अपने सेनापति मुधिरातदेवल के मारे जाने पर ये शताब्दियों तक कोई दुस्साहस नहीं कर सके थे, परंतु 711 ई. में पुनः आ पहुँचे। दलालों, धोखेबाजों और कायरों को मिलाकर इस बार देवल को लूटने में सफल रहे। उसके बाद तो उनके लूटपाट का जो सिलसिला चला, वह 1206 ई. तक चलता ही रहा। यद्यपि लूटपाट का सिलसिला तो 1947 ई. तक चला, किंतु वह विदेशी मुगल आक्रांता शासकों का समय था, इसलिए उनको चतुर्थ श्रेणी का कुदृष्टिवाला नामित किया गया है।

चौथे प्रकार की विदेशी शासकों की कुदृष्टि कुल चार भागों में विभक्त की जा सकती है—सुल्तानों की कुदृष्टि, मुगलों की कुदृष्टि, ईस्ट इंडिया कंपनी की कुदृष्टि और ब्रिटिश सरकार की कुदृष्टि। सुल्तानों में कुतुबुद्दीन ऐवक, आरामशाह, इल्तुतमिश, रुकनुद्दीन, रजिया, बहरामशाह, मसूदशाह, महमूदशाह, बलवन, कैकुवाद, जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी, गयासुद्दीन ऐवक, मुहम्मद बिन तुगलक, फिरोजशाह तुगलक व उसके उत्तराधिकारी, सैय्यद वंश, लोदी वंश के लोगों ने अपनी कुदृष्टि से यहाँ के लोगों को त्रस्त किया। चंगेज और तैमूर भी बीच में आए और गए थे।

मुगलों में बाबर, हुमायूँ, शेरशाह, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब और उसके उत्तराधिकारियों की कुदृष्टि का शिकार यह देश रहा। सबसे दुर्दशाग्रस्त स्थिति औरंगजेब के समय में थी। उसकी कुदृष्टि ने तो हिंदू और हिंदुस्थान, दोनों को तार-तार करके रख दिया था। औरंगजेब ने हिंदुओं पर असहनीय आक्रोश उतारा था। उसके काल में हिंदुओं का जानवरों की तरह आखेट हुआ। लाखों-लाख हिंदू अपनी-अपनी बहन-बेटियों के साथ घने जंगल में पलायित हो गए। कालांतर में वे वनवासी या जनजाति के कहलाए। इसे स्वयं उसने स्वीकार भी किया था—'मैंने देश अथवा इसकी प्रजा के लिए भला नहीं किया। मेरा जीवन ऐसे ही निरर्थक बीत गया...इस संसार में मैं कुछ भी लेकर नहीं आया, किंतु अब पापों का भारी बोझ लेकर जा रहा हूँ। मैं नहीं जानता मेरे

लिए भगवान् ने क्या दंड सोच रखा है।"[1]

1757 ई. से 1857 ई. तक हिंदुस्थान में ईस्ट इंडिया कंपनी ने मुगलों की चाटुकारिता करके तंबाकू के छोटे से व्यापार को लेकर अपनी कुदृष्टि को इतना व्यापक बनाया कि इस देश को और यहाँ की भोली-भाली जनता को आपस में लड़ाकर टुकड़े-टुकड़े में विभक्त कर डाला। यहाँ की सारी पूँजी एवं संवृद्धि उठा ले गए। मेरठ की 1857 ई. की क्रांति के बाद इनका अंत हुआ और अंग्रेजों का 'क्राउन राज' आरंभ हुआ।

सन् 1857 ई. से 1947 ई. तक देश की अवशेष संपदा भी लूटकर इंग्लैंड भेज दी गई। अंग्रेजी पद्धति पर विदेशी भाषा थोपी गई। ईसाई धर्म के प्रति परोक्ष रूप से दलित वर्ग को लुभाकर उनका धर्मांतरण करवाकर स्वयं का विस्तार किया। वृहत्तर और अखंड[2] भारत को दो भागों में विभाजित कर दिया गया।[3] दलितों को भी बाँटकर अन्य टुकड़े किए जाने थे, किंतु वह गांधी और अंबेडकरजी की सूझबूझ से नहीं हो पाया।

उपरोक्त कुदृष्टियों का परिणाम यह हुआ कि वर्ण एवं जातिविहीन हिंदुस्थान में जाति-भेद, वर्गवाद और अस्पृश्यता जैसा अभिशाप प्रायोजित किया गया। ऊँच-निम्न की भावना जैसे प्रदूषण को फैलाया गया। संगठित हिंदू समाज को अपखंडित करके तितर-बितर कर दिया गया। पराजित एवं युद्धबंदी हिंदुओं को चर्म-कर्म और अस्वच्छ एवं अस्पृश्य कार्यों ने लगाकर उनकी सामाजिक पद-प्रतिष्ठा को समाप्त किया गया और जो समाज में सबसे ऊँचा स्थान रखते थे उनको निम्न स्तर पर पहुँचा दिया गया। वर्ण-व्यवस्था काल में शूद्र को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था, परंतु मध्ययुग में उसको भी निम्न श्रेणी देने का प्रयास किया गया। अंग्रेजों ने उनको दलित नाम देकर समाज में भेदभाव पैदा की ताकि फूट पड़ी रहे और उनका राज्य चलता रहे।

विदेशी इसलामिक आक्रांताओं की कुदृष्टि हिंदू धर्म, हिंदू संस्कृति, हिंदू सभ्यता और हिंदू जीवन-पद्धति पर पड़ी, जिसे तार-तार करके प्रत्येक हिंदू को मुसलमान बनाने की घोर क्रूरतम काररवाही आरंभ हुई। उत्पीड़न और अत्याचारों के असीमित प्रयोग जब सफल नहीं हुए तो हिंदू आस्था के प्रतीकों मंदिरों और मूर्तियों को तोड़ डाला गया तथा धन लूट लिया गया। नर-संहारों के सहारे भी आक्रांताओं को भारी संख्या में हिंदुओं का धर्मपरिवर्तन करने में सफलता नहीं मिली।

---

1. महाजन, वी.डी. : मध्यकालीन भारत, भाग-2, पृ. 223
2. राइटिंग एंड स्पीचेज, भाग-8, पृ. 25-26, 53-54 एवं 65-66
3. डॉ. कृष्णगोपाल : बाबा साहब : व्यक्ति और विचार, सुरुचि प्रकाशन, झंडेवालान, नई दिल्ली, 1994, पृ. 223-230

विदेशी आक्रांता मुसलिम एवं अंग्रेज शासकों की कुदृष्टि का प्रभाव हिंदुस्थान की अर्थ-व्यवस्था पर भी पड़ा। परंपरागत कृषि को नष्ट करके पशुपालन उद्योग को भी तहस-नहस कर दिया गया। जानवरों को मार डाला गया ताकि दूध की नदियाँ सूख जाएँ। लघु-कुटीर उद्योगों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। शिल्पियों के हाथ कटवा लिए गए। जो शेष रहे उनको मशीनों से प्रतिस्पर्द्धा में पीछे कर दिया गया। प्राकृतिक संसाधनों का भयंकर दोहन किया गया। कच्चे माल कौड़ियों के मोल विदेश भेजे गए और उनसे निर्मित वस्तुएँ ऊँचे मूल्य पर बेची गईं। हिंदुस्थान के कच्चे माल की आपूर्ति पर ही यूरोप का आधुनिक विकास संभव हो सका। विदेशी व्यापार पर हिंदुओं के लिए विभिन्न प्रकार के प्रतिबंध एवं शर्तें लगाई गईं, ताकि लोग व्यापार करके धन आहरित करना छोड़ दें। प्रचुर अर्थ-संपदा लूटी गई।[1]

विदेशी आक्रांताओं की कुदृष्टियों के कारण यहाँ की भाषा प्रदूषित हुई। देवभाषा के स्थान पर अरबी-फारसी-उर्दू, अंग्रेजी आदि को अनिवार्य किया गया। हिंदू धर्म-ग्रंथों एवं अन्य साहित्य-समूहों की वास्तविकता नष्ट करके उनमें भेदभावजनक सामग्री डाली गई। ज्ञान-विज्ञान सबकुछ यहाँ से लेकर उसे अपने यहाँ का बतलाया गया। पाश्चात्य शिक्षा पद्धति का प्रचार करके[2] गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को गुणहीन कहा गया। देश की एकता और अखंडता को तार-तार करके देश का विभाजन तक किया गया। राजनैतिक क्रांति को बंदूकों के बल पर भरसक दबाया गया। जान पर बन आई तो अंततोगत्वा देश को छोड़ा गया।

4.2 समृद्ध भारत की उपमा 'सोने की चिड़िया'

जब हम समृद्ध भारत की बात करते हैं तो यह बात तुरंत मस्तिष्क में आ जाती है कि प्राचीन काल में (अर्थात् अरब के विदेशी इसलामिक लुटेरों एवं शासकों तथा अंग्रेजों की दासता काल के पूर्व) यह देश वास्तव में सभी आधारों पर समृद्ध था। धर्म के आधार पर वह विश्व का गुरु था। सामाजिक आधार पर यहाँ की सामाजिक वैचारिकी के ये उद्घोष विश्व समाज के लिए आदर्श थे—वसुधैव कुटुम्बकम्, विश्वबंधुत्वभाव, सर्वे भवन्तु सुखिनः, परोपकार परम धर्मः इत्यादि। आर्थिक आधार पर यह देश दूसरों को खाद्यान्न देता, अपने औद्योगिक उत्पादों से आश्चर्य में डाल देता और जहाजों पर लादकर सोने, चाँदी लाता, जिनको घरों में न रखकर दैवी वस्तु मानते हुए देवालयों में रख देता था। ऋषियों-मुनियों के गुरुकुल आश्रम जीवनोपयोगी विषयों की शिक्षा के

---

1. धर्मपाल : रमणीय वृक्ष (पूरी पुस्तक अवलोकनीय)
2. धर्मपाल : भारत की लूट एवं बदनामी (पूरी पुस्तक अवलोकनीय)

लिए प्रख्यात थे। तक्षशिला, नालंदा, वलभी जैसे विविध विश्वविद्यालय थे, जहाँ विदेशों के छात्र अध्ययन करने आते थे। ज्ञान-गंगा प्रवाहित करनेवाले पुस्तकों के विशाल ग्रंथालय थे। नालंदा का कई मंजिला ग्रंथालय इख्तियार खिलजी ने भस्म कर डाला, जो महीनों जलता रहा। यहाँ की प्रकृतिपरक जीवन-पद्धति और सात्विक धर्मान्वित संस्कृति भला किसे नहीं मोह लेती थी? ऐसा था समृद्ध भारत, जिसे लोग सोने की चिड़िया भी कहते थे।

हिंदुस्थान में धन को लक्ष्मी देवी और माँ अन्नपूर्णा का उपहार माना जाता है। निर्धन मानते हैं कि माँ लक्ष्मी उनसे रूठी हुई हैं। प्रत्येक क्षेत्र में उत्तरोत्तर संवृद्धि होते रहने से देश में समृद्धि का अस्तित्व सदा बना रहा। इसका एक कारण यह भी है कि हिंदू संस्कृति में अर्थ को धर्म के बाद का स्थान प्राप्त है और अर्थ का प्रयोजन धर्म-कर्म के लिए नियोजित माना जाता है। आज भी इस देश में भिक्षुओं और अतिथियों को सम्मान के साथ आर्थिक सहयोग और आव-भगत की वस्तुएँ प्रदान की जाती हैं।

हिंदुस्थान में समृद्धि का अर्थ केवल धन से नहीं लगाया जाता है। यहाँ की समृद्धि मनुष्यों की जीवन-दशाओं में विश्वास करती है। पशुधन भी यहाँ की समृद्धि के एक उदाहरण माने जाते हैं। कृषि से अच्छे उत्पादों के लिए लोग वनस्पतियों और वृक्षों तक की पूजा करते हैं। पशु-पक्षी भी पूजे जाते हैं ताकि वे अपनी संवृद्धि से यहाँ के लोगों को समृद्ध कर सकें। यहाँ के लोग जिन वस्तुओं की आपूर्ति अन्य देशों से करते हैं, वह मानते हैं कि वे उन वस्तुओं के परिप्रेक्ष्य में समृद्ध और स्वावलंबी नहीं हैं। स्वावलंबन के लिए आवश्यक मात्रा से अधिक की प्राप्ति समृद्धि का सूचक है जो इस विदेशी अरब के आक्रांताओं द्वारा लुटे हुए देश को प्राप्त करना है। इसे प्राप्त करने के साथ ही देश के सभी वर्ग में शक्ति का संचार हो सकेगा और वे निम्न श्रेणी से ऊपर उठ सकेंगे।

सोने की चिड़िया कहलानेवाले भारत की समृद्धि के मुख्य आधार थे—कृषि, उद्योग और व्यापार। पशु-पालन का संबंध कृषि-कार्य के ही अंतर्गत माना जाता था। जहाँ तक कृषि की बात है, तो वह प्राचीनकाल में भी जीविका का मुख्य साधन थी। अधिकांश लोग कृषक-पशुपालक थे। हल-बैलों से खेत जोते जाते।[1] नहरों से सिंचाई होती थी।[2] लोग वर्षा पर अधिक निर्भर रहते थे।[3] अनेक प्रकार के खाद्यान्न उत्पादित

---

1. ऋग्वेद 8/6/48, 8/78/10, 10/48/7, अथर्ववेद 3/17/3, महाभारत 3/255/28, रामायण, अयो. 103
2. ऋग्वेद 3/45/3, 10/99/4
3. कालिदास : मेघदूत 16

होते थे।[1] राजा का प्रयास सदैव उत्पादन-वृद्धि के लिए होता था।[2] राष्ट्र की समृद्धि कृषि पर निर्भर होती थी।[3] इसीलिए कृषि-गोरक्षा हेतु भगवान् श्रीराम ने भरत को सलाह दी थी।[4] कृषि हेतु भूमि भी लोगों के पास पर्याप्त मात्रा में थी। कृषि-योग्य भूमि लोग मंदिरों को दान दे दिया करते थे।[5]

हिंदुस्थान में दूध की नदियाँ बहती थीं क्योंकि यहाँ का पशु-पालन कार्य भी समुन्नत अवस्था में था।[6] बैल कृषि के कार्य में आता था। गाय दूध देती थी इसलिए उसको माता की तरह पूजा जाता था। रामायण में गो-रक्षा हेतु सलाह दी गई है।[7] पशु-पालन को प्रोत्साहित किया गया था और किसी के भी पशुओं के लिए चरागाह प्रतिबंधित नहीं थे। ऐसे में जो भी चरागाहों पर पशुओं को चरने से रोकता था उसे दंडित किया जाता था।[8]

उस समय लोग परंपरागत विधि से खेती करते थे।[9] अपनी उपज से जो बीज निर्मित किए जाते थे, उनसे पुनः दूसरी और अच्छी उपज ली जा सकती थी। जुताई, बुआई, सिंचाई, कटाई आदि किसी में भी अतिरिक्त पूँजी नहीं लगानी होती थी। खाद के लिए भी पैसे व्यय नहीं करने होते थे। इसलिए जितनी पूँजी लगाई जाती थी, उसका लगभग 95 प्रतिशत भाग लाभ में प्राप्त होता था। यदि उपज कम थी तो लागत शून्य प्रतिशत थी, इसलिए लागत-व्यय कम और लाभ सौ प्रतिशत था। जनसंख्या कम होने के कारण इस देश का अन्न अरब के भूखों और इंग्लैंड के लोगों को निःशुल्क बाँट दिया जाता था। हिंदू संस्कृति में आशीर्वाद स्वरूप उच्चारित वाक्य जैसे दूधो नहाओ, पूतो फलों की कहावतें सिद्ध करती हैं कि इस देश में लोगों को दूध, घी, मक्खन आदि की कोई कमी नहीं थी। कृषि-कर एवं बलि (राजा हेतु उपहार) दिए जाते थे,[10] परंतु उसके लिए लोगों का शोषण नहीं होता था।

उद्योग-धंधों की दृष्टि से भी हिंदुस्थान पर्याप्त विकसित था। यहाँ का प्रत्येक क्षेत्र एवं राज्य अपनी विभिन्न-विभिन्न वस्तुओं के निर्माण के लिए प्रसिद्ध था। काशी

---

1. रामा. अयोध्या-68, व्यवहारभाष्य 10/557-60
2. महाभारत 12/38/12
3. वही, शांति, 5/77-80
4. रामा. अयो. 103
5. इपिक इंडिया 1, पृ. 154, 162
6. ऋग्वेद 4/15/6, 8/22/2
7. रामा, अयोध्या 103
8. नौ.ध.सू. 12/19/20
9. श.ब्रा. 1/6/2/3, 1/6/1/3
10. कृलकल्पतरु, राजधर्म, पृ. 88-92, मनु. 6/13

का सिल्क, ढाका का मलमल, कश्मीर का पशमीना (साल, कंबल) विश्व के लिए आठवाँ आश्चर्य थे। ढाका का एक थान मलमल अँगूठी में निकाल दिया गया था। यहाँ वेदकाल में ही एक से बढ़कर एक शिल्पकार थे। बढ़ई (तक्षा), धातुकर्मी (कर्मार), आभूषण निर्माता (हिरण्यकार), कुम्हार (कुलाल) महत्त्व रखनेवाले शिल्पी थे। एक हिरण्यकार ने अवर्णनीय आभूषण बनाया था,[1] जिस पर रोम की साम्राज्ञी तक आकर्षित हो गई थी। एक बुनकर ने ऐसा वस्त्र तैयार किया था जो फूँक देने से उड़ जाता था।[2] उस समय के वस्त्र-निर्माण प्रविधि की प्रशंसा विदेशों में भी होती थी।[3] कर्मार अस्त्र-शस्त्र बनाते थे।[4] अद्‌भुत मूर्तियाँ भी बनती थीं। नालंदा में पूर्णवर्मा ने ताँबे की बुद्धभूमि 80 फुट ऊँची बनवाई थी और 100 फुट ऊँचा मंदिर बनवाया था।[5] एक बढ़ई ने कोई भूल कर दी थी जिसके कारण उसे अपने राजा से दंड मिलने का भय था। उसने रात में ही एक काष्ठ-गरुड़ बनाया और उसमें यंत्र लगाया तथा उस पर अपने परिवार को लेकर रात में उड़ गया।[6] उन दिनों देश में सिंधु नदी से तथा भूमि से भी सोना पर्याप्त मात्रा में मिलता था।[7] इसलिए सोने के तार वस्त्रों में भी लगाए जाते थे।

वाणिज्य के क्षेत्र में हिंदुस्थान की प्रतिस्पर्द्धा न थी। विश्व के प्रत्येक देश यहाँ के विकसित व्यापार-स्वरूप के आगे नतमस्तक थे। यहाँ के व्यापारी अरबों के स्वामी थे। अनाथपिंडक ने बुद्ध को जो आम्रवन भेंट किया था, उसकी भूमि पर सटा-सटाकर स्वर्ण मुद्राएँ भी जड़वा दी थीं। यहाँ की गणिकाएँ तक करोड़पति होती थीं। आंतरिक व्यापार में उत्तरापथ और दक्षिणापथ जुड़े थे।[8] हिंदुस्थान के व्यापारी दूसरे देशों तक जाते थे।[9] विश्व की सभी दुर्लभ वस्तुएँ कान्यकुब्ज जनपद में मिल जाती थीं। यहाँ के कौआ पक्षी को 500 और मोर को 1000 में बेचा जाता था। व्यापारी राजा द्वारा सम्मानित थे।[10] इस देश से केवल रोम के साथ प्रति वर्ष साढ़े पाँच करोड़ तक का व्यापार था।[11] यहाँ की

1. जातक, 54, 282
2. रघुवंश, 16/43
3. बुद्धिस्ट लीजेन्ट्स, 30, 3, पृ. 15
4. शुद्धानुशासन, 3/2/32
5. वाटर्स 1, 171, 178, बील, 116
6. बुद्धिस्ट लीजेन्ट्स, 28, 1, पृ. 270 एवं 29, 2 पृ. 350
7. कुवलयमाला, अपभ्रंशकाव्य, भूमिका, पृ. 91
8. कथासरित्सागर, पृ. 85
9. वाटर्स, पृ. 314
10. जातक 2, 365, महावग्ग 8/1/6
11. इंटरकोर्स विट्वीन इंडिया एंड वेस्टर्न वर्ल्ड, पृ. 109-110

विलासितावर्द्धक सौंदर्य प्रसाधन की वस्तुएँ इतनी उत्तम थीं कि रोम की स्त्रियाँ दिन भर भोग-विलास में लिप्त रहती थीं, जिसके कारण उन पर प्रतिबंध लगाया गया था।[1]

उद्योग-व्यापार में खटिक जातियों के लोग भी भाग लेते थे, परंतु वे मांस, फल, सब्जी आदि का व्यापार स्थानीय स्तर तक ही करते थे। अष्टाध्यायी में[2] उल्लिखित है कि काठिनिक व्यापारी बाँस, बबई (वत्वज), बाध (बर्ध) का भी व्यापार करते थे।

4.3 लुटेरों को मुँहतोड़ उत्तर

लूटपाट निंदित कर्म है। मनुस्मृति में जिसे अस्तेय यानी चोरी करना[3] कहा गया है, उससे जघन्य अपराध है लूटना। लूट की छूट हिंदू संस्कृति में नहीं है। हिंदुस्थान में इसे आज भी दंडनीय माना गया है। हिंदुत्व के दस तत्त्वों में एक तत्त्व 'अस्तेय' है। अस्तेय का तात्पर्य चौर्य यानी चोरी न करने से है।[4] अरब में चोर और लुटेरों के हाथ काट लिए जाते हैं, जो वहाँ की संपदा चोरी करते हैं। जो अरब निवासी दूसरे देशों की चोरी करते हैं अथवा लूटते हैं उनकी प्रशंसा की जाती है। हिंदुस्थान को लूटनेवाले शासक, सेनापति जैसे महत्त्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित किए जाते थे। पैगंबर मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी खलीफा लूट के माल में से अपना भाग लेकर उस लूट को वैध (शरीयत-सम्मत) घोषित करते थे। लूट में भेजी गई हिंदू कन्याओं को खलीफा लोग एक बार अपनी वासना का शिकार बनाकर बाजारों में बेच दिया करते थे, क्योंकि कन्या-धन उनको लूट के भाग के साथ निरंतर मिलता रहता था।

अरब में सन् 636 ई. से 1206 ई. तक जो लुटेरे आए वे लूटपाट कर चले गए, किंतु उसके बाद के लुटेरे यहाँ शासन स्थापित करके सैकड़ों वर्षों तक यहाँ के लोगों को लूटते रहे। 1757 ई. तक लूटपाट करके शेष लूटपाट का काम उन्होंने अंग्रेजों को सौंप दिया था। 1947 ई. तक अंग्रेजों ने भी हिंदुस्थान को खूब लूटा। लूट में नकद धनराशि (मुद्राएँ) सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात, अन्न, वस्त्र इत्यादि सभी प्रकार की चीजें होती थीं। हिंदू स्त्रियाँ और बच्चे अधिकांशतः अरबी लुटेरों द्वारा लूटे गए थे। हिंदू पराजित होकर युद्धबंदी बनाए जाने के बाद बगदाद, ईरान आदि नगरों में थोक भाव में बेचे जाते थे और वहाँ वे दास बनाए जाते थे। विदेशी अरबी लोगों ने शक्ति के बल पर लूटा और अंग्रेजों ने व्यापार के बहाने लूटा। विदेशी इसलामिक आक्रांताओं की लूट की खुली प्रशंसा भारतीय मुसलिम इतिहासकारों के ग्रंथों में देखने को मिलती है। अंग्रेजों के भी

1. मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 625
2. अष्टाध्यायी, 4/4/72
3. मनुस्मृति, 6/92
4. वही, 6/92

लूट की खुली प्रशंसा मुसलिम इतिहासकारों के ग्रंथों में देखने को मिलती है। अंग्रेजों की लूट का परदाफाश उनके जाने के बाद से निरंतर हो रहा है। धर्मपाल महोदय ने इसका कच्चा चिट्ठा अपनी पुस्तक 'भारत की लूट एवं बदनामी' में खोल दिया है। उनका कहना है कि लूटने के बाद भी अंग्रेजों ने इस देश के प्रत्येक वर्ग की बदनामी भी की।

कुछ हृदयविदारक परंतु अक्षरश: सत्य लूटों का उल्लेख करते हुए यह बतलाया गया है कि किस प्रकार से इस देश के लोगों ने अपनी जान की बाजी लगाकर उन लूटों को रोकने का भरसक प्रयास किया था, परंतु नृशंस हत्याओं द्वारा खून की होली खेलनेवालों को वे रोक नहीं पाए थे। इसके तीन कारण थे—पहला यह कि उन्होंने शांति से काम लेना चाहा और सोचा कि समझा-बुझाकर उनको लूटने से मना किया जा सकता है। परंतु जिस स्तर तक जाकर वे शांति की बात करते थे, उस समय वह उचित नहीं थी।[1] दूसरा यह कि उनकी सोच यह थी कि इतने दिनों तक अरब के लोगों को पश्चिमी तटों पर शरणार्थी मानकर रोटी दी गई है तो वे अवश्य वफादारी निभाएँगे। जब वे शस्त्र लेकर चढ़ आए तभी समझ लेना चाहिए था कि उनको वफादार समझना भारी भूल होगी।[2] तीसरा कारण यह था कि हिंदुओं में देशरक्षा का कार्य जिनके ऊपर होता था, शस्त्र केवल वे ही रखते थे और अन्य किसी को शस्त्र रखने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती थी। परंतु जब अरबी लुटेरे शस्त्र सज्जित होकर आए तो लुटेरों को मुँहतोड़ उत्तर हिंदू लोग इसलिए भी नहीं दे पाए, क्योंकि उनके पास उनसे प्रतिस्पर्द्धा करने योग्य शस्त्र नहीं थे।[3] यही कारण था कि लुटेरे अपने लूट के मकसद में सफल रहे।

विदेशी इसलामिक लुटेरे केवल मैदानी भागों से आकर हिंदुस्थान को लूटने में सफल हो पाए थे। उनको समुद्री रास्तों से लूटपाट की विधि मालूम नहीं थी। यही कारण था कि 636 ई. में वे थाणे, भड़ौच और देवल—तीनों स्थानों पर एक साथ लूटने की योजना में सफल नहीं हुए। हिंदुस्थान के लोगों ने उनका मुँहतोड़ जवाब दिया। उनके प्रमुख लुटेरे मुधिरादेवल को मार डाला गया और शेष लुटेरे किसी तरह जान बचाकर भागने में सफल रहे।[4] हिंदू युद्ध-नियम में कायरों पर प्रहार वर्जित है और दौड़कर उनको मारना तो बिलकुल ही निषिद्ध है। इसका पूरा लाभ उस समय भागनेवाले लुटेरों को मिला था।

75 वर्षों बाद, सन् 711-12 ई. में अलहज्जाज द्वारा भेजे गए मुहम्मद-बिन-कासिम नामक एक 17 वर्षीय लुटेरे ने देवल पर लूट का कार्यक्रम बनाया। 9 दिनों तक

---

1. डॉ. अंबेडकर : लाइफ एंड मिशन, पृ. 150
2. डॉ. अंबेडकर : लाइफ एंड मिशन, पृ. 413-414
3. वही, पृ. 234
4. श्रीवास्तव, अशोक : दिल्ली सल्तनत का उत्थान और पतन

उसे लूटने का अवसर नहीं मिला और उसके काफी साथी मार दिए गए। मुँहतोड़ उत्तर से उसके पाँव उखड़ने ही वाले थे कि एक बौद्ध-भिक्षु ने उसे देवल के सुरक्षा-कवच की जानकारी दे दी, जिसे कासिम ने घात लगाकर तोड़ दिया। ईश्वर के प्रति अंधभक्ति ने देवलवासियों का मनोबल तोड़ दिया और वे शस्त्र ही नहीं चला पाए। नगर को तीन दिनों तक विधिवत लूटने का मौका मिला। उनको अपने घायल लुटेरे सैनिकों की कोई चिंता नहीं थी।

लूट का सिलसिला यहीं से आरंभ हुआ। उसी क्रम में नीरुन, सेहवान (सीस्तान), सी सान, आलोर, रावर, ब्राह्मणावाद, मुल्तान आदि सभी लूटे गए। लूट का माल इतना अधिक था कि कुछ सैनिकों में भी बाँट देना पड़ा। हिंदू राजा दाहिर की पत्नी एवं कन्याओं को गजनी के खलीफा का हिस्सा माना गया था, किंतु कासिम ने उन्हें अपनी वासना का शिकार बनाया। लुटेरों का मुखिया इससे नाराज हुआ और कासिम को बैल की खाल में भरकर मार डाला। लूटपाट की संस्कृति में यह सब चलता है—एक लूटता है, दूसरा उसे मारकर स्वयं लूट लेता है। कासिम के साथ अलहज्जाज और खलीफा ने भी वही किया था। लूट का माल आ जाने पर कासिम को ठिकाने लगा दिया गया, ताकि लूट के माल के तीन हिस्से न लगकर दो ही लगे।

लूट का सबसे बड़ा सरदार सुबुक्तिग़ीन का बेटा निकला। उसने पिता से बचपन में ही लुटेरे का प्रशिक्षण प्राप्त किया था। वह कभी भी एक लूट में शामिल लुटेरों को दूसरी लूट में नहीं ले जाता था। कारण यह था कि लूट में निरंतर मार भी खानी पड़ती थी। जिस भी अरबी लुटेरे को एक बार बलशाली हिंदू हाथ लग जाता था, वह पीछे मुड़कर देखना नहीं चाहता था, सीधे लूट का माल छोड़कर घर की ओर भागता था। महमूद यह दृश्य देख चुका था इसलिए वह हर बार बदले हुए लुटेरों को ही साथ ले जाता था।

लूटपाट के लिए महमूद की हिम्मत केवल सीमा तक ही सीमित थी। सीमा के अधिक अंदर आकर लूटपाट करने का उसका साहस नहीं होता था। यह उसके हित में रहा, क्योंकि अंदर आकर लूटपाट करने और उसके पकड़े जाने की संभावना अधिक थी। वह यह भी जानता था कि पकड़े जाने पर उसे सीधे मार दिया जाएगा। इसलिए वह निरंतर छल-कपट करके लोगों को लूटता रहा। आनंदपाल ने महमूद का मुँहतोड़ जवाब दिया था। यदि आनंदपाल का हाथी भड़ककर मैदान से भागा न होता तो इस बार महमूद का अंत भी हो गया होता। परंतु उसके भाग्य में लूटना लिखा था, इसलिए अलकतरा का सुलगता हुआ गोला हाथी के मस्तक पर चिपक गया तो वह चिंघाड़ मारकर भाग खड़ा हुआ। सैनिकों ने सोचा कि आनंदपाल युद्ध बंद करने और सुरक्षा हेतु भाग जाने के लिए संकेत कर रहे हैं। जब तक आनंदपाल दूसरे वाहन पर चढ़कर आते, तब तक

उनके सैनिक शस्त्र रखकर युद्धबंदी बन चुके थे और नगर लूटा जा रहा था।

मुहम्मद गोरी ने कई बार पृथ्वीराज चौहान के राज्य को लूटने का प्रयास किया परंतु 1192 ई. में तराइन के मैदान में जब उसने पृथ्वीराज चौहान को छलपूर्वक हराने में सफलता प्राप्त की तो फिर जीतने का एक भी अवसर चौहान को नहीं दिया और चौहान का अंत हो गया।

चौलुक्य रानी नाइकी देवी ने भी उसे एक बार बुरी तरह से मारकर भगा दिया था, परंतु गोरी को कोई चिंता नहीं थी। उसे भी जब-जब अवसर मिला, वह लूटने से बाज नहीं आया। उसके बाद सल्तनत और मुगलकाल के शासक लूटने का कार्य शासन करते हुए करते रहे। अंग्रेजों ने यह कार्य मुगलों से शासन-सत्ता छीनने के बाद ही किया।

4.4 सैकड़ों आक्रमणों से निर्बल हुआ हिंदुस्थान

विदेशी इसलामिक आक्रांताओं का आक्रमण पूरे भारतवर्ष पर नहीं होता था, बल्कि वे केवल पश्चिमोत्तर के हिंदू राज्यों पर ही एक-एक करके आक्रमण करते, हिंदू राजाओं के आपस में लड़ते रहने पर उनमें उत्पन्न निर्बलता का लाभ उठाकर उनको जीतते रहे। निरंतर नए-नए राज्यों पर आक्रमण न करके एक ही राज्य पर कई बार आक्रमण किए जाते थे। एक राज्य पर पिता के समय में जितने आक्रमण होते थे उससे अधिक आक्रमण उसी राज्य पर उस आक्रांता के पुत्र द्वारा भी होते थे। इस प्रकार हिंदुस्थान के पश्चिमोत्तर भारत पर सैकड़ों आक्रमण हुए थे।

अरबों के आक्रमण 636 ई. से आरंभ हुए थे। अरब से जंगी जहाजों ने एक ही साथ थाणे, भरौंच और देवल पर आक्रमण किया था, जो असफल रहा। इसी में अरब सेनापति मुधिरातदेवल मारा गया था। 711-12 ई. में देवल, नीरुन, सहेवान, सीसान, अलोर, रावर, ब्राह्मणावाद, मुल्तान आदि स्थानों पर मुहम्मद बिन कासिम का आक्रमण भयंकर नर-संहार के साथ पूरा हुआ था। 963 ई. में अल्पतिगीन ने मुलतान और लमघान पर आक्रमण किया। उसके निधनोपरांत उसके पुत्र सुबुक्तगीन ने हिंदू शाही शासक जयपाल पर आक्रमण किया। बर्फ गिरने को अंधविश्वास मानने से जयपाल ने बिना युद्ध किए ही संधि का प्रस्ताव भेज दिया और पराजित माना गया।

महमूद गजनवी ने हिंदुस्थान पर अनेक आक्रमण किए। जयपाल और उसका पुत्र आनंदपाल उसके प्रमुख शत्रु थे। 1006 ई. में उसने मुल्तान पर भी आक्रमण कर दिया। कच्छ के मैदान पर 1009 ई. में आनंदपाल को भी दुर्भाग्यपूर्ण तरीके से (हाथी भागने से) पराजित माना गया। महमूद ने नगरकोट, थानेश्वर, नंदना, सिरसा, वरन, मथुरा,

1. मनुस्मृति, 6/92

कन्नौज, दोआब, कलिंजर, सोमनाथ और कश्मीर पर भी आक्रमण किया। कालांतर में मुहम्मद गोरी ने गजनवी वंश का अंत करके स्वयं भी हिंदुस्थान पर आक्रमण जारी रखा।

मुहम्मद गोरी ने अपने आक्रमण का आरंभ मुल्तान और कच्छ को जीतने के साथ आरंभ किया, परंतु चालुक्य राजमाता नाइकी देवी से नाहरवाला में बुरी तरह हार गया। 1179 ई. में उसने पेशावर, लाहौर और 1182 ई. से 1189 ई. तक लाहौर, सिंध, पंजाब आदि को जीता था। पृथ्वीराज से उसने कई युद्ध लड़े और बार-बार पराजित हुआ। 1192 ई. में उसे सफलता मिली थी। दिल्ली, झाँसी, मेरठ, बुंदेलखंड, अजमेर, जयचंद के चंदवार, बयाना, ग्वालियर, गुजरात, उत्तरी दोआब, राजपूताना, बुंदेलखंड, बिहार, बंगाल आदि समस्त हिंदू राज्यों पर विदेशी इसलामिक आक्रमण हुए और हिंदू पराजित हुए थे।

सल्तनत और मुगलकाल में अपने राज्य-विस्तार के लिए भी सुल्तानों और बादशाहों ने समीपस्थ एवं दूरस्थ हिंदू राज्यों पर आक्रमण किया। उसके बाद हिंदू राज्य पुनः अपनी स्वतंत्रता घोषित कर देते थे और परिणामस्वरूप पुनः उन पर आक्रमण होता था। विद्रोहों को दबाने के लिए भी आक्रमण होते थे।

आक्रमणों का कारण लूटपाट करना, हिंदुओं पर बलपूर्वक इसलाम थोपना, राज्य को विस्तृत करना और विद्रोहों आदि का दमन करना था। युद्ध में विजयी होने पर आक्रांता विशेष रूप से इसलाम धर्म स्वीकार कराने के लिए दबाव बनाते और हिंदुओं को सताते थे।

इसलामिक काल में मुख्यतः उन्हीं लोगों का अधिक उत्पीड़न किया गया जिन्होंने इसलाम अस्वीकार करने के साथ ही हिंदू सनातन धर्म में अपनी निष्ठा बनाए रखी थी। ऐसे लोगों पर तरह-तरह के अत्याचार किए गए। वे लोग नाटकीय विधि से युद्धबंदी बनाकर प्रताड़ित किए जाते थे। बुर्का ओढ़कर, भिखारी बनकर, लहूलुहान वस्त्र पहनकर कपटी शरणार्थी बनकर इत्यादि विधि से विदेशी आक्रांता नगरों एवं किलों में प्रवेश कर जाते और रात में द्वारपालों की हत्याएँ करके द्वार खोल देते थे। युद्ध करते समय कुछ सैनिकों को हिंदुओं के सामने करके पीछे से स्वयं चलते थे। हिंदू सैनिक उन पर अस्त्र नहीं चलाते थे। अतः निहत्था होने पर उन्हें बंदी बनाया जाता। इस प्रकार से छल-कपट करके युद्ध जीतने के बाद भयानक लूटपाट और हत्याएँ करते थे और अपने विरुद्ध भावी विद्रोहों को रोकने के लिए सबको इसलाम स्वीकारने हेतु विवश करते थे। यही लूटपाट उनका मुख्य उद्देश्य था। इसलामीकरण तो मात्र एक बहाना था।

मुसलिम आक्रांता युद्ध करने में अपनी पराजय सुनिश्चित समझकर युद्ध करने के पूर्व ही सर्वप्रथम हिंदू स्त्रियों, बच्चों और गायों का अपहरण करके युद्धभूमि में उनको ही आगे रखते थे ताकि हिंदू सैनिक उन पर प्रहार न कर सकें और वे उनको सरलता

से बंदी बनाकर उनका कत्ल कर सकें। जब उनकी संख्या कम हो जाए और वे शस्त्र उठाने की स्थिति में न रह जाएँ तो उनको बंदी बना लिया जाए। एकमात्र इसी रणनीति से उन्होंने सदैव हिंदू राजाओं पर विजय प्राप्त की और भारी संख्या में हिंदू सैनिकों को युद्धबंदी बनाया तथा उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया। विदेशी इसलामिक आक्रांताओं की यह युद्धनीति कायरतापूर्ण एवं घिनौनी थी, इसलिए मुसलिम तथा अंग्रेज इतिहासकारों ने इस तथ्य को सदैव छिपाया है। आधुनिक लेखकों ने भी हिंदुओं को बंदी बनाने की इसलामिक युद्धनीति की कभी भी निंदा नहीं की है।

आक्रांता स्वभाव से दंगाई थे।[1] वे हिंदुओं की दुर्बलताओं का शोषण करते थे।[2] उनको पता था कि आक्रमण असफल होने पर संधि-प्रस्ताव हिंदू तुरंत स्वीकार कर लेंगे इसलिए जोखिम कम है। और यदि आक्रमण सफल रहा तो फिर लाभ-ही-लाभ रहेगा। इसलिए भी वे आक्रमण करते थे।

इसलामिक आक्रमणों को बराबर सफलता ही नहीं मिलती थी, बल्कि कभी-कभी वे सफल होते थे। अधिकांश युद्ध तो उन्होंने छल-कपट से ही जीते थे। हिंदू हारे नहीं, बल्कि उन्होंने आक्रमणों का सामना ही नहीं किया। उन्होंने लुटेरों की शक्ति को बचकाना स्वभाव में लिया। वे उठे ही नहीं। सोचे कि आगे कोई बाधा अथवा चुनौती तो देगा ही। परंतु बादवाले ने सोचा कि वे पहलेवाले को जीतकर आ रहे है, इसलिए बाधा ही नहीं बल्कि रास्ते से हट गए और जाने दिया। अन्यथा 18 घुड़सवारों के साथ बख्तियार का बेटा नदिया के राजमहल को नहीं जीत पाया होता। उसे घोड़ों का व्यापारी समझकर राजमहल में आने दिया गया था।[3]

डॉ. रामधारी सिंह दिनकर ने हिंदू हार का कारण बतलाते हुए लिखा है कि 'हिंदुओं का राजनीतिक जीवन बंद हो गया था इसलिए उनकी हार हुई। उन्होंने स्पष्ट किया है कि आदमी बलहीन पहले होता है, पराजय उसकी बाद में होती है। देश की एकता पहले टूटती है' दासता उस पर बाद में आती है।"[4]

हिंदुओं ने आततायियों को जिस तरह त्रस्त कर रखा था, उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यदि उनके पास पर्याप्त शस्त्र रहे होते तो वे इस देश को विदेशी मुगलों और अंग्रेजों का गुलाम नहीं होने देते। बाबा साहब भीमराव अंबेडकर भी यही कहते थे—यदि हिंदू समाज में सभी लोगों को शस्त्र रखने की स्वतंत्रता होती तो समाज की शक्ति कई गुना बढ़ सकती थी। समाज के बहुत थोड़े क्षत्रिय लोग ही शस्त्र रखते थे

1. डॉ. अंबेडकर : राइटिंग्स एंड स्पीचेज भाग-8, पृ. 269
2. वही, पृ. 268-269
3. दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 257
4. वही, पृ. 258-259

और शेष समाज अपने-अपने कार्य में व्यस्त रहता था। हमारी हार का यह एक बहुत बड़ा कारण है।[1]

आक्रमणों से सामाजिक भेदभाव बढ़ा। वातावरण अशांत हुआ। भयंकर नरसंहार से समाज का स्वरूप बदल गया। अर्थव्यवस्था चरमरा उठी। धार्मिक क्षेत्र में उथल-पुथल मच गई। करोड़ों हिंदू मुसलमान बनाए गए तथा लाखों बेच दिए गए। विदेशी आक्रांताओं ने बलपूर्वक अस्वच्छ कार्यों में लगाकर लाखों लोगों को दलित बनाया। इस प्रकार देश सभी प्रकार से निर्बल हो गया।

4.5 आपसी कलह से हिंदू हुए पराजित

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी इत्यादि यानी सफाईकर्मी जाति का बीजारोपण हिंदुओं की पराजय के बाद हुआ। दुर्भाग्य से विदेशी आक्रांताओं को जहाँ भी सफलता मिली, वहाँ हिंदू राजाओं में आपसी कलह ही मुख्य कारण थी। अपने ही लोगों ने धोखा दिया, भेदिया का कार्य किया और शत्रु से मिलकर युद्ध हराने में सहयोग दिया। जान से भी मरवा दिया। अरबों की सफलता का यही कारण मुख्य था।

हिंदू पराजय का मुख्य कारण आपसी कलह के विषय में एक कहावत समयोचित लगती है—दुश्मन जब वार करता है तो सीना गज भर का हो जाता है, परंतु अपना कोई वार करता है तो वह छलनी हो जाता है। आपसी कलह तो अपनों का ही वार था जिसने जीते हुए युद्धों को पराजय में बदलने का कार्य किया।

देवल पर मुहम्मद-बिन-कासिम की विजय मंदिर पर रखे ध्वजसहित रक्षाकवच के कारण संभव नहीं हो पा रही थी और लाखों सैनिकों के साथ आक्रमण करके भी वह पराजय की ओर बढ़ रहा था, किंतु आंतरिक कलह के कारण किसी दुश्मन ने उस रहस्य को बतला दिया और कासिम ने पत्थर फेंकनेवाली मशीन से वह ध्वज और रक्षाकवच उड़ा दिया। इसके बाद तो देवल के सैनिकों ने अपने अस्त्र ही डाल दिए। उन्होंने अंधविश्वास के कारण यह मान लिया कि ईश्वर की कृपा अब उन पर नहीं रह गई है, अतएव युद्ध करना बेकार है। यह आंतरिक कलह का दुष्परिणाम था कि पहली बार अरबों यानी विदेशी मुसलिम आक्रांताओं को सफलता मिली थी।

दाहिर के विरुद्ध यदि बौद्ध, जाट और मेढ़ नहीं होते और विशेष रूप से उसके अपने सेना के अरबी सैनिकों ने ठीक समय पर इसलाम के नाम पर पक्षपात नहीं किया होता तो दाहिर कभी पराजित नहीं हुआ होता। ऐसे ही जयचंद ने पृथ्वीराज को हरवाया और आनंदपाल भी हाथी भड़काए जाने का उपाय सुझाए जाने पर ही पराजित हुआ।

---

1. डॉ. अंबेडकर : लाइफ एंड मिशन, पृ. 502

हिंदू राजाओं ने कभी सोचा न था कि बौद्ध भिक्षु भी उनके विरुद्ध हो जाएँगे। वे बौद्ध भिक्षुओं का सम्मान करते और उन्हें कभी कष्ट नहीं देते थे। परंतु बौद्ध भिक्षुओं की मिलीभगत और हिंदुओं से उनके ईर्ष्या-द्वेष ने इस समय उनको एकता विरोधी बना दिया था। सबसे पहले वे ही आत्मसमर्पण करके हिंदू सैनिकों का मनोबल तोड़ देते थे। उन्होंने मातृभूमि की रक्षा के लिए कभी जमकर संघर्ष नहीं किया। इनसे अच्छा उत्सर्ग हिंदू नारियों और बच्चों ने जौहरव्रत करके किया।

हिंदू राजाओं में आंतरिक कलह भी व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति को लेकर थी। उन्होंने भी सही समय पर ध्यान नहीं दिया कि राष्ट्रीय समस्या के समय व्यक्तिगत समस्याओं को अलग करके सबसे पहले देशहित का चिंतन करना चाहिए। जब तक लोगों ने देशहित को सर्वोपरि मानकर एकजुट होकर उत्तर दिया, तब तक देश की सूई के अग्रभाग बराबर भूमि भी विदेशी मुसलिम आक्रांता नहीं पा सके। गजनवी और गोरी भी इसी आंतरिक कलह के कारण ही भयंकर लूटपाट में सफल हो सके थे। यही कारण है कि कायर आंभी और चुगलखोर जयचंद को इतिहास कभी क्षमा नहीं करता है। मानसिंह को सेनापति का पद भले मिल गया था किंतु उसके साथ राणा प्रताप ने भोजन और वार्ता से साफ इनकार कर दिया था।

आंतरिक कलह से एकता की भावना समाप्त हुई और देश में सभी राजा अपने को सर्वोच्च शासक मानने की बुनियादी त्रुटि करने लगे। विदेशी आक्रमण यदि एक पर होता तो दूसरा मूकदर्शक बना रहता था बल्कि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से आक्रांताओं का साथ देता था ताकि उसका प्रतिद्वंद्वी मार दिया जाए। इसके लिए वे विदेशी आक्रांताओं का हर प्रकार से सहयोग भी करते थे। जब वे आक्रांता उन देशद्रोहियों के सहयोग का बदला उनको भी मिटाकर देते थे तो उन राजाओं के पास केवल पश्चात्ताप करना ही रह जाता था। यदि शत्रु से सहयोग का अच्छा फल भी मिला होता तो यह देश फिर गुलाम क्यों हुआ होता?

विदेशी मुसलिम आक्रांता अनेक प्रकार के षड्यंत्र करने में हिंदू राजाओं से आगे थे। जब वे पराजित होकर भागते थे तो हिंदू राजा उनका पीछा नहीं करते थे। इसलिए उनको पुनः आकर तैयारी के साथ युद्ध करने का अवसर मिल जाता था। राजाज्ञा के अनुपालन में हिंदू सैनिकों ने अनेक बार ऐसे लोगों का पीछा नहीं किया था, जो बाद में पुनः कहर बनकर आए थे।

विदेशी आक्रांता अपने आक्रमण के पूर्व व्यापारियों और गुप्तचरों के माध्यम से उस स्थान की विधिवत जानकारी कर लिया करते थे और किसी-न-किसी रूप में अपने सैनिकों को हिंदू दुर्गों में प्रवेश दिला लेते थे। आक्रमण के समय विदेशी सैनिक दुर्गों के द्वार खोल देते अथवा दीवारें तोड़ देते थे।

किसी भी सामरिक शक्ति के संवर्द्धन में धन आवश्यक होता है। विदेशी आक्रांताओं का पहला प्रयास लोगों को घेरकर अन्न-जल के लिए तड़पाना था ताकि बिना युद्ध किए ही उनको बंदी बना लिया जाए और भय का वातावरण उत्पन्न किया जाए। रास्ते में वे हल्ला करते, चिल्लाते, आग लगाते आते थे, ताकि लोग उनके आगमन को विकराल समस्या मान लें और घरों में छिप जाएँ और उनसे लड़ने का साहस न जुटा सकें तथा आत्मसमर्पण कर दें।

विदेशी आक्रांता यहीं के धन से भाड़े के सैनिक खरीदते और अपनी संख्या बढ़ाते थे। उन सभी सैनिकों को लूट के माल में हिस्सा दिया जाता था। इससे अनेक लालची हिंदू सैनिकों को भी उन्होंने अपनी सेना में रख लिया था। युद्धभूमि में कभी साधारण सेना प्रस्तुत करते थे और लड़कर भाग आने, फिर लड़ने और भाग जाने का क्रम जारी रखने हेतु निर्देश देते थे ताकि हिंदू सैनिक थक जाएँ। थकाने के बाद वे अंतिम समय में हजारों शस्त्र-सज्जित घुड़सवारों की सेना मैदान में उतार देते थे और पराजय को विजय में परिवर्तित कर देते थे।

अनेक युद्धों में विदेशी मुसलिम आक्रांता हिंदू धर्म की प्रतीक गायों को आगे करके युद्ध करते थे। हिंदू सैनिक कभी गाय पर शस्त्र नहीं चला पाते थे और वे उन्हीं गायों के झुंड में छिपकर हिंदू सैनिकों पर प्रहार करते थे। अनेक बार हिंदू युद्धबंदियों, स्त्रियों और बच्चों को भी आगे प्रस्तुत करके वे युद्ध करते थे।

अपने षड्यंत्र के अंतर्गत आक्रांताओं द्वारा संधि की जाती थी और जब कुछ व्यवस्थित हो जाते थे तो रात में घात लगाकर संधि तोड़ते हुए मार-काट और लूट-पाट किया करते थे। सोए हुए हिंदू सैनिकों को बंदी बनाकर मार डालते थे।

अरेबियन आक्रांता ऐसे ही अनेक प्रकार के षड्यंत्र युद्ध नियमों के विरुद्ध करते थे। उस समय हिंदू धर्म-युद्ध भी युद्ध के नियमों के अंतर्गत लड़ते थे, जबकि विदेशी, अरेबियन आक्रांताओं द्वारा केवल अवसर का लाभ उठाया जाता था और युद्ध के किसी भी नियम की अपने स्वार्थ एवं हित के लिए अवहेलना कर दी जाती थी। इससे सबसे अधिक खटिक, मराठे, राजपूत एवं क्षत्रिय योद्धा प्रभावित होते थे। क्योंकि देश की रक्षा को अभीष्ट मानते हुए भी वे कभी अधर्मपूर्वक युद्ध नहीं करते थे। स्त्रियों और अबोध बच्चों पर कभी शस्त्र नहीं उठाते थे। किसी भी विदेशी मुसलिम को दास नहीं बनाते थे। किसी को लूटते नहीं थे और न ही कायरों को पीछा करके मौत के घाट उतारते थे। हिंदू सेनाओं की अंततोगत्वा पराजय का मुख्य कारण यही था।

4.6 हिंदू धर्म के लिए लड़नेवालों का भयानक उत्पीड़न

हिंदुस्थान के हिंदू जिस धर्म के लिए लड़े और उत्पीड़न के शिकार हुए वह हिंदू

धर्म वस्तुतः एक वैज्ञानिक अनुसंधान है, जो ऋषियों द्वारा हजारों वर्षों के शोध इत्यादि से परीक्षित करके मानव कल्याण के लिए स्थापित है। यह इसलाम और ईसाई पंथों की भाँति किसी एक व्यक्ति एवं एक ग्रंथ की नियामक व्यवस्था नहीं है। वस्तुतः हिंदू धर्म का निर्माण वैदिककाल में हमारे पूजनीय ऋषियों-मुनियों, संतों और महात्माओं ने मिलकर किया था। इसके प्रणयन में प्रकृति और प्रकृतिपुरुष, दोनों संलग्न थे।

ज्ञान के हजारों हजार पुरोधाओं ने इसके विषय में अपना-अपना चिंतन-दर्शन प्रस्तुत किया था और तब जाकर संकलित होकर बना था हिंदू धर्म। हिंदू धर्म जैसे अमूल्य निधि को वेदों, आरण्यकों, उपनिषदों, धर्मसूत्रों, रामायण-महाभारत, पुराणों, स्मृतियों में सुरक्षित किया गया। यह धर्म हजारों हजार साल से प्रणयित है। सच पूछिए तो ऋग्वेद के काल से ही भारतीयों का जीवन आस्तिक विचारों और धार्मिक चेतना से प्रभावित रहा है।[1] कर्मों का निरूपण भी सदाचार और धर्म से प्रेरित तथा अनुप्राणित था।

प्राचीन हिंदू धर्म का नाम आरंभ में सनातन धर्म था क्योंकि इसे वर्ण-व्यवस्थाकारों एवं पुरोधाओं ने बनाया था। वैदिकयुगीन पुरोधा, कृषि एवं नीतिकार इस सनातन धर्म के निर्माण में भागीदार थे और उन्होंने ऋषि-आश्रमों के लिए यज्ञ-कर्म, ब्रह्मचारियों के लिए भिक्षा-धर्म, गृहस्थों के लिए अन्नदान-धर्म और वानप्रस्थियों-संन्यासियों के लिए यतिधर्म के नियमों का निर्माण एवं अनुमोदन किया था। आश्रम-व्यवस्था के सापेक्ष वर्ण-धर्म का नाम वर्णाश्रम-धर्म रखा गया। वैदिक युग के परवर्ती काल में धर्म का विशद् विश्लेषण किया गया और उसे वैदिक धर्म नाम दिया गया। यह धर्म हमें अगम्य एवं अबोध का सुगमतापूर्वक बोध करानेवाला हुआ। प्रकृति को वैदिक धर्म-भावना का प्रेरक तत्त्व माना गया और सृष्टि को सृष्टि रचयिता के निर्देश पर उनकी इच्छा मात्र पर कार्य संपादन हेतु विविध रूप में देवी-देवताओं की अवधारणा हुई। मानव में देवत्व का निरूपण हुआ और भौतिक जगत् की व्याख्या भी की गई। इंद्र, वरुण, सूर्य, अग्नि, सोम, वायु, अश्विन, पर्जन्य, विवश्वान, मरुत इत्यादि को प्रकृतिपरक मानकर मानव हित के लिए इनकी वंदना की गई। इनके प्रति स्तुति, यज्ञ, व्रत आदि होने लगे। उपनिषद्काल में ज्ञान के सापेक्ष औषनिषदिक धर्म प्रचलन में आया। ज्ञान के पुरोधाओं ने अनेक उपनिषदों की रचना की। कट (खटिक) जाति के ऋषि-पुरोधा ने कठोपनिषद् की रचना की और जातिस्वभाव के अनुसार ही उसमें मृत्यु के देवता यमराज तथा उनके आहार के लिए भेजे गए नचिकेता का उपाख्यान है, यद्यपि यमराज ने नचिकेता की ज्ञान-भक्ति से प्रसन्न होकर उसे कई वरदान तक दिए थे।

इस प्रकार वैदिक और औपनिपदिक धर्मों को संयुक्त करने से धर्म का जो स्वरूप

---

1. मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 667

हुआ, उसे ही हिंदू धर्म की संज्ञा दी गई। डॉ. जयशंकर मिश्र ने इसे स्वीकार किया है कि हिंदू धर्म का उद्‌गमस्थल वैदिक धर्म है, जिसमें वैदिक देवतत्त्व और ज्ञानतत्त्व का सन्निवेश है।[1]

महाकाव्यकालीन हिंदू धर्म में जगपालक विष्णु के अवतार और पृथ्वी पर सत् की प्रतिष्ठा की चर्चा की गई तथा राम और कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया। परंतु वैदिकयुगीन यज्ञों का उस युग में नवीन संदर्भों के साथ अनुपान किया गया। साधारण गृहस्थ-पंच-यज्ञ करता था जिसमें पितरों, देवों, ब्राह्मणों, अतिथियों और सूतों को संतुष्ट किया जाता था।[2]

स्वर्ग प्राप्ति की कामना तथा युद्ध-विषयक पापों के प्रायश्चित्त स्वरूप मनसा-वाचा-कर्मणा राजन्य वर्ग के लोग अश्वमेध यज्ञ और राजसूय यज्ञ करते थे।[3] कर्म, भक्ति और मुक्ति-हिंदू धर्म के स्तंभ थे। जन्म-मरण से मुक्ति हेतु तप, व्रत, उपवास आदि होते थे। नरक-भय और स्वर्ग प्राप्ति पर चिंतन होता था।

पौराणिक धर्म में शिव, विष्णु, शक्ति आदि के सापेक्ष वैष्णवधर्म, भागवतधर्म, शैवधर्म, शाक्तधर्म इत्यादि का नियोजन हिंदू धर्म में ही किया गया। यह धर्म समस्त हिंदू मानव के लिए प्राण समान था। जैन-बौद्ध धर्मों का अभ्युदय भी हिंदू धर्म के ही अंतर्गत अनीश्वरवादी धर्म के रूप में हुआ, परंतु इसलामिक उत्पीड़न के आगे बौद्ध धर्म और जैन धर्म नतमस्तक हो गए जबकि हिंदू धर्म प्राण देकर भी सुरक्षित रखा गया।

हिंदू धर्म और उनकी रक्षा के लिए देश के समस्त हिंदुओं के साथ वाल्मीकि एवं सुदर्शन सफाईकर्मी जाति के लोग भी विदेशी मुसलिम आक्रांताओं से संघर्ष करने थे। उन्होंने इसलाम मानने से इनकार किया था और किसी भी मूल्य पर हिंदू धर्म में बने रहने की उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा थी। इस निर्णय और प्रयासों से विदेशी मुसलिम आक्रांताओं में आक्रोश था इसलिए उन्होंने हिंदू धर्म के लिए लड़नेवालों का भयानक उत्पीड़न किया।

हिंदू धर्म माननेवाले अपने धर्म के प्रति समर्पित अवश्य पाए जाते हैं, परंतु इसके लिए अंधी सोच नहीं रखते हैं। उनके सामने जब भी नया पंथ आता है, तो उसकी तुलना वे हिंदू धर्म से अवश्य करते हैं। जैन, बौद्ध पंथ की ओर उनका आकर्षण इसीलिए हुआ था, कि दोनों ही पंथों में हिंदू धर्म जैसी ही विशेषताएँ थीं—सत्य और अहिंसा से संबंधित। इसलाम में हिंसा और क्रूरता, अन्याय, कट्टरता आदि अनेक दुर्गुण थे, इसलिए उसे स्वीकार करने से वे निरंतर इनकार करते रहे। उनके इनकार से क्षुब्ध विदेशी आक्रांता शासक उनका उत्पीड़न अनेक प्रकार से करते थे।

---

1. मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 698
2. रामायण 13/37/17 तथा महाभारत-शांतिपर्व, 270/10/11
3. महाभारत, 33/78-79 तथा आदिपर्व 56/4-11

हिंदुओं की आर्थिक स्थिति पर चारों तरफ से कुठाराघात किया जाता था। कृषि-भूमि छीनकर खालसा भूमि घोषित कर दी जाती भी। इसे बदले में हिंदुओं कंकरीली, पथरीली, पर्वतीय, ढालू, बंजर, अनुपयुक्त जमीन अथवा जंगल साफ करके खेती करने के लिए आदेश दिया जाता था। उन पर कर भी अधिक लगाए जाते थे। अकाल के समय भी कर वसूले जाते थे। दुधारू पशु छीन लिए जाते और दुग्धहीन जानवर लोग मारकर खा जाते थे। मिथ्या आरोप लगाकर हिंदुओं के घर, खेत, खलिहान जला दिए जाते थे। जो भागकर जंगलों में छिपते उनको जानवरों की तरह ढूँढ़कर मार दिया जाता था। उनको ढूँढ़ते समय जंगलों को काटा या जला दिया जाता था। हिंदू शिल्पियों के उत्पाद शाही परिवारों का उत्पाद हो जाता था। लागत मूल्य भी मुश्किल से मिलता था। वाह्य व्यापार केवल मुसलमान ही कर सकते थे। हिंदू व्यापारी तरह-तरह से प्रताड़ित एवं प्रतिबंधित थे।[1] महाजनों ने कोठी त्याग दी थी। उनसे बलपूर्वक ऋण लिए जाते परंतु वापस नहीं किए जाते थे।

सरकारी नौकरी में हिंदू तो रखे ही नहीं जाते थे, हिंदू से धर्मांतरित हुए मुसलमान लोगों को भी राज्य प्रशासन से बाहर कर दिया जाता था। यदि कोई किसी तरह से उसमें नियुक्ति पा लेता तो उसे निकालकर दंडित भी किया जाता था। हिंदुओं की आर्थिक स्थिति इसलिए भी दयनीय रखी जाती थी ताकि वे विद्रोह न कर सकें।[2]

हिंदू धर्म एवं संस्कृति के साथ-साथ देश की भौगोलिक सीमा की रक्षा के लिए लड़नेवालों का सामाजिक शोषण भी होता था। उनसे चर्म-कर्म, मैला ढोने तथा ऐसे ही अनेक अस्वच्छ कार्य लिए जाते थे ताकि लोग उनको अपवित्र और अस्पृश्य मानकर घृणा करना आरंभ कर दें। उनको गाँव से बाहर दक्षिण दिशा में बसाया जाता था ताकि उनकी दूरी बनी रहे और वे अपनी ही जाति के अन्य हिंदू लोगों से अलग-थलग पड़ जाएँ। दक्षिण दिशा में बसने का तात्पर्य था कि गाँव में दक्षिण दिशा की हवा के साथ दुर्गंध न आ सके और स्वतः ही कुछ दिन में वे इस कारण से अलग-अलग जाति के हो जाएँ। ऐसा करते समय उनको जाति-नाम अथवा संबोधन भी दिए जाते थे। तथाकथित चमार और भंगी जैसा संबोधन उसी समय की देन है और इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम उन्हीं विदेशी आक्रांताओं एवं मुसलिम शासकों ने ही किया था।

जीवन-यापन हेतु दास बनाए गए लोगों को मात्र खाना मिलता था और उनसे भरपूर श्रमयुक्त काम लिया जाता था। ऐसी अवस्था में उन लोगों की हर प्रकार से सामाजिक स्थिति परिवर्तित होती गई। कुछ दिनों में वे अपने हिंदू समाज से भी अलग-

---

1. डॉ. सुमन शास्त्री, मध्यकालीन भारत की``, शोध ग्रंथ, पृ. 110
2. वही, पृ. 59

थलग हो गए। इनके वैवाहिक संबंध स्वत: सीमित हो गए। ये लोग सामान्य या पूर्व काल के स्वजातियों में जा नहीं सकते थे तो वहाँ विवाह कैसे संभव था? उनके लिए हर तरह के आयोजन भी निषिद्ध थे। जजिया कर से लोग डरते थे क्योंकि इसमें कर देने के साथ ही शासक की दृष्टि में भी आ जाना होता था। पैसेवाले धनी हिंदू जजिया देते और हिंदू धर्म के समस्त कर्म करते थे।

विदेशी मुसलिम आक्रांता का इसलामिक मजहब हिंदू धर्म को महत्त्व देनेवालों के लिए भयानक दंड निर्धारित करता है, परंतु इसलाम पंथ को अलग करके जब कोई मुसलमान अपना पंथ उसके स्थान पर प्रतिस्थानी धर्म के रूप में चलाने का प्रस्ताव रखता है अथवा चलाता है तो उस पर इसलाम के कट्टरपंथी मौन साध लेते हैं। 1299 ई. की बात है, अलाउद्दीन खिलजी ने अपनी दो महत्त्वाकांक्षी योजनाओं को प्रस्तावित किया—पहला, वह विश्वविजय करना चाहता था, दूसरा—वह एक नया पंथ स्थापित करना चाहता था जिससे आनेवाली पीढ़ियाँ उसे पैगंबर की भाँति याद करें। अपनी दूसरी महत्त्वाकांक्षा के विषय में उसने तर्क दिया कि पैगंबर साहब के पास अबू वक्र, उमर, उस्मान और अली नामक चार प्रमुख अनुयायी खलीफा थे। उन्हीं की ही भाँति उसके पास भी उलूग खाँ, जफर खाँ, नुसरत खाँ तथा अल्प खाँ नामक चार महान् और स्वामीभक्त सहयोगी हैं। इनके बल पर वह नए पंथ की स्थापना और उसका विस्तार कर सकता है।[1]

अकबर ने तो दीने-इलाही[2] चला भी दिया था। यह सच है कि वह धर्म इसलाम के विरुद्ध नहीं था, किंतु वह केवल मुसलमान के लिए भी नहीं बल्कि हिंदू और मुसलमान, दोनों के लिए था। किसी भी खलीफा या मौलवी ने इसका विरोध नहीं किया, क्योंकि अकबर उस समय प्रभुता-संपन्न था और किसी भी विरोध का कड़ा प्रतिकार कर सकता था।

यहाँ तात्पर्य यही है कि शासन सत्ता विदेशी आक्रांताओं एवं इसलामिक शासकों के हाथ में थी। इसलिए वे हिंदू धर्म के लिए लड़नेवालों पर भयानक अत्याचार कर सकने में समर्थ हुए।

4.7 सामाजिक एवं आर्थिक शोषण की भयानक कालरात्रि

मनुष्य एक सामाजिक एवं आर्थिक प्राणी है। यदि वह जीवित है और समाज में है तो उसे अर्थ की आवश्यकता होगी ही, और यदि वह जीवित है और उसके पास पैसा है तो भी उसे अपने साहचर्य के लिए समाज की तो आवश्यकता होगी ही। यह कल्पना

1. श्रीवास्तव, अशोक : दिल्ली सल्तनत का उत्थान एवं पतन, पृ. 337
2. महाजन, वी.डी. मध्यकालीन भारत, भाग-2, पृ. 115

करने की बात है कि मनुष्य यदि जीवित है और उसके पास न तो समाज है और न ही धन है तो फिर वह कैसे जीवन-यापन कर सकेगा?

विदेशी इसलामिक आक्रांताओं एवं शासकों ने हिंदू वाल्मीकि एवं सुदर्शन समाज के साथ वर्तमान अनेक दलित जातियों के विषय में कुछ इसी तरह की सोच बना रखी थी। उन्होंने मार-काट की नीति अपनाई, वह तो ठीक थी। इसलाम अस्वीकार करने वाले मार दिए गए। जब जीवन ही नहीं तो समस्या कैसी? परंतु जीवित रखकर इस तरह मारना कि वह न जी सके और न मर सके, यह सबसे दु:खद स्थिति थी। पराजित हिंदू युद्धबंदियों के साथ मध्ययुग में यही किया गया था। उस समय जब उन्होंने इसलाम अस्वीकार कर दिया था और हिंदू धर्म में बने रहने की शपथ ली थी। यह भी घोषित कर दिया था कि उनको हर प्रकार की यातना स्वीकार है, परंतु हिंदू धर्म छोड़ना स्वीकार नहीं है।

विदेशी इसलामिक शासकों ने हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि तथाकथित सफाईकर्मी जाति की सामाजिक और आर्थिक प्रस्थिति पूरी तरह निम्न कर दी थी, अर्थात् उनका सामाजिक और आर्थिक शोषण किया था। इन दोनों ही सजाओं को भुगतते हुए हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी इत्यादि समाज की आज तक हिंदू समाज में निम्न प्रस्थिति बनी हुई है। इतना ही नहीं, वह अपने समकक्ष विदेशी आक्रांता शासकों द्वारा बलपूर्वक बनाई गई अन्य (पूर्वकालीन अस्पृश्य) जातियों में भी सबसे नीचे अत्यंत दयनीय स्थिति में है। जब स्वाभिमानी, राजवंशीय एवं योद्धा जाति के बहादुरों को विदेशी आक्रांताओं के आक्रमण के विरुद्ध लड़ने के कारण बंदी बनाया। उन्हें दंडस्वरूप प्रचंड उत्पीड़ित करके, दलन करके दलित बनाया गया था तो उनके लिए वे दिन भयानक कालरात्रि के समान थे।

विदेशी आक्रांताओं ने पूर्व काल के स्वाभिमानी क्षत्रिय एवं ब्राह्मण किंतु वर्तमान समय के सफाईकर्मी यानी हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी इत्यादि जातियों की सामाजिक प्रस्थिति पर सीधा प्रहार किया था। उनको बलपूर्वक मल-मूत्र ढोने और मैला साफ करने के कार्यों में लगाया। उनको व्यंग्य भी सुनाया गया कि जिस प्रकार से वे धार्मिक परिवेश में स्वच्छता, सफाई और पवित्रता की झलक देखना पसंद करते हैं, उसी प्रकार से गंदगी को साफ करके प्रसन्न हों। यह सब कार्य उनके स्वभाव के विपरीत था, किंतु उनको मार-मारकर यानी बलपूर्वक वह सभी कराया गया। आततायियों ने बल का प्रयोग करते हुए यह कार्य संपन्न कराया और जिन लोगों ने अरुचि दिखलाई उनको इन शब्दों में धमकी भी दी—'मार-मारकर भंगी बना देंगे।' यह शब्द इतना अधिक प्रचारित हुआ कि आज तक गाली के रूप में इसका अभिशाप समाज में देखा जा सकता है। मल-मूत्र से संबंधित गंदे और अपवित्र कार्यों को मजबूरन

करने के बाद उन हिंदू लोगों को भोजन-पानी के लिए तरसाया गया, उन्हीं देशभक्तों, धर्माभिमानियों, राष्ट्राभिमानियों एवं योद्धाओं को आज वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि नामों से जाना जाता है।

अस्वच्छ वृत्ति (पेशा) वालों को गाँव और नगरों से बाहर रखने की व्यवस्था मुसलिम आक्रांताओं ने कर रखी थी ताकि धीरे-धीरे हिंदू समाज से कटकर पूर्णतः अलग-थलग हो जाएँ। उनको अरबी-फारसी पढ़ने के लिए मदरसे में भेजने का प्रयास किया गया। इतना ही नहीं, हिंदू पाठशालाओं में उनका जाना प्रतिबंधित कर दिया गया ताकि भविष्य में वे अनपढ़-गँवार बनकर राजनीति और धर्म के क्षेत्र में ऊपर न उठ सकें। हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियों के लोगों ने यह संपूर्ण उत्पीड़न बड़े धैर्य से सहन किया परंतु इसलाम को कभी स्वीकार नहीं किया।

इसलाम धर्म स्वीकार कराने के लिए इसलामिक शक्तियों ने बलपूर्वक बनाए गए सफाईकर्मी एवं अन्य हिंदू युद्धबंदियों का आर्थिक शोषण भी अत्यधिक मात्रा में किया। उन्होंने अर्थहीन अवस्था में असहाय हिंदुओं की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक दशाओं को एक साथ प्रभावित करने का प्रयास किया। इसके बाद भी उसका आंशिक लाभ नहीं उठा सके और तथाकथित हिंदू दलित जातियों में से एक भी हिंदू को धर्मांतरण करके मुसलमान नहीं बना सके। शासकों ने हिंदुओं पर कृषि-कर का बोझ इतना अधिक लादा कि आधे से अधिक उत्पाद सुल्तान और उसके सैनिकों के लिए ले लिया जाता था। अकाल, बाढ़ और महामारी के समय में जब किसान के पास अन्न का एक दाना भी नहीं होता था, मुसलिम शासक उनसे कृषि-लगान के रूप में उनकी स्त्रियों, बच्चों और पशु तक ले लेते थे। कभी-कभी विद्रोह का आरोप लगाकर उनकी फसलों को अपने घोड़ों से चरवा डालते और सूखी तथा पककर तैयार फसलों में आग तक लगवा देते थे। उनके घरों को आग के हवाले कर दिया जाता था।

उत्पीड़न से त्रस्त होकर जब हिंदू लोग जंगलों पर्वतों में भागकर छिप जाते थे तो उनके ऊपर थोपे गए कर उनके पड़ोस के हिंदू से वसूले जाते थे।[1] वहीं पड़ोस में बसे किसी मुसलमान के साथ ऐसा व्यवहार नहीं किया जाता था। जब हिंदू पड़ोसी भी उत्पीड़ित होकर घर छोड़कर भाग जाता था तो भागे हुए उन दोनों की अचल संपत्ति पड़ोसी मुसलमान को दे दी जाती और चल संपत्ति सैनिक उठा ले जाते थे जिसके बदले में उनको उन भागे हुए हिंदुओं को मार डालने का काम सौंपा जाता था।

इस कार्य के बहाने मुसलिम सैनिक जंगल की संपदा को अर्जित करते, वे हिंदुओं

---

1. डॉ. सुमन शास्त्री, मध्यकालीन भारत की···, शोध ग्रंथ, पृ. 76

को मारने के लिए जंगलों को कटवाते एवं जंगलों की लकड़ियाँ काट लाते और उनमें आग लगाकर जली लकड़ियों से कोयला प्राप्त करते थे। भागे और छिपे लोग पकड़कर मार डाले जाते या दास बना लिए जाते, इसलामिक आक्रांताओं ने कृषि के साथ ही पशु-संपदा पर भी आघात पहुँचाया। पशु-मांस उनका दैनिक आहार था। अरब में वे अपने पालतू ऊँटों तक को काटकर खा जाते थे। हिंदुस्थान में आने पर उनको विभिन्न प्रकार के पशु प्राप्त हुए। गायों को हिंदू धर्म का प्रतीक देखकर वे योजनाबद्ध ढंग से गायों और बैलों की हत्या करते थे ताकि दूध और हल जोतने की समस्या उत्पन्न हो और लोग उनके देश से घोड़ों, ऊँटों और भेड़ों आदि का आयात करने के लिए विवश हों।

गो-हत्या के भय से हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जाति के लोगों ने गाय-बैलों को पालना तक बंद कर दिया। क्योंकि मुसलिम आक्रांता शासक हिंदुओं के पालतू पशुओं को बलपूर्वक छीनकर मारकर खा डालते थे। इस तरह हिंदुओं की पशु-संपदा का भी विनाश विदेशी मुसलिम आक्रांताओं ने किया, फिर भी किसी उत्पीड़ित एवं बलपूर्वक बनाए गए निर्धन हिंदू को मुसलमान नहीं बना सके। इसलामिक आर्थिक उत्पीड़न के शिकार हिंदुस्थानी को लघु-कुटीर उद्योग-धंधों को भी खोना पड़ा।

कुशल हिंदू शिल्पियों को दास बनाकर अरब और ईरान में भेजा गया। वहाँ उनसे काम लेकर उनको भूखों मार डाला गया। जो जीवित बचे उनके हाथ काट दिए गए। हिंदुस्थान में हाथ कटे लोगों की संख्या उन दिनों बहुत अधिक हो गई थी।

हिंदू व्यापारियों का भी आर्थिक उत्पीड़न किया गया। उन पर चोरबाजारी, कालाबाजारी, मिलावट, कम तोल आदि के अनावश्यक आरोप लगाकर उनकी वस्तुओं को दंडस्वरूप उठवा लिया जाता था।[1] विदेश से लाई गई वस्तुओं को सीमा-शुल्क न अदा करने के अपराध लगाकर निःशुल्क ले लिया जाता था। मुसलमानों को उधार में वस्तुएँ देना सभी हिंदू दुकानदारों के लिए अनिवार्य करके गोदाम खाली करा दिए जाते थे। व्यापारियों के काफिले लूट लिए जाते थे। वे व्यापारी अवसर पाकर अपने धन को जमीन में छिपा देते थे। आज जो गड़ा हुआ धन समय-समय पर लोग पाया करते हैं, वे धन उसी समय के छिपाए गए हैं।[2]

इस प्रकार के उत्पीड़न का भी एक ही उद्देश्य था कि लोग आर्थिक आधार पर त्रस्त किए जाने पर इसलाम स्वीकार कर लेंगे। परंतु हिंदू व्यापारियों ने इस प्रयास को निष्फल कर दिया तथा कंगाल बना दिए जाने के बाद भी उन्होंने इसलाम स्वीकार नहीं किया। सेठ-महाजनों के लिए ऋण-वितरित करना आवश्यक कर दिया गया था और

---

1. डॉ. सुमन शास्त्री, मध्यकालीन भारत की¨, शोध ग्रंथ, पृ. 105
2. राइटिंग्स एंड स्पीचेज, वॉल्यूम-8, पृ. 321

उनको कम ब्याज पर धर्मांतरित हिंदू मुसलमानों को ऋण देने हेतु विवश किया गया था।[1] वस्तुस्थिति यह थी कि उधार और कर्ज के रूप में धन लेने के बाद भी धर्मांतरित मुसलमानों को वह वापस करना अनिवार्य नहीं था।

4.8 उत्पीड़न एवं बदहाली के परिणामस्वरूप दलित की पहचान बनी

भारतीय मुसलमानों के प्रति घड़ियाली आँसू बहाने का लाभ तो अंग्रेजों को मिल चुका था। मुसलिम लोगों ने किसी भी मूल्य पर हिंदुओं के साथ रहकर चुनाव में भाग लेना स्वीकार नहीं किया। अंग्रेज यही चाहते भी थे कि तब बँटवारा का प्रश्न उठेगा और हिंदू कभी तैयार नहीं होंगे, जिसके कारण सांप्रदायिकता की ज्वाला धधक उठेगी और शांति-व्यवस्था बनाए रखने के नाम पर उनको अपना शासन-काल यथावत् रखने का अवसर मिल जाएगा।

इन सब प्रयासों के बावजूद वह दिन नहीं आया। हिंदू लोग भारतीय धर्मांतरित मुसलमानों की मानसिकता को लंबे समय से साथ रहकर समझ चुके थे। वे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी तक की बात नहीं माने और कोरा चेक जो बापू उनको दे रहे थे उसे भी वापस कर दिया।[2] वे आरंभ से ही हिंदुओं की कोमलता का शोषण करते आए थे।[3] निरर्थक जिद्दों के उनके अनेक उदाहरण भी सामने थे।[4] क्रूरता और नृशंसता की विरासत में मिली दंगाई मानसिकता[5] से सभी परिचित थे, इसलिए बँटवारा ही उचित माना गया।

इस बीच एक और विभाजन की साजिश रची जा चुकी थी, परंतु बापू और बाबा साहब ने उसे विफल कर दिया। यह विभाजन दलितों के नाम होने को था। यदि यह होता तो बाबा साहब उस समय प्रधानमंत्री बनाए गए होते। बाबा साहब चाहते तो नेहरू के स्थान को भी ले सकते थे, किंतु राष्ट्रीय एकता और अखंडता को उन्होंने पहले ध्यान में रखा, उसके बाद दलित हित।

अंग्रेजों ने जिनको 1931 ई. की जनगणना में डिप्रेस्ड नाम दिया था, उनको मराठी भाषा में दलित ही कहते हैं। वे ही लोग गांधीजी के द्वारा हरिजन कहे गए थे। विदेशी मुसलिम एवं मुगल आक्रांताओं ने अपने शासनकाल में जिनका सभी प्रकार से शोषण और दलन किया था, उनको अंग्रेजों ने दलित नाम देकर उनके प्रति भी घड़ियालू आँसू बहाए थे। दलितों को बाबा साहब पर विश्वास था, फिरंगियों पर नहीं अतएव उन्होंने

---

1. डॉ. सुमन शास्त्री, मध्यकालीन भारत की…, शोध ग्रंथ, पृ. 142
2. राइटिंग्स एंड स्पीचेज, वॉल्यूम-8, पृ. 268-269
3. वही, पृ. 269
4. वही, पृ. 269

अंग्रेजों की सहानुभूति को बैरंग वापस कर दिया।

प्रसंग यहाँ वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि यानी तथाकथित सफाईकर्मी जाति का है। विदेशी इसलामिक शासकों ने पराजित युद्धबंदियों जिनमें धर्मरक्षक (ब्राह्मण) और देशरक्षक (क्षत्रिय) दोनों थे, को इसलाम न स्वीकारने की सजा मैला ढोने की दी, जिससे उनका सामाजिक पतन हुआ और उनकी आर्थिक स्थिति भी दयनीय और अभावग्रस्त हो गई। इतना ही नहीं, उनको विविध प्रकार से उत्पीड़ित भी किया जिससे वे अव्यवस्थित स्थिति में आए और दलित कहलाए। वाल्मीकि, रुखी, मखियार, मजहबी, सुदर्शन इत्यादि जाति को इस अवस्था में पहुँचाने के लिए इसलामिक शासकों ने कई एक हथकंडे अपनाए थे जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण का उल्लेख किया जा रहा है।

हिंदू युद्धबंदी पुरुषों के साथ अमानवीय व्यवहार किए जाते थे, ताकि वे विवश होकर इसलाम स्वीकार कर लें। उनको जिंदा कड़ाहे में डाला जाता, उनकी जीवित अवस्था में ही खाल उतारते और उस पर नमक-मिर्च लगवाते थे। इसलाम अस्वीकार करने पर स्वाभिमानी हिंदुओं को चौराहों पर फाँसी देते, शूली पर लटकाते और जिंदा जलाते थे। उनके ही सामने उनकी स्त्रियों एवं बच्चों की निर्मम हत्या की जाती थी और बलपूर्वक दास बनाकर उन्हें अरब भेजकर बगदाद की सड़कों पर कौड़ियों के मोल नीलाम कर दिया जाता था। अस्वच्छ एवं अपवित्र कार्यों में लगाकर उनकी सामाजिक प्रस्थिति को निम्न किया जाता था। उनका सबकुछ छीनकर उनको दयनीय स्थिति में पहुँचाया जाता और दलित बनाया जाता था। ये सारे प्रयास एक अभियान की भाँति केवल इसलिए किए जाते थे ताकि हिंदू किसी भी तरह इसलाम स्वीकार कर लें। इस हालात का सामना अन्य जातियों के हिंदुओं ने धैर्यपूर्वक किया और हिंदू धर्म कभी नहीं छोड़ा, परंतु खटिक जाति ने कुछ और ही तरीका अपनाया। उसने मुसलिमों के शत्रु-पशु सूअर को अपना अस्त्र बनाया और उसको अपने घरों में पालकर विदेशी आक्रांता शासक मुसलमानों से अपनी दूरी बनाए रखी और इस तरह से एकमात्र यही जाति उनके अनेकानेक उत्पीड़नों से बची रह गई और हिंदू धर्मरक्षा को एक नया आयाम दिया। कालांतर में जब बलपूर्वक सफाई-कर्म में नियोजित की गई वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति को यह समझ में आया तो वे भी अपनी बहू-बेटियों तक की अस्मत बचाने हेतु सूअर पालन के कार्य में लगे।

सर्वप्रथम विदेशी आक्रांताओं ने योजनाबद्ध रूप से सूफियों एवं औलियाओं को इसलाम धर्म की अच्छाइयों का प्रचार करने के लिए भेजा। वे झाड़-फूँक और तंत्र-मंत्र का भी काम करते थे। हिंदू-मुसलिम भाईचारे के गीत गाते हुए वे हिंदुओं की गलियों में टहलते थे और विशेषकर आर्थिक दृष्टि से कमजोर लोगों को गोपनीय ढंग से स्वर्ण मुहरें

देकर मुसलिम बनाने का प्रयास करते थे। कमजोर स्थितिवालों को वे अवसर देखकर डराते और धमकाते भी थे। उनका कहना था कि इसलाम स्वीकार कर लेने पर उनको न तो कर देना होगा और न ही जिंदगी से हाथ धोना पड़ेगा। उनको न तो दास बनाया जाएगा और न ही अरब भेजकर बेचा जाएगा। स्त्रियों को इसकी जानकारी अवश्य दी जाती थी ताकि वे अपने पुरुषों को मुसलमान बनने हेतु प्रेरित करें। वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति को मुसलिम मदरसों में दीन-हीन बनकर पढ़ने दिया जाता था जबकि हिंदू विद्यालयों के अध्यापकों को कहा गया था कि वे उनके द्वारा बलपूर्वक दलन हुए दलित वर्ग के बच्चों को अपने यहाँ न पढ़ने दें और उनको मार-मारकर भगा दें, ताकि वे मुसलिम स्कूलों में पढ़ने के लिए विवश हो जाएँ। शासकों की दूरगामी सोच यह थी कि हिंदू बालक-बालिकाएँ यदि मदरसों में अध्ययन हेतु आएँगी तो उनको अनिवार्य रूप से फारसी पढ़ाया जाएगा और यही विशेषता बाद में उनको इसलाम स्वीकार करने में सहायक होगी।

तत्कालीन विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के समय के लोग आज नहीं रह गए हैं किंतु उस अवस्था का वर्णन लोग आज भी करते हैं कि हिंदू स्कूलों के अध्यापक उच्च जातियों के होते थे जो मार-मारकर दलित बच्चों को घर भेज देते थे और उनको परोक्ष रूप से अध्ययन करने से रोकते थे। इसके लिए विदेशी इसलामिक शासकों के आदेशों एवं उनके द्वारा आदेश उल्लंघन के दोषी हिंदुओं के ऊपर प्रचंड अत्याचार का उल्लेख कोई इतिहासकार नहीं करता। सारा दोष वर्तमान क्षत्रिय और ब्राह्मण अध्यापकों पर डालकर कहा जाता है कि यदि स्वतंत्रता नहीं मिली होती तो आज भी किसी दलित के घर के बच्चों को पढ़ने नहीं दिया गया होता। यह सोच पूर्णतः त्रुटिपूर्ण है, वस्तुतः इसके लिए तो मध्यकाल से ही नींव रखी गई थी। अंग्रेजों ने उस पर भेदभाव, घृणा एवं अलगाव का महल बनाने का काम किया। वे भी चाहते थे कि सारे हिंदू बच्चे उनकी चर्चों द्वारा चलाए जा रहे स्कूलों में ही पढ़ें। इसलिए उन्होंने भी तत्कालीन अध्यापकों को यह हिदायत दे रखी थी कि दलित वर्ग के बच्चों को मार-मारकर भगाया जाए ताकि वे मिशनरियों द्वारा संचालित विद्यालयों में अध्ययन को विवश हो जाएँ। मध्ययुग में दलित निर्माण का कार्य एक अभियान के अंतर्गत चलाया गया था।

कृषि-उत्पादों में आग लगाकर उसे राख कर देना, अपने घोड़ों और अन्य मवेशियों से चरा लेना और पके हुए अन्नों का बलपूर्वक काटकर ले जाना विदेशी मुसलिम आक्रांता शासकों के आदेशों पर सैनिकों के काम थे। त्रस्त होकर हिंदू गाँव-घर से भाग जाते तो उनके कर उनके पड़ोसी से वसूले जाते थे और जब सभी भाग जाते तो गाँव में आग लगाकर जला दिया जाता था और उनकी तलाश जंगलों में की जाती थी। इसलिए जंगल काट दिए जाते, लकड़ियाँ बिना किसी लागत के मुसलमानों में बाँट दी

जाती और जो भी हिंदू जंगलों में पाए जाते उनका जंगली जानवरों की तरह आखेट किया जाता था। जो हिंदू आत्मसमर्पण कर देते और इसलाम स्वीकारने पर राजी हो जाते उन धर्मांतरितों को गाँवों में लाकर बसा दिया जाता था।[1]

धर्मपरिवर्तन के लिए विदेशी इसलामिक शासकों द्वारा विविध प्रकार से आर्थिक उत्पीड़न का अभियान चलाया गया था। कृषि-उत्पादों का आधा भाग कृषि-कर के रूप में बलपूर्वक ले लिया जाता था। कर-वसूली करनेवाले को अलग से देना पड़ता था। उसके बाद जजिया कर आदि भी अलग से लिए जाते थे। अकाल और बाढ़ के समय भी कर लिए जाते थे। कर न दे सकने पर हिंदुओं को उत्पीड़ित किया जाता था, और इसलाम स्वीकार करने के लिए विवश किया जाता था। जो हिंदू इसलाम स्वीकार कर लेते थे उनसे कर नहीं लिए जाते थे और कर क्षमा भी कर दिया जाता था।

हिंदुओं की पशु संपदा को इसलिए नष्ट कर दिया जाता था कि वे निर्धन एवं दलित बन जाएँ।[2] दूध देनेवाली गायें छीन ली जातीं अथवा मनचाहे मूल्य देकर ले ली जाती थीं। भेड़-बकरियाँ रात के अँधेरे में चुरा ली जातीं अथवा किसी कर आदि के बदले में ले ली जातीं और मारकर खा डाली जाती थीं। जिन पशुओं की उपयोगिता अधिकतर सुल्तानों को रहती थी उन्हीं जानवरों को पालने दिया जाता था। पशु-कर और चरागाह-कर भी हिंदुओं से बलपूर्वक लिए जाते थे। धर्मांतरित मुसलिम परिवारों को इस प्रकार से उत्पीड़ित नहीं किया जाता था। दलित बनाने का यह भी एक अद्‌भुत प्रयोग था।

हिंदू घरेलू उद्योग-धंधों को नष्ट कर दिया जाता था। शिल्पियों से बेगार लिए जाते थे। इनकार करने पर उनके हाथ काट दिए जाते थे। विदेशी आक्रांता सुल्तानों की स्थिति यह थी कि वे अपने अद्‌भुत निर्माणों को अद्वितीय बनाए रखने के लिए कारीगरों के हाथ काट देते थे जिससे कि वे कारीगर वैसा निर्माण कहीं अन्यत्र न कर सकें। इसका उदाहरण ताजमहल इत्यादि के संदर्भ में कहा जाता है, जहाँ जहारों-शिल्पियों के हाथ काट लिए जाने की कथा आज भी लोग सुनाते हैं। लघु-कुटीर उद्योग-धंधों को नष्ट किया गया। सूती एवं सिल्क वस्त्र उद्योग को प्रभावित करने के लिए चर्म-उद्योग को प्रोत्साहित किया गया था। अच्छी मजदूरी उन्हीं शिल्पियों को दी जाती थी जो मुसलिम होते थे, और हिंदू शिल्पियों को उसी काम की कम मजदूरी दी जाती थी। इसका भी अभिप्राय यही था कि वे शिल्पी किसी प्रकार से इसलाम स्वीकार कर लें। हिंदू चमड़े को आज भी हेय समझते हैं। हिंदुस्थान में

1. कुरेशी, दी एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ देलही सल्तनत, पृ. 122
2. डॉ. सुमन शास्त्री, मध्यकालीन भारत की'', शोध ग्रंथ, पृ. 59

चमड़ा बुखारा, वदखंसा इत्यादि अरब के स्थानों से आता था।[1]

आंतरिक व्यापार निर्धारित स्थानों पर लगाए जाते थे। दबंग हिंदुओं से धर्मांतरित कोई भी मुसलिम किसी भी वस्तु को अपने ही मूल्य पर बलपूर्वक ले लेता था। दुर्लभ वस्तुएँ, जो कान्यकुब्ज के बाजारों से आती थीं, उनको राज्यकर्मी विदेशी विलासी सुल्तान के लिए निःशुल्क ले लेते थे। हिंदू व्यापारियों से मंडी-कर, व्यापार-कर, व्यवस्था-कर आदि वसूल किए जाते थे। हिंदू व्यापारियों की आर्थिक शक्ति योजनाबद्ध रूप से कमजोर कर दी जाती थी, ताकि वह विवश होकर इसलाम स्वीकार कर लें।

प्रस्तुत अध्याय का संपूर्ण अध्ययन यह संकेत करता है कि युद्धबंदी धर्मरक्षकों एवं देशरक्षकों को यानी ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों को उनका राष्ट्राभिमान, धर्माभिमान एवं स्वाभिमान भंग करने के उद्देश्य से उन्हें सफाई-कार्य (मैला ढोने) में लगाया गया, सामान्य हिंदुओं से अलग उन्हें बसाया गया, अस्वच्छ कार्यों में लगे होने से उनके साथ अस्पृश्यता यानी छुआछूत का भेदभाव किया गया। उनकी उच्च सामाजिक स्थिति को भी न्यूनतम किया गया। उनको विदेशी आक्रांता मुसलिम शासकों द्वारा अशिक्षित बनाया गया। उनकी धन-संपदा छीनकर उनको निर्धन और हर प्रकार से उनका दमन एवं दलन करके उन्हें दलित बना दिया गया।

उन विदेशी मुसलिम आक्रांताओं ने हिंदुस्थान पर ऐसी ईर्ष्यापरक कुदृष्टि डाली कि समृद्ध भारत की सोने की चिड़िया कालांतर में मिट्टी की चिड़िया बनकर रह गई। उसका सबकुछ लूट लिया गया। हिंदुओं ने लूटपाट का कड़ा विरोध किया परंतु सैकड़ों आक्रमणों के कारण यह देश कमजोर हो गया। हिंदू राजा आपसी कलह से पराजित होते रहे। जो लोग हिंदू धर्म के लिए इसलामिक शासकों एवं आक्रामकों से लड़ाई लेते उनका अनेक प्रकार से उत्पीड़ित एवं दमन किया जाता था, क्योंकि आक्रांताओं के मुख्य शत्रु वही थे। उनका सामाजिक और आर्थिक आधार पर भयानक शोषण किया जाता था। और अंत में उन्हें दलित का नाम पाने योग्य बना देते थे। उन्हीं जातियों में वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि (सफाईकर्मी) जातियाँ भी हैं।

□

---

1. डॉ. हमीदा खातून, दी अर्वनाईजेशन, पृ. 50

अध्याय-5

मैला ढुलवाने का कारण तथा उद्देश्य

हिंदुस्थान में समाज-व्यवस्था हेतु कार्य-व्यवस्था की निरंतरता को ध्यान में रखते हुए जब कार्य विभाजन किया गया, तो लोगों ने अपने स्वभाव एवं क्षमतानुसार उनके संपादन का अधिकार स्वेच्छा से स्वीकार किया। उस श्रम विभाजन को स्वधर्म एवं स्वभाव से जोड़कर गुण, कर्म एवं विभागसह की संज्ञा प्रदान की। स्वकर्म अथवा स्वधर्म कहा, लेकिन मंतव्य दोनों का एक ही था।

उक्त व्यवस्थानुसार ब्राह्मण वर्ण धर्मरक्षा, क्षत्रिय देशरक्षा, वैश्य कृषि उपज का विपणन और शूद्र कृषि कार्य एवं श्रम का कार्य करने लगे। सभी प्रकार के रक्षा-कार्यों में शूद्र की क्षमता सर्वाधिक होने से उसे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण विभाग दिया गया था। देश की संपूर्ण जन-शक्ति का सुनियोजन वास्तव में सामान्य बात नहीं थी।

संकटकाल में सभी वर्ण के लोग संयुक्त रूप से सर्वप्रथम संकट के निवारण संबंधी कार्य निष्पन्न करते थे। उस समय तक हिंदू समाज में कोई भी कार्य अस्वच्छ नहीं थे इसलिए समाज में पवित्रता को लेकर किसी प्रकार की अस्पृश्यता या छुआछूत का जन्म भी नहीं हुआ था। डॉ. अंबेडकर ने अपनी पुस्तक 'दी अनटच्चिवल' के पृ. 99 पर लिखा है कि 'भारत में अस्पृश्यता पहले कभी नहीं थी।' मध्यकाल में जब यह कार्य बलपूर्वक दूसरों से कराया जाने लगा और लोग यह कार्य दूसरों के लिए करने लगे तो ऐसे कर्मियों को अस्पृश्य मानकर उनके साथ अस्पृश्यता यानी छूआछूत का व्यवहार हुआ। मल-मूत्र त्याग सामान्य रूप से हर व्यक्ति को करना ही होता है, थोड़ी देर के लिए व्यक्ति अशौच (अपवित्रता) में रहकर स्नानादि के बाद शुद्ध हो जाया करते हैं।

विदेशों अथवा गैर-हिंदू राज्यों में पवित्रता का बोध नहीं हो पाया था, इसलिए

लोग अपवित्रता और पवित्रता में अंतर नहीं कर पाते थे। यही कारण है कि वे शारीरिक अपवित्रता पर विशेष ध्यान नहीं देते थे और घरों में ही विलासिता के संपूर्ण संसाधन रखते थे, जिनमें शौचालयों की भी व्यवस्था थी। विदेशी इसलामिक आक्रांताओं ने जब यहाँ शासन करने की प्रवृत्ति विकसित की तो यहाँ भी अपनी बेगमों के लिए यह व्यवस्था निर्मित की। मध्यकालीन तथ्यों से यह प्रमाण है कि अकबर की 6 हजार बेगमें थीं।[1] मल-मूत्रादि सिर पर ढोने का कार्य उस समय आरंभ हुआ जब उन विदेशी नवाबों की हजारों की संख्या में संग्रहीत बेगमों ने शौच-क्रिया के बहाने बाहर जाकर परपुरुषों से अपनी असंतुष्ट वासना पूर्ति हेतु सैनिकों, महल के कर्मी एवं बाहरी व्यक्तियों से संबंध बनाना करना आरंभ किया। इस पर नवाबों को अपने अपमान की अनुभूति होती थी कि उनकी बेगमें इस प्रकार के निम्न कार्यों में लीन है। वे फिर उन पर कड़ाई की दृष्टि से उनको बाहर जाने पर प्रतिबंध लगा देते थे। ऐसे में उन बेगमों को शौचादि के लिए घर में ही व्यवस्था करना होता था। फिर निकृष्ट नौकरों द्वारा उसे सिर पर उठाकर बाहर फेंकने का कार्य लिया जाता था।

उस समय मैला साफ करने की समस्या उत्पन्न हुई थी। ऐसे में उस समय ऐसे दासों का चयन किया गया जिन्होंने युद्धों में विदेशी आक्रांताओं-शासकों को या उनको चुनौती दी थी। हिंदू राजाओं एवं सैनिकों को किसी प्रकार से पराजित करके युद्धबंदी बनाया जाता था। वे किसी भी मूल्य पर इसलाम स्वीकार नहीं कर रहे थे और अपने हिंदू धर्म को बिना परित्याग किए ही अपने स्वाभिमान को जागृत किए हुए थे। विदेशी आक्रांता शासकों के शारीरिक एवं आर्थिक उत्पीड़न का भी जब उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था, तो उनको सामाजिक रूप से गिराने का प्रयास किया गया। मैला ढोने का कार्य उनसे दमन इत्यादि के उपरांत बलपूर्वक लिया गया और जिन्होंने अस्वीकार किया उनको मार-मारकर उनसे यह कार्य कराया गया।

मैला ढोने से उन स्वाभिमानी एवं धर्माभिमानी हिंदुओं का स्वाभिमान भंग हो गया और वे उस समय तथाकथित भंगी कहे जाने लगे। यह सत्य है कि इसका तात्पर्य 'भंग' से है यानी 'टूटना'। यदि यहाँ यह अवलोकन किया जाए कि वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख समाज के सदस्य में क्या टूटा या भंग हुआ तो स्पष्ट हो जाएगा कि जो यह सफाई का कार्य करते थे, उससे उनका स्वाभिमान टूटता था। यानी भंग होता था। कालांतर में ऐसे लोगों को यही नाम ही दे दिया गया, क्योंकि उनकी संख्या लंबी हो गई। युद्धबंदियों को सामाजिक रूप से गिराने के साथ ही उनका आर्थिक शोषण किया गया और उनके राजवंशीय इतिहास का समापन किया गया। वे यह कहने योग्य नहीं रह गए कि कभी उनका वंशानुक्रम से इस देश पर शासन भी चलता था। उनकी

1. आगरा के लाल किला में अवस्थित शिलालेख पर अंकित।

सामाजिक, आर्थिक एवं राजवंशी प्रतिष्ठा को समाप्त करके उनका एक प्रकार से प्रचंड दमन एवं दलन किया गया। उनके स्वाभिमानी स्वभाव का अंत हो जाने पर, कालांतर में वे दलित कहे जाने लगे। धर्मरक्षा-देशरक्षा के कार्य से ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण को मिली यह निम्न सामाजिक प्रस्थिति अंततोगत्वा दलित जाति की प्रस्थिति तक कैसे ले आई, इसी का जीवंत चित्रण प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

5.1 युद्ध में चुनौती देने का परिणाम—इसलामिक शासकों का कोपभाजन

चुनौती का प्रत्येक स्वरूप स्वाभिमान को ललकारता हुआ स्वाभाविक रूप से प्रतिपक्ष यानी सामनेवाले में आक्रोश एवं प्रतिशोध उत्पन्न करता है जो किसी भी युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार कर देता है। हर चुनौती का कोई तो कारण होता है। विदेशी इसलामिक आक्रांताओं ने पश्चिमी तटों के तीनों नगरों (थाणे, भड़ौच और देवल) पर एक साथ आक्रमण करके धर्म-प्रसार के बहाने लूटने का बहाना निकाला था। इस युद्ध में सेनापति सहित बुरी तरह से मार खाया,[1] यही कारण था हिंदुस्थान के लिए युद्ध करने का और जिसे अरबों ने अपनी असफलता के बाद हिंदुओं द्वारा दी गई एक चुनौती के रूप में उसे अपने मन-मस्तिष्क में बैठा लिया था।

हिंदुओं ने युद्ध छेड़ा नहीं था, बल्कि थोपे गए युद्ध का जबरदस्त तरीके से उत्तर दिया था। यह कार्य उस समय राज्य एवं देश की रक्षा से जुड़ा हुआ था। युद्ध अथवा आक्रमण का प्रत्युत्तर आवश्यक और अपरिहार्य था, क्योंकि ऐसे समय में राष्ट्रहित सर्वोपरि रहता ही है। वैसे भी हिंदुस्थान में विकसित तत्कालीन सभ्यता, संस्कृति एवं सामाजिकता के कारण राष्ट्रहित का प्रश्न हर समय में सर्वोपरि रहा। व्यक्ति, परिवार, समाज, गाँव, प्रदेश आदि सबसे ऊपर होकर राष्ट्र हित का चिंतन अपने आप में सामाजिकता का एक महत्त्वपूर्ण अधिष्ठान है। दुर्दिन आने को होते हैं तो राष्ट्रहित का चिंतन गौण हो जाता है। हिंदुस्थान के दास होने का प्रमुख कारण राष्ट्रहित के चिंतन का आंशिक लोप होना ही था।

युद्ध में राष्ट्रहित की सोच के कारण ही पराजय से बचा जा सकता है। राष्ट्रहित की अवधारणा देश एवं राज्य से भी ऊपर मानी गई है, क्योंकि देश एवं राज्य के लिए एक निश्चित भू-भाग तथा जन आवश्यक है, जबकि राष्ट्र एक सांस्कृतिक अवधारणा है। देशरूपी शरीर में राष्ट्र एक आत्मा है। इस प्रकार हिंदू राष्ट्र का अधिष्ठान हिंदू संस्कृति है। हिंदू संस्कृति में वसुधैव कुटुम्बकम् और सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वेसंतु

---

1. श्रीवास्तव, अशोक : दिल्ली सल्तनत का उत्थान एवं पतन, पृ. 1

निरामया: की वैचारिकी है।[1]

युद्ध इसलिए हुआ कि अरब में राष्ट्र को ही राज्य एवं देश माना जाता है और हिंदू राष्ट्र जैसी विश्वहितकारी वैचारिकी भी उसमें नहीं है। जबकि हिंदू राष्ट्र अपने व्यावहारिक स्वरूप में विश्व कल्याणार्थ अवस्थित है। प्रलयकाल में विश्व मानवता की रक्षा-सुरक्षा यहीं पर संभव है। इसकी गारंटी यही है कि विश्व की समस्त प्राचीन सभ्यताएँ जहाँ मिट गईं, वहीं हिंदुस्थान की प्राचीन संस्कृति पूर्ववत् विद्यमान है, ऐसा विद्वानों ने स्वीकार भी किया है।

आज से तीन हजार वर्ष पूर्व भारतीय संस्कृति का जो रूप था, आज भी मूलतः वह वैसा ही हैं; मिस्र, बेविलोन और यूनान में भी प्राचीन सभ्यताएँ उत्पन्न हुई थीं, किंतु समय के साथ वे नष्ट हो गईं। केवल हिंदुस्थान ही एक ऐसा देश है, जिसका भूत व अतीत कभी मरा नहीं। वह बराबर वर्तमान के रथ पर चढ़कर भविष्य की ओर चलता रहा है। भारत का भूतकाल जीवित था, आज भी जीवित है और कदाचित् आगे भी जीवित रहेगा।[2]

युद्ध इसलिए भी हुआ क्योंकि अंग्रेजों ने हिंदुस्थान को अपने देश जैसा बनाने यानी ईसाइयत का देश बनाने का प्रयास हर स्तर पर किया,[3] उसके पूर्व विदेशी इसलामिक शासक आक्रांताओं ने भी ठीक उसी प्रकार से हिंदुस्थान को अपने अरब देश जैसा अर्थात् इसलामिक देश बनाना चाहा। दूसरी बात यह है कि जैसे अंग्रेजों ने गैर-ईसाई स्वीकार नहीं किया, वैसे ही विदेशी इसलामिक आक्रांताओं एवं शासकों ने भी किसी हिंदू या अन्य को स्वीकार नहीं किया था।[4]

विदेशी इसलामिक आक्रांता, कट्टर इसलामिक धर्मांध, नीतिविरुद्ध युद्ध, अमानवीय आचरण एवं मानवता की हत्या करनेवाले नरपिशाचों से हिंदुस्थान को किसी प्रकार की आशा भी नहीं थी। मुहम्मद गोरी को कई पराजयों में पृथ्वीराज ने क्षमा किया था, किंतु 1192 ई. में जब एक बार गोरी की विजय हुई तो उसने पृथ्वीराज के प्राण हर लिए थे। बलवन ने अपने विरोधी तुगरिल के प्रति दंडात्मक काररवाही हेतु सुनारगाँव के हिंदू शासक दानुजराय (राज दानुज) से सानुरोध निवेदन किया, परंतु वह सदैव हिंदुओं के दमन में लगा रहा। सरवरुलमुल्क ने मुहम्मदशाह (1434-45 ई.) के विरुद्ध विद्रोह किया तो उसने हिंदू वीर सिद्धपाल और सुधारन कागू से संरक्षण प्राप्त किया था। रणथंभौर के हिंदू राजा हम्मीरदेव से अलाउद्दीन खिलजी मात्र इसलिए नाराज था कि

1. डॉ. विजय सोनकर शास्त्री, हिंदू वैचारिकी, पृ. 19
2. दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 85
3. धर्मपाल : भारत की लूट एवं बदनामी, संपादकीय, पृ. 14
4. वही, विषय-प्रवेश, पृ. 5

उन्होंने भारतीय मुसलमानों (नव मुसलमानों) के विद्रोही नेता मुहम्मदशाह और उसके परिवार को अलाउद्दीन को सौंपने से इनकार कर दिया था, जबकि मुहम्मदशाह उस समय अलाउद्दीन की सेना में था और हिंदुओं का निर्दयता से कत्ल करता था। इसी तरह शेरशाह से भयभीत होकर हुमायूँ ने अपनी प्राण-रक्षा एक हिंदू भिश्ती से कर ली, किंतु इसलाम के नाम पर निरंतर हिंदुओं की हत्या एवं उत्पीड़न होता रहा।

ऐसे कृतघ्न आक्रांताओं से युद्ध और युद्ध में चुनौती का आदान-प्रदान स्वाभाविक था। चूँकि देश में कोई शक्तिशाली केंद्रीय शासन शक्ति नहीं थी, छोटे-छोटे राज्यों में देश की हिंदू शक्ति बिखरी और आपस में टकराकर कमजोर हो चुकी थी। सामाजिक मतभेदों एवं बौद्ध-हिंदू द्वेषादि के कारण आक्रांताओं को गोपनीय बातें मालूम हो जाया करती थीं, इसलिए हिंदू राजा पराजित हो जाया करते थे। अन्यथा वे पहले आक्रमण की ही तरह सदैव अजेय रहते।

अजेय न रहने के बाद भी हिंदुओं ने कुछ ऐसे युद्ध एवं चुनौतियों को विदेशी इसलामिक शासकों एवं आक्रांताओं के सम्मुख प्रस्तुत किया था जिनका उल्लेख इतिहास में स्वर्णाक्षरों में किया जाता है। गुजरात की चौलुक्स राजमाता नायकी देवी ने लुटेरे मुहम्मद गोरी को बुरी तरह मारकर जमीन पर गिरा दिया था और हिंदू युद्ध नियमावली को ध्यान में रखकर उसके निहत्थे शरीर पर वार नहीं किया था। परिणामस्वरूप उसके सैनिक उसे उठाकर ले गए और लंबे समय तक उपचार के बाद वह स्वस्थ हुआ। उस चुनौती को मुहम्मद गोरी कभी भूला नहीं।

पराजित एवं युद्धबंदी हिंदुओं ने इसलामिक आक्रोश को युद्ध में तो बढ़ाया ही था, साथ ही उनके 'इसलाम स्वीकार करो' के आदेश को ठोकर मारकर और भी बढ़ा दिया था। विदेशी मुसलिम शासककाल में उनकी आज्ञा का उल्लंघन एक बहुत बड़ी चुनौती थी, यही कारण था कि उनको दमन और दलन के उपरांत बलपूर्वक मैला ढोने एवं सफाई के कार्यों में लगाया गया। उनके सामाजिक मान-सम्मान एवं स्वाभिमान को धूल में मिलाया गया और स्वाभिमान भंग कर उन्हें 'भंगी' कहकर एक प्रकार से अपमानित करने हेतु षड्यंत्र रचा गया। ऐसे ही अनेक लोगों को विविध अस्वच्छ कार्यों में लगाया गया। हिंदुओं ने उनके आक्रोशों से उत्पन्न अत्याचारों एवं उत्पीड़नों को धैर्य से सहा, परंतु इसलाम स्वीकार नहीं किया। उन्होंने मैला ढोना स्वीकार किया परंतु इसलाम को अस्वीकार किया।

यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि इसलामिक शासकों का आक्रोश वस्तुतः किन लोगों पर था, पूरे हिंदुओं पर अथवा कुछ लोगों पर? स्थिति स्पष्ट है कि उनका आक्रोश केवल उन लोगों पर था जिन्होंने उनसे युद्ध लड़ने का साहस किया था। युद्ध लड़ने का कार्य मुख्य रूप से देशरक्षकों (राज्य और राज्य की प्रजा के

रक्षक, यानी राजाओं और उसके सैनिकों) ने किया था। धर्मरक्षकों (ब्राह्मणों) ने भी धर्मरक्षार्थ युद्ध किया था, जब मूर्तिभंजक विदेशी आक्रांताओं एवं लुटेरों ने हिंदू संस्कृति एवं हिंदू आस्था के केंद्र मंदिरों पर आक्रमण किया था। इसमें ब्राह्मणों ने अधिक पराक्रम दिखलाए थे परंतु आपद्काल में आवश्यक कार्य को सभी वर्णों को मिल-जुल कर संपादित किए जाने का विधान था। युद्ध आपद्कालीन कार्य था इसलिए उसमें उक्त संख्यानुपात में हिंदुओं ने भाग लिया। संस्कृति एवं धर्मरक्षा और प्रजा एवं देशरक्षा का नेतृत्व चूँकि ब्राह्मण एवं क्षत्रियों ने किया था, इसलिए ये दोनों ही जातियाँ प्रमुख शत्रु के रूप में चिह्नित एवं स्थापित हुई। युद्ध में इनको पराजित करने के बाद युद्धबंदी बनाया गया और सर्वप्रथम बलपूर्वक इन सभी से मैला ढोने का कार्य लिया गया। चर्म-कर्म तथा अन्य अस्वच्छ एवं अपवित्र कार्य इनसे बाद में लिए गए। इससे स्पष्ट हो जाता है कि हिंदू युद्धबंदियों को पहले सफाई-कर्म में लगाकर भंगी बनाया गया और उसके बाद वे चर्म-कर्म में लगाकर चमार बनाए गए। उसी क्रम में यह भी कहा जा सकता है कि आक्रांताओं एवं शासकों के आक्रोश के शिकार सर्वाधिक वर्तमान वाल्मीकि, मखियार, मजहबी सिख, सुदर्शन इत्यादि जाति के लोग ही हुए, अन्य लोगों ने कम आक्रोश झेला। इसी तरह ब्राह्मण एवं अन्य वर्ण के कुछ कम लोग आक्रोश के शिकार हुए क्योंकि उनकी संख्या कम थी, जबकि क्षत्रिय लोग अधिक संख्या में पीड़ित हुए, क्योंकि उनकी संख्या अधिक थी। तद्नुसार ही यह कहा जा सकता है कि वर्तमान तथाकथित सफाईकर्मी (भंगी) जाति में ब्राह्मण एवं अन्य वर्णों की संख्या कम है, जबकि क्षत्रियों की संख्या सर्वाधिक है।

युद्ध में चुनौती एवं आक्रोश की यह स्थिति अनायास नहीं थी। यह हिंदू धर्म के विरुद्ध धार्मिक अवधारणा का स्वाभाविक परिणाम थी। इसमें चुनौती और आक्रोश के लक्षण इसलिए थे कि उनमें आचार और अहिंसा का अभाव था। दुर्भाग्यवश जैन, बौद्ध भी हिंदू विरोधियों द्वारा योजनाबद्ध हिंदू विरुद्ध पंथ के रूप में यहाँ प्रचलित हुए, किंतु उनमें सत्य और अहिंसारूपी आध्यात्मिक तत्त्वों का मुख्य स्रोत तो हिंदुत्व ही था। इसलाम और ईसाई धर्मों में हिंसा की अवधारणा ने युद्ध चुनौती एवं आक्रोश की स्थिति उत्पन्न की। हिंदुस्थान अनादिकाल से हिंदुओं का स्थान था (जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है), जबकि मुसलमान एवं ईसाई वस्तुतः धर्मांतरित किए गए (कन्वर्टेड) हिंदू हैं। मुसलमान एवं ईसाई का कहीं से आयात नहीं किया गया था, बल्कि हिंदुस्थान के ही हिंदुओं को बलपूर्वक अथवा लालच देकर धर्मांतरित किया गया। अतएव एक स्थान पर रहने से दो विपरीत वैचारिकी एवं मान्यताओं में टक्कर अथवा युद्ध स्वाभाविक था

और उनका एक दूसरे पर आक्रोश भी अवश्यंभावी था।

5.2 युद्धबंदियों को मैला ढोने की सजा

बंदी और युद्धबंदी, दोनों दो शब्द हैं और दोनों का अर्थ भी अलग-अलग है। बंदी उनको कहा जाता है जिनको बिना किसी कारण के बंदी बनाया जाए। युद्धबंदी वे कहलाते हैं जो युद्ध करते समय पराजित करके बंदी बनाए जाएँ। वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज के लोग बंदी नहीं, बल्कि युद्धबंदी थे। ये 'मार्शल रेस' यानी योद्धा प्रजाति के धर्माभिमानी, स्वाभिमानी एवं युद्धक थे। ये लोग हिंदू संस्कृति के संवर्धन एवं हिंदू धर्म की रक्षा करने में आज अपनी इस दयनीय दशा को प्राप्त हुए हैं। इसका उन्हें दुःख नहीं अपितु गर्व है कि वे अपने स्व को मिटाकर अपनी संस्कृति एवं स्वधर्म की रक्षा करने में सफल रहे। इसलामिक आक्रांताओं से कभी-कभी पराजय भी हो जाती थी और जब वे निहत्था करके बंदी बना लिए जाते थे, तब वे युद्धबंदी कहे जाते थे।

मध्ययुग में इसलामिक आक्रांताओं ने सामान्य पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को इसलाम स्वीकार कराने हेतु बंदी बनाया जब उन्होंने इसलाम अस्वीकार कर दिया तो उनको मार डाला अथवा दास बनाकर अरब ले गए। ऐसे लोगों को सामान्य बोलचाल में युद्धबंदी भले कह दिया जाए क्योंकि वे भी युद्धकाल में ही बंदी बनाए गए होते थे, परंतु वाक्य में वे केवल निर्दोष एक सामान्य जन की तरह बंदी कहलाते थे।

युद्धबंदी केवल वे कहे जाते थे जिनको इसलामिक आक्रांताओं द्वारा किसी भी प्रकार से बंदी बनाया जाता था। इस श्रेणी में केवल हिंदू सैनिक ही होते थे। वे वीरोचित भावना, प्रचंड साहस, योद्धावृत्ति और स्वाभिमानी प्रवृत्ति के कट्टर हिंदू होते थे। इतिहासकारों ने जहाँ पर शूद्र राजा और शूद्र सैनिकों का उल्लेख किया है, वे भी क्षत्रिय संवर्ग के ही बहादुर योद्धा थे। वे रणक्षेत्र में न तो ब्राह्मण, क्षत्रिय थे और न ही वैश्य अथवा शूद्र, बल्कि वे केवल सैनिक थे। हिंदू सेना की यही विशेषता थी कि उसमें भाग लेनेवाले सभी देशप्रेमी, धर्माभिमानी, स्वाभिमानी और क्षत्रिय संवर्ग तथा क्षत्रिय प्रवृत्ति के प्रखर हिंदू थे।

मध्यकाल में युद्धबंदी कभी मुक्त नहीं किए गए थे। विदेशी आक्रांताओं ने उनको बलपूर्वक मुसलमान बनाया, दास बनाकर बाजारों में खुलेआम बेचा, गंदे, अस्वच्छ और अपवित्र कार्यों में नियोजित किया अथवा मार डाला। इतने पर भी यदि कोई हिंदू युद्धबंदी किसी युक्ति से बचकर निकल जाता तो उसे हिंदू समाज में स्वीकार किया जाता था और उसको सम्मानित किया जाता था।

इसलाम धर्म में अथवा कुरान या शरीयत में कहीं भी स्त्री, बच्चों और बंदियों के साथ अत्याचार और उत्पीड़न का उल्लेख नहीं है, जबकि मध्यकालीन मुसलिम आक्रांताओं द्वारा हिंदुओं का प्रचंड उत्पीड़न सार्वजनिक रूप से किया गया था। किसी अवयस्क कन्या का शीलहरण और किसी अबला के शीलांगों को उच्छेदन किया गया और ऐसा करनेवाले विदेशी शासकों की निंदा तक किसी इतिहासकार ने नहीं की।

किसी भी हिंदू युद्धबंदी को बचकर अपने देश हिंदुस्थान या घर वापस आने पर हिंदू लोग उसे छूते नहीं थे क्योंकि वे उन विधर्मियों एवं गो-मांस भक्षकों के हाथों से बचकर भागे होते थे जिनको हिंदू धर्म में अस्पृश्य माना जाता है। ऐसे विधर्मियों, अपवित्र कार्यों और विचारोंवालों के हाथों छुआ गया होना हिंदू धर्म में अपवित्र माना जाता रहा है। इस प्रकार हिंदू धर्म में वापस लौटे युद्धबंदी को गंगा के पवित्र जल और गाय के पवित्र एवं आरोग्यप्रद पंचगव्य, साथ ही पवित्र तुलसी पत्र के स्पर्श और खिलाने के बाद पुनः हिंदू धर्म में आत्म-सात किया जाता था। जैसा कि एक मुसलिम इतिहासकार अलबरूनी ने पंक्तियों को लिखकर हिंदू जीवन-पद्धति पर हास्य का प्रयास किया—

'मुझे बार-बार यह सूचना दी गई कि जब हिंदू दास भागकर अपने देश और धर्म में लौटते हैं तो लोग उन्हें प्रायश्चित्त के रूप में उपवास करने का विधान करते हैं। तत्पश्चात् वे उन्हें गोबर, गोदुग्ध आदि में कुछ दिनों के लिए दबाते हैं, जब तक कि वे चीजें सड़ न जाएँ। उसके बाद वे उन्हें खाने के लिए वही गंदगी देते हैं। मैंने ब्राह्मण से पूछा कि क्या यह सूचना ठीक है, तो उन्होंने इसका निषेध किया और कहा कि ऐसे व्यक्ति के लिए कोई प्रायश्चित्त संभव नहीं है और उन्हें कभी जीवन में वह स्थान नहीं मिल सकता जो उन्हें बंदी होने के पूर्व प्राप्त था।"[1]

उक्त कथन में कोई हिंदू युद्धबंदी किसी भी प्रकार से शुद्ध नहीं हो सकता था, यह कथन उतना ही सत्य है जितना यह सत्य है कि अनेकानेक इसलाम विरुद्ध कार्य करनेवाला शासक कभी इसलाम-बहिष्कृत नहीं हो सकता। जहाँ तक गोबर और गोदुग्ध की बात है, हिंदू आयुर्वेद के पंचगव्य को पूरा विश्व असाध्य रोगों की औषधि के रूप में मान्यता प्रदान कर चुका है। यह औषधि यदि अलबरूनी को सड़ी-गली वस्तु समझ में आती रही हो तो उसके लिए उनका आत्मज्ञान और अज्ञानतायुक्त चिंतन को दोष देना अप्रासंगिक होगा। वस्तुतः दोष तो उस लेखक का है जिसने हिंदू संस्कृति और हिंदू आयुर्वेद के महत्त्व की अनदेखी ही नहीं की

1. अलबरूनीज इंडिया, 2, पृ. 162-63

अपितु अपनी अज्ञानता का परिचय देने का प्रयास किया है। ऐसे एकांगी चिंतनवाले इतिहासकारों में केवल अलबरूनी ही नहीं बल्कि इलियट और डाउसन के भी इन विचारों पर ध्यान देना चाहिए—'मुहम्मद बिन कासिम द्वारा बलपूर्वक बंदी और मुसलमान बनाए गए ऐसे स्त्री-पुरुष भारतीय समाज में लौटने के पश्चात् पुनः शुद्ध कर लिए गए थे।"[1]

अतः हिंदू युद्धबंदियों को गंगाजल और पंचगव्य आदि से शुद्ध किए जाने की व्यवस्था जो हिंदू धर्म में थी, उसका संबंध बिना किसी भेदभाव के सभी युद्धबंदियों से था, भले ही वे हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख, खटिक एवं चमार बना दिए गए युद्धबंदी थे अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण से संबंधित थे।

मृत्युदंड से मुक्त इसलाम अस्वीकार करनेवाले युद्धबंदियों से बलपूर्वक अनेक प्रकार के निम्नकोटि के कार्य कराए गए थे। इसलामिक शासकों ने अपनी शान-शौकत के लिए हजारों हजार हिंदू नारियों को अपनी बेगमों के रूप में अपने शयनकक्षों में कैद कर रखा था जिनकी वास्तविक संख्या तक की उनको जानकारी नहीं थी। शौच इत्यादि के लिए जब ये बेगमें बाहर जाती थीं तो उन्हें परपुरुषों की सहानुभूति एवं सहवास प्राप्त होता था एवं वे गर्भधारण कर लेती थी तो नवाबों को यह अच्छा नहीं लगता था। इसे रोकने हेतु उन बेगमों को महलों और हरमों में कैद कर उनका बाहर जाना भी बंद कर दिया गया। शाही सदस्यों के मल-मूत्रों की सफाई का गंदा कार्य पूर्व में उनके पुराने निकृष्ट नौकर सफाईकर्मी के रूप में करते थे। जब बेगमों, नर्तकियों, वेश्याओं तथा दासियों को भी शौच के निमित्त बाहर जाने से रोक दिया गया तो उनकी बढ़ी हुई संख्या के कारण अत्यधिक सफाईकर्मियों की आवश्यकता हुई। इस अस्वच्छ और अपवित्र कार्य में हिंदू युद्धबंदियों को बलपूर्वक लगाया गया। उनकी स्त्रियों एवं बच्चों को गलियों एवं सड़कों की सफाई तथा नालियों की धुलाई का काम दिया गया। यह कार्य निश्चित रूप से अस्वच्छ एवं घिनौना था, और वह एक प्रकार दंड के समान था। यह दंड सबसे अद्‌भुत था। विश्व में कोई भी सजा ऐसी न होगी जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोग भुगतने के लिए बाध्य कर दिए गए हों। किंतु हिंदुस्थान के इतिहास में विदेशी आक्रांता मुसलिम शासक वर्ग द्वारा हिंदू स्वाभिमान एवं धर्माभिमान को खंडित करने हेतु योद्धा हिंदुओं को सफाई एवं चर्म-कर्म में लगाकर नई जातियों का निर्माण एवं जन्मना कार्य पर आधारित समूह एवं जातियों की रचना कर दी। वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि ऐसी ही स्वाभिमानी एवं श्रेष्ठ लोगों से बलपूर्वक बनाई गई जातियाँ हैं।

---

1. इलियट एवं डाउसन (पूर्वोद्धृत), भाग-1, पृ. 120

5.3 मैला ढोने से स्वाभिमान हुआ भंग

अपमान को निगल जाना व्यक्तित्व पतन की अंतिम सीमा है। स्वाभिमान का भंग होना एक प्रकार से अपमान ही था। अतः स्वाभिमान का भंग होना, सबकुछ समाप्त होना कहा जा सकता है। मैला ढोना यानी अस्वच्छ एवं अपवित्र वस्तु को ढोने से अपवित्र हो जाना ही माना जाता है, आज भी इस कार्य में जो भी लगे या लगते हैं, अपवित्र मान लिए जाते हैं। क्योंकि हिंदू धर्म और संस्कृति में सामाजिक आदर्श पवित्रता से ही जुड़ा हुआ है, अपवित्रता से नहीं।

हिंदू समाज पवित्रता के धरातल पर खड़ा हैं। अपने पवित्र और सर्वमान्य नियम-कानूनों के अंतर्गत हिंदू समाज की व्यवहार-शैली पल्लवित और पुष्पित है। उन नियमों से च्युत होने पर किसी भी पतित व्यक्ति को पतन के मुख से बाहर लाया जाना संभव होता है, परंतु कठोर नियमों से च्युत होने पर पूर्णतः पतित लोगों का पतन रोकना असंभव होता है।

अतः किसी पवित्र को अपवित्र बना देना भी उसके धर्माभिमान एवं स्वाभिमान को भंग कर देने के समान है। अपवित्रता दो विधि से आती है—स्वतः के किए गए कार्यों से या बलपूर्वक थोपे गए या कराए गए कार्यों से। स्वतः द्वारा किए गए कार्यों के लिए दूसरों पर दोष नहीं दिया जा सकता है, परंतु थोपी गई अपवित्रता के लिए वे लोग दोषी होते हैं जो अपवित्रता बलपूर्वक थोपते हैं।

मैला ढोने अथवा सफाई-कर्म के लिए बाध्य करने का काम विदेशी आक्रांता इसलामिक शासकों ने किया था, इससे वे ही स्वाभिमानी एवं धर्माभिमानी ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि युद्धबंदी प्रभावित हुए थे, जिनके संख्यानुपात का विवरण दिया जा चुका है—यानी 10 प्रतिशत ब्राह्मण एवं अन्य तथा 90 प्रतिशत क्षत्रिय। अपवित्र अथवा अस्वच्छ कार्यों में लगाए जाने पर वे धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी हिंदू युद्धबंदी अपने ही समाज से अलग कर दिए गए। उनको अपवित्र मानकर इसलामिक शासक उनसे अस्पृश्यता का भेदभाव करने लगे, जबकि वे शासक एवं आक्रांता किसी भी हिंदू के लिए स्वयं ही गो मांस भक्षण के कारण अस्पृश्य, अपवित्र एवं विधर्मी थे। ऐसी स्थिति में किसी हिंदू के लिए कोई विधर्मी अथवा अपवित्र यानी गो-मांस भक्षक लोग किसी अन्य को अपवित्र माने तो उस अवस्था में पहुँचे हुए हिंदू युद्धबंदियों की सामाजिक स्थिति कैसी रही होगी, इसी से अनुमान लगाया जा सकता है।

अपवित्रता भी त्रिस्तरीय थी, यानी सामान्य हिंदू लोग विदेशी इसलामिक शासकों को अपवित्र मानते थे, दूसरी ओर विदेशी मुसलिम आक्रांता शासक उन तत्कालीन हिंदू युद्धबंदियों को असामाजिक मानते थे जिनको वे अपवित्र एवं अस्वच्छ कार्यों में लगा देते थे। सामान्य हिंदू ऐसे में उन अस्वच्छ एवं अपवित्र कार्यों में लगाए गए हिंदू

युद्धबंदियों को ही अपवित्र मान बैठे थे। मैला ढोने एवं सफाई-कार्य करनेवाले हिंदू युद्धबंदियों को अपवित्रता का दंड अभिशाप के रूप में ऐसा लगा कि वे अपवित्र एवं अस्पृश्य समझ लिए गए और उनको सामाजिक दंड भी दे दिया गया। जबकि वास्तव में हिंदू समाज अपवित्रता एवं अस्वच्छता में बुनियादी अंतर नहीं कर सका। अस्वच्छता पर आधारित अस्पृश्यता अस्थायी होती थी। किंतु अपवित्रता पर आधारित अस्पृश्यता स्थायी होती चली गई।

मैला ढोनेवालों के प्रति सामान्य हिंदुओं के मन में दुर्भाग्यवश श्रद्धा एवं सहानुभूति के स्थान पर घृणा और तिरस्कार का भाव था। वैसे घृणा और तिरस्कार को जन्म देनेवाले कुछ और भी कार्य तथा अवस्थाएँ होती थीं, जैसे—सामाजिक मूल्यों से दूर हो जाना, सामाजिक नियमों और कानूनों को मानने की बाध्यता से मुक्त होना, किसी पापमय कार्यों में लिप्त होना, शारीरिक गंदगी को बनाए रखना, मानसिक रुग्णता का शिकार होना, धर्मच्युत होकर अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्धांत एवं साधनों का बहिष्कार करना, देवी-देवताओं की पूजा और अतिथियों की सेवा से वंचित होना इत्यादि। परंतु आक्रांता-शासकों द्वारा हिंदू युद्धबंदियों से बलपूर्वक मैला ढुलवाने से प्राप्त घृणा और तिरस्कार सबसे बढ़कर था। इसका दुष्प्रभाव ऐसा पड़ा कि हिंदू समाज ने अपने ही भाई की पहचान को भुला दिया और अपने ही धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी हिंदू वंश-गोत्र को अपनाने से इनकार कर दिया। यही भ्रम आज तक हिंदू समाज में दो सगे भाइयों के बीच आज तक खाई बनाए हुए है। इससे प्रभावित एक हिंदू अपने को अपवित्र मानता है तो दूसरा पवित्र मानता है। पवित्रता के नाम पर हिंदू समाज में घृणा एवं तिरस्कार का उत्पन्न किया गया वातावरण पूर्णतः अवैज्ञानिक एवं अज्ञानतायुक्त है, जिस पर विचार करके अविलंब समाप्त करना आज की माँग है। हिंदुओं को एक सुदृढ़ समाज के रूप में स्थापित हिंदू धर्म को पुनर्प्रतिस्थापित करने की नितांत आवश्यकता है।

विदेशी इसलामिक शासक इस बात से संतुष्ट एवं प्रसन्न थे कि उन्होंने इसलाम अस्वीकार करनेवाले हिंदू युद्धबंदियों से मैला ढोने का काम बलपूर्वक कराके उनका स्वाभिमान एवं धर्माभिमान भंग कर दिया। पवित्रता की बात करनेवाले हिंदू समाज ने भी अज्ञानतावश यही मान लिया कि उनके समाज के कुछ लोगों ने मैला ढोकर अपने को अस्पृश्य और अपवित्र की श्रेणी में स्वयं को बना लिया, यानी समाज में जो स्वाभिमान वे रखते थे, उसे लाचारी में स्वतः समाप्त करा लिया। परंतु, दूसरी ओर देखा जाए तो उन स्वाभिमानी एवं धर्माभिमानी लोगों का स्वाभिमान वास्तव में तब भंग माना जाता जब वे इसलाम स्वीकार कर लेते। मैला ढोने का कार्य तो उन अभागे हिंदुओं को दंडस्वरूप मिला था। शासन-सत्ता के विरोध में कार्य करने पर किसी भी बंदी को किसी भी तरह का दंड मिल सकता था, अतएव दंडित व्यक्ति को अपने समाज का व्यक्ति समझकर

कम-से कम हिंदू समाज को अपनी ओर से एक और दंड देना सर्वथा दुर्भाग्यपूर्ण अनुचित था। धर्मरक्षा के लिए दी गई इतनी बड़ी कुरबानी को लोगों ने ध्यान नहीं दिया, यह दुःख का विषय था और वर्तमान में भी है।

इसलाम में पवित्रता के सापेक्ष भी इस तरह के दोहरे दंड की व्यवस्था नहीं है। जेहाद के नाम पर हिंदू से मुसलमान बनाया गया खुसरोशाह जब दिल्ली की गद्दी पर सन् 1320 ई. में बैठा तो उसने महलों में मूर्ति-पूजा आरंभ करा दी थी।[1] इसी तरह हिंदू से मुसलमान और मुसलमान से हिंदू बने हरिहर एवं बुक्का ही दक्षिण भारत में हिंदू राज्य के संस्थापक बने थे।[2] हिंदू से मुसलमान बनाए गएं इमादुद्दीन रैहान के साथ जब ईरानी मुसलमानों ने मतांतरित होने से भेदभाव किया तो उसने समस्त भारतीय मुसलमानों को एकजुट करके विद्रोह कर दिया था।[3] नौ मुसलिमों और शासकों को हिंदी पदवी 'श्री' के साथ नामकरण किया गया।[4] सीदी मौला ईरान से अजोधन आकर बस गए थे। उन्होंने कभी नमाज नहीं पढ़ी थी। वे बहुत दानी थे। जलालुद्दीन के समय में उनकी अग्निपरीक्षा ली गई और मार दिए गए। उस समय भयानक अकाल पड़ा था।[5]

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है धर्म को लेकर स्वाभिमान भंग होने अथवा अछूत होने का उतना प्रयोजन नहीं था, परंतु मैला ढोने का प्रभाव उससे बढ़कर माना गया था। चूँकि हिंदू युद्धबंदियों से मैला ढुलाकर उनके स्वाभिमान को भंग किया गया था, इसलिए इस अस्वच्छ कार्य को अधिक अपवित्र माना गया। आज तक मैला इत्यादि ढोने से उत्पन्न यह अपवित्रता हिंदू समाज में सबसे अधिक प्रभावशाली मानी गई किंतु वर्तमान समय में हिंदुओं के सशक्तिकरण हेतु ऐसी अवधारणा को समाप्त किया जाना अति आवश्यक है। इसके लिए स्वच्छता एवं पवित्रता की अवधारणा आधारित हिंदू समाज को पहले चिंतन करना पड़ेगा। यदि आज हिंदू समाज द्वारा इतिहास की अपनी इन त्रुटियों को नहीं सुधारा गया तो निश्चित रूप से हिंदू और हिंदुस्थान, दोनों ही सबल, शक्तिशाली, वैभवशाली एवं उन्नत नहीं बन सकेगा।

5.4 सामाजिक रूप से गिराने का षड्यंत्र

विदेशी मुसलिम आक्रांताओं एवं शासकों को हिंदू सैनिकों से जो चुनौती मिली,

---

1. श्रीवास्तव, अशोक : दिल्ली सल्तनत का उत्थान और पतन, पृ. 434
2. वही, पृ. 506
3. वही पृ. 199
4. वही, पृ. 267
5. वही, पृ. 311

उससे वे पूर्णतः आक्रोश में भर गए थे। इसलाम अस्वीकारने एवं ठुकरा देने से उनका क्रोध और बढ़ गया था। यही कारण था कि युद्धबंदी हिंदुओं को उन्होंने दंडस्वरूप मैला ढोने की सजा दी ताकि युद्धबंदियों का धर्माभिमान एवं स्वाभिमान भंग हो जाए और सामाजिक रूप से निम्नावस्था को प्राप्त करें एवं उनके समक्ष पुनः चुनौती न दे सकें।

मैला ढोने का कार्य स्वाभिमानी एवं धर्माभिमानी योद्धा हिंदू युद्धबंदियों से इसलिए लिया गया ताकि वे अस्वच्छ कार्य करने से अपवित्र हो जाएँ और उनको उनके ही समाज के लोग अपने साथ रहने, रखने एवं छूने से भी घृणा करने लगें। उस समय हिंदू समाज में छुआछूत का आधार अस्वच्छता पर आधारित अस्पृश्यता संबंधी अपवित्रता ही थी, पर वह स्थायी न थी बल्कि प्रायश्चित्त विधानों के बाद समाप्त हो जाती थी। अपवित्रता की निरंतरता के साथ अस्पृश्यता की निरंतरता का स्थायी होना स्वाभाविक था।

उपरोक्त कथन को अन्य प्रकार से भी व्यक्त किया जा सकता है कि लोग समाज से कैसे गिरते थे। हिंदू धर्म में पवित्रता की अवधारणा तो प्राचीन काल से थी, किंतु छुआछूत का भेदभाव केवल अशौच की अवधि तक के लिए ही किसी के भी साथ किया जाता था। वर्ण अथवा जाति के साथ किसी व्यवसाय अथवा अन्य आधारों पर हिंदू समाज में छुआछूत का भेदभाव कहीं नहीं था। वर्ण-व्यवस्था काल में भी सभी वर्ण एक साथ रहते थे। सवर्ण का अर्थ था—'जो वर्ण के साथ हो।'[1] शूद्र भी वर्ण के साथ था, इसलिए वह भी सवर्ण था और समाज में उसे सवर्ण कहते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य की भाँति शूद्र भी सवर्ण थे। शूद्र अत्यधिक ताकतवर होने से अत्यधिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने के जिम्मेदार थे। धूप-वर्षा में कठोर श्रम करने के कारण उनका रंग श्याम हो गया था, जिसका आशय यह नहीं कि वे अवर्ण हो गए थे।

तत्कालीन हिंदुस्थान में सबसे कम संख्या उन लोगों की थी जो ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पारंगत थे, उसके बाद पराक्रमी लोगों की संख्या थी। व्यापारियों और महाजनों की संख्या तीसरे स्तर पर थी परंतु शूद्र यानी शिल्पियों और श्रमिकों की संख्या सर्वाधिक थी। उनका शोषण किसी भी स्तर पर सामान्य रूप से किसी जाति, वर्ण या वर्ग द्वारा किया जाना कदापि संभव न था। अधिक संख्या में होने से वे दास भी नहीं बनाए जा सकते थे। श्रमिक आंदोलन की शक्ति से संपन्न शूद्रों को शासन में राज्यपति तक के स्थान प्राप्त थे। वे ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में अपना वर्चस्व रखते थे, वैदिक ऋचाओं के साथ ही रामायण तथा महाभारत जैसे ग्रंथों की रचना तक शूद्र ऋषिगण कर सकते थे। हिंदू धर्मग्रंथों में शासक शूद्र, विद्वान् शूद्र, राजवैद्य शूद्र, ग्रंथकार शूद्र, व्यापारी शूद्र के

---

1. डॉ. बी.आर. अंबेडकर, अछूत कौन और कैसे? पृ. 49

उदाहरण भरे पड़े हैं। आज हिंदू धर्मग्रंथों में हिंदू समाज को बाँटकर उसकी शक्ति को क्षीण करने के उद्देश्य से छुआछूत का भेदभाव प्रक्षिप्तता के कारण भले ही कहीं लिखा मिले, परंतु व्यवहार में ऐसा सोचने के लिए न तो अन्य वर्णों के पास समय था और न ही साहस था। भारत में शूद्र कभी अस्पृश्य नहीं था।[1]

शूद्र ब्राह्मण हो सकता था और ब्राह्मण अपनी वृत्ति परिवर्तित करके शूद्र बन सकते थे। यह भी अनिवार्य और अपरिहार्य नहीं था। सभी लोग अपने-अपने पौरुष तथा रुचि के अनुसार अपना-अपना वर्ण चयन कर लेते थे, परंतु सदैव एक साथ ही रहते थे। इन वर्णों में जिनके भी कार्य वर्ण-विरुद्ध होते थे, उनके साथ पवित्रता तथा अपवित्रता के आधार पर व्यवहार हेतु नियम बनाए जाते थे। चांडाल आदि के लिए उन दिनों जो कठोर नियम बनाए गए थे, उसका उद्देश्य समाज की पवित्रता को बनाए रखने का ही था, परंतु चांडाल केवल शूद्र वर्ण के ही लोग होते थे, यह मान्यता कपोलकल्पित थी। ब्राह्मण भी अपवित्र कार्यों को करने के कारण चांडाल हो सकता था। यही कारण है कि धर्मग्रंथों में चांडाल को वर्ण-व्यवस्था से अलग रखकर उसे कठोर हिंदू सामाजिक नियमों से अवरुद्ध कर दिया गया था ताकि वह हिंदू धर्म में पवित्रता की अवधारणा का उल्लंघन न कर सके।

वर्णों का नामकरण उनके व्यक्तित्व, विचार-भाव, विशेषताओं के आधार पर हुआ था। उसमें उनकी वृत्ति (व्यवसाय) और प्रवृत्ति अंतर्भाव को भी आकलित किया गया था। तद्नुसार जिन्होंने सामाजिक नियमों के निर्माण का कार्य लिया वे ब्राह्मण, जिन्होंने सामाजिक नियमों का अनुपालन कराने का कार्य लिया वे क्षत्रिय, जो सामाजिक नियमों के प्रभाव एवं परिवर्तन संबंधी सुझाव का कार्य लिया वे वैश्य और जिन्होंने उन नियमों का सही ढंग से पालन करके दिखलाने का कार्य किया वे शूद्र कहे गए। शूद्र का आशय छुद्र नहीं, अपितु शुद्ध होता है। मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण विद्या से, क्षत्रिय बल से, वैश्य धन से एवं शूद्र जन्म से श्रेष्ठ अथवा शुद्ध माना जाता है।[2] अतएव प्राचीन हिंदू समाज में छुआछूत एवं भेदभाव लेशमात्र भी नहीं था। यही कारण था कि चार वर्णों में विभक्त होने पर भी हिंदू समाज में अलगाव की स्थिति नहीं थी।

मध्ययुग हिंदू समाज के लिए विभाजन एवं अलगाव-काल कहा जाता है, क्योंकि अपवित्रता के आधार पर लोग अस्पृश्यता को वंशगत व्यवसाय तथा जाति-धर्म, संप्रदाय इत्यादि के आधारों पर व्यवहार में लाने लगे थे। यह स्थिति विदेशी आक्रांताओं एवं शासकों द्वारा पूर्णतः प्रायोजित थी। यह स्थिति लाने के लिए हजारों

---

1. डॉ. अंबेडकर, अछूत कौन और कैसे? पृ. 99
2. मनुस्मृति, 6/92

हजार हिंदू युद्धबंदियों को उनके क्षत्रिय स्वभाव के विपरीत मल-मूत्र जैसे अस्वच्छ एवं अपवित्र यानी सफाई के कार्यों में बलपूर्वक लगाया गया था, हर प्रकार से उनको अस्वच्छ रखकर गाँव तथा नगरों के बाहर अपवित्र स्थानों पर निवास करने के लिए बाध्य किया गया था। अपमानजनक तथा अपवित्रतासूचक संबोधन प्रदान किया गया था। इनके प्रति भ्रामक कथन प्रसारित किए गए थे, ताकि उनको हिंदू समाज का शेष भाग अस्वीकार कर दें और वे अलग-थलग पड़ जाएँ। उनकी यह गंदी नीति कुछ समय तक के लिए सफल रही। अस्वच्छता एवं अपवित्रता को लेकर हिंदू समाज में छुआछूत जैसा दोष आया।

अपवित्रता के आधार पर प्रादुर्भूत अस्पृश्यता अथवा छुआछूत की दुर्भावना ने हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियों के साथ खान-पान, बात-व्यवहार इत्यादि ने सभी क्षेत्रों में दूरी स्थापित करने का कार्य किया। अपने को स्वच्छ एवं पवित्र समझनेवाले हिंदुओं ने उनसे हर सभी प्रकार के संबंध समाप्त कर लिए थे ताकि उनकी पवित्रता बनी रहे और वे हिंदू धर्म के परिप्रेक्ष्य में अधर्मी अथवा विधर्मी न समझे जाएँ। जब हर क्षेत्र में दूरी बनाई गई और सदियों तक अलग-अलग रहकर दोनों प्रकार के हिंदुओं ने अपना जीवन व्यतीत कर लिया तो कालांतर में उनमें हर स्तर पर अंतर दृष्टिगोचर होने लगा। इसी अंतर का लाभ उठाकर विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के बाद अंग्रेजों ने भी हिंदुस्थान में लंबे समय तक शासन किया और ज्यों ही अपने अलगाव का मुख्य कारण हिंदू समाज की समझ में आया, हिंदू समाज एकजुट हुआ और अंग्रेजों को देश से बाहर जाना ही पड़ा। इसी महत्त्वपूर्ण बिंदु को ध्यान में रखते हुए हिंदू धर्म में आज स्वच्छता और पवित्रता की अवधारणा ऐसी रखी गई है कि हिंदू समाज पुनः बिखरने न पाए। आज अस्पृश्यता यानी छुआछूत को अभिशाप मानकर पवित्रता को प्रतिष्ठित किया गया है।

यह एक सुनियोजित षड्यंत्र था, क्योंकि धर्म के नाम पर सभी हिंदू एकजुट थे और जिनको अपवित्र अथवा अस्वच्छ कार्यों में लगाया गया था उनकी संख्या सर्वाधिक थी। वे लोग अत्यंत बहादुर योद्धा प्रजाति के सदस्य और धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी भी थे। उनकी सामरिक शक्ति अत्यंत प्रखर और अद्भुत थी तथा वे विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के छक्के छुड़ाया करते थे। इस प्रकार ऐसे लोगों को अस्वच्छ कार्यों में लगाकर उनके साथ अस्पृश्यता अथवा छुआछूत का भेदभाव करके एक नवीन व्यवस्था को जन्म देने का कार्य मध्यकालीन मुसलिम शासकों द्वारा किया गया। यह कार्य पूर्णरूपेण एक सुनियोजित षड्यंत्र के अंतर्गत किया गया था। इसलामिक शासकों ने यहाँ के धार्मिक ग्रंथों को प्रक्षिप्त किए जाने के पूर्व ठीक से अध्ययन किया था। जब प्राचीन हिंदू समाज में छुआछूत अथवा अस्पृश्यता के दोष नहीं पाए जाते थे। शूद्र राजा

होते थे और उनको राजसूय यज्ञों में सादर आमंत्रित किया जाता था। वे यज्ञ भी संपादित करते थे। इसी आधार पर उनको यह पता था कि हिंदू समाज किसी भी आधार पर भेदभावयुक्त बनाए जाने योग्य नहीं है, इसलिए हिंदुओं की संगठित शक्ति को तोड़ने का कोई अन्य प्रयास असफल रहेगा। अतएव उन्होंने एक षड्यंत्र के अंतर्गत हिंदुओं की एक बहुत बड़ी और अपने लिए खतरनाक आबादी को अपवित्र तथा मैला ढोनेवाले कार्यों में लगाया और गाँवों के बाहर रहने को बाध्य करके हिंदुओं से अलग किया। मध्य प्रदेश के चार जिले के मांडव नामक स्थान से विदेशी मुसलिम शासकों ने मध्य भारत पर शासन किया था। मांडव के किले में आज भी प्रवेश द्वार पर ही एक भंगी दरवाजा है।[1] अस्पृश्यता का व्यवहार स्वयं विदेशी मुसलिम शासकों ने ही किया। इसका जीवंत प्रमाण यह है कि इल्तुतमिश ने अपने मुसलिम वजीर और सेनापति को मात्र इसलिए पदच्युत और दंडित किया था कि वह पूर्वकाल में हिंदू वंशावली का था। हिंदू से मुसलमान बनाए गए रेहाना के नेतृत्व में भारतीय मुसलमानों ने तुर्कों से युद्ध किया था।

मुसलिम तुर्क सुल्तान विदेशी थे और भारतीय मुसलमान हिंदुस्थान के मूल निवासी एवं हिंदुओं से मतांतरित थे। इनको हेय दृष्टि से देखना उनकी स्वाभाविक मानसिकता थी। इसको वह प्रकट इसलिए नहीं कर पाते थे, क्योंकि तब अपनी अल्पसंख्या के आधार पर वे हिंदुस्थान में एक क्षण भी नहीं रह सकते थे। इसीलिए उन्होंने भारतीय मुसलमानों को भ्रम में रखकर उनके सहयोग से यहाँ के हिंदुओं को भी अपने अधिकार में बनाए रखा और उनका शोषण तथा उत्पीड़न किया। उनके भेदभावपूर्ण चिंतन का ही परिणाम अस्पृश्यता जैसी अभिशप्त स्थिति थी जो निस्संदेह उनके ही द्वारा हिंदुस्थान में प्रायोजित की गई थी। इसके लिए उन्होंने जिस विधि का प्रयोग किया वह षड्यंत्र ही कही जाएगी। यह प्रायोजित अभिशाप आज भी वाल्मीकि एवं सुदर्शन समाज झेल रहा है।

5.5 असहाय, बंदी एवं दंडित हिंदुओं का आर्थिक शोषण

अर्थ को पुरुषार्थ के चारों साधनों में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। धर्म-कर्म का संपादन भी बिना अर्थ (धन) के असंभव कहा गया है—'धनात् धर्मः ततः सुखम्।' धन स्वयं में एक शक्ति है। धन से सबकुछ क्रय किया जा सकता है। किसी भी राज्य के सप्तांगों में कोष अथवा धन की अनिवार्यता सर्वस्वीकृत है।

अपरिमित धन जब हिंदुस्थान के पास था, तब इस देश को सोने की चिड़िया कहा जाता था। दूर-दूर के व्यापारी यहाँ से अपने देशों में जाकर इस समृद्ध देश की प्रशंसा कर चुके थे। इसकी सच्चाई जानने के लिए अरब के निवासी भी संत, महात्माओं, सूफी

---

1. मध्य प्रदेश के धार जिले में अवस्थित माँडू किले का प्रवेश द्वार।

एवं औलिया के छद्म वेष में आया करते थे।

सोमनाथ मंदिर की समृद्धि देखने कदाचित् महमूद गजनवी भी वेष बदलकर आता था। चौलुक्यराज भीम और मंदिर के सर्वोच्च महंत गंग सर्वज्ञ से गजनी के उस सुल्तान की बातचीत भी हुई थी। गंग सर्वज्ञ ने उसे आशीर्वाद भी दिया था।[1] उसके पिता सुबुक्तगीन[2] और भारत के प्रथम सफल आक्रांता मुहम्मद-बिन-कासिम का भी उल्लेख आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने किया है।

कासिम द्वारा देवल आदि स्थानों से लूटी गई संपदा का उल्लेख इन शब्दों में किया हैं—'सत्रह हजार मन सोना, छह हजार ठोस सोने की मूर्तियाँ, जिनमें से एक तीस मन की थी, साथ ही बीस ऊँट हीरा-पन्ना-मोती-मानिक लूटकर हिंदुस्थान से लेकर गया।[3] देश एवं देवताओं की संपत्ति लूटने के बाद भी इसलामिक लुटेरे एवं शासक शांति की साँस नहीं लेते थे। उन्हें यह भय लगातार बना रहता था कि धन रहने पर हिंदू लोग कभी भी अपनी सैन्य शक्ति संगठित करके विद्रोह कर सकते थे।[4] इसलिए पराजित, युद्धबंदी और मैला ढोने में लगाए हिंदुओं से भी वे निरंतर डरते रहते थे। विदेशी मुसलिम आक्रांता-शासकों ने पूरे हिंदू समाज का स्वाभिमान मर्दन करने के साथ उनको दरिद्र भी बना देने का निश्चय किया।

मध्ययुग में भी कृषि ही मुख्य जीविका थी। हिंदुओं को आर्थिक अहित के उद्देश्य से उनकी समस्त कृषि-भूमि छीनकर खालसा भूमि (राज्य संपदा) घोषित कर दिया गया और भूमिहीनों को जंगली, पथरीली, कंकरीली, पर्वतीय, ढालू और अनुपजाऊ भूमि देकर आदेश दिया गया कि वे लोग उसे चाहे जैसे भी उपजाऊ बनाएँ। यह भी आदेश था कि पैदा न होने पर भी उनको उस भूमि का कर देना होगा। करों के बोझ से हिंदू असहाय हो गए थे। विवश होकर वे घर छोड़कर जंगलों में भाग जाते थे। जंगल जला अथवा कटवा[5] दिया जाता था ताकि उनको ढूँढ़कर दंडित किया जा सके। वे लोग सामंती प्रवृत्ति के थे। किसी को भी कष्ट देने में उनको कोई तकलीफ नहीं होती थी। हिंदुओं को सताने में उनको बहुत आनंद आता था।

पशु-धन छीन लिए जाते थे। उनके पालतू पशुओं को मारकर मुगल आक्रांता, शासक एवं उनके सैनिक खा जाते थे। लूटमार उनके साथ भी की जाती थी। एक नीति यह अपनाई गई थी कि हिंदुओं के पास इतना ही रहने दो ताकि वे किसी तरह जी सकें,

---

1. आचार्य चतुरसेन शास्त्री : सोमनाथ (हिंद पॉकेट बुक्स, दिल्ली) 2007, प्र. 11-12
2. वही, पृ. 49
3. वही, पृ. 52
4. श्रीवास्तव, अशोक : दिल्ली सल्तनत का उत्थान और पतन, पृ. 269-270
5. वही, पृ. 253-559

परंतु मरने न पाएँ और इतना अधिक न रहने दो कि वे उनके विरुद्ध कभी संगठित हो सकें।

स्त्रियों के जेवर लूट लिए जाते थे। कोई भी साधारण सा आभूषण भी नहीं पहनता था। जबकि उसके पूर्व लोग (स्त्री-पुरुष, दोनों) आभूषण पहनते थे। महमूद गजनवी ने तो राजा जयपाल के गले का हार तक उतरवा लिया था, जिसकी कीमत दो लाख दीनार तक थी।[1] मध्यकाल में विदेशी आक्रांता, शासकों एवं लुटेरों द्वारा जहाँ राजा और महाराजा तक लूटे जाते थे, वहाँ क्या सामान्य हिंदुओं, असहाय और युद्धबंदियों की कोई प्रतिष्ठा रही होगी?

हिंदुओं से दिन भर काम कराने के बाद खाने के लिए रोटी तक नहीं दी जाती थी। उनके बच्चे दो-दो, तीन-तीन दिनों तक भूखे रहने को विवश होते थे। घर का अन्न कुछ कर में और कुछ महाजन के ब्याज में चला जाता था। हिंदू महाजन तो कभी-कभी दया भी करता था किंतु मुसलिम शासकों द्वारा अकाल में भी कर से मुक्ति नहीं दीं जाती थी। वसूलीवाले मुसलिम सैनिक कहते थे—'तुम तो अभाव में आराम से मर सकते हो, परंतु मेरा सुल्तान कैसे जिएगा? अतः कर तो देना ही होगा, भले ही तुमको खुद को बेच देना पड़े।'

छोटी-छोटी दुकानें तक खोलने का कोई साहस नहीं करता था। उनको स्थानीय मुसलिम सिपाही केवल उधारी खाकर बंद करा देते थे। बड़ी रकम देने पर ही लोग स्थानीय बाजारों में दुकानें लगा सकते थे। उसमें भी हिंदू व्यापारी कुछ विशेष वस्तुओं को बेच नहीं सकते थे। अनेक वस्तुएँ केवल मुसलमान ही खरीद एवं बेच सकते थे।[2]

असहाय लोगों और स्वाभिमानी योद्धा हिंदू युद्धबंदियों के घर की आर्थिक स्थिति दयनीय ही नहीं बल्कि बदतर बन चुकी थी। उससे अच्छी जिंदगी भिखारी जी लेते थे, इस प्रकार बहुत से लोगों ने भीख माँगना आरंभ कर दिया। मुसलिम पीर एवं फकीरों की तरह उनको नाटक भी नहीं करना आता था इसलिए भीख माँगने की प्रतियोगिता में भी हिंदू निर्धन लोग पीछे रह जाते थे।

भूख मिटाने के लिए हिंदुओं के छोटे-छोटे बच्चे और बच्चियाँ दूसरों के यहाँ केवल खाने पर काम करते थे। घर के लोटे-थाली तक बिक चुके थे। ठीक से तन ढँकने को वस्त्र नहीं थे। ये सारी व्यवस्था इसलिए थी कि आर्थिक स्थिति बिगड़ जाने से लोग सामाजिक, शैक्षिक रूप से पिछड़ जाएँगे एवं अन्यान्य स्थितियाँ स्वतः हिंदुओं की निम्न और विकास के सभी रास्ते बंद कर देंगी।

विदेशी इसलामिक शासक आक्रांताओं ने जिस तरह से हिंदू असहाय और युद्धबंदियों का आर्थिक शोषण आरंभ किया था, उससे ऐसा लगता था कि वे ब्रिटेन से

---

1. श्रीवास्तव, अशोक : दिल्ली सल्तनत का उत्थान और पतन, पृ. 253-559
2. वही, पृ. 26

ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ संधि हस्ताक्षर करके आए थे। अंग्रेजों ने हमारी गुलामी को लंबे समय तक बनाए रखने के लिए यहाँ की अर्थव्यवस्था के साथ ही खिलवाड़ किया था। सारा कच्चा माल यहाँ से निःशुल्क लंदन जाता था और वहाँ से तैयार माल यहाँ आकर ऊँचे मूल्य पर बिकता था। कच्चे माल की कीमत भी बहुत कम यहाँ के खाते में डाली जाती थी और उसको भी यहाँ का प्रशासन चलाने के नाम पर सारे अंग्रेजों को ही वेतन के रूप में बाँट दिया जाता था। वे घरों को तो नहीं लूटते थे, परंतु लूट की छद्म पद्धति अत्यंत भयावह थी। नमक व्यापार को हाथ में लेकर अंग्रेजों ने एक बार लगभग डेढ़ करोड़ लोगों को शरीर में नमक की कमी से मार डाला था।[1]

विदेशी इसलामिक शासकों ने हिंदुओं पर निर्धनता इसलिए भी लादी थी कि भूख से विक्षिप्त होकर कुछ ऐसे घास-फूस या कंदमूल खा लेंगे जिससे उनका शरीर रुग्ण हो जाएगा, स्त्रियाँ वंध्या और पुरुष नपुंसक हो जाएँगे तो हिंदुओं की जनसंख्या अपने आप कम हो जाएगी। दूसरी तरफ चार-चार स्त्रियों से मुसलमान इतने बच्चे पैदा करेंगे कि मुसलमानों की आबादी ही इतनी अधिक हो जाएगी कि हिंदू जनसंख्या उसमें दबकर पिस जाएगी।

उस समय की सोच आज तक अमल में लाई जा रही है और मुसलिम जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। देश में वस्तुओं का अभाव हो या कहीं बाहर से आयात करना हो, उससे यहाँ के मुसलमान से कोई मतलब नहीं है। वह एक ही बात जानता है कि जितने हाथ होंगे, उतने ही अधिक काम होंगे। वे यह समझने के लिए तैयार नहीं है कि अधिक जनसंख्या का प्रभाव न केवल लोगों के घर पर, देश पर बल्कि विश्व पर भी पड़ता है।

विश्व की अर्थ-व्यवस्था को तीव्र गति से प्रभावित के लिए इसलामिक जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। एक समाचार पत्र के अनुसार सन् 2300 ई. तक वह हिंदुओं की बराबरी तक जा पहुँचेगी।[2] उस समय हिंदू के सामने अपने देश में रहने के लिए दो ही विकल्प होंगे—(1) हिंदू राज्य अथवा दारुल इसलाम[3]। डॉ. कृष्णवल्लभ पालीवाल और यूरोपीय विचारक केनराल्ड एल्स्ट का कहना है कि 22वीं शताब्दी तक हिंदुस्थान में मुसलिम जनसंख्या हिंदू जनसंख्या से अधिक हो जाएगी। हमारा अनुमान है कि जिस तीव्रता से मुसलमानों की जनसंख्या, हिंदुओं के धर्मांतरण, हिंदू लड़कियों के अपहरण तथा बंगलादेशी मुसलमानों की घुसपैठ से बढ़ रही है एवं साथ ही सेक्यूलरवादी नीतियों के कारण मुसलमानों का बाहुल्य 21वीं सदी में ही हो जाएगा, यदि हिंदुओं ने इसलामी

1. देखें, 'दी ग्रेट हेज ऑफ इंडिया'
2. संडे मैग्जीन, 13 फरवरी, 1993
3. राय बलजीत : बिल इंडिया गो इसलामिक

आतंकवाद और मुसलिम तुष्टिकरण नीति का डटकर विरोध नहीं किया तो, इतना ही नहीं, अल्पसंख्यकवाद, सेक्यूलरवाद और धर्म की स्वतंत्रता संबंधी अनुच्छेदों (25-30) का भ्रामक अर्थ भी हिंदुओं के अस्तित्व के लिए एक गंभीर चुनौती है।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि असहाय हिंदू युद्धबंदियों का आर्थिक शोषण कई उद्देश्यों को एक साथ लेकर किया जा रहा था। जैसे मैला ढोने एवं सफाई का काम लेने से एक साथ कई प्रकार कर दंड स्वयं ही उन स्वाभिमानी एवं धर्माभिमानी हिंदुओं को मिल जाता था, उसी तरह आर्थिक उत्पीड़न से भी कई दंड एक साथ संभव हो जाते थे।

5.6 आक्रांताओं द्वारा राजवंशीय इतिहास का दुःखद समापन

हिंदुस्थान में धर्मरक्षा, देशरक्षा, धनरक्षा और श्रमरक्षा का दायित्व क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जैसे सम-वर्णों को सौंपा गया था। सामाजिक व्यवस्था एवं हिंदू जीवन-पद्धति के अनुसार सभी वर्ण स्वदेश और स्वजनों के हित में अपने-अपने कार्यों का नेतृत्व एवं निष्पादन किया करते थे। संकटकाल में चारों वर्ण संयुक्त रूप से जूझते हुए संकट समाप्त करनेवाले कार्यों में लग जाते थे। पूर्व मध्ययुग तक देशरक्षा का दायित्व हिंदू राजवंशीय परंपरा की केंद्रीय शक्ति के हाथ में था। मौर्यवंश से बिना टक्कर लिए सिकंदर एक छोटे से हिंदू राजा पोरस से थककर वापस प्रस्थान कर गया था। उसके प्रतिनिधि शासक सेल्यूकस ने मौर्यवंश से वैवाहिक संबंध स्थापित करके वातावरण को समरसतापूर्ण बना लिया था।

गुप्तकाल तो हिंदुस्थान का स्वर्णकाल था। हर्ष तक हिंदू राजवंशीय शासन केंद्रस्थ होने से सुदृढ़ था और किसी बाहरी आक्रमण का भय नहीं था। हर्ष के बाद कन्नौज के प्रतिहार राजवंश ने स्थिति सँभाली। उत्तर भारत में कन्नौज के प्रतिहार राजपूतों का विशाल राज्य पश्चिम में पंजाब तक एवं पूर्वी भारत में बंगाल तथा उत्तर भारत में हिमालय तक एवं दक्षिण भारत में नर्मदा तक फैला हुआ था। वे प्रतिहार राजपूत भारत के द्वार के रक्षक माने जाते थे। वे लोग अरबों एवं आक्रांताओं को भी युद्ध में अनेक बार पराजित कर चुके थे। इस वंश के पराभव के बाद उत्तर भारत में जो राजपूत राज्य बन सके उनके नाम ये हैं—अजमेर के चहमान, बुंदेलखंड के चंदेल, मालवा के परमार, गुजरात के चौलुक्य, त्रिपुरी के कलचुरी तथा कन्नौज के गहढ़वाल इत्यादि। उस समय किसी भी राज्य की शक्ति का आकलन उनके सामंतों की संख्या से किया जाता था। राज्यों के पास कोई बड़ी सेना भी नहीं होती थी और युद्ध के समय सामंतों की एकत्रित सेनाएँ ही राज्य की सेना हुआ करती थीं।

स्पष्ट है कि युद्ध में विजय या पराजय सामंतों के हाथ में रहती थी। विदेशी

मुसलिम आक्रांताओं ने प्रत्येक हिंदू राज्यों पर विजय उनके लालची एवं विश्वासघाती सामंतों को ही मिलाकर प्राप्त की थी। यद्यपि अनेक युद्ध में हिंदू योद्धा बहादुरी के साथ लड़े थे पर दुर्भाग्यवश विजयी नहीं हो पाए थे। उनकी पराजय का कारण डॉ. रामधारी सिंह दिनकर ने इन शीर्षकों में बतलाया है—हिंदुओं का राजनैतिक जीवन मंद होना, उनमें राजनीतिक चेतना का अभाव, सर्वनाशी अंधविश्वास, धर्म की बाधा, जाति से बड़ी जात (प्रजाति) और ब्राह्मण-बौद्ध वैरभाव विशेष रहे।[1]

हिंदू राजवंशीय इतिहास के दुःखद समापन के जिन कारणों का उल्लेख डॉ. दिनकर ने किया है, वे कारण होते हुए भी 'अकारण' ही कहे जाएँगे, क्योंकि हिंदुओं ने युद्ध ठीक प्रकार से लड़ा ही नहीं। अकारण हुई कुछ पराजयों से देश लंबे अरसे तक पराधीनता के कारण शोषण का शिकार रहा जिससे लोगों की आँखें खुलीं, एकता बनी और स्वतंत्रता के लिए संयुक्त प्रयास आरंभ हुए। तब उत्तर ही नहीं, दक्षिण में भी चेतना आई, परिणामस्वरूप औरंगजेब के हाथ-पाँव फूल गए और दक्षिण भारत के विजय का अधूरा सपना लिए वह दिवंगत हो गया। यही विचार डॉ. दिनकर का भी है—

किंतु मुसलमानों ने जैसा उत्तर भारत में वर्चस्व स्थापित किया, वैसी एकता एवं वर्चस्व का विधान वे दक्षिण भारत में नहीं कर सके। उत्तर में भी असम पूर्ण रूप से मुसलमानी शासन के अधीन कभी नहीं आया। यह भी ध्यान देने की बात है कि औरंगजेब पर जब दक्षिण को अपने बस में लाने की धुन सवार हुई, तब मुगल साम्राज्य का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया।'[2]

दिनकरजी के कथन की समीक्षा करने पर पता चलता है कि रेगिस्तानी भूमि के निवासी विदेशी आक्रांताओं को पहाड़ी क्षेत्रों में युद्ध का अच्छा अभ्यास नहीं था। वे कभी-कभी पर्वतीय जातियों से, जिनकी संख्या बहुत ही कम होती थी, युद्ध करने में हार जाते थे या भागकर मैदानों में युद्ध जीतने के लिए युद्ध की रणनीति बनाते थे। उनमें असम और दक्षिण के विंध्य-श्रृंखला के प्रति जो इसलामिक विवशता पाई जाती थी, उसका कारण यही था।

जब तक हिंदुओं में राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न नहीं हुई और उन्होंने राष्ट्र-हित की वैचारिकी एवं चिंतन के अनुसार आपस में एकजुटता की स्थिति उत्पन्न नहीं की तब तक उन्होंने दासता को शांति से स्वीकार किया और जैसे ही उनमें राष्ट्रहित की भावना जागी, उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम छेड़ दिया और सफल भी रहे। डॉ. दिनकरजी के ये शब्द उक्त कथन की पुष्टि करते हैं—

---

1. दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 257-267
2. वही, पृ. 307

'असल में, पतन तो इस देश का हर्षवर्द्धन के बाद ही आरंभ हो गया था, क्योंकि उसके बाद चक्रवर्ती सम्राट के पद पर भारत में कोई राजा नहीं बैठ सका। केंद्र की शक्ति टूट गई और कोई किसी को रोकनेवाला न रहा। परिणाम यह हुआ कि सारे देश में छोटे-छोटे राज्य उठ खड़े हुए और वे अपने राज्यों के विस्तार के लिए आपस में ही युद्ध करने को अपना परम कर्तव्य मानने लगे। अपना राज्य और अपनी राजधानी राजाओं को इतनी प्यारी हो उठी कि देश का अस्तित्व ही वे भूल बैठे।"[1]

राष्ट्र-हित का अस्तित्व भूलने से ही कन्नौज के प्रतिहार, मालवी के परमार, बुंदेलखंड के चंदेल, उत्तरी बंगाल के पाल, बंगाल के सेन, गुजरात के चौलुक्य, कन्नौज के गहड़वाल, अजमेर के चाहमान (चौहान), दिल्ली के तोमर, त्रिपुरी अथवा दाहल के कलचुरी, मेवाड़ के गुहिल राजपूत तथा नाडौल, जालौर, असम और कामरूप के हिंदू राजवंश बारी-बारी से विदेशी इसलामिक आक्रांताओं से जूझे परंतु असम, कामरूप के अतिरिक्त शेष सभी के राजवंशी इतिहास का दुःखद अंत हो गया। लूटपाट के समय तक तो वे हारते और पुनः उठ खड़े होते रहे, किंतु 1206 ई. से जब आक्रामकों का स्थायी शासन स्थापित हो गया, उसके बाद सभी राजवंश बारी-बारी से दुःखद समापन को प्राप्त हुए। अब वे पराजित युद्धबंदी थे।

उनको इसलाम अस्वीकार करने का दंड दिया गया—सर्वप्रथम मैला ढोने का काम दिया गया और उसे बलपूर्वक मार-मारकर कराया गया। इससे उनका स्वाभिमान भंग हुआ और वे धर्माभिमानी एवं राष्ट्राभिमानी न ब्राह्मण या क्षत्रिय रह गए और न ही वैश्य, शूद्र, बल्कि उनको एक नवीन सामाजिक प्रस्थिति और नई जाति का नाम ही दे दिया। जिसे गाली के समतुल्य सफाईकर्मी शब्द के रूप में जाना जाता है। किंतु सामाजिक चेतना एवं समाज-सुधार के आधार पर ही इन स्वाभिमानी एवं स्वाभिमानी सम्मानित लोगों को वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति के नाम से संबोधित किया जाता है।

इनका सर्वाधिक शोषण, उत्पीड़न, दमन और दलन विदेशी इसलामिक शासकों ने किया। ये लोग अछूतों में भी अछूत यानी सबसे निम्न श्रेणी के अछूत माने गए। महात्मा गांधी ने इनको 'हरिजन' कहकर सांत्वना प्रदान दी, अंबेडकरजी ने 'आरक्षण' दिया और अंग्रेजों ने पुनः वही अस्पृश्यता सूचक 'दलित' नाम दिया। इनका इतना अधिक दमन एवं दलन हुआ है कि इनकी कोई भी प्रस्थिति एवं स्थिति पूर्णतः निम्न स्तर ही पाई जाती है, जो राष्ट्रीय विकास के मार्ग में एक बहुत बड़ी समस्या बन गई है और लोग राष्ट्र-हित में इनके सर्वोन्मुखी विकास की आवश्यकता महसूस करने लगे हैं।

---

1. दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 258-259

प्रयास किया जाए तो भी वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति का खोया हुआ राजवंशीय वैभवशाली दिन तो वापस नहीं मिल सकता परंतु अपने राजवंशीय इतिहास को तो ये अवश्य ही पढ़ एवं स्मरण कर सकते हैं।

अतः आज आवश्यकता है उनके राजवंशीय गौरवशाली इतिहास को प्रस्तुत करने की और उनके पुनरुत्थान की। क्योंकि उनके पुनरुत्थान में ही राष्ट्रहित एवं इन जातियों का सामाजिक सशक्तिकरण एवं उत्थान सुनिश्चित है। परंतु यह उत्तम कार्य केवल कुछ ही लोगों का विचार बनकर शाश्वत नहीं रह सकता। अकेले-अकेले तो अनेक हिंदू राज्यों ने राष्ट्रहित की सोच बनाई थी, किंतु उनकी सोच मात्र उनके ही राज्य तक सीमित रहने से त्रुटिपूर्ण थी। उनको वृहत्तर भारत के हित को राष्ट्रहित के रूप में देखना चाहिए था। यही अपील अथवा आवाहन डॉ. अंबेडकर का है और इसी के लिए सभी समाज-सुधारक तथा जनप्रतिनिधि भी कहते आए हैं। आज भी कहना पड़ रहा है, क्योंकि समाज में एक बहुत बड़ी जनसंख्या जिसे तथाकथित दलित नाम दिया गया है, वह अभी तक अपनी रोजी-रोटी के अतिरिक्त और कुछ भी सोचने की स्थिति में नहीं है। यह विशाल आबादी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक—तीनों स्तरों पर अभी भी पीछे है। जब तक इन दलित जातियों का पुनरुत्थान नहीं किया जाता तब तक राष्ट्रहित का लक्ष्य कठिन होगा। दलित स्वयं भी वर्तमान समय में अपने हित के लिए चिंतित होने से राष्ट्रहित की वैचारिकी एवं चिंतन से दूर हैं, इसीलिए यह कहा जाता है कि राष्ट्रहित के लिए दलित जातियों का पुनरुत्थान होना आवश्यक है।

यहाँ उत्थान और पुनरुत्थान का अभिप्राय भी समझना समीचीन होगा। वस्तुतः किसी देश अथवा व्यक्ति (जाति) का उत्थान कुछ कठिन होता है। इसके लिए समस्त पक्षों से संबंधित योजनाएँ निर्मित करनी पड़ती हैं, क्योंकि जिसका उत्थान किया जाना होता है वह उत्थान शब्द की परिभाषा तक से अवगत नहीं होते। उत्थान के अंतर्गत सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं राजनैतिक इत्यादि विकास के आयाम सुनिश्चित हैं। उत्थान विकास की अंतिम अवस्था है, इसलिए इसमें श्रम, साधन, समय अधिक लगता है।

पुनरुत्थान में अधिक प्रयास नहीं करना होता इसलिए वह दुष्कर अथवा कठिन भी नहीं है। जिसका पुनरुत्थान होना होता है, उसका उत्थान हो चुका होता है, परंतु कालांतर में उसका पतन भी हुआ होता है। अर्थात् पुनरुत्थान को उत्थान-पतन, दोनों का ज्ञान होता है, अतएव पुनरुत्थान के लिए केवल उसे कुछ व्यवस्थाओं एवं संसाधनों (सहायताओं) की ही आवश्यकता होती है। यही आवश्यकता वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि (सफाईकर्मी) तथा अन्य दलित जातियों के पुनरुत्थान के लिए आवश्यक हो गई है जिसके लिए सभी प्रकार के दलित शुभ-चिंतक

चिंतित दिखलाई देते हैं, परंतु सबकी चिंतनधारा अलग-अलग है।

5.7 धर्माभिमानियों के स्वाभिमानी स्वभाव का अंत

इसलामिक एवं ईसाई संस्कृतियों के वाहक विदेशी आक्रांता-शासकों के व्यवहारों में जिस तरह अवसरवादिता का स्वभाव, लूटपाट का स्वभाव और क्रूरता, नग्न-बर्बरता का स्वभाव पाया जाता है, उसी तरह से हिंदू संस्कृति में स्वाभिमानी स्वभाव का पुट पाया जाता है। यह स्वभाव पुरुषों, अपितु स्त्रियों और बच्चों में भी पाया जाता है। अपने इसी स्वभाव के कारण हिंदू समाज ने हजारों वर्ष की जीवन-यात्रा में विदेशी शासकों के अनेकानेक दमन-उत्पीड़न आदि बड़े धैर्य से सहन किए, परंतु पराजित और युद्धबंदी होने के बाद भी अपने स्वाभिमान को उन्नत रखकर शासन-सत्ता से टक्कर लेते ही रहे।

जिहाद के जल्लादों ने हिंदू स्वाभिमानी स्वभाव को चूर-चूरकर देने के अनेक प्रयास किए। कृतघ्नता एवं जघन्यतापूर्वक अपनों के टुकड़े-टुकड़े हो जाने दिए, खौलते कड़ाहों में तल जाने दिया, शूली पर चढ़ जाने दिया, नरभक्षी पशुओं का आखेट बन जाने दिया, फिर भी स्वाभिमानी मस्तक किसी उत्पीड़न के सम्मुख झुकने नहीं दिया।

हिंदू वीरांगनाएँ शस्त्रसज्जित होकर मैदानों में कूद पड़ीं और क्षत-विक्षत हो गईं, परंतु लज्जावसन उतर न पाए, स्वयं को कटार घोंपकर समाप्त कर दीं, हजारों हजार की संख्याओं में अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु उन बहादुर नारियों का दग्ध होना अपने सामने राजपूत राजाओं ने देखा था और तब बलिदानी जत्था के रूप में शत्रुओं पर टूटे थे। आरती की थाल में अपने स्वाभिमानी अर्द्धांगिनियों के कटे मस्तक देख वे निश्चिंत होकर सर पर कफन बाँधते थे। वीरांगनाओं का मातृत्व कभी-कभी दुश्मनों को जीवनदान भी दिया करता था। राजमाता चौलुक्य रानी नायकी देवी ने मुहम्मद गोरी को मारकर नीचे गिरा दिया था और चाहतीं तो एक ही वार में उसका जीवन समाप्त हो सकता था। परंतु क्षमाप्रार्थी उस विश्वासघाती का स्वाभिमान कुचलकर उन्होंने उसे जीवनदान दे दिया। महारानी ने यहाँ भी हिंदू स्वाभिमान का उदाहरण प्रस्तुत किया कि हिंदू वीर किसी धराशायी पर हाथ नहीं उठाते।

हिंदू बालकों का स्वाभिमान भी अरब साम्राज्य की उस नींव को हिला देता है, जिसमें उनको जिंदा चुन दिया जाता था। माता-पिता के स्वाभिमान भंग करने हेतु उनकी गरदनों पर इसलामिक तलवारें लटका दी जाती थीं। दिल दहला देनेवाले वे दृश्य भी माता-पिता देखते थे, परंतु उनका धैर्य टूटने और स्वाभिमान भंग होने के पहले ही वे वीर बालक खुद को दो टुकड़े करके अपनी मातृ-पितृ भक्ति का उदाहरण प्रस्तुत कर देते थे।

रक्तपान करते-करते थक जाने के बाद विदेशी मुसलिम आक्रामकों और शासकों ने स्वाभिमान भंग करने का एक नया तरीका निकाला और समस्त शेष बचे हिंदू पराजितों और युद्धबंदियों को मैला ढोने के कार्य में बलपूर्वक लगाया। मार-मारकर पीड़ा देकर, अत्याचार एवं उत्पीड़न के बल पर सफाई इत्यादि का यह अस्वच्छ कार्य कराने में वे सफल तो रहे और उन्हें लगा कि उन्होंने हिंदुओं के स्वाभिमानी स्वभाव का अंत कर दिया, परंतु स्वाभिमानी स्वभाव का अंत निरर्थक तो नहीं हुआ था, उसके बदले में उन्होंने हिंदू धर्म की रक्षा का लक्ष्य प्राप्त किया था। वास्तविक मुद्दा तो वही था कि इसलाम स्वीकार करो अथवा मैला फेंको। उन्होंने मैला फेंकना स्वीकार किया परंतु इसलाम को ठुकरा दिया।

शासक वर्ग के आदेश को अस्वीकार करने पर क्या शासक के स्वाभिमान भंग नहीं हुए? उसके आदेश को जूतों के नीचे कुचलते हुए वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख, रुखी, मखियार इत्यादि जाति ने यह सोचा था कि उनके ऐसे त्याग एवं बलिदान का उनके समाज द्वारा स्वागत होगा और लोग उनको गले लगाएँगे, परंतु समाज में स्थापित अपवित्रता एवं अस्वच्छता की अवधारणा ने ऐसा नहीं होने दिया। उनको अछूत मानकर अपने समाज से अलग रहकर जीवन बिताने के लिए विवश होना पड़ा। जितनी शारीरिक यातनाएँ विदेशी आक्रांताओं ने दी थीं, उससे अधिक मानसिक वेदना इस जाति के लोगों को अपने हिंदू समाज से मिली। उसके बाद ही उन बहादुरों ने अपने स्वाभिमानी स्वभाव का अंत मान लिया। जब तक अपने समाज से उनको उपेक्षा नहीं मिली थी तब तक वे उन्नत सिर किए शासन-सत्ता को ललकारते रहे।

सफाई का कार्य पवित्रता के लिए किया जाता है, परंतु सफाई करनेवाला अपवित्र माना जाता है। यह एक सीधी सोचवाली विपरीत वैचारिकी है। वैदिककाल में सफाई को लेकर भी किसी तरह की अस्पृश्यता नहीं थी और लोगों के बीच छुआछुत का भेदभाव नहीं किया जाता था। मैला ढोने से उत्पन्न सामाजिक अस्पृश्यता तो बिलकुल ही नहीं थी, क्योंकि यह सफाई-कार्य दूसरों के लिए होता ही नहीं था। लोग सफाई-कर्म में स्वयं निरत थे। मैला ढोना और सफाई-कर्म में भारी अंतर है।

नियमविरुद्ध किसी कार्य को अशौच-कार्य और उसके प्रायश्चित्त को शांति-कार्य कहनेवाले दिनों तक अस्पृश्यता का जन्म नहीं हुआ था। कालांतर में सफाई-कार्य जैसे पुनीत कार्य करनेवाले अस्पृश्य कहे गए। परंतु पूर्व मध्य युग तक अस्वच्छ अथवा सफाई-कर्म करनेवाले भी अस्पृश्य अथवा अछूत संबोधित और मान्य नहीं होते थे। मध्य युग में मुसलिम शासकों ने इसलाम अस्वीकार करनेवालों को जब बलपूर्वक मैला ढोने के कार्यों में लगाया, उस समय भी हिंदू समाज केवल उनको अस्वच्छकर्मी ही मानता था। स्नान, ध्यान एवं पूजा-पाठ के बाद वे स्वच्छ एवं पवित्र माने जाते थे।

मुसलमानों ने अपवित्र कर्मों में लगे लोगों को भंगी, चमार, डोम, हेला इत्यादि अनेक नाम देते हुए उनके साथ छुआछूत एवं अस्पृश्यता का भेदभाव किया। ऐसे लोगों को नगरों और गाँवों में न रखकर अलग पूरवे में रखा ताकि वे धीरे-धीरे हिंदू समाज से अलग-थलग पड़ जाएँ और यह भूल जाएँ कि वे हिंदू हैं। उनकी सोच यह भी थी कि कुछ दिनों में पवित्र पेशों में संलग्न हिंदू भी यह भूल जाएँगे कि वे अपवित्र पेशे में नियोजित किए गए लोग उनकी ही जाति एवं वर्ण के अपने हैं।

उनकी योजना (युक्ति) वास्तव में उस समय सफलीभूत हुई जब पवित्रता के प्रतीक हिंदुओं ने उनको अस्पृश्य कहा और अस्पृश्यता को जीवन का अभिशाप मानकर उनके साथ दया, करुणा एवं स्नेह देने के स्थान पर उनके साथ भेदभाव करना प्रारंभ किया। उनकी यह सोच सामूहिक रूप से एक मानसिक प्रदूषण थी जिसे संविधान में निषिद्ध कर दिया गया और सभी लोगों ने अस्पृश्यता के व्यवहार को दंडनीय माना। सावरकर ने इसकी समाप्ति के प्रयास को किसी युद्ध से कम नहीं आकलन किया।[1] वर्तमान हिंदू वैचारिकी ने तो अस्पृश्यता की शव-यात्रा तक निकालना आवश्यक मान लिया है, यथा—

'अस्पृश्यता भारत माता के श्रेष्ठ नाम के ऊपर कलंक की तरह है यदि यह तुरंत दूर नहीं होती है तो अछूत लोग अपने अधिकारों के लिए सत्याग्रह करेंगे। आज समय आ गया है जब सभी हिंदू मिलकर अस्पृश्य बंधुओं के प्रति अपना व्यवहार बदलकर उन्हें अपने गले लगाएँ।'

अतएव कहा जा सकता है कि अस्पृश्यता के विधिक अवरोधों को तोड़ने का साहस जब समाज को हो गया है, तब वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति से दूरी का औचित्य ही क्या रह जाता है? वस्तुतः जिसे स्वाभिमानी स्वभाव का अंत बताया गया है, उसे वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति का राष्ट्रवादी चिंतन ही कहा जाना उचित होगा। वास्तव में इस जाति ने अपनी राष्ट्रवादी मानसिकता के कारण ही विदेशी आक्रांताओं से प्रचंड मोरचा लिया था वह भी ऐसे समय में जब इसलामिक तलवारों के क्रूरतम प्रहारों एवं नृशंस हत्याओं के आगे हजारों हजार हिंदू हथियार डाल देते थे।

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति में राष्ट्रवादी लक्षण पाए जाते हैं, किंतु जातीयता और भेदभाव के कोई दुर्गुण नहीं मिलते हैं। यह जाति अपनी भावी पीढ़ी को भी अपनी हिंदू संस्कृति ही विरासत में देती आई है जिसमें धर्मरक्षा, देशरक्षा, लोकसेवा और परोपकार की भावना को महत्त्व दिया गया है। यह

1. दस स्पोक अंबेडकर, वॉल्यूम-1, पृ. 101

जाति आदि से अंत तक भारतीय है और डॉ. अंबेडकरजी की इसी अवधारणा का संपोषण है।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति ने बाबा साहब डॉ. भीमराव अंबेडकर के राष्ट्रवादी सभी विचारों का समर्थन किया जैसे राष्ट्रीय निष्ठा सर्वोच्च स्थान पर,[1] राष्ट्रीय संकट के समय स्वयं संगठित होकर खड़े हो जाए,[2] राष्ट्रहित सर्वोपरि,[3] देश की आवश्यकता के लिए सदैव तत्परता[4] इत्यादि। इन सभी आधारों पर यदि वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मजहबी सिख या मखियार इत्यादि सफाईकर्मी यानी (भंगी) जाति का परीक्षण किया जाए तो उसकी सांस्कृतिक राष्ट्रवादी मानसिकता का भाव स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

5.8 और मिली पहचान दलित जाति की

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति के साथ मध्यकालीन अरब से आए हुए विदेशी इसलामिक आक्रांताओं एवं शासकों ने इतना अधिक दमन, दलन एवं अत्याचार किया था कि अंततोगत्वा उनको दलित जाति की पहचान मिल गई। मैला ढोने से उनको समाज में नीचे गिराया गया, उनका आर्थिक शोषण किया गया और उनके राजवंशीय इतिहास का दुःखद अंत करके उनके धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी स्वभाव का अंत कर दिया गया। हर स्तर पर उनका इतना उत्पीड़न किया गया कि वे दलित शब्द की परिभाषा में आ गए। इसे समझने के लिए 'दलित' का अभिप्राय समझना आवश्यक हैं।

मराठी शब्द दलित मूलतः अस्पृश्यों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। डॉ. अंबेडकर ने तो गांधीजी द्वारा प्रयुक्त हरिजन शब्द पर भी आपत्ति की थी। उनका मानना था कि समाज के अति पिछड़े वर्गों के लिए किसी भी ऐसे शब्द का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए जो उनमें विलगता या निम्नता का भाव उत्पन्न करे। 'दलित' शब्द 'दलन' शब्द से बना है। अर्थात् जिनका मध्यकाल के विदेशी आक्रांता मुसलिम शासकों ने दलन किया गया, वे दलित हुए। दलित का शाब्दिक अर्थ उन लोगों से है जिनका दलन हुआ, हर प्रकार से सामाजिक रूप से, आर्थिक रूप से, धार्मिक रूप से, राजनैतिक रूप से यानी उनके राजवंश को समाप्त किया गया और सांस्कृतिक रूप से वे विशाल हिंदू समाज में हिंदू होते हुए भी अलग-थलग होते चले गए।

---

1. लाइफ एंड मिशन, पृ. 63
2. कृष्णगोपाल : बाबा साहब व्यक्तित्व और विचार, पृ. 55
3. वही, राइटिंग्स एंड स्पीच, वॉल्यूम-2, पृ. 195-196 (1982)
4. लाइफ एंड मिशन, पृ. 234-235, दि जनता, 11 मार्च, 1933 में प्रकाशित

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि एवं इसी प्रकार की चमार, खटिक, पासी, यांगर, दुषाद इत्यादि जातियों को दलित बनाने का कार्य विदेशी मुसलिम आक्रांताओं ने ही किया था। उनका नामकरण यानी दलित शब्द का संबोधन सन् 1931 की जनगणना में अंग्रेजों ने किया था परंतु यह आरोप वर्तमान समय में वास्तविक अपराधियों की ओर से ध्यान हटाने और हिंदू वर्णाश्रम व्यवस्था में शूद्र वर्ण की प्रस्थिति के सापेक्ष तथाकथित उच्च श्रेणी की हिंदू जातियों पर लगाया जाता है। दलितों के प्रति सहानुभूति के आँसू बहानेवाले अपना ध्यान सीधे प्राचीन हिंदू समाज व्यवस्था की ओर ले जाते हैं और कहते हैं कि हिंदू समाज में शूद्र को चतुर्थ श्रेणी प्रदान करके उसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा के लिए युक्त किया था, अतएव इन तीनों ने मिलकर शूद्रों का दलन किया और शूद्र ही दलित बने।

इस अवधारणा के त्रुटिपूर्ण होने से संबंधित अनेक साक्ष्य प्रस्तुत हो चुके हैं कि शूद्र कभी भी किसी भी वर्ण से दलित नहीं हुए थे बल्कि सभी के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व उन पर ही था। कृषि-भूमि, पशु-संपदा इत्यादि से वे संपन्न थे। जब इनकी आर्थिक स्थिति मजबूत थी तो इनको शासन-सत्ता में आने से, धर्म-कर्म संपादित करने से और सामाजिक नियमों के अनुसार जीवन-यापन करने से भला कौन रोक सकता था? प्राचीन शूद्र राजा, धर्मपुरोधा, विद्वान् ऋषि-मुनि, चिकित्सा वैज्ञानिक, शिल्पकार क्या इतिहास के पन्नों पर अंकित नहीं पाए जाते? यही कारण है कि सनातन हिंदू संस्कृति में दलित समुदाय का उल्लेख नहीं मिलता। दलित जातियों के इतिहास का उल्लेख मध्यकाल के पहले न होने से यह स्पष्ट होता है कि वे मध्यकाल के पहले थे ही नहीं।

शूद्र समाज कभी दलित नहीं था। सनातन लोकजीवन में शूद्र मूलतः समाज के लिए उपयोगी शिल्पकार थे। शूद्र के शाब्दिक अर्थ है—लाभप्रद, शुद्ध, अच्छा, शिल्पकार। तत्कालीन समाज में शूद्र वर्ण के कई ऋषि थे। शूद्र अपने शिल्पप्रधान गुण के कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य किसी से भी संबंधित हो सकते थे, तात्पर्य यह कि वे तीनों वर्णों में समाहित थे। चूँकि अन्य तीनों वर्णों की तुलना में इनमें शिल्पकार का गुण प्रधान था इसलिए इन्हें तीनों वर्णों से अलग चौथे वर्ण के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने कहा है कि शूद्र भारत में कभी अस्पृश्य नहीं था।[1] इतना ही नहीं, उन्होंने कहा है कि वर्तमान दलित वैदिककालीन शूद्र नहीं है।[2]

हिंदू दलित जातियों की उत्पत्ति के विषय में एक दोषपूर्ण अवधारणा यह भी है कि आरंभ में कृषि-भूमि पर स्वामित्व शूद्रों का था, जिनको कृषक कहते थे। कृषि-भूमि

1. डॉ. बी.आर. अंबेडकर, दी अनटचिवल, पृ. 99
2. डॉ. बी.आर. अंबेडकर, हू वेयर शूद्राज, प्राक्कथन के प्रथम पृष्ठ का चौथा पैराग्राफ

एवं सिंचाई की सुलभता की दृष्टि से कृषकों का स्थानांतरण होता रहता था। हर्षोत्तर काल में कृषि-भूमि पर राज्य प्रशासन और सैन्य अधिकारियों को स्वामित्व प्राप्त हुआ तथा जो कृषक थे उनको कृषक मजदूरों और दासों का स्तर प्रदान कर दिया गया।

ऋग्वेद में प्रदत्त ऋचाओं का यदि सूक्ष्म विश्लेषण किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि कृषि कार्य, शिल्प, तकनीकी, चिकित्सा एवं विद्यालयों में ब्राह्मण शिक्षकों को अन्न उपलब्ध कराना शूद्र वर्ण के लोगों का कार्य था। दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दी तक शूद्रों की स्थिति अत्यंत उच्च थी। अन्य वर्णों की ही भाँति उन्हें भी समाज में अपने कला-कौशल के अनुरूप सम्मान प्राप्त था। वे न तो अस्पृश्य थे और न ही समाज से अलग-थलग थे। उनका किसी भी वर्ण द्वारा शोषण, उत्पीड़न और दलन किया जाना संभव ही नहीं था।

शूद्र शब्द का अपमानजनक अर्थबोध अलाउद्दीन खिलजी और उसके उत्तरवर्ती मुसलिम शासकों के कुशासन से पैदा हुआ है। हिंदुओं का बड़े पैमाने पर शोषण और दलन का कार्य मुसलिम शासनकाल में ही हुआ था। जातियों की संख्या वृद्धि भी उनके ही समय की देन हैं। 8वीं शताब्दी के प्रारंभ तक हिंदू समाज में केवल 36 जातियों का ही उल्लेख प्राप्त होता है, परंतु अरबों के आक्रमण और उसके बाद विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के अत्याचार के कारण हिंदू समाज में जातियों की संख्या निरंतर बढ़ती गई।

विदेशी आक्रांताओं ने हिंदू कृषकों का पर्याप्त शोषण किया। वे कृषि-कर के रूप में आधी उपज ले लिया करते थे।[1] शेष को घोड़ों द्वारा चरा डालते और प्रायः आग लगाकर जला देते थे ताकि भूखों मरने की स्थिति में पहुँचकर हिंदू किसान इसलाम स्वीकार कर लें।

विदेशी आक्रांताओं ने हिंदू समाज के सभी वर्गों को बिना किसी आधार के आर्थिक रूप से कमजोर किया। उनका सबकुछ लूट लिया। दो जून की रोटी के लिए लोगों ने भागकर जंगलों में शरण ली तो वहाँ भी उनको ढूँढ़-ढूँढ़कर मार दिया गया।[2] उनके स्त्री-बच्चे दास बनाकर बगदाद की सड़कों पर नीलाम कर दिए गए। घरों में आग लगा दी गई। क्रूरतम उत्पीड़न के आगे भी जो नहीं झुके और इसलाम अस्वीकार किया उन लोगों को मल-मूत्र साफ करने में लगाया गया। जो किसी भी प्रकार से राज्यसेवा में किसी भी पद पर पहुँच चुके थे, उनका भी पूर्व विवरण प्राप्त करके पदच्युत और दंडित किया गया।

धर्म न स्वीकारने पर कोड़े मारना, पशुओं की खाल में जीवित ही बंद कर देना, हिंसक पशुओं के सामने डाल देना, जिंदा खाल खिंचवाना, गरदन काट देना, सबकुछ

1. डॉ. सुमन शास्त्री, मध्यकालीन भारत की''', शोध ग्रंथ, पृ. 76
2. ईश्वरी प्रसाद, हिस्ट्री ऑफ करौना टर्क्स, पृ. 67-74

इस तरह चलता रहा जैसे वह किसी भी हिंदू के लिए सामान्य दंड हो। इससे स्पष्ट है कि आर्थिक आधार पर हिंदू समाज में धनी एवं निर्धन की प्रस्थिति का निर्माण विदेशी शासक-आक्रांताओं ने किया और जो निर्धन थे उनका क्रूरतम दलन भी उन्होंने ही किया।

अंग्रेजों के शासनकाल में तो जातियों की संख्या हजारों में पहुँच चुकी थी। यह नीति हिंदू समाज को तोड़ने के लिए बनी थी। इसलिए जातियों एवं उपजातियों का नामकरण किया गया और जिनका दलन विदेशी मुसलिम आक्रांताओं ने सभी प्रकार से कर रखा था, उनको अंग्रेजों ने 'दलित' नाम दिया।

हिंदू दलित का नामकरण अंग्रेजों द्वारा किया गया। मुगलों ने जहाँ बलपूर्वक इसलाम स्वीकारने हेतु हिंदुओं को अपने दमन एवं दलन का शिकार बनाया। वहीं अंग्रेजों ने भी सहानुभूतिपूर्वक ईसाई बनाने हेतु उत्पीड़न, दमन एवं दलन किए गए लोगों को दलित नाम देकर उनके प्रति सहानुभूति में अपने घड़ियाली आँसू बहाए। उनका उद्देश्य था कि ऐसे लोगों के प्रति कुछ कार्य किए जाएँ जिसमें सबसे मुख्य काम चुना गया उन तथाकथित दलितों को यह महसूस कराना कि उनका दमन अथवा दलन हिंदू धर्मावलंबियों एवं हिंदू समाज के कट्टरपंथियों द्वारा किया गया है। वह यह नहीं कहते थे कि उनका दलन मुसलमानों ने किया है। इससे दलित समाज में अपने ही लोगों यानी हिंदुओं के प्रति घृणा पैदा हुई। अंग्रेजों ने अपनी सहानुभूति दिखलाई तो वे उनको अपना भगवान् तक मानने लगे।

दलित हिंदू जातियों के संरक्षण के नाम पर अंग्रेजों ने लंबे समय तक शासन करने की जो सोच रखी थी, वह असफल रही। दलित संवर्ग की जातियों ने वस्तुस्थिति को ठीक से समझ लिया और अंग्रेजों के अपने प्रति घड़ियाली आँसू को भी पहचान लिया। दलितों को संरक्षण देने के नाम पर अंग्रेजों ने भारी मात्रा में हिंदुस्थान की धन-संपदा अपने हित में खर्च की थी। जबकि ऐसे दलितों के लिए विकास के सारे संसाधन आजादी मिलने के बाद प्राप्त हुए। धीरे-धीरे ये तथाकथित दलित जातियाँ अपने प्राचीन गौरवशाली परिस्थिति को प्राप्त करने लगी हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में उनको फिर से सम्मानजनक स्थान प्राप्त होने लगा है। लंबे समय बाद आज भारत में श्रमसंघों का सम्मान ही व्यक्तिवादी अथवा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का अवसान है। दलित जातियाँ राजनीति की दिशा तय करने लगी हैं। दलित राजनीति अब खेल की वस्तु नहीं रह गई है। अत: भारतीय संस्कृति में दलित उत्थान को राजनीतिक रंग देना गलत है।

परंतु आज के राजनेता जो दलितों का नेतृत्व कर रहे हैं, बार-बार दलित-दलित शब्दों का प्रयोग करते हुए दलितों से वोट माँगते फिरते हैं। ऐसे लोग दलित समुदाय से संभ्रांत वर्ग की श्रेणी में आ चुके हैं। उन्होंने दलितों के हित-चिंतन का दायित्व ओढ़ लिया है, लेकिन अपने हित-चिंतन की पूर्ति में ही उनका जीवन समाप्त होता जा रहा है।

इन विषमताओं के बावजूद आधुनिक भारतीय समाज में दलित समुदाय के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन की एक धारा चल रही है। परिवर्तन के आधार बिंदुओं पर सावधानीपूर्वक विचार की आवश्यकता है जिससे इस धारा की दिशा और दशा को समझा जा सके। इस पर अंग्रेजों ने पर्याप्त धन पानी की तरह बहाया और दलित संरक्षण के नाम पर अपनी रोटी सेंकने का काम किया। वही कार्य आज कुछ सामाजिक संगठनों और दलित राजनीतिज्ञों द्वारा भी किया जा रहा है जिससे दलितों का लाभ तो नहीं हो रहा है, परंतु उनको हानि अवश्य हो रही है। इसका प्रभाव हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियों के साथ ही अन्यान्य अनुसूचित जातियों पर अधिक पड़ रहा है।

वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत दलित नेतृत्व एवं दलित साहित्य को अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के संदर्भ में प्रस्तुत किया जा रहा है। आधुनिक संचार माध्यमों ने भी दलित शब्द को इसी संदर्भ में प्रयुक्त किया है। अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों से संबंधित अधिकांश साहित्यिक लेखक भी स्वयं को दलित साहित्यकार के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

वर्तमान समय में दलित उत्थान के नाम पर लोग अपना हितसाधन कर रहे हैं, बार-बार डॉ. भीमराव अंबेडकर आदि का नाम लिया जाता है, परंतु उनके सिद्धांतों पर चला नहीं जाता। 1970 ई. के दशक में पश्चिम भारत में हुए अस्पृश्यता विरोधी आंदोलन को अंग्रेजी पत्रकारिता द्वारा दलित पैंथर एवं दलित साहित्य के रूप में प्रस्तुत किया गया। अमेरिकी ब्लैक पैंथर एवं ब्लैक लिटरेचर के समतुल्य उपरोक्त पदों को रखकर यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया था कि भारत के निम्नवर्गीय लोगों की भी समान स्थिति है। स्पष्ट रूप से तो यह निम्न भावयुक्त शब्द ब्रिटिश मानसिकता और हिंदू धर्मविरोधी मार्क्सवादी वैचारिकी की देन है।

संपूर्ण अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि विदेशी मुसलिम आक्रांता शासकों से पराजित और युद्धबंदी हिंदुओं से मैला ढुलवाने इत्यादि का अस्वच्छ कार्य कुछ कारण से ही विदेशी इसलामिक आक्रांता शासकों ने लिया था उनका दूरगामी प्रभाव तथा परिणाम जो हो सकता था, उसको भी वे अपना मुख्य उद्देश्य बनाए हुए थे। विविध प्रकार के शोषण और उत्पीड़न का भी जब कोई प्रभाव नहीं पड़ा और मृत्युदंड को जब हिंदू लोग ईश्वर की इच्छा समझकर अंगीकार करने लगे तो अंततोगत्वा उनकी अहिंसाप्रिय धैर्य, अदम्य साहस और अद्भुत क्षमता के आगे रक्तपिपासु तलवारों को भी नतमस्तक होना पड़ा।

दंड का स्वरूप परिवर्तित किया गया और युद्ध में चुनौती देनेवालों को सर्वप्रथम मैला ढोने जैसे अस्वच्छ कार्य में लगाकर उनको स्थायी रूप से अपवित्र बनाया गया,

बस्ती और उनके जाति के लोगों और उनके गाँवों से अलग (गाँवों से बाहर) रखकर उनको अपवित्र और अछूत कहकर त्याज्य बतलाया गया जिससे कि वे लोग अपने सगे-संबंधियों की सहानुभूति भी न पा सके। यह प्रयास उन युद्धबंदियों को एक प्रकार से समाज में गिराने के लिए किया गया था, जो दुष्प्रचार और हिंदू पवित्रता की अवधारणा के संयुक्त चिंतन से सफल भी रहा।

लोगों ने समझा कि सफाईकर्मी (भंगी) बनने के साथ ही उन स्वाभिमानी हिंदू एवं योद्धा युद्धबंदियों को स्वाभिमान भंग हो गया, परंतु उन्होंने यह नहीं सोचा कि उनका स्वाभिमान तो हिंदू धर्म की रक्षा से जुड़ा हुआ था जो प्रत्येक अवस्था में पूरा कर लिया गया था। उसके बदले में राजदंड के रूप में उनको मैला ढोने का कार्य मिला था, जिसे वे कर रहे थे। अपने आर्थिक उत्पीड़न से वे निश्चित रूप से टूट गए और उनके राजवंशीय परंपरा का भी समापन हो गया, परंतु उनकी हिंदू धर्म में निष्ठा को कोई क्षति नहीं पहुँच पाई थी। इस प्रकार न तो उनका अंत हुआ और न ही उनके प्रिय धर्म का अंत हुआ और न ही उनके स्वाभिमान का ही अंत हुआ। अंत हुआ केवल विविध प्रकार के शोषण और उत्पीड़न का और विदेशी शासकों को एक शिक्षा भी मिली। चर्म-कर्म में बलपूर्वक लगाकर इसी तंरह से चर्मकार यानी चमार बनाया गया। बाद में वे भी अंग्रेजों द्वारा दलित बताए गए।

इस प्रकार मैला ढुलवाने जैसे अस्वच्छ कार्य का कारण तथा उद्देश्य चाहे जो भी रहा हो, लेकिन पूरी तरह से हिंदू नर-संहार को रोकने के एक अनुकूल उद्देश्य को पूरा किया। राजवंशीय एवं धार्मिक कार्यों में संलग्न लोगों की सामाजिक प्रस्थिति भले ही दलित एवं दयनीय स्थिति तक पहुँच गई, किंतु हिंसा रुकी, धर्म-परिवर्तन की आँधी रुकी और उत्पीड़न की दिशा भी बदली। आज संपूर्ण हिंदू समाज के लिए वाल्मीकि, सुदर्शन, महजबी सिख, रुखी, मखियार इत्यादि समाज को अपने गौरवशाली राजवंशीय इतिहास एवं स्वाभिमान तथा अद्वितीय राष्ट्रवाद और विदेशी आक्रांताओं से हुए महान् युद्धों के लिए गर्व की अनुभूति है।

□

अध्याय-6

हिंदू समाज वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जातियों का ऋणी

धृति (धैर्य), क्षमा, दम (साधना-तपस्या), अस्तेय (चोरी न करना), शौचम् (पवित्रता), इंद्रिय निग्रह (आत्म नियंत्रण), धी (आधात्मिक ज्ञान), विद्या (व्यावहारिक ज्ञान), सत्य, अकोध (अहिंसा)[1] जैसे दस महत्त्वपूर्ण एवं महनीय आधारों पर आधारित हिंदू जीवनपद्धति प्रकृतिजन्य विशेषताओं के साथ निरंतरता और गतिशीलता को प्राप्त है। क्योंकि प्रकृतिपरक जीवन-शैली एकमात्र हिंदुस्थान एवं हिंदुओं में ही पाई जाती है, अहिंदुओं में नहीं। ऋण-त्रय की वैचारिकी भी केवल यहीं की परंपरा है और हिंदू अपने मातृऋण, पितृऋण, गुरुऋण के लिए ही सतत् अपनी रीति-रिवाज चाहता है। अन्य ऋणों का उपकार मानना, उनके प्रति अनुग्रहीत होना और कृतज्ञता एवं आभार प्रकट करना हिंदू जीवन की विशेषता है। इस संस्कृति में व्यक्ति, व्यक्तियों, समाज, समूहों, जड़-चेतन, स्थावर-जंगम और देवी-देवताओं अर्थात् सबको ही उनके उपकारों के प्रति आभार व्यक्त किया जाता है।

हिंदू समाज में ऋण की स्थापित मान्यता के अनुसार गुरुऋण शिक्षा को दूसरों में बाँटने से स्वत: मनुष्य मुक्त हो जाता है। पितृऋण समाज एवं मानव प्रजाति के निरंतरता और अस्तित्व की रक्षा के लिए वंश वृद्धि से है, मातृऋण से व्यक्ति कभी मुक्त नहीं हो पाता, किंतु उसे कम अवश्य कर सकता है। उसके लिए फिर मनुष्य को देश, धर्म एवं मानवता की सेवा करनी चाहिए।

हिंदू समाज अपनी उक्त परंपरानुसार ही वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी,

---

1. मनुस्मृति 6/92

मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियों का ऋणी है। इन जातियों ने विदेशी मुसलमानों एवं मुगल आक्रांताओं के आक्रमणों का उत्तर अत्यंत बहादुरी से दिया। क्रूर लुटेरों के दुस्साहस का मुँहतोड़ उत्तर दिया। मातृभूमि की बलिवेदी पर प्राण न्योछावर करके दुश्मनों की तलवारों को धार मोटी कर दी। हर अवस्था में विविध प्रकार के शोषण और उत्पीड़नों को धैर्य एवं साहस के साथ सहन किया परंतु इसलाम सदैव अस्वीकार किया जिससे उनका सबकुछ मिट गया लेकिन उनका एकमात्र अभीष्ठ हिंदू धर्म सुरक्षित बचा लिया गया। राष्ट्रीय धर्म की रक्षा किसी भी मूल्य पर राष्ट्ररक्षा से कम नहीं आँकी जानी चाहिए, जो यह कार्य वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति के हिंदू धर्मरक्षक एवं देशरक्षकों ने किया।

धर्मरक्षा सहित देश और देशवासियों की रक्षा में अपना योगदान उन्होंने दुश्मनों का मैला साफ करके किया था और अपनी धर्मपरायणता पर आँच न आने देने के लिए अनेक ऐतिहासिक अपमान तक सहे थे। मुसलिम आक्रांता-शासकों से अपनी रक्षा के लिए सुदर्शन, वाल्मीकियों, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियों ने सूअर-पालन को एक मजबूत हथियार के रूप में इस्तेमाल किया था। विदेशी मुसलिम आक्रांताओं एवं शासकों की क्रूरता उनके मन मस्तिष्क में इस प्रकार से धँस गई थी कि उन्होंने तब से लेकर आज तक मुसलिम जाति का छुआ जल तक नहीं पीया है, जबकि अपने हिंदुओं के उच्छिष्ट (जूठन) अन्न वे प्रेमपूर्वक ग्रहण कर लेते हैं।

वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख जाति ने हिंदू धर्म की रक्षा के लिए मैला ढोया, अपने धर्माभिमानी एवं स्वाभिमान को भंग कराया और समाज में सबसे निम्न स्तर यानी सफाईकर्मी की परिस्थिति प्राप्त की, फिर भी वे आज तक हिंदुत्व की मुख्यधारा से जुड़े हुए हैं। ऐसी साहसी एवं धर्मनिष्ठ स्वाभिमानी, राष्ट्राभिमानी एवं योद्धा जाति का नाम हिंदू-इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में अंकित होना चाहिए और संपूर्ण हिंदू समाज को उसका ऋणी भी होना चाहिए। यदि हिंदुस्थान के प्रत्येक हिंदू में यह भावना है तो वह न्यायसंगत है। तभी यह देश वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि स्वाभिमानी एवं धर्माभिमानी जैसी जातियों के ऋण से मुक्त हो सकेगा। उक्त संदर्भों का सजीव चित्रण प्रस्तुत अध्याय की विशेषता एवं वरीयता है।

6.1 विदेशी मुसलमान एवं मुगल आक्रांताओं के आक्रमणों का उत्तर

विदेशी मुसलमान एवं मुगल आक्रांताओं ने वैभवशाली हिंदुस्थान की समृद्धि का अवलोकन चोरी-छिपे किया और अपने देश के यात्रियों एवं व्यापारियों से यहाँ के वैभवशाली समाज के बारे में सुना था। इसलिए अपनी अभावग्रस्त जिंदगी के लिए खुशियाँ खरीदने हेतु यहाँ बार-बार लूटपाट करने आए थे। कभी चोरी-छिपे घात

लगाकर तथा कभी अपने देश के हजारों-लाखों भूखे लोगों को साथ लेकर आते थे। भीख माँगना उन्होंने उसी समय से बंद कर दिया था जिन दिनों से उन्होंने मूर्ति-पूजा का त्याग करके इसलाम स्वीकार कर लिया था। धर्म-परिवर्तन और उसी के साथ इसलाम स्वीकारने पर उनकी संस्कृति परिवर्तित हो चुकी थी। उन दिनों उनका भरोसा सौहार्द से सहयोग माँगने के स्थान पर बलपूर्वक जेहाद से छीन लेने की संस्कृति में था। वे अपने आपको लूटपाट, मारकाट और बर्बरतायुक्त जीवन-पद्धति में ढाल चुके थे।

इसलाम के प्रसार-प्रचार और मुसलिम जीवन-पद्धति पर आधारित समाज के निर्माण हेतु पैसों और प्रचुर शस्त्रों की आवश्यकता थी। बिना धन के वे शस्त्र भी नहीं जुटा पा रहे थे। सहयोगी सैनिक भी धन ही चाह रहे थे और धन केवल हिंदुस्थान से ही मिल सकता था। उनकी सारी समस्याओं का समाधान एकमात्र यही देश था। यहाँ, प्रकृतिपरक जीवन-पद्धति थी, सुख-सुविधाएँ थीं, भौतिक एवं आध्यात्मिक दर्शन एवं चिंतन का मनोरम वातावरण था और यहाँ की सद्वृत्तिपूर्ण मानवीय एवं सामाजिक सहिष्णुतापूर्ण थी। सत्य और अहिंसा पर फलीभूत इस देश को प्राप्त करने के लिए अतिथिस्वरूप आगमन भी पर्याप्त था, परंतु हाथ में कटोरा के स्थान पर तलवार आ जाने के बाद अरब के आतंकी एवं आक्रांता सबकुछ आतिथेय के रूप में नहीं बल्कि आतंकवादी के रूप में प्राप्त करना चाहते थे। यही कारण था कि उन्होंने लूटपाट और आक्रमण का तरीका अपनाया और अहिंसा के पुजारी इस देश को भी आक्रमणों का प्रत्युत्तर देने के लिए परंपरागत अस्त्र-शस्त्रों के सामान्य प्रयोगों हेतु विवश किया।

हिंदू राजपूतों द्वारा सामान्य बल प्रयोग करने के पीछे मात्र यह अवधारणा थी कि अरब के विदेशी इसलामिक लुटेरों को डाँट-फटकार अथवा हल्की-फुल्की प्रताड़ना के साथ चेतावनी देकर हटा दिया जाए। उनके प्राणघातक प्रहारों के प्रत्युत्तर में भी यहाँ से सदैव जीवन-दान ही दिए गए। अनेक अवसरों पर उनको शरणागत होने पर पूरी सुरक्षा तक प्रदान की गई। अनेक उदाहरण और दृष्टांत इसके साक्ष्य हैं, जैसे—चौलुक्य राजमाता नायकी देवी की तलवार से भूमि पर गिरे मुहम्मद गोरी को क्षमादान, पृथ्वीराज चौहान से पराजित मुहम्मद गोरी को क्षमादान, सुनारगाँव के हिंदू राजा दानुजराय के सहयोग प्राप्त्यर्थ सुल्तान बलवन के आते ही खड़े होकर सम्मान प्रदर्शित करना, मुहम्मशाह द्वारा हिंदू वीर सिद्धपाल और सुधारन कागू से अभयदान प्राप्त करना, जालौर में अलाउद्दीन खिलजी को कान्हड़देव के पुत्र वीरमदेव तथा मालदेव द्वारा क्षमादान इत्यादि।

मुहम्मद-बिन-कासिम के देवल पर आक्रमण का भी कड़ा प्रतिरोध देवलवासियों ने प्रस्तुत किया और लगातार 9 दिन युद्ध चलता रहा। भेदियों द्वारा रक्षाकवच का रहस्य बतलाए जाने पर जब उसे तोड़ा गया तभी देवल पर कासिम की विजय सुनिश्चित हो पाई। कड़े प्रतिरोध को ध्यान में रखकर वह वहाँ से आगे बढ़ गया।

कासिम का दादा अलहज्जाज अपने को कासिम से सदैव असुरक्षित महसूस करता था। हिंदुस्थान पर आक्रमण के लिए भेजे गए उसके दो सेनापति मार दिए गए थे। वह कासिम को भी लगे हाथ उसी बहाने मरवा देना चाहता था इसलिए उस 17 वर्षीय बालक को सेनानायक बनाकर देवल पर आक्रमण के लिए भेजा था। रास्ते में एक दूत भेजकर दाहिर ने कासिम को अलहज्जाज की नीयत बता दी थी, परंतु उसने विश्वास नहीं किया। दाहिर को विश्वास था कि उसकी बात मानकर कासिम अलहज्जाज से बदला लेने वापस चला जाएगा, परंतु उसकी सोच गलत निकली। कासिम का भला करने के चक्कर में वह मारा गया, परंतु कासिम भी बच नहीं पाया। उसे वापस बुलाकर बैल की खाल में बंद करके तीन दिनों तक तड़पाकर उसके दादा ने मरवा दिया। उसे भय था कि हिंदुस्थान फतह करने के बाद वापस लौटने पर कासिम उसको पदच्युत कर देगा। इसलिए उसने पैसे देकर खलीफे से कासिम के लिए मृत्युदंड का आदेश जारी कराया था। उसके द्वारा लूटकर लाए गए सैकड़ों मन सोने-चाँदी, हीरे-जवाहारात[1] पहले ही जब्त कर लिए गए थे।

भयंकर नर-संहार के नग्नतांडवकाल में कोई ऐसा इतिहासकार नहीं था जो विदेशी सुल्तानों के विरोध में एक शब्द भी लिख सके। मुगलों की चाटुकारिता से हिंदुस्थान में व्यापार का बाजार प्राप्त करनेवाले भी जब हिंदू धर्मग्रंथों में मिलावट करने का कार्य करने तो भला करने लगे यहाँ अंग्रेज के यथार्थ इतिहास को क्यों प्रस्तुत करते। यही कारण है कि अंग्रेजों ने इसलामिक काल में जासूसों को महान् इतिहासकार कहा तथा उनके संदर्भ में घटनाओं को इसलाम की विजय के रूप में ही प्रस्तुत किया गया। जिस सत्य को वे निगल नहीं पाए, केवल उनका ही उल्लेख सामान्य रूप में किया ताकि पक्षपात का आरोप उन पर न लग सके।

हिंदू तो दास थे इसलिए खुलकर कुछ कह नहीं पाते थे किंतु साहित्यकारों ने भारतीय पद्धति से सच्चे इतिहास लिखे जिसे अनैतिहासिक मान लेने से वे लेखक दंडित नहीं हो पाते। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के ऐतिहासिक उपन्यास 'सोमनाथ' से संकेत मिलता है कि जिस तरह से तक्षशिला विश्वविद्यालय के आचार्य विष्णुगुप्त (चाणक्य अथवा कौटिल्य) ने चंद्रगुप्त मौर्य को नंदवंश के उन्मूलन हेतु प्रेरित किया था, ठीक उसी प्रकार से उसी विश्वविद्यालय में छात्र-परंपरा के अली बिन उस्मान अलहजवीसी[2] और अलबरूनी[3] ने क्रमशः महमूद-बिन-सुबुक्तिगीन तथा उसके पुत्र महमूद गजनवी को हिंदू राजवंशों को समाप्त करने हेतु तैयार किया था। अलहजवीसी ने मुलतान

1. शास्त्री, आचार्य चतुरसेन, सोमनाथ, पृष्ठ 52
2. शास्त्री, आचार्य चतुरसेन, सोमनाथ, पृष्ठ 47
3. शास्त्री आचार्य, चतुरसेन, सोमनाथ, पृष्ठ 177

के हिंदू राजा अजयपाल को अपने आशीर्वाद से पुत्र-रत्न प्राप्त कराया था।[1] इसलिए सुबुक्तिगीन जब हिंदुस्थान पर चढ़ाई कर रहा था उस समय उसके मार्ग में अवरोध पैदा न करने की हिदायत हिंदू राजा को अलहजनीसी ने दी थी। अलबरूनी ही महमूद गजनवी को छद्मवेष में सोमनाथ मंदिर देखने और लूट-नीति बनाने हेतु लाया था, यद्यपि सर्वोच्च पुजारी गंग सर्वज्ञ द्वारा पहचान लिए जाने पर भी वे मारे नहीं गए थे।[2] आश्चर्य का विषय है कि भयंकर नर-संहार कराने वालों को कहीं महान् संत और कहीं महान् इतिहासकार कहा जाता है। कम-से-कम भारतीय अथवा हिंदू इतिहासकारों को तो अलबरूनी का एक भी उद्धरण मान्य नहीं होना चाहिए और उसकी सार्वजनिक भर्त्सना होनी चाहिए।

हिंदू महात्मा गंग सर्वज्ञ का आशीर्वाद लेकर ही महमूद गजनवी ने सोमनाथ, नगरकोट आदि को लूटा था और चौलुक्य राजमाता नायकी देवी से प्राणदान पाने के उपरांत मुहम्मद गोरी ने तराइन के मैदान में पराजयों के बाद एक विजय प्राप्त की थी। ऐसे ही अनेक आक्रमण इस देश पर हुए और उनका कड़ा प्रत्युत्तर भी दिया गया। पुस्तक में उन आक्रमणों का यत्र-तत्र उल्लेख किया गया है।

6.2 वाल्मीकि, मजहबी सिख, सुदर्शन जाति द्वारा इसलाम अस्वीकार्य

पुरुषार्थ-चतुष्ट्य में धर्म को प्रथम स्थान प्रदान किया गया है, क्योंकि वह अर्थ, काम, मोक्ष का उपयुक्त मार्ग प्रशस्त करता है। धर्म का संबंध जीवन से जुड़ा होता है। वहीं शरीर और आत्मा के प्राण तत्त्व को सुदृढ़ और पवित्र करता है। वही कर्तव्य है, जीवनवृत्ति है और वही दशा एवं दिशा भी है। इसलिए धर्म सभी के लिए अपरिहार्य है।

जीवन के साथ जुड़ा हुआ धर्म सभी का अपना होता है। हिंदू लोकजीवन में धर्म व्यापक होता है। उसमें भौतिक और आध्यात्मिक चिंतनता होती है। ऐसी ही विशेषतावाले हिंदुत्व के दस तत्त्व ही धर्म है,[3] जिसे हिंदुस्थान के लोग युगों-युगों से आत्मसात् किए हुए हैं। परंतु सभी का केंद्रहिंदू धर्म ही है। जैन और बौद्ध पंथ को अलग बतलाने के लिए तरह-तरह के प्रयास किए गए किंतु हिंदुस्थान में धार्मिक आधार पर फूट डालने के किसी भी प्रयास को सफलता नहीं मिली। हिंदू ने महावीर स्वामी और सिद्धार्थ गौतम बुद्ध को सत्य और अहिंसा नामक हिंदू तत्त्व को स्वीकार करने की प्रशंसा की और उन दोनों ही पंथों को उसी प्रकार महत्त्व दिया जैसे निराकार ब्रह्म की उपासना पद्धति को समस्त हिंदुओं ने स्वीकार किया था। जीवात्मा को हिंदू धर्म की ही

---

1. वही, पृष्ठ 50
2. वही, पृष्ठ 11-12
3. मनुस्मृति, 6/92

भाँति जैन पंथ के दस तत्त्व और बौद्ध पंथ के अष्टांग मार्ग के रूप में भी महत्त्व दिया गया है और नर को ही नारायण तक सभी ने स्वीकार किया है। किंतु जेहाद (धार्मिक हिंसा) और असत्य पर आधारित इसलाम और ईसाई पंथ न हिंदू को, न ही जैन और बौद्ध को स्वीकार्य हुआ।

हिंदु वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज ने भी एक कट्टर हिंदू होने के कारण इसलाम कभी स्वीकार नहीं किया, भले ही अपना क्रूरतम दमन, सामाजिक उत्पीड़न, आर्थिक शोषण, सांस्कृतिक और मानसिक दलन स्वीकार किया। इसलाम अस्वीकार्य करने के दंडस्वरूप विदेशी मुसलिम आक्रांताओं ने इस जाति के बच्चों और स्त्रियों को उन योद्धा हिंदू युद्धबंदियों के सामने कत्ल किया, नग्न किया और कौड़ियों के मोल नीलाम कर दिया परंतु किसी भी तरह का दमन एवं दलन कालांतर में उन धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी तथाकथित वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख बने उन महान् हिंदू योद्धाओं को डिगा नहीं सका।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज का राष्ट्र के प्रति यह सबसे बड़ा योगदान है कि लोगों ने शासकों के मलमूत्रों को फेंकना एवं मैला ढोना स्वीकार किया परंतु उनके इसलाम को ठोकर मारी। इसका यह भी एक कारण था कि इसलाम के कट्टर समर्थक विदेशी आक्रांता-शासकों द्वारा जो इसलाम का क्रूर स्वरूप संसार के समक्ष रखा गया उसमें दोष-ही-दोष विद्यमान था। उसमें हिंदू धर्म के एक भी गुण नहीं थे इसलिए उसके आध्यात्मिक सिद्धांत मात्र पुस्तकों की वस्तु थे। व्यवहार में उन सिद्धांतों का स्वयं अरब के मुसलिम शासक तक उपयोग नहीं करते थे।

इसलाम धर्म में विश्वबंधुत्वभाव का पहला सिद्धांत निरंतर उपेक्षित रहा। किसी भी मुसलिम आक्रांता ने किसी भी हिंदू के साथ कभी भी विश्वबंधुत्वभाव-सा व्यवहार नहीं किया। विश्वविजय की भावना से ओत-प्रोत सिकंदर ने हिंदू राजा पुरु (पोरस) को पराजित करने के उपरांत उससे पूछा था कि वह पुरु के साथ कैसा व्यवहार करे तो पोरस ने उत्तर दिया था कि जैसा एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है। इस पर सिकंदर ने भारत के राजवंशीय गौरवोक्ति का सम्मान किया और पोरस को उसका राज्य वापस कर दिया। दूसरी तरफ विदेशी इसलामी आक्रांताओं ने इस तरह के उत्तर सुनकर उत्तरदाताओं के सिर काट लिए।

विश्वबंधुत्वभाव हिंसा और निर्दयता, दोनों से सदैव दूरी रखता है, परंतु इसलाम में ये दोनों निकट से पाए जाते हैं। हिंदुओं का निर्दयतापूर्वक दमन जितना विदेशी मुसलिम आक्रांताओं ने किया, वैसा इतिहास में कहीं देखने को नहीं मिलता है। सात वर्ष तक के हिंदू बच्चे तलवारों से दो टूक कर दिए जाते थे। स्त्रियों के शीलांग उच्छेदित करके उन्हें अपमानित किया जाता था। अवयस्क हिंदू बालाएँ भोग-विलास

के लिए पैगंबर के उत्तराधिकारी मुसलिम खलीफाओं को लगातार उपहार में दी जाती थीं। बलात्कार के बाद उन्हें कौड़ियों के मोल बेच दिया जाता और प्राप्त पैसों से भोग-विलास की वस्तुएँ क्रय की जाती थीं। अनेक आक्रमण एवं लूटपाट सहित नरसंहार तो केवल महिलाओं को छीनकर हवस का वस्तु बनाने के लिए किए गए थे। ऐसे में कहाँ रहा इसलाम का विश्वबंधुत्वभाव? यही कारण था कि हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि जाति के धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी योद्धाओं ने इसलाम को सदैव अस्वीकार किया।

इसलाम का एक अन्य तथाकथित सिद्धांत है—'समानता'। इसका एकमात्र आशय है दूसरों के साथ वही व्यवहार करना जैसे व्यवहार की अपेक्षा अपने लिए की जाए। अर्थात् सबको बराबर का मानना। यही समानता की सद्भावना है। परंतु इसलाम में इसका अर्थ ही विदेशी मुसलिम आक्रांता-शासकों द्वारा उलट दिया गया और सबके समान बनने के स्थान पर सबको अपने समान मुसलमान बनाने की अवधारण व्याप्त हुई। मार-काट, पशु-हत्या, मांस-मदिरा आदि जिनको रास नहीं था उनके लिए इसलाम में जाकर मुसलमानों के साथ समानता के धरातल पर खड़े होना भला किस प्रकार से संभव था? ये सब अस्वच्छ एवं अपवित्र कार्य किसी भी हिंदू के लिए ग्राह्य नहीं थे, इसलिए हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार इत्यादि जाति ने भी समानता की इसलामिक अवधारणा को सदैव अस्वीकार किया।

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति ने अत्यंत नजदीक से देखा था कि विदेशी शासक-आक्रांता अकारण ही हिंदुओं से कुछ भी, यहाँ तक कि बहू-बेटियाँ भी बलपूर्वक केवल इसलिए छीन लिया करते थे, क्योंकि वे विजेता थे। उनके सैनिक केवल लूटपाट की खुली छूट पर युद्ध में भाग लेते थे, जो पूर्णरूपेण अनैतिक था। जिन हिंदुओं के घर और खेत-खलिहान आग के हवाले कर दिए गए, जिनके हरे-भरे खेतों को मुसलिम आक्रांताओं के घोड़ों के लिए चरागाह घोषित कर दिया गया, जिनकी भूमि छीनकर मुसलमानों में निःशुल्क बाँट दी गई,[1] जिनके दुधारू पशुओं को काटकर खा डाला गया, जिनको खौलते हुए कड़ाहों में जिंदा भून दिया गया, जिनकी गरदन काटकर मृत शरीर को कुत्तों और गीदड़ों के लिए फेंकवा दिया गया और जिनको जंगल-पर्वतों में दर-बदर जीवन व्यतीत करने पर विवश किया गया, उन लोगों द्वारा भला इसलाम कैसे स्वीकार किया जा सकता था। हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति ने ऐसे सभी शोषणों को धैर्य से सहा था, परंतु इसलाम अस्वीकार कर दिया था।

विदेशी मुसलिम आक्रांतों को जब मार-काट, रक्त-पात, लूट-खसोट और

---

1. डॉ. सुमन शास्त्री, मध्यकालीन भारत की''', शोध ग्रंथ, पृ. 76

अस्वच्छ-अपावन कार्यों में बलपूर्वक नियोजित करके भी वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख, मखियार, रुखी इत्यादि जाति के लोगों को इसलाम स्वीकार कराने में सफलता नहीं मिली तो उन्हें प्रलोभन देना आरंभ किया। उनके प्रमुख चौधरी सरदारों को बुलाया और कहा कि इसलाम स्वीकार कर लेने पर उनका सबकुछ वापस कर दिया जाएगा। मनपसंद आवास, खेती और व्यवसाय करने दिया जाएगा, खेत-खलिहानों की खुशहाली वापस कर दी जाएगी और अस्वच्छ एवं अपावन कार्यों से उनको मुक्त कर दिया जाएगा, परंतु वे इसलाम स्वीकार कर लें। इस पर वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी चौधरी सरदार योद्धा इतना सुनते ही अपने हाथों से अपनी गरदन काटकर उन आक्रांता, शासकों एवं शोषकों के सम्मुख डाल देते थे। वे जानते थे कि इनकार करने पर उन्हें और भी यातना दी जाएगी, इसलिए वे अपने शरीर का अंत कर देते थे। परंतु इसलाम स्वीकारने की कौन कहे, यह आदेश सुनना तक पसंद नहीं करते थे।

वाल्मीकि समाज के आदि भगवान् महर्षि वाल्मीकि के द्वारा रचित रामायण को विदेशी आक्रांताओं और उनके सैनिकों द्वारा जूतों से रौंदकर आग के हवाले कर दिया जाता था। फिर भी वाल्मीकि समाज ने उसे धैर्य से सहा, परंतु इसलाम स्वीकार नहीं किया।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज को भले ही अस्वच्छ एवं अपावन कार्यों में लगाया गया था फिर भी वे अपनी आत्मा को सदैव पवित्र रखते थे। अपनी आत्मा की आँखों से वह देखते थे तो विदेशी आक्रांताओं के किसी भी धर्म-कर्म में पवित्रता कहीं दिखाई नहीं देती थी। गाय को वे खेल-खेल में मार देते और उनके मांस को बाँटकर खा जाते थे। हाथ और मुँह की अलग-अलग प्रकृति से उत्पन्न होनेवाले संक्रामक रोगों पर बिना ध्यान दिए ही सारे लोग एक ही में जूठा अन्न खाते थे और एक ही में पानी पीते थे। ये सारे कार्य पवित्रता को प्रभावित करनेवाले थे किंतु आक्रांता इसे अपनी एकता का प्रतीक मानते थे। वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार इत्यादि ने इसे विज्ञान विरुद्ध एवं अतार्किक घोषित कर इस पंथ एवं संस्कृति को सदैव अस्वीकार किया।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि समाज ने बहुत नजदीक से इसलामिक एकता और समानता का अवलोकन किया था। उसने पाया था कि वे लोग भेदभाव की चरम सीमा पर हैं और उनका भेदभावरहित समाज का नारा थोथा है। भारतीय मुसलमानों को वे केवल एक अस्त्र के रूप में प्रयोग में लाते थे। उनका मानना था कि जितने अधिक लोग मुसलमान बन जाएँगे, उनके विरोधियों की संख्या में कमी होती रहेगी, और वे हिंदू विरोधियों पर विजय पाकर पर्याप्त धन लूट सकेंगे। मुसलमान इस बात को तब समझ पाए जब उनके वर्ग के मुसलमानों को शासन-सत्ता के महत्त्वपूर्ण

पदों से दूर रखा गया और जो भूल से वहाँ तक पहुँच गए थे, उन्हें पदच्युत करके दंडित किया गया।

विदेशी मुसलिम शासक इल्तुतमिश और बलवन, दोनों ने ही अरबी-तुर्की मुसलमानों को हिंदू अथवा हिंदुस्थानी मुसलमानों से श्रेष्ठ समझा और हिंदुस्थानी मुसलमानों को सदैव घृणा की दृष्टि से देखा। उनकी मानसिक स्थिति सदैव सशंकित रहती थी, उन्होंने इसलिए हिंदू एवं भारतीय मुसलमानों पर कभी विश्वास नहीं किया। इल्तुतमिश का प्रधान वजीर पूरी निष्ठा के साथ अपने पद का दायित्व निर्वाह कर रहा था, किंतु उसको इसलिए पदच्युत कर दिया गया क्योंकि उसके पाँच पीढ़ी पूर्व के वंशज हिंदू थे।

विदेशी मुसलिम आक्रांताओं का लक्ष्य क्षति उठाए बिना ही किसी प्रकार से अधिकाधिक लाभ अर्जित करना था, इसके लिए वे अनियमित और कठोर कार्य करने हेतु सदैव तत्पर रहते थे। यही कारण था कि हिंदुस्थान में बलपूर्वक सफाई-कर्म में लगाए जाने के उपरांत भी हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति के स्वाभिमानियों ने इसलाम को अंगीकार नहीं किया।

6.3 वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियों द्वारा धर्म की रक्षा

मनुष्य का 'स्व' ही उसका सर्वस्व होता है। मनुष्य सबकुछ त्याग सकता है, परंतु अपने 'स्व' का त्याग वह मरते दम तक नहीं कर सकता। देश, समाज, धर्म इत्यादि जैसे राष्ट्रीय मुद्दों पर भी लोग अपना 'स्व' नहीं जाने देते, परंतु जो ऐसा करके दिखलाते हैं वे अत्यंत महान् होते हैं, इसमें संदेह नहीं है। वाल्मीकि एवं सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति ने ऐसा ही उदाहरण प्रस्तुत किया है। उसने धर्म की रक्षा के लिए अपने स्व का त्याग किया और चिरस्मरणीय तथा पूजनीय बन गई।

धर्म अथवा हिंदू धर्म की रक्षा में हिंदुस्थान की समस्त जातियों ने अपने-अपने ढंग से कार्य किया और विविध रूप से उत्तरदायित्व निर्वहन किया था। उसने एक ऐसी प्रक्रिया अपनाई (बतलाया) जिसके परिणामस्वरूप धर्मरक्षा का उसका उद्देश्य पूरा हो गया और किसी को यह आरोप लगाने का अवसर नहीं मिला कि वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार इत्यादि समाज ने धर्म की रक्षा नहीं किया।

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि समाज को जब यह कहा गया कि वह हिंदू धर्म में तभी रह सकेगा जबकि वह मलमूत्र सफाई का यानी अस्वच्छ कार्य स्वीकार करे। तब वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज ने अहिंसा को रोकने के साथ ही हिंदू धर्म की रक्षा के इरादे से अस्वच्छ एवं अपवित्र कार्य करना स्वीकार कर लिया। यदि वह उस कार्य को करना स्वीकार न करते तो उनको विदेशी मुसलिम आक्रांता

शासकों द्वारा बलपूर्वक मुसलमान बना दिया गया होता और हिंदू धर्म की रक्षा न कर सकने का दोष उन पर आया होता।

हिंदू वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति के लोगों ने हिंदू धर्म की शाखा निर्गुण और निराकर ब्रह्म की उपासना की। हिंदू धर्म पर आधारित नवल पंथ को माना। संत कबीर और संत रैदास तथा संत दुर्बलनाथ की निराकार उपासना में ध्यान लगाकर मुसलिम आक्रांताओं एवं शासकों को शस्त्र निकालने का अवसर नहीं दिया। वे समझ नहीं पाए कि वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जातियों के लोग हिंदू धर्म की ही एक अन्य विधा के अनुसार अपनी आराधना कर रहे हैं। इस प्रकार इन बहादुर योद्धाओं के बुद्धिमानयुक्त कदम से हिंदू धर्म की रक्षा हो सकी।

धर्मरक्षा हेतु हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि जाति के लोगों ने इसलाम के शत्रु-पशु सूअर का पालना आरंभ किया। यही विधि हिंदू खटिक जाति ने अपनाई और सफल रहे। तभी वाल्मीकि समाज ने भी सूअर-पालना शुरू किया। देखा-देखी अन्य तथाकथित दलित किंतु पूर्वकाल की धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी योद्धा एवं राजवंशीय जातियाँ, जैसे—दुसाध, मुसहर, पारधी, राजभर, पासी इत्यादि जातियों के अन्य लोगों ने भी इस अस्वच्छ पशु को पालना प्रारंभ किया। उन्होंने आवाहन भी किया कि इस पशु से घृणा मत करो। इसे राष्ट्रीय स्तर पर पालो। उनकी संख्या इतनी अधिक कर दो कि हर गली-कूचा में तथा आने-जाने वाले मार्गों में सूअर ही नजर आएँ। यह भगवान् वराह अवतार वाले के प्रतीक हैं।

यह आवाहन बहुत ही लाभप्रद था। विदेशी आक्रांताओं के ईंट का जवाब पत्थर जैसा था। परंतु इसको हिंदू लोगों ने गंभीरता से नहीं लिया, अन्यथा अनेक हिंदू भयंकर नर-संहार से बच गए होते। मंदिरों और किलों का विध्वंस भी रुका होता और देश की विपुल संपदा भी लूटे जाने से बच गई होती। वह प्रयोग था—प्रत्येक घरों में इसलाम के शत्रु-पशु सूअर को भगवान् वराह के रूप में अंगीकार करना। यह एक ऐसा प्रयोग है जिससे भविष्य में भी मुसलिम आतंकवाद से बचा जा सकता है। जिससे धर्म की रक्षा हो सके, उसे करना अच्छा ही कहा जाता है। यह कार्य यदि वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति ने धर्मरक्षार्थ किया तो अनुचित नहीं किया।

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि जाति ने हिंदू धर्म की रक्षा, हिंदू धर्म के नियमों का अनुपालन करते हुए ही की थी। हिंदू धर्म के विरुद्ध उसने कभी भी और कोई भी कार्य नहीं किया। वैदिक धर्म-प्रधान कार्यों को उसने तल्लीनतापूर्वक संपादित किया। वेद एवं वेदोत्तर हिंदू देवी-देवताओं में अपनी निष्ठा बनाए रखी। उनके प्रति पूजा-पाठ इत्यादि नियमित रूप से संपन्न की। ईश्वर की शक्ति में आस्था रखी। उसकी व्यापकता में विश्वास किया। अस्वच्छ कार्य करने के बाद भी वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार,

मजहबी सिख इत्यादि जाति ने ईश्वर की आराधना को कभी विस्मृत नहीं किया। इसका जीवंत साक्ष्य यह है कि आज भी आप किसी भी हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख को अपने सफाई-कर्म के अलावा धार्मिक प्रवृत्ति का ही पाएँगे। यह क्रिया वे उस समय भी करते रहे जब उनको युद्धबंदी बनाया गया था। यह उनके द्वारा धर्मरक्षा का ज्वलंत उदाहरण है।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि समाज ने जिस हिंदू धर्म की रक्षा करने में अपनी सामाजिक प्रस्थिति खो दी और अपने ही समाज में अस्पृश्य हो गए, उस धर्म में आध्यात्मदर्शन उच्च शिखर पर रहा है। भौतिक अथवा प्राकृतिक दृश्यावलियों को आध्यात्मिक चिंतनता की कल्पना में यह जगत, कुल तीन भागों में विभक्त माना गया है—पृथ्वी, आकाश और अंतरिक्ष। प्रत्येक लोक में देवताओं-देवियों का निवास था। वैदिक समाज में बहुदेवतावादी यज्ञप्रधान धर्म रहा है जो जीवन के संचालन के लिए नितांत आवश्यक था। हिंदू जीवन-तत्त्वों को यथावत् अवधारित करनेवाले ब्रह्मांश ही देवता थे जिनकी अर्चना सामान्य जन यज्ञों और यज्ञविधानों में प्रदत्त हवियों के माध्यम से करते थे।[1] ऐसे अद्वितीय चिंतन एवं दर्शनवाले हिंदू धर्म की रक्षा में समाज क्या, प्राण तक छोड़ देने के लिए वाल्मीकि, सुदर्शन, इत्यादि सफाईकर्मी जाति के लोग सदैव तैयार होते थे।

धर्म की रक्षा में वाल्मीकि, सुदर्शन, इत्यादि जाति के लोगों को आर्थिक स्तर पर भी प्रताड़ित किया गया था। उनके घरों में आग लगा दी गई। खेत-खलिहान जला दिए गए। जो कुछ भी घरों में था, सब ले जाया गया। उनकी जीविका की धारा बदल दी गई और धर्मरक्षा तथा देशरक्षा के कार्यों से हटकर मैला ढोने यानी सफाई का अस्वच्छ काम मिला। परंतु इस जाति ने बड़े ही धैर्य से इस अस्वच्छ एवं अपावन कार्य को किया, फिर भी हिंदू धर्म के तत्त्वों के आधार पर सामान्य व्यवहार के निष्पादन में अपना संपूर्ण जीवन अर्पित किया। इस जाति के लोगों को इस मान्यता में पूरा विश्वास था कि हिंदुत्व के दसों तत्त्वों का अनुसरण करके स्वसाधना और तपश्चर्या से लोग देवत्व तक प्राप्त कर लेते हैं और नर ही अपनी साधना एवं तपस्या को इतना विकसित कर लेता है कि वह ब्रह्ममय होकर नारायण का स्वरूप प्राप्त कर लेता है।[2]

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि जाति ने अपना हर तरह से उत्पीड़न सहते हुए भी खुद को हिंदू धर्म की रक्षा में सदैव समर्पित रखा। अपनी अपवित्रता को ध्यान में रखते हुए वे धर्मोचित कार्यों में सदैव स्वच्छता तथा पवित्रता बनाए हुए थे ताकि हिंदू धर्म अपनी विशेषता को खो न दे। अतएव इस जाति

1. गीता 3/4, मनु. 3/79
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/3, विष्णुपुराण 3/6/28

ने अपने को धार्मिक आधार पर सदैव पवित्र बनाए रखा और धर्म की रक्षा करने में सफल रहे। सामान्य हिंदू समाज ने इस बात पर कोई आपत्ति नहीं की कि वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार इत्यादि सफाईकर्मी जातियों के लोग हिंदू धर्म को क्यों मान रहे हैं। बल्कि लोगों ने प्रशंसा की कि इस धर्म की रक्षा के लिए इन लोगों ने मैला तक स्वीकार किया किंतु इसलाम को ठुकरा दिया। हिंदू समाज में ऐसे धर्म-भक्त कहाँ मिलेंगे?

इस जाति ने हिंदू धर्म की रक्षा में यह पूरा प्रयास रखा कि वह किसी भी पंथ से सर्वोत्तम होने की अपनी विशेषता को बनाए रखें। समाज में उसे जो भी प्रस्थिति मिली, उन सभी प्रस्थितियों को अपनाते हुए इस जाति के लोगों ने हिंदू धर्म के नियमों का अनुपालन जारी रखा और अन्य जातियों के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत किया कि वे भी माने कि हिंदू धर्म ही सबसे महान् धर्म है, इस जाति ने अपनी दिनचर्या में भी हिंदू धर्म का ही संवहन किया।[1] इतने प्राचीन महापुरुषों की उन मान्यताओं का अनुमोदन किया जिसमें जीवन के आध्यात्मिक रहस्य को स्वर्ग की खोज के समान सुखद माना गया है।[2] वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि जाति ने इस मान्यता में अपनी आस्था बनाए रखी कि विराट् विश्वचेतना का भी उत्कर्ष हिंदुत्व के अनुपालन में ही संभव दिखलाई पड़ता है।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति के लोग हिंदू धर्मरक्षा में इसलिए भी संलग्न थे कि वे समाज में समानता का अधिकार प्राप्त करना चाहते थे और समानता की यह अवधारणा उनके हिंदू धर्म में प्राप्त होती थी। उन्होंने मुसलिम धर्म में समानता के नारों को सुना था, परंतु इसलाम की समानता का स्वरूप सबको मुसलमान बना दो, यह उनको कुत्सित दिखलाई दिया था। वाल्मीकि लोग वह समानता चाहते थे जो समरसता और सहृदयता से परिपूर्ण हो, इसलिए उनको विदेशी आक्रांता मुसलमानों की वह समानता पसंद नहीं आई जो धर्म एवं जाति तक ही सीमित थी और सुख-वैभव का उपभोग करने के लिए कुलीन तुर्क मुसलमान, मुगल इत्यादि और पंथ-परिवर्तित भारतीय मुसलमानों के रूप में विभाजित थी।

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति ने हिंदू धर्म की रक्षा में आत्मोसर्ग इसलिए किया क्योंकि यह धर्म हिंदू जीवन-पद्धति का पर्याय है। इसमें संपूर्ण मानव और पूरे विश्व के कल्याण की अवधारणा होती है। हिंदू धर्म के ये दस तत्त्व विश्व के किसी धर्म में पूर्णरूपेण और एक साथ नहीं पाए जाते हैं—धृति

---

1. मनुस्मृति 10/65
2. शर्मा, रघुनंदन प्रसाद, स्मृतियों में भारतीय जीवन-पद्धति, सांस्कृतिक गौरव संस्थान नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ 20-22

(धैर्य), क्षमा, दम (तपस्या), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (पवित्रता), इंद्रिय निग्रह, ज्ञान, आध्यात्मिक-व्यावहारिक विद्या, सत्य तथा अक्रोध (अहिंसा)।

वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति के लोगों ने हिंदू धर्म की रक्षा इसलिए भी की क्योंकि इस धर्म का लक्ष्य मंगलकारी है। इसमें सबके मंगल की कामना है। सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः, वसुधैव कुटुम्बकम्, विश्वबंधुत्वभाव, सत्यमेव जयते इत्यादि की विश्वप्रिय एवं प्रसिद्ध अवधारणा है। इस धर्म का लक्ष्य है परम चैतन्य में प्रवेश और उसका निर्वहन करना। विदेशी इसलामिक आक्रांताओं ने उनको इसीलिए प्रताड़ित किया क्योंकि वे ही ऐसे सर्वकल्याणकारी हिंदू धर्म को इसलाम में परिणित करने में सबसे बड़ी बाधा थे।

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति के लोग इस धर्म की रक्षा में अपना प्राणोत्सर्ग भी किया, क्योंकि हिंदू धर्म और हिंदू जीवन-पद्धति से ही शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का लाभ एवं समाज तथा विश्व कल्याण प्राप्त होना संभावित था। इस धर्म में व्यक्तिगत एवं सामाजिक, दोनों ही उत्कर्ष संभव पाया गया। हिंदू धर्म में बिना किसी अवरोध के ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त है। इसमें किसी प्रकार बलप्रयोग को स्वीकार नहीं किया गया है और न ही इसके प्रचार-प्रसार करने की आवश्यकता महसूस की गई है। जो इसके महत्त्व को ठीक समझते हैं वे स्वतः इसे अंगीकार करते हैं और इसका संवर्द्धन-संरक्षण करते हैं।

6.4 इसलामिक उत्पीड़न के विरुद्ध अपनाया 'सूअर-पालन' रूपी एक हथियार

धर्मरक्षा को प्रमुख बतलाते हुए वाल्मीकि, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि सुदर्शन समाज ने जब अपना सबकुछ त्याग दिया और अपने 'स्व' तक को भी भुला दिया तथा विदेशी आक्रांता-शासकों द्वारा बलपूर्वक मैला ढोना स्वीकार कर लिया तो शर्तों के अनुसार किसी भी विदेशी आक्रांता अथवा शासक को पुनः उनके घरों तक जाने की आवश्यकता नहीं थी। परंतु उन आततायियों में नैतिकता नाम की कोई चीज थी ही नहीं, इसलिए वे अपनी वाणी पर कभी विश्वसनीय नहीं रहे। वे घात लगाकर स्वाभिमानी एवं धर्माभिमानी हिंदुओं के घर जाते थे और उनकी बहू-बेटियों के सम्मान के साथ खिलवाड़ करते थे।

कुछ इसी तरह की समस्याएँ विदेशी मुसलिम आक्रांताओं ने खटिक जाति के सामने भी प्रस्तुत की थीं जिससे सुरक्षा के लिए खटिक जाति के लोगों ने अपने घरों के चारों ओर इसलाम के शत्रु-पशु सूअर को बाँध रखा था और पूछने पर कहते थे कि यदि लोग उनको अपावन समझते हैं तो उनके द्वारा पाला गया पशु दूसरों के लिए भले

ही अपावन हो परंतु उनके लिए वह पवित्र है, क्योंकि वह खटिक के घरों की पवित्रता को बचाने में सफल हैं।

पवित्रता की सोचवाले अन्य हिंदुओं ने खटिक समाज का अनुकरण नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि विदेशी मुसलिम आक्रांताओं द्वारा उन पर लगातार और बार-बार उत्पीड़न का कार्य किया जाता रहा, जबकि खटिक जाति के लोग सुरक्षित बचे रहे। वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य समाज ने इस उपाय पर तुरंत विचार किया और वे भी इसलामिक उत्पीड़न के विरुद्ध एक हथियार के रूप में सूअर को पालना आरंभ किया। इसलामिक परंपरा में सूअर नामक पशु के साथ घृणा के आधार पर मुगलों ने उनका भी घर छोड़ दिया। इसे देखकर अन्यान्य बलपूर्वक बनाई गई तथाकथित दलित जातियाँ मुसहर, दुसाध तथा अन्य के लोगों ने भी सूअर-पालना आरंभ कर दिया। ऐसे सभी लोगों की इसलामिक उत्पीड़न से पूरी रक्षा हुई। इस हथियार की प्रशंसा सर्वत्र हुई, परंतु मानव-विष्ठा खाने के कारण सुअर के साथ अस्वच्छता को ध्यान में रखकर सभी हिंदुओं ने इसको पालना स्वीकार नहीं किया। ऐसे पशु और उसकी उपयोगिता का अवलोकन आवश्यक है।

मल-मूत्र खाने की प्रवृत्ति से हिंदू समाज में सूअर को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता है। पूर्वकालीन हिंदू राजाओं को भी जंगली सूअर का आखेट करते पाया जाता है। यह रीछ प्रजाति का पशु होता है, परंतु रीछ की भाँति खूँखार नहीं होता। जंगली सूअर अपेक्षाकृत पालतू सूअर के अवश्य खूँखार होते हैं और कभी-कभी वे अपने ऊपर सिंह के आक्रमण का भी कड़ा प्रतिरोध प्रस्तुत करते हैं। जंगली सूअर का मांस राजघरानों में स्वीकार्य था। बौद्ध ग्रंथों में भी मांसाहार के संदर्भ में सूअर (शूकर) का उल्लेख पाया जाता है।

हिंदू धर्मग्रंथों में विष्णु के जो अवतार वर्णित हैं उनमें एक वराह अवतार इसी पशु से संबंधित है। इस संदर्भ से तो वराह अथवा सूअर पशु को पूरे हिंदू समाज में सम्मान मिलना चाहिए, परंतु कदाचित् उसकी गंदगी (विष्ठा खाने के स्वभाव) ही उसे पूजनीय बनाने में बाधक है। परंतु हिंदू धर्म के अघोर-पंथ आदि में सूअर पशु को सम्मान दिया जाता है। अघोरपीठ की दीवारों पर इस पशु को चित्रित करके इसके हिंदू-सम्मान को बढ़ाया गया है।

इसलामिक उत्पीड़क आए दिन हिंदुओं के पालतू पशुओं, जैसे—गाय, भैंस, भेड़, बकरियों आदि को घर से बलपूर्वक ले जाते थे। वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि समाज ने एक ऐसे पशु को पालने का निश्चय किया, जिसे निःशुल्क देने पर भी मुसलमान नहीं ले जाते थे। अपने दुधारू पशुओं को बचाने के लिए वाल्मीकि समाज के लोग गाय इत्यादि को घर के अंदर की बाँधते थे और सूअर को मुख्य द्वार पर बाँधते थे ताकि कोई भी मुसलिम शासक या शासन से जुड़ा हुआ व्यक्ति उनके पशुओं को न ले जा सके। यह उपाय भी सफल रहा।

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज को परेशान करने के लिए शासक वर्ग के लोग जब चाहे चले जाते थे और सफाई आदि के कार्य हेतु किसी को जब चाहते थे पकड़कर ले जाते थे। इसके बचाव में यह पशु उपयोगी सिद्ध हुआ। लोग सूअर को प्रवेशद्वार पर बाँधकर मार्ग अवरुद्ध कर देते थे और अंदर मुक्त होकर विश्राम करते थे।

वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि समाज को पूजा-पाठ और धर्म-कर्म से निषिद्ध किया गया था। वे यह कार्य चोरी-छिपे करते तो भी विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के सिपाही घोड़ों पर चढ़कर आते और पता करके उनको दंडित करते थे। इस पशु ने उनका धार्मिक कार्य आसान कर दिया। उसे नहलाने हेतु पवित्र नदी में ले जाया जाता था और उसी बहाने लोग भी गंगा में डुबकी लगाते थे, सूर्य आदि की वंदना करते थे और घर आकर द्वार पर सूअर बाँधकर घरों में आराम से पूजा-पाठ कर लेते थे।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज ने अपने खेतों की सुरक्षा भी इसी पशु के माध्यम से की थी। खेतों में सूअर बँधे होने से कोई भी मुसलिम सैनिक खेत को चराने का साहस नहीं करता था। कोई यदि किसी तरह का कर लेने आता तो वे लोग कहते कि पैसा नहीं है, चाहे तो सूअर ले जाओ इस पर वसूलीवाले बिना कुछ कहे घृणा एवं अपमान से बचने के लिए वहाँ से चल देते थे।

इस तरह जितने भी प्रकार से विदेशी मुसलिम आक्रांताओं ने स्वाभिमानी योद्धा, धर्मरक्षक एवं देशरक्षक तथाकथित सफाईकर्मी यानी वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि लोगों का उत्पीड़न किया, इस जाति ने सूअर के माध्यम से अपना बचाव किया। अत: कहा जा सकता है कि यह उनके लिए एक अच्छा अस्त्र था। इसका प्रयोग करने के कारण उनकी अपनी हिंदू संस्कृति भी सुरक्षित रही। एक अस्त्र के रूप में सूअर-पालन को हिंदू-संस्कृति के संदर्भ में कई आधारों पर परीक्षण किया गया है। इसमें पाया गया है कि इसको पालने से वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य समाज कभी भी हिंदू संस्कृति के विपरीत नहीं दिखाई देता है। उदाहरणार्थ—

हिंदू संस्कृति में सनातन धर्म (परंपरागत कर्म) का निर्वहन अनुमोदित है। वर्णाश्रम-व्यवस्था द्वारा समस्त हिंदू समाज को विहित कर्म पूरा करना ही धर्म था। सूअर-पालन के कार्य को कभी भी हिंदू-संस्कृति में अविहित कर्म नहीं कहा गया है। इस संस्कृति में स्वतंत्रता की अवधारणा है, परंतु उच्छृंखलता नहीं है। हिंदू संस्कृति में जीवन-पद्धति को प्रकृतिपरक बनाए रखना आवश्यक माना गया है तो वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि जाति कभी अप्राकृतिक नियमों पर चली ही नहीं। हिंदू संस्कृति में वर्णित आचार-विचार, मर्यादित व्यवहार, प्रकृति का संरक्षण, दृश्य एवं अदृश्य सत्ता के प्रति सम्मान आदि सभी को वह स्वीकारते हैं।

तथाकथित स्वाभिमानी एवं धर्माभिमानी वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि जाति का सूअर व्यवसाय वर्तमान काल की प्रदूषण समस्या को समाप्त करने की ओर भी एक चिंतन है। सूअर केवल उन्हीं पदार्थों को समाप्त करते हैं जिनसे प्रदूषण फैलनेवाला होता है। कूड़े-कचड़ों में जहाँ सड़ांध एवं दुर्गंध आती है, उनको साफ करना, मल-मूत्र की गंदगियों को समाप्त करना सूअर पशु की धर्मिता एवं स्वभाव है। वह प्रकृति के स्वच्छ वातावरण को निर्मित करने में सहायक है और प्रदूषण-मुक्त संस्कृति ही हिंदू संस्कृति की विशेषता है। इस प्रकार सूअर-व्यवसाय हिंदू संस्कृति निर्वहन में कभी बाधक हो ही नहीं सकता। इस पशु की इन विशेषताओं को संरक्षित एवं सम्मान देने हेतु भगवान् के वराह अवतार के मूल में यही वैचारिकी और चिंतन है।

हिंदू संस्कृति में जीव-हत्या की निंदा तो है किंतु जीव-जंतुओं के पालन-पोषण का निषेध नहीं है। इस संस्कृति में यह भी आदेश नहीं है कि मनुष्य किस जंतु को पाले और किसको न पाले। पशु-पालन का कार्य आदि काल से होता आया है और लोग अपनी उपयोगिता के पशुओं को पालते आए हैं। केवल हिंसक पशुओं को छोड़कर शेष किसी भी पशु को पाला जा सकता है। सूअर-पालने से हिंदू संस्कृति की मान्यताओं का कोई उल्लंघन नहीं होता है। सूअर-व्यवसाय अथवा सूअर-पालन करनेवाली वाल्मीकि सुदर्शन, खटिक एवं अन्य जाति हिंदू संस्कृति के निर्वहन में मर्यादित है।

हिंदू संस्कृति में वैयक्तिक स्वतंत्रता को एक ऐसी परिसीमा तक मान्य किया गया है जिसमें वैयक्तिक, सामुदायिक और राष्ट्रीय हित निहित हो। इसलिए स्वतंत्रता का शब्दार्थ है अपना विस्तार। स्व का अर्थ अपना और तंत्र का अर्थ है तंतु विस्तार, अर्थात् अपना विस्तार करना। स्वतंत्रता की इस अवधारणा के अंतर्गत न केवल वैयक्तिक हित अपितु सामुदायिक एवं राष्ट्रीय हित की स्वभूत चेतना छिपी हुई है। वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख अन्य जाति का सूअर-पालन एक ऐसी ही स्वतंत्रता से संबंधित होने के कारण हिंदू संस्कृति का निर्वहन करने में समर्थ है।

हिंदू संस्कृति की यही मान्यता है कि आपका व्यवसाय भी ऐसा हो जिससे किसी को अथवा समाज की स्थापित सकारात्मक मान्यताओं को हानि न हो। सूअर-व्यवसाय में किसी को हानि पहुँचाने का कोई औचित्य अथवा आचार नहीं है। हिंदू संस्कृति में पुरुषार्थ के जो चार साधन बतलाए गए हैं उनमें धर्म के बाद अर्थ का ही स्थान आता है। जहाँ 'धनाढ्य धर्म: अर्थमेव प्रधान:' भी मान्य है। सूअर का व्यवसाय बिना किसी भेदभाव के यहाँ भी अर्थोपार्जन के सापेक्ष हिंदू संस्कृति के निर्वहन में बाधक नहीं है।

हिंदू संस्कृति में धार्मिक एवं सांस्कृतिक सहिष्णुता पर विशेष ध्यान दिया जाता है और किसी भी कार्य एवं व्यवहार से इसकी प्रभावहीनता का प्रयास होता है। सूअर का व्यवसाय किसी भी प्रकार से हिंदू धर्म के विरुद्ध नहीं है। हिंदू धर्मग्रंथों में कहीं भी

सूअर का व्यवसाय निषिद्ध नहीं है। अतः यह व्यवसाय हिंदू संस्कृति के अनुमोदन में सदैव धर्मसंगत है। इससे सांस्कृतिक सहिष्णुता भी प्रभावित नहीं होती है।

हिंदू संस्कृति में सामाजिक समरसता की विशेषता पाई जाती है। हिंदू किसी के साथ ऐसा आचार-व्यवहार नहीं करना चाहता जिससे वह व्यक्ति नाराज हो जाए जिससे बात की जा रही हो। किसी की आलोचना अथवा निंदा में भी इसका ध्यान रखा जाता है। सूअर-पालन का कार्य और व्यवहार दोनों ऐसा ही है। इससे किसी को दुःख नहीं पहुँचता और न ही सामाजिक समरसता प्रभावित होती है। इस व्यवसाय से समाज की बाह्य गंदगी तक साफ हो जाती है इसलिए यह व्यवसाय समाज हित में भी है। इस व्यवसाय से अब अन्य जातियाँ भी संबंधित होने लगी हैं और इनका क्रय-विक्रय तथा आदान-प्रदान व्यावसायिक समरसता का एक आचार भी बनता जा रहा है। अब यह कहना गलत होगा कि इस व्यवसाय से हिंदू संस्कृति का कहीं भी निर्वहन नहीं हो रहा है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिंदू संस्कृति में बने रहकर भी वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति ने सूअर पशु का पालन न तो किसी आर्थिक लाभ के लिए किया था और न ही विष्णु के वराह अवतार अथवा अघोर-पंथ के प्रभाव में आकर किया था। बल्कि उसका एकमात्र उद्देश्य था—विदेशी इसलामिक आक्रांता शासकों के उत्पीड़न से बचने हेतु एक अहिंसात्मक पद्धति का उपाय। महान् हिंदू धर्म की रक्षा भी उद्देश्य था।

वर्तमान समय में सूअर-पालन को एक उद्योग के रूप में विकसित किया जा रहा है। इसको तथाकथित उच्च जाति के लोग भी एक उत्तम व्यवसाय के रूप में अंगीकार कर रहे हैं। इसके लिए सरकार आर्थिक सहायता भी प्रदान कर रही है। परंतु पशु-पालन के प्रति रुचि न रखनेवाले हिंदू, जैसे गोपालन के प्रति उदासीन है उसी तरह से सूअर-पालन को भी अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझते हैं। परंतु विदेशों में (विशेषकर अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान आदि के सैन्य बलों में) सूअर के मांस की माँग एवं आपूर्ति निरंतर बढ़ती जा रही है। वे लोग सूअर मांस से ऐसे रेडीमेड आहार तैयार कर रहे हैं जो पुष्टिकर एवं बलवर्द्धक हैं। आनेवाले दिनों में हो सकता है कि ईसाई लोग स्वयं भी सूअर पालेंगे और इसलाम को अपनी धरती पर पाँव रखने से रोकने हेतु यह उपाय करें तो इस सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता है।

6.5 धर्मपरायण हेतु ऐतिहासिक अपमान

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीन, समृद्ध, सुव्यवस्थित, सुसंस्कृत एवं विकसित

भी थी।[1] यह देश सदैव धर्मपरायण रहा और पुरुषार्थ के चारों साधनों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में धर्म को महत्त्व दिया गया। यहाँ धर्म को मानवीय व्यवहार के साथ संयुक्त किया गया है, ताकि कोई दुःखी न हो। मानव-मानव एक समान का मूलस्थान हिंदुस्थान अपने मानवीय व्यवहार के लिए सारे संसार में आज भी प्रसिद्ध है। वसुधैव कुटुम्बकम् और सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः की सद्भावनापूर्ण वैचारिकी यहाँ की सभ्यता और संस्कृति के मानव-प्रेम को प्रदर्शित करती है। शरणागत की रक्षा और द्वार पर आए शत्रु के साथ भी मित्रवत् व्यवहार केवल हिंदुओं में ही देखने को मिलता है। सत्य और अहिंसा पर आद्धृत हिंदू जीवन-शैली में किसी के भी साथ अमानवीय व्यवहार पूर्णतः वर्जित है। यह विशेषता प्रत्येक जीव-जंतुओं के विषय में भी देखी जाती है।

धर्मपरायणता की शिक्षा यहाँ के लोगों को बचपन से ही दी जाती है। इसके साथ ही यहाँ के प्रत्येक व्यक्ति को बचपन से ही परिवार, पड़ोस, मित्र-समूह, विद्यालय, देवालय आदि संस्थाओं से मर्यादाओं के अनुपालन की शिक्षा प्राप्त होती है जिसे वह अपने जीवनपर्यंत व्यवहृत करता है।[2] हिंदू धर्मग्रथों में भी सत्यनिष्ठ व्यवहार एवं मर्यादित आचरणों के बारे में पर्याप्त उल्लेख है। जैसे वेदों में जीवन जीने के सिद्धांत एवं श्रीरामायण तथा श्रीमद्भागवत में जीवन जीने का व्यावहारिक पक्ष तथा भगवद्गीता से व्यक्ति के लिए साधना, तपस्या एवं योग की सरलतम प्रविधियों का संकेत प्राप्त होता है। स्पष्टतः भौतिक पक्षों के साथ-साथ आध्यात्मिक जीवन दर्शन का समग्र भाव सनातन हिंदू ग्रंथों में निहित है, जो सत्यनिष्ठ व्यवहार तथा मर्यादित आचरण के लिए प्रेरित करता है, जैसे—ऊर्जा एवं शक्ति के लिए अग्नि की पूजा, वृष्टि के लिए इंद्र की पूजा, संपत्ति के लिए सोम की साधना इत्यादि।

धर्मपरायणता के सापेक्ष ही हिंदुस्थान के धर्मोचित व्यवहार एवं सदाचार की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि हिंदू समाज मूलतः इसी पर आधारित है। इसमें पूर्ण समन्वय और सहिष्णुता है, साथ ही इसमें सत्यनिष्ठ आचरण और जीवनपर्यंत सत्य के आचरण एवं अनुसरण को प्रधानता दी गई है। सत्य को वेद और कालांतर में घटित पौराणिक घटनाओं के मूल रहस्य के रूप में व्यक्त किया गया है। व्यक्ति के आपसी एवं सामाजिक संबंधों के निर्वाह में सत्यनिष्ठ व्यवहार (आचरण) का अनुपालन अपरिहार्य किया गया है। सत्य का अनुसरण करना मानव हित का प्रमुख लक्षण है।

---

1. धर्मपाल : भारत की लूट एवं बदनामी, पृष्ठ 14, संपादकीय
2. रोज, आर.एम. : ह्यूमन बिहेवियर एंड सोशल प्रोसेसः ऐन इंटरेक्शनिस्ट अप्रोच, हाउटन मिफिन कंपनी, बोस्टन, 1962

हिंदू संस्कृति में लोकजीवन की व्यवस्थापना हेतु मर्यादाओं को प्रमुख स्थान दिया गया है। प्रत्येक व्यक्ति समाज द्वारा निर्धारित मर्यादाओं के अनुसार एवं उसके अंतर्गत ही अपना जीवन सुचारु रूप से संचालित कर सकता है। स्थापित मर्यादाओं का उल्लंघन मनुष्यता एवं मानवोचित व्यवहार के विपरीत माना जाता है।

धर्मपरायणता की हिंदू अवधारणा में दो बातें दृष्टिगोचर होती हैं—पहला, यह कि लोगों ने भले ही विदेशी इसलामिक आक्रांता शासकों के उत्पीड़न एवं अत्याचार सहे परंतु हिंदू धर्म का परित्याग कभी नहीं किया और हिंदू धर्म के प्रति वे मरते दम तक धर्मपरायण बने रहे। दूसरा, यह कि किसी भयानक परिस्थिति में हिंदुओं ने इसलाम स्वीकार किया परंतु बाद में वे पुनः हिंदू धर्म में आ गए। दूसरे विचार को पूर्व में तो महत्त्व नहीं दिया गया और लोगों को स्वीकार करने से परहेज किया गया,[1] परंतु उनके महानुभावों और हिंदू हित चिंतकों के कहने से पुनः हिंदू धर्म में वापसी की धर्मपरायणता भी मान ली गई।[2] उन्हें हिंदू राज्य का संस्थापक तक माना गया। दक्षिण भारत के हरिहर एवं बुक्का ऐसे ही थे।[3] मुसलिम भी मुसलमान से हिंदू बने एवं वे फिर से मुसलिम धर्म में वापस चले गए।[4] यह धर्मपरायणता अनुत्तम नहीं कही जा सकती है। छत्रपति शिवाजी ने तो इसके लिए एक विभाग ही खोल रखा था और हिंदू से ईसाई अथवा मुसलमान बनाए गए लोगों को पुनः हिंदू बनाया करते थे।[5]

धर्मपरायणता पर मुख्यतः विदेशी इसलामिक आक्रांताओं एवं शासकों द्वारा आघात पहुँचा। वे लोग बलपूर्वक इसलाम स्वीकार कराते थे और अस्वीकार करने पर जान से मार देते अथवा तरह-तरह की घोर यातनाएँ दिया करते थे। विदेशी आक्रांता तुर्क लुटेरों के समय तक तो हिंदू से मुसलमान बनाए गए लोग उनके जाने के बाद पुनः हिंदू बन जाया करते थे, किंतु जब वे स्थायी रूप से शासन करने लगे तो मत परिवर्तन का प्रभाव भी स्थायी होने लगा। औरंगजेब के समय में इस पर अधिक ध्यान दिया गया। उसने भयभीत करके इसलाम स्वीकार कराने की नीति अपनाई थी। उसने गुरु तेगबहादुर सिंह को इसलाम अस्वीकार करने पर मृत्युदंड देने का निश्चय कर लिया। उसने अन्य तीन वाल्मीकि जाति के लोगों को भी उसी समय इसलाम अस्वीकार करने पर क्रूरतापूर्वक मारने का आदेश जारी कर दिया था ताकि वह दृश्य देखकर गुरु तेगबहादुर सिंह डरकर इसलाम स्वीकार कर लें। शाही फरमान के अनुसार दयाल दास

---

1. मिश्र, जयशंकर: प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 47
2. वही, पृष्ठ 48
3. श्रीवास्तव, अशोक: दिल्ली सल्तनत का उत्थान एवं पतन, पृष्ठ 506
4. वही, पृष्ठ 434
5. तोमर, देवेंद्रपाल सिंह: हिंदू अछूत जातियों में छुआछूत, पृष्ठ 8

को खौलते हुए पानी के कड़ाह में डाल दिया गया। तथाकथित चर्मकार जाति का हिंदू धर्मानुयायी परमवीर दयाल दास उबलकर मर गया, परंतु उसने इसलाम स्वीकार नहीं किया। उसी समय मती दास को आरा मशीन से धीरे-धीरे चीरकर तड़पाते हुए मारा गया। सती दास को कपड़ा लपेटकर जिंदा जला दिया गया। अंत में गुरु तेगबहादुर सिंह की गरदन तलवार से काट दी गई। उनका बलिदान भी धर्मपरायणता का एक ज्वलंत उदाहरण माना जाता है।

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति सदैव धर्मपरायण बनी रही। उसने देवी-देवताओं की पूजा यानी हिंदू जीवन-पद्धति का अनुसरण जारी रखा। कहीं-कहीं प्रत्यक्ष पूजा पर रक्तपात की स्थिति आई तो निराकार पूजा अथवा आराधना में मन लगाया। गाय के प्रति उनकी अपार श्रद्धा बनी रही। गाय के मरने पर प्रायश्चित्त की भी सामाजिक मान्यता थी। जजिया-कर देकर भी तीर्थाटन एवं अन्य धार्मिक स्थलों की यात्रा बलपूर्वक दमन और दलन करके तथाकथित दलितों द्वारा होता रहा। उनके एक संत नवलजी हुए जिन्होंने निराकार पद्धति पर नवल पंथ चलाया था। सामान्य वर्ग के भी हिंदू लोग उनके समाधि-स्थल पर जाते हैं। रामायण और उसके रचयिता महर्षि वाल्मीकिजी को वे अपना पूर्वज एवं भगवान् तक मानते हैं। लोकजीवन में वे कालभैरो, शीतला माता (मसानी देवी), कालिका, ललिता आदि की पूजा करते हैं।[1]

इस धर्मपरायण जाति को बहुत प्रयास करके भी इसलाम अथवा ईसाई धर्म में परिवर्तित नहीं किया जा सका था। अंग्रेजों ने भी देखा था कि सफाईकर्मी बना दिए जाने और सिर पर मैला ढोने के बाद भी वे हिंदू धर्म का त्याग नहीं कर सके थे, इसलिए उन लोगों ने चर्मकार एवं अनेक वनवासी जातियों के बारे में तो लिखा परंतु वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि तत्कालीन सफाईकर्मी जाति के बारे में कुछ भी नहीं लिखा। कुछ लोगों ने इस जाति के बारे में परंपरागत पद्धति का प्रयोग किया है, परंतु उसके गौरवशाली अतीत का उल्लेख किसी ने नहीं किया।

ब्रिग्स ने अपनी पुस्तक 'द चमार्स' में उस स्वाभिमानी, गौरवशाली एवं राजवंशीय जाति का बहुत ही नंगा स्वरूप प्रस्तुत किया है। उसने कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया है कि चमार जाति का जन्म मध्यकाल में विदेशी आक्रांता मुसलिम शासकों के दमन एवं दलन के उपरांत हिंदू युद्धबंदियों को चर्म-कर्म में बलपूर्वक लगाने के कारण हुआ था। अंग्रेज लेखक ब्रिग्स ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि चमार एक आदिकालीन जाति है और उसका शोषण आदिकाल से ही होता आया है। पुस्तक के अंत में उसने जो लिखा है, उसे पढ़कर उसके पुस्तक लिखने का उद्देश्य साफ हो जाता है—

1. शर्मा, रामा : भंगी, पृष्ठ 114-118

'यद्यपि चमार जाति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, वे हिंदू बने रहे, मृत-पशु एवं चर्म-कर्म की जातीयता से अपनी दलित मानसिकता को समाप्त कर आत्मसम्मान की भावना को गौरवान्वित करने एवं जाति स्वाभिमान की उन्नति के लिए हिंदू धर्म के ही एक नामपंथ-वैचारिकी 'बौद्ध पंथ' को अपनाने में कुछ लोगों ने रुचि अवश्य ली, परंतु अनीश्वरवादी मान्यताओं पर आधारित एवं बाहरी देशों की पूँजी पर वैश्विक रूप में पुनर्स्थापित किया जा रहा बौद्ध पंथ उनको अब रास नहीं आ रहा है, अतएव बुद्ध को हिंदू धर्म के अवतारवाद में मानकर उन्हें सम्मान देते हुए विदेशी बौद्ध पद्धति से अपने को अलग बनाए रखा है—केवल हिंदू बौद्ध पद्धति ही मान्य है, विदेशी बौद्ध पद्धति नहीं जिसमें गोमांस, चावल, शराब चलती है और भिक्षुणियों को साध्वी-धर्म से विचलित किया जाता है।'[1]

वर्तमान समय में हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि सफाईकर्मी जाति हिंदू धर्म के प्रति धर्मपरायण बनी हुई है, यद्यपि उसके ऐतिहासिक अपमान की कथा का प्रचार कम हुआ है। किसी भी जाति का इस तरह से संसार में अपमान कभी और कहीं नहीं हुआ है।

6.6 हिंदुओं का जूठन स्वीकार्य, किंतु मुसलमान का छुआ जल अस्वीकार्य

हिंदू संस्कृति में कभी-कभी दृढ़निश्चय, प्रतिज्ञा, शपथ आदि लेकर कोई निश्चय किया जाना विहित है। यह बहिष्कार का प्रतिरूप और हिंसा का अहिंसक प्रत्युत्तर भी है। दुष्कर्मों से पीड़ित ऋषि-मुनि किसी को मारते नहीं थे बल्कि शाप दे दिया करते थे। वे तपस्वी थे और उनको वचनसिद्धि प्राप्त थी। वह जो भी कह देते थे उसका होना निश्चित होता था। आज इसे विज्ञान भी सिद्ध कर रहा है।[2]

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य तथाकथित सफाईकर्मी समाज के लोग ऋषि-परंपरा को माननेवाले थे। हिंदू धर्म को भी प्राण से अधिक प्रिय मानते थे। पराजित एवं युद्धबंदी होने की स्थिति में हिंदू लोग प्रत्याक्रमण भी नहीं कर सकते थे। विवश होकर उन्होंने अहिंसा मंत्र का आश्रय लिया और निश्चय किया कि जिन लोगों ने उनको बलपूर्वक मैला ढोने में लगाया और उनका सामाजिक अपमान किया, साथ ही उनके स्वाभिमान को भंग करके उनको गाली के समान लगनेवाले संबोधन से पुकारा, उनको वे चूँकि कुछ भी प्रत्युत्तर देने में असमर्थ हैं, इसलिए उनका प्रतिकार अहिंसक विधि से करें।

1. ब्रिग्सः दि चमार्स, पृष्ठ 200-206
2. 'ॐ' बीजमंत्र पर अमेरिका में गहन अध्ययन एवं शोध हुआ है।

आक्रांताओं ने उनको मैला ढोने एवं सफाई-कर्म में लगाकर अस्पृश्य एवं सफाईकर्मी बनाया था, इसलिए लोगों ने उन विदेशी आक्रांता एवं हिंदू धर्म त्यागकर इसलाम स्वीकार करनेवाले मुसलमानों को भी अछूत मानना आरंभ किया। वे उनके घरों में दिन-रात काम करते थे, परंतु उनका दिया हुआ अन्न को कौन कहे, उनका छुआ जल तक नहीं पीते थे। उनका यह व्यवहार शासन-सत्ता को खुलेआम चुनौती था, परंतु शासक वर्ग के पास कोई उपाय नहीं था जो तथाकथित सफाईकर्मी यानी वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि अन्य दलित समाज को ऐसा व्यवहार करने से रोक देते।

उन्होंने वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि जाति के लोगों को खाना, जल, पैसा आदि सबकुछ देना बंद करने उनके निश्चय को विचलित करने का प्रयास किया, परंतु तथाकथित सफाईकर्मी जाति के धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी लोग भूखों मर गए, बच्चों को भूख से तड़पकर मर जाने दिया, परंतु मुसलमानों के हाथ का छुआ जल तक स्वीकार नहीं किया।

विदेशी मुसलिम शासकों ने हिंदुओं को भी चेतावनी दे रखी थी कि कोई भी अपने घर से इन स्वाभिमान भंग करके सफाई-कर्म में लगाए गए दंडित लोगों को भोजन न दे। जो भी ऐसा करेगा, राजाज्ञा का उल्लंघन मानकर उसे दंडित किया जाएगा। हिंदू उस आदेश से डर गए थे और विवश होकर उसका पालन कर रहे थे। दूसरी ओर उनके मन में जो करुणा एवं दया के भाव थे, वे उनको झकझोर रहे थे। पूर्वकाल में धार्मिक स्वभाव के हिंदू अपने अतिथियों को अपना भोजन तक देते आए थे और स्वयं भूखा रहना सीखे थे, परंतु मुसलिम उत्पीड़न काल में उनको राजा का आदेश भी मानना था और अपने धर्म को भी निभाना था, ऐसी स्थिति में उन्होंने एक उपाय निकाला। उन्होंने सारा भोजन जूठन के बहाने से उन्हें देना प्रारंभ कर दिया। जूठा भोजन न किसी को दिया जाता है और न ही कोई लेता है। परंतु विदेशी मुसलिम आक्रांताओं द्वारा शोषण एवं उत्पीड़न के उपरांत बनी तथाकथित दलित जाति के लोगों ने हिंदू घरों को अपना ही परिवार मानकर उनके जूठे अन्न स्वीकार किए, परंतु किसी मुसलमान के घर का जल तक स्वीकार नहीं किया।

विदेशी आक्रांता परेशान थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे ऐसे जिद्दी लोगों के साथ कैसा व्यवहार करे। उन्होंने वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जाति के लोगों से पूछना आरंभ किया कि ऐसी कौन सी बात है कि जो हिंदू उनको अस्पृश्य समझते हैं। उनका जूठा खाना भी वे लोग स्वीकार कर लेते हैं लेकिन किसी भी मुसलमान के घर का स्वच्छ खाना भी वे स्वीकार नहीं करते हैं?

बलपूर्वक बनाई गई तथाकथित दलित जातियों के लोगों ने कहा कि आक्रांता शासकों के शासन में कोई एक दोष हो तो उसे बतलाया भी जाए, जहाँ केवल दोष

ही दोष हों वहाँ पर क्या कहा जाए। फिर भी उन्होंने बतलाया कि विदेशी आक्रांता मुसलमान शासक व्यभिचारी होते हैं। जिसका प्रत्यक्ष सबूत यह है कि खिलजी वंश के कुतुबुद्दीन मुबारक शाह के दरबार में स्त्रियाँ में वस्त्रविहीन होकर उच्चाधिकारियों से अश्लील हरकतें करती थीं।[1] ऐसे ही भोग-विलास में लिप्त सुल्तान अलाउद्दीन आलमशाह (1445-50 ई.) ने स्वेच्छा से दिल्ली की गद्दी वहलोल लोदी को दे दी।

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख यानी बलपूर्वक बनाए गए तथाकथित सफाईकर्मी लोगों ने कहा कि विदेशी आक्रांता लुटेरे थे, हिंदुओं के उत्पीड़क और शोषक थे। उनकी क्रूरता ने उन्हें रक्तपिपासु बना दिया था और वे लोगों में भेदभाव भी करते थे। वे इस देश का अन्न खाने के बाद भी अपने को इस देश का नहीं मानते। वे निरंतर यही सोचते रहते हैं कि न हिंदू, न हिंदुत्व और न हिंदुस्थान रहे, बस रहे तो केवल हिंदुस्थान में मुसलमान रहे। यह कैसे संभव था कि हिंदुस्थान में हिंदू ही न रहे? उनका भ्रातृत्व विश्वव्याप्त मानव का भ्रातृत्व नहीं है।[2] मुसलमान अपने को हिंदुओं से श्रेष्ठ और भारत का मालिक समझते हैं।[3] वे हिंदुओं के प्रति द्वेषपूर्ण मानसिकता रखते हैं।[4] हिंदुस्थान के प्रति तो वे वफादार हो ही नहीं सकते।[5] वे देश के स्थान पर इसलाम के कानूनों का पालन करते हैं।[6] हिंदुओं के आदेशों का पालन तो वे कदापि नहीं कर सकते।[7]

वे हिंदुओं के साथ सदैव संघर्ष की मानसिकता रखते हैं।[8] इन्हीं कारणों से सफाईकर्मी यानी वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज स्वाभाविक रूप से किसी भी हिंदू का जूठन खा लेता है, परंतु मुसलमान का छुआ जल तक स्वीकार नहीं करता है।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि दलित समाज के इसी सुदृढ़ निर्णयों को बाबा भीमराव अंबेडकर ने अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया और व्यवहार में परिणित करके दिखाया कि मर जाओ परंतु मुसलमान न बनो।[1]

---

1. श्रीवास्तव, अशोक : दिल्ली सुल्तनत का उत्थान और पतन, पृष्ठ 433
2. अंबेडकर एक चिंतन, पृष्ठ 91
3. लाइफ एंड मिशन, पेज 394-395
4. भारत रत्न डॉ. अंबेडकर, प्रस्तावना—अटल बिहारी वाजपेयी।
5. लाइफ एंड मिशन, पेज 413-14
6. भारत रत्न डॉ. अंबेडकर, पेज 172
7. डॉ. अंबेडकर : एक चिंतन, पेज 77
8. वही, पेज, 92

6.7 हिंदुत्व की मुख्यधारा में वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य सफाईकर्मी समाज

हिंदू बीजमंत्र अथवा स्वयं ही एक संयुक्त शक्ति का प्रचार्य है—संयुक्त शक्ति अर्थात् भौतिक शक्ति और आध्यात्मिक शक्ति यानी दोनों शक्तियों का समुच्य है। धर्म अत्यंत प्राचीन है। हिंदू धर्म का आधार शाश्वतवेद हैं। संस्कृति भी मूलत: जीवन-पद्धति का समुच्य है। हिंदू जीवन-पद्धति ही हिंदू संस्कृति है। हिंदू जीवन-पद्धति प्रकृतिपरक है, अत: प्रकृतिपरक संस्कृति भी है। सत् (प्रकृति), ऋत् (प्रकृति के नियम) और ब्रह्म (प्रकृति का नियामक) की निरंतरता में हिंदू के 10 तत्त्वों[2] का मूल्य है—धृति (धैर्य), क्षमा, दम: (तपस्या), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (पवित्रता), इंद्रिय निग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य तथा अक्रोध (अहिंसा)[3] यही दसों कारक ही हिंदुत्व के तत्त्व हैं। वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि समाज इन्हीं दस तत्त्वों पर आधारित जीवन-पद्धति से संबंधित सामाजिककरण की मुख्यधारा से सदैव जुड़ा हुआ पाया जाता है।

हिंदुत्व में सत्य को सबसे प्रथम स्थान दिया गया है। संसार में एक लोकोक्ति प्रचलित है कि सत्य परेशान होता है, किंतु पराजित नहीं। सत्य कटु होता है। इसीलिए यह एक मर्यादा भी है—

सत्यम् बूयात्, प्रियम् बूयात्, न ब्रूयात् सत्यम् अप्रियम्।
प्रियम् च नातृतम् ब्रूयाद, एतद् धर्मः सनातनः॥

अर्थात् सत्य बोलो, प्रिय बोलो, अप्रिय सत्य भी मत बोलो, यही सज्जन पुरुष का लक्षण होता है। वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि समाज सदैव सत्य के रास्ते पर चलता आया है। वह सत्य के इन नियमों का अनुसरण करता है।

अहिंसा (अक्रोध) हिंदुत्व का आवाहन है। उनके बार विदेशी शासक आक्रांताओं एवं लुटेरों को मार डालने की स्थिति में पाकर भी उन्हें मुक्त कर दिया गया था, क्योंकि हिंदुत्व की महत्ता अहिंसा परमोधर्म: की वैचारिकी के कारण मान्य है। क्रोध स्वयं को जलाकर राख कर देता है। ऐसा हिंदू संस्कृति में माना जाता है और इसीलिए अहिंसा की बात की जाती है। अहिंसारूपी अस्त्र से गांधीजी ने देश को स्वतंत्रता दिलाने में सफलता पाई। यही अस्त्र वेदों में भी प्रचारित है। बुद्ध ने इसे अपने उपदेश का महान् सूत्रधार बनाया और वे विष्णु के अवतार बन गए। तथाकथित सफाईकर्मी यानी योद्धा, धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी प्रजाति के वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी

---

1. राइटिंग्स एंड स्पीचेज, वॉल्यूम 7, पेज 70
2. शास्त्री, डॉ. विजय सोनकर : हिंदू वैचारिकी, पृष्ठ 13
3. मनुस्मृति 6/92

इत्यादि लोगों ने यदि अहिंसा व्रत धारण न किया होता तो मैला ढोने की बात पर भयंकर मार-काट हुई होती और उनके साथ हजारों हजार हिंदुओं की हत्या अनावश्यक रूप से हो गई होती। परंतु अहिंसा व्रत का पालन करते हुए उन्होंने सारी कठिनाइयों को सहकर उत्पीड़न को झेलकर भी हिंदू धर्म और हिंदू जनता को मरने से बचा लिया। अतएव कहा जा सकता है कि वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि तथाकथित सफाईकर्मी जाति हिंदुत्व की मुख्य धारा से जुड़ी हुई है।

वाल्मीकि समाज ने हिंदुत्व के प्रथम तत्त्व धृत्ति (धैर्य)[1] को सदैव अपने अंत: में बनाए रखा। यदि वे धैर्यवान न होते तो प्रत्येक दंड का प्रतिकार करते और शासन-सत्ता से अनावश्यक टकराने के कारण मार दिए गए होते। परंतु धैर्य बनाए रखने का परिणाम अच्छा ही हुआ। धैर्यपूर्वक मैला ढोने से उनका स्वाभिमान भले ही भंग हो गया और उनकी सामाजिक प्रस्थिति भी निम्न हो गई, परंतु उन्होंने भारी संख्या में स्वाभिमानी एवं कट्टर हिंदुओं की रक्षा करने में सफलता प्राप्त की।

क्षमा—हिंदुत्व के दस तत्त्व को धारण करने के कारण वाल्मीकि जाति का सम्मान और भी बढ़ गया। प्रचंड उत्पीड़न करने के बाद भी विदेशी आक्रांताओं एवं शासकों को कुछ नहीं मिला, यानी वे धर्मपरिवर्तन नहीं करा सके, परंतु तथाकथित बलपूर्वक बनाए गए दलित समाज को धैर्यपूर्वक क्षमा कर देने से कोई प्रतिकार नहीं हुआ। तप (तपस्या) भी हिंदुत्व का उच्च श्रेणी का तत्त्व माना गया है। तपस्या का अर्थ केवल जंगल में जाकर तप करना ही नहीं है। अपने कर्तव्य को विधिसम्मत विधि से विहित करते रहना भी एक तप है। तप का अर्थ स्वकर्म से भी लिया जाता है। भगवान् गीता के कर्म के उपदेश को तप से यानी जीवन की साधना से ही प्रसारित किया गया है। देश के प्रति, समाज के प्रति, परिवार के प्रति कर्तव्य का बोध ही कर्म के सिद्धांत का अधिष्ठान है। मैला फेंकना भी एक प्रकार से तप ही है। धैर्य के साथ अपने कर्तव्य का निर्वहन भी तप है। क्षमा करना भी तप है। क्रोध न करना भी तप है।

अस्तेय अथवा चोरी न करना हिंदू संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है और हिंदुत्व में इस तत्त्व को सदाचार के साथ जोड़ा गया है। चोरी कई प्रकार की होती है। झूठ बोलना भी अथवा छिपाना भी किसी के साथ चोरी कहा जाता है। वैसे वस्तुओं की चोरी को भी आस्तेय कहकर निषिद्ध किया गया है।

शौच अथवा पवित्रता भी वह हिंदुत्व तत्त्व है जिसको लेकर वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि तथाकथित सफाईकर्मी समाज के लोगों के साथ आज तक मानसिक अभिशाप बना है। मैला ढोना अन्य लोगों के लिए अपवित्र है, किंतु वाल्मीकि सुदर्शन, रुखी,

1. मनुस्मृति, 6/92

मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज के लिए वह अभिशाप है। वे भी जानते हैं कि यह अस्वच्छ कार्य है। लेकिन यह कार्य उनकी जीविका से लगा हुआ है, यद्यपि अब यह उनके लिए अनिवार्य नहीं रह गया है, परंतु नवीन व्यवसाय की उपलब्धता तक उन्हें करना पड़ रहा है। इंद्रिय निग्रह का अर्थ केवल वासनामय चीजों की ओर से ध्यान हटाना नहीं है। बल्कि सभी हानिप्रद वस्तुओं की ओर से मन को रोकना ही इंद्रिय निग्रह है। वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार इत्यादि समाज ने हिंदू धर्म निर्वहन में स्वयं को नियंत्रित रखकर आत्म उत्सर्ग किया।

विदेशी आक्रांता मुसलिम शासकों द्वारा ज्ञान और विद्या, दोनों से बाधित होने के बाद भी वे विद्या और ज्ञान के पुजारी बने रहे। दलितों के लिए ज्ञान प्राप्ति का मार्ग अवरुद्ध कर दिया गया था, फिर भी वे आध्यात्मिक चिंतन और मनन द्वारा ज्ञान एवं आध्यात्मिक ज्ञान शक्ति प्राप्त करते रहे। चंवर वंश से संत रैदास ने और वाल्मीकि वंश में नवलजी जैसे ज्ञानियों ने मध्ययुग में ज्ञान प्राप्त करने का उदाहरण प्रस्तुत किया। वैसे ज्ञान एवं विद्या के साक्षात् देवता महर्षि वाल्मीकि एवं व्यास जो शूद्र वर्ण के ऋषि हैं उन्हें भला कौन नहीं जानता है।

अत: कहा जा सकता है कि वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज सभी परिस्थितियों में हिंदुत्व की मुख्य धारा से निरंतर जुड़ा रहा।

6.8 संपूर्ण हिंदू समाज सफाईकर्मी जाति का ऋणी

ऋण से बने ऋणी शब्द का पर्याय अप्राप्त है। इस दुर्लभ शब्द का पर्यायवाची तो नहीं मिलता परंतु भावबोधक शब्दों का प्रयोग यथास्थान कुछ विशिष्ट संदर्भों में होता है, जैसे—आभारी, कृतज्ञ, अनुगृहीत, विनीत, भवनिष्ठ इत्यादि। ये शब्द ऋणी शब्द के स्थान पर भले प्रयुक्त हो, किंतु ऋणी शब्द का भाव तो ऋणत्रय (पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण) की ही परंपरा में उचित व्यवहृत होता है।

अस्तु, किसी का कृतज्ञ होना, आभारी होना, अनुगृहीत होना अर्थपूर्ण है, वह किसी का ऋणी होने के समकक्ष कदापि नहीं हो सकता। किसी व्यक्ति, समाज अथवा जाति के प्रति पूरे समाज अथवा संपूर्ण लोगों का ऋणी होना बहुत व्यापक हिंदू वैचारिकी का विषय बन जाता है।

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति के प्रति पूरे हिंदू समाज का ऋणी होना भी विचारणीय विषय है। विचारणीय विषय यह नहीं है कि हिंदू पवित्रता की अवधारणा में यह जाति समाज की सफाई व्यवस्था का उत्तरदायित्व निर्वहन कर रही है और जिस दिन भी वह इस कार्य से विमुख होगी उस दिन महामारी, विभिन्न प्रकार की बीमारी और प्रदूषण फैल जाएगा। क्योंकि ऐसे अवसर

कई बार आए हैं जब सफाई मजदूर सभा के आवाहन पर सफाईकर्मी 10-15 दिनों तक सफाई-कार्य से विरत रहे हैं और सफाई का कार्य मुहल्ले के लोगों ने स्वयं ही मिलकर किया हैं। जीविका से जुड़ा हुआ यह कार्य उसी श्रेणी का माना जाता है जैसे अन्य सरकारी विभागों के कार्य यानी सफाई-कार्य भी। कार्यालयों में सफाई का कार्य चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी भी करते हैं, किंतु वे न तो सफाई-कर्मचारी की श्रेणी में आते हैं, न ही उनकी जाति वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि होती है और न ही वह कार्यालय अथवा समाज उनका ऋणी होता है। ठीक इसी तरह केवल सफाई-कार्य के लिए हिंदू समाज वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य जाति का ऋणी न तो कभी था, न है और न ही होगा।

संपूर्ण हिंदू समाज वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि तथाकथित सफाईकर्मी जाति का आज इसलिए ऋणी है कि विदेशी आक्रांताओं द्वारा बलपूर्वक बनाई इस जाति ने धर्म और देश की रक्षा में सर्वप्रथम तो अपने प्राणोत्सर्ग किए। जो शेष बचे वे विदेशी आक्रांताओं एवं इसलामिक शासकों के युद्धबंदी बने। उन्हें युद्ध की चुनौती का दंड दिया जाना तय था। निर्णय भी उनको ही लेना था कि वे अपने स्त्री-बच्चे-घर चाहते हैं तो इसलाम स्वीकार करें। उन्होंने इसलाम अस्वीकार किया तो उनके सामने ही उनके घर जला दिए गए और स्त्री-बच्चों को मौत के घाट उतार दिया गया। यह कितना आत्मा को कंपित कर देनेवाला दृश्य रहा होगा कि जब उन्होंने अपने सामने अपने बच्चों को, अपनी धर्मपत्नियों को कटते देखा होगा। धन्य है वह साहस जो युद्धबंदी समाज में उन दिनों विदेशी मुसलिम आक्रांता शासकों के दरबार में देखने को मिला था। हिंदू धर्म की रक्षा के लिए इतना बड़ा उत्सर्ग संसार के इतिहास में आज तक किसी ने नहीं किया था, अतएव उनके इस अद्‌भुत त्याग पर हिंदू समाज को आज उनका ऋणी होना सर्वथा उचित होगा।

युद्धबंदियों और पूरे हिंदू समाज ने देखा तथा सुना कि इसलाम अस्वीकार करने और हिंदू धर्म में बने रहने की जिद करनेवाले हिंदुओं को नरभक्षी शेर, चीता के सामने फेंकवा दिया जाता था, हाथियों के पैरों तले कुचलवा दिया जाता था। तरह-तरह से प्रचंड उत्पीड़न का शिकार बनाया जाता था, परंतु उसके बाद भी धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी हिंदू युद्धबंदी गर्जना करते थे कि वे इसलाम किसी मूल्य पर स्वीकार नहीं करेंगे। हजारों हजार लोगों को काटने के लिए जल्लादों को अधिकाधिक पैसे दिए जाते थे। सिर गिन-गिनकर उनको दुगुने पैसे दिए जाते थे। तलवारों की धार मोटी हो जाने पर दूसरी तलवारें दी जाती थीं। परंतु हिंदू समाज की गरदनों की बाढ़ थमने का नाम नहीं लेती थी।

मध्यकाल में विदेशी मुसलिम आक्रांता शासकों के द्वारा विविध प्रकार के

क्रूरतम दंडों को उन सभी धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी हिंदू युद्धबंदियों ने स्वीकार किया परंतु इसलाम को सदैव ठुकराया और हिंदू धर्म में अंतिम साँसों तक अपनी निष्ठा व्यक्त की। उनके ऐसे त्याग और बलिदान पर आज देश का पूरा हिंदू समाज नतमस्तक है एवं अपने को वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज का चिरऋणी पाता है।

विदेशी इसलामिक क्रूर शासकों के सामने प्रतिदिन हजारों हजार हिंदू युद्धबंदियों के मारे जाने को लेकर भी एक समस्या हो गई कि सभी मार दिए जाएँगे तो शासन किन लोगों पर किया जाएगा अथवा सेवा कार्य कौन करेगा? भारतीय मुसलमानों के साथ यदि थोड़ी भी कठोरता बरती गई तो वे फिर से हिंदू बनने के लिए विद्रोह कर सकते हैं और उस अवस्था में हिंदुस्थान में रहकर शासन चला पाना कठिन हो जाएगा। अत: उन्होंने एक ऐसा दंड प्रायोजित किया जो मृत्युदंड अथवा किसी भी क्रूरतम दंड से भी भयानक दंड था। देखने और सुनने में तो वह दंड आज भी लोगों के मस्तिष्क में सामान्य ही लगेगा, किंतु एक सच्चे हिंदू के लिए, हिंदू धर्मरक्षक के लिए और स्वाभिमानी योद्धा के लिए वह दंड अकाल मौत के समान था। उस दंड में हिंसा नहीं थी। कोई यातना अथवा उत्पीड़न नहीं था। फिर भी वह दंड किसी हिंदू के लिए यमराज के कालदंड से भी भयानक था। ऐसे दंड को वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि दलित जाति के लोग यदि हिंदू धर्म की रक्षा के लिए झेलते हैं तो वह पूर्णत: असाधारण बात मानी जानी चाहिए। इसके लिए हिंदू समाज को ऐसे धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी समाज का ऋणी अवश्य होना चाहिए।

वह दंड था—'मैला ढोने का दंड' यानी 'मल-मूत्र साफ करने का दंड'। प्रात: और सायं का यह कार्य करके शेष समय आराम ही करना था। यह भी आदेश दिया गया था कि इस कार्य में वे अपने पूरे परिवार के साथ लगाए जाएँगे और रोटी-कपड़ा शासन की ओर से प्रदान किया जाएगा, मूर्ति-पूजा नहीं करनी होगी, खाने के लिए कोई बरतन नहीं होंगे, हाथ पर लेकर जमीन पर रखकर भोजन करना होगा और गाँव के बाहर रहते हुए वहीं के गंदे तालाब का पानी पीना होगा। वे कोई पर्वोत्सव नहीं मना सकेंगे। बस्ती के अपने स्वजातियों से कभी मिलने नहीं जाएँगे और किसी को भी स्पर्श नहीं करेंगे। किसी से गर्व के साथ कोई बात नहीं करेंगे क्योंकि मैला ढोने के साथ ही उनका स्वाभिमान भंग करके उनको तथाकथित सफाईकर्मी (भंगी) बना दिया गया है।

हिंदू धर्म के प्रथम तत्त्व धृति (धैर्य) का सहारा लेकर वाल्मीकि जाति के लोगों ने वह दंड स्वीकार किया, सिर पर मैला ढोने का काम किया, मल-मूत्रों की सफाई का काम किया, अपना स्वाभिमान भंग कराया, अपने स्व का और आत्मगौरव को

समाप्त कराया, तथा बस्ती में शेष बचे हुए हिंदुओं एवं स्वजातीय बंधुओं से दूरी भी बना ली, साथ ही अछूतों में भी अछूत बन गए, परंतु किसी भी मूल्य पर हिंदू धर्म का परित्याग नहीं किया। हिंदू धर्म की रक्षा के लिए इससे बढ़कर और कोई त्याग हो ही नहीं सकता, जिसे वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियों के बंधुओं ने किया। वह इसी के कारण सदियों तक उपेक्षित और बहिष्कृत रही। आज भी वे दलितों एवं अति दलित की श्रेणी में विद्यमान हैं। ऐसी सम्मानीय वाल्मीकि, सुदर्शनं इत्यादि जाति के लिए हिंदू समाज का ऋणी होना किसी भी हिंदू की दृष्टि में अनुचित नहीं है।

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति ने सबसे पहले और सबसे अस्वच्छ एवं अपवित्र कार्य करना आरंभ किया, परंतु हिंदू धर्म का मस्तक कभी झुकने नहीं दिया। ऐसी बहादुर एवं धर्माभिमानी जाति को हिंदू समाज शत-शत नमन करते हुए उसका चिरऋणी रहे तो भी उनके त्याग और बलिदान की तुलना में वह कम ही माना जाएगा।

कल्पना करें कि प्रातःकाल व सायं मल-मूत्र त्यागने के बाद एक व्यक्ति जब तक स्नानादि करके अपने को पवित्र नहीं कर लेता तब तक दाना-पानी छूने से भी परहेज करते हैं। यहाँ तक कि वे अपने पुत्र को भी स्पर्श नहीं करते हैं, क्योंकि वे अपने आपको स्वयं ही अस्पृश्य मान लेते हैं। इसकी तुलना में वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि जाति जो पूरे समाज का सुबह से लेकर रात तक मैला साफ करती है और कैसे अपने को रात-दिन अपवित्र मानकर जीवित रह लेती है? उसके निरंतर मद्यपान का एकमात्र कारण यही है कि अपावन कार्यों को करने से अपने शरीर और आत्मा की दुर्गंध का उनको ज्ञान ही न रहे। ऐसे में यदि उनको मद्यपान का आदी पाया जाता है तो इसके प्रति संपूर्ण समाज को उनके प्रति संवेदना, दया, करुणा एवं मानसिक कष्ट प्रदर्शित करना चाहिए, न कि घृणा होनी चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदू धर्म की रक्षा में हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख जाति की भूमिका हिंदुस्थान की अन्य हिंदू जातियों से सर्वथा अग्रणी रही है। देश की रक्षा में इस हिंदू स्वाभिमानी जाति ने विदेशाी मुसलमानों एवं मुगल आक्रांताओं के आक्रमणों का उत्तर लगातार दिया। दुर्भाग्यपूर्ण पराजय से युद्धबंदी होने पर भी वे इसलाम के क्रूरतम दमन से तनिक भी भयभीत नहीं हुए और प्रलोभन तथा प्रताड़ना से पूर्णतः निडर रहकर इसलाम धर्म को सदैव अस्वीकार किया एवं ठुकराया।

हिंदू और हिंदुस्थान के अस्तित्व के लिए सबकुछ हिंदू धर्म, हिंदू संस्कृति एवं हिंदू जीवन-पद्धति को ही माना जाता है और इसी की रक्षा सर्वोपरि मान्य है। देश की रक्षा में असफलता मिलने के बाद, विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के उत्पीड़न को

सीरिया, फिलिस्तीन, मिस्र, अफ्रीका का उत्तरी भाग, स्पेन और फारस आदि जैसे देश एक पल भी नहीं झेल पाए और पूरे देशवासियों ने इसलाम स्वीकार करके अपने-अपने जीवन की रक्षा की, जबकि पराजित एवं युद्धबंदी होने और अनेक उत्पीड़न सहने के बाद भी कुछ लालची कायर हिंदुओं एवं बड़ी संख्या में बौद्धों के अतिरिक्त अन्य किसी भी धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी हिंदू जाति ने इसलाम स्वीकार नहीं किया।

इसलाम अस्वीकार करनेवालों को जिस समय तरह-तरह से सताया जा रहा था, इस जाति ने भी खटिक जाति की ही भाँति इसलाम के शत्रु-पशु सूअर को पालना आरंभ किया। इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि कालांतर में अन्य हिंदू भी पवित्रता की अवधारणा को ध्यान में रखकर इनसे दूरी रखने लगे। मैला ढोने एवं सफाई-कर्म के कारण वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि जाति को गाँव से बाहर कर दिया गया था और अपवित्र (अस्पृश्य) मानते हुए उसके साथ सारे संबंध तोड़ लिए गए थे। फिर भी इस जाति ने अपना धैर्य नहीं खोया और लगातार हिंदू धर्म के प्रति धर्मपरायण रही। हिंदू के रूप में ही आज भी अपना स्थायी पहचान रखती है।

धर्मपरायणता के लिए विदेशी इसलामिक आक्रांता शासकों ने इनसे मैला ढोने का कार्य लेकर इनके स्वाभिमान को भंग कर दिया था जो पहली बार किसी हिंदू जाति के लिए सबसे बड़ा ऐतिहासिक अपमान था। इसका प्रतिशोध हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति ने भी लिया। उसने किसी भी हिंदू के घर का जूठन खाना स्वीकार किया परंतु इसलाम पंथ माननेवाले एक मुसलमान का स्पर्श हुआ जल तक स्वीकार नहीं किया। मध्ययुग की वह प्रतिज्ञा आज तक उनके वंशजों द्वारा पालन की जाती है। यही नहीं, हिंदुत्व के समस्त तत्त्वों को आत्मसात् करके जीवन को हिंदू धर्म से बिना अलग किए हुए समस्त हिंदू समाज के लिए तथा हिंदू धर्म के लिए इस जाति ने जो त्याग और बलिदान किया है, उस आधार पर हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति को हिंदू धर्म की रक्षा करनेवाली प्रथम जाति की श्रेणी दी जा सकती है।

हिंदुस्थान की ऐसी कोई जाति नहीं जिसने हिंदू धर्म की रक्षा में वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति की भाँति त्याग और बलिदान का रास्ता अपनाया हो। अत: इस जाति का संपूर्ण हिंदू समाज को ऋणी होना चाहिए। कोई भी हिंदू इसे अस्वीकार नहीं कर सकता कि हिंदू धर्म की रक्षा के लिए एकमात्र इसी जाति ने सबसे अधिक उत्पीड़न सहा और अपनी मूल प्रस्थिति तथा पहचान तक खो दी, फिर भी ये लोग संतुष्ट हैं कि हिंदू धर्म की रक्षा के अपने एकमात्र महत्त्वपूर्ण उद्देश्य को पूरा कर लेने में वह सफल रही।

□

अध्याय-7

महर्षि वाल्मीकि तथा अन्य महान् पुरोधा

प्रचेतापुत्र महर्षि वाल्मीकि भगवान् श्रीराम के प्रथम मानव-भक्त और प्रभु श्रीराम के जीवन चरितों पर आधारित विश्व के प्रथम महाकाव्य 'रामायण' के रचयिता हैं। भगवान् श्रीराम को प्रत्येक हिंदू के रोम-रोम में समाहित करनेवाले महर्षि वाल्मीकि की ऋषि परंपरा में अनेक ऋषियों, मुनियों और संतों का जन्म हुआ परंतु आदिकवि वाल्मीकिजी की अद्वितीय पहचान उनमें सदैव बनी रही।

महर्षि वाल्मीकिजी का जीवन-चरित्र संतों और ऋषियों की जीवन-धारा से अलग होकर कुछ नहीं है, परंतु वह किसी अन्य ऋषि का अनुकरण भी नहीं है। वाल्मीकिजी स्वयं अनुकरणीय रहे और उनका जीवन-चरित्र भी बाद के लोगों के लिए अनुकरणीय रहा। उनमें धर्म के सभी तत्त्व सदैव विद्यमान थे, अतएव स्वयं ही धर्म के अधिष्ठान पर अडिग एक महान् आध्यात्मिक पुरोधा थे। उनके रामायण के भगवान् श्रीराम सभी प्रकार से स्तुत्य रहे। लोग सोते-जागते, उठते-बैठते श्रीराम का नाम लेकर मुक्त होते गए। यह ग्रंथ लिखकर वाल्मीकिजी स्वयं ही हिंदू धर्म के महानतम् ऋषियों में गिने जाते थे। रामायण लिखकर वाल्मीकिजी स्वयं भी एक भागवतस्वरूप होकर वाल्मीकि समाज के करोड़ों लोगों के लिए श्रद्धाकेंद्र हो गए।

वाल्मीकि समाज में आदिकवि वाल्मीकि जैसा तो कोई नहीं हुआ, परंतु बाद में नवलजी जैसे एक निराकर उपासक अवश्य हुए, जिन्होंने संत रैदास की पद्धति पर अपना नवल मार्ग भी चलाया। कालांतर में सल्तनत और मुगलकाल में अनेक संत ऐसे हुए जिन्होंने विदेशी आक्रांता सुल्तानों एवं बादशाहों से संघर्ष किया। बहुतों ने हिंदू धर्म की रक्षा हेतु मैला ढोना स्वीकार किया परंतु इसलाम पंथ को अस्वीकार किया। ऐसे लोगों को विदेशी आक्रांता शासकों ने दमन एवं दलन के उपरांत सफाईकर्मी बनाकर

उन्हें भंगी नाम देकर समाज से बहिष्कृत कर दिया गया, फिर भी वे अपने को कर्म में अस्पृश्य हिंदू मानते हुए आज तक हिंदू धर्म में अपनी निष्ठा बनाए हुए हैं। ऐसे लोगों को सम्मान और स्नेह देने के बदले लोग घृणाभाव देकर क्षुब्ध कर देते हैं।

प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं विषयों पर विशद् चर्चा की गई है।

7.1 हिंदू धर्म में ऋषि-परंपरा

पुस्तक में कई स्थानों पर हिंदू, धर्म, ऋषि और परंपरा की अलग-अलग व्याख्याएँ संदर्भित हैं। यह भी बतलाया गया है कि हिंदू धर्म समय-समय पर भौतिक एवं आध्यात्मिक अनुभवों एवं प्रयोगों का परिणाम है और यह परिणाम अथवा निष्कर्ष हमारे ऋषियों, महर्षियों, संतों, महात्माओं, मुनियों एवं बौद्धिक क्षेत्र में उन्नत महानुभावों ने निकाला है। यह किसी एक काल अथवा समय का उत्पाद नहीं, सहस्रों वर्षों का खगोलीय मानवीय संकलन है। हड़प्पा एवं सैंधव सभ्यता तो हिंदू धर्म-प्रधान थी, हिंदू धर्म उससे पूर्व का है और हिंदुस्थान में ऋषि-परंपरा भी उससे बहुत पहले की है।

प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या पहले धर्म अथवा ऋषि-धर्म ही था? क्या उसे ही प्रकृति-धर्म कहते थे? क्या प्रकृति का समुन्नत ज्ञान किसी को न था? क्या ऋषियों-मुनियों ने उसका ज्ञान कराया? धर्म की प्रकृतिपरक अवस्थिति का ज्ञान उन्होंने ही कराया? क्या धर्म के अनुरूप जीवन-यापन के समस्त नियम-उपनियम आदि उन्हीं ऋषि-मुनियों ने ही बनाए और उन्होंने उसके गूढ़ रहस्य भी बतलाए जिस पर चलता हुआ मानव हड़प्पा-सैंधव आदि सभ्यताओं के बाद भी निरंतरता एवं गतिशीलता को प्राप्त एक मानवीय कल्याणकारी चिंतन पर आधारित सभ्यताओं में चल रहा है—जी रहा है और आगे भी जीता रहेगा।

मानव-समाज जिन ऋषियों द्वारा प्रतिष्ठित परंपरा का निर्वहन करते हुए वर्तमान में जी रहा है, उसका ही अध्ययन यहाँ पर प्रासंगिक है, न कि उसके बहुत पूर्व की ऋषि-परंपरा का जिसका प्रादुर्भाव प्रागैतिहासिक काल के भी पूर्वकाल में हुआ था। चूँकि वह हड़प्पा, सैंधव और सरस्वती सभ्यताओं की भाँति ही दुरूह और अज्ञेय भी है, अतएव जब से हिंदू धर्म की मर्यादा को मान्य किया गया है, उससे ही संबंधित ऋषि-परंपरा को भी समझना अभीष्ट है। क्योंकि सफाईकर्मी जाति की एक शाखा यानी वाल्मीकि समाज के पूज्य ऋषि महर्षि वाल्मीकिजी उसी ऋषि-परंपरा के थे।

प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य का संपूर्ण प्रयास अपने लिए आहार आहरित करने में ही व्यतीत हुआ—वनपशुओं का मांस प्राप्त किया, प्रकृतिप्रदत्त निःशुल्क कंदमूल एवं फलों को खाया, पशुओं के दुग्धामृत का पान किया, कृषि-कर्म से अन्न एवं शाक-सब्जियों का आनंद लिया, अर्थात् अपना संपूर्ण आहार व्यवहार प्रकृति पर निमित्त

किया। उस समय तक न को कोई ऋषि-महर्षि हुए थे और न ही उनकी कोई परंपरा थी। बुद्धि का विकास हो रहा था। लोग इतना अवश्य सोचने लगे थे कि कुछ हो रहा है और जिसे वे देख भी रहे हैं, वह सब कैसे हो रहा है और उसे कौन कर रहा है? वह कौन सी शक्ति है जो दिखलाई भी नहीं दे रही है जबकि सबकुछ आँखों से देखा जाना संभव है?

उत्तर ढूँढ़ता हुआ मानव वैदिककाल तक आ पहुँचा तब तक उसका भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान-क्षेत्र कुछ और विस्तृत हो गया था। वैदिककाल के प्रारंभिक चरण में अर्थात् ऋग्वेदकाल में ऋग्वेद की रचना के पहले से ही हिंदू संत, महात्माओं, ऋषियों और मुनियों ने भौतिक चिंतन आरंभ कर दिया था और प्रकृति में होनेवाली अद्भुत हलचलों का सूक्ष्म चिंतन करके उनकी आध्यात्मिक कारकता एवं कारणता की व्यापकता को खोज लिया था। उन्होंने अपने चिंतन का परीक्षण किया था और सत् (प्रकृति) एवं ऋत् (प्रकृति नियम) के नियामक (ब्रह्म) को एकीकृत करके हिंदू जीवन-पद्धति का निर्माण किया था।

हिंदू जीवन-पद्धति में हिंदू तत्त्वों की जिन दस आवश्यकताओं का उन्होंने नियोजन किया वह आज भी पूर्णत: परीक्षित एवं शोधपरक हैं। ऐसे व्यवस्थाकारों को 'ऋषि' नाम दिया गया। शोध-कार्य एवं कार्य-व्यवस्था के नियम का निर्माण किसी एक ऋषि ने नहीं किया था, इसलिए उन सभी ऋषियों के संयुक्त स्वरूप को 'ऋषि-कुल' की संज्ञा दी गई। ये ऋषि हिंदुस्थान में समय-समय पर होते रहे और अपने दिशा-बोध से समाज को लाभान्वित करते रहे। कालांतर में इसे ही ऋषि-परंपरा नाम दिया गया।

हिंदुस्थान में ऋषि-परंपरा का आरंभ वैदिक युग से अथवा उसके कुछ पूर्व के समय से माना जाता है। वेद की प्रथम ऋचा की रचना किस ऋषि ने की यह अब तक शोध का विषय है? ऐसा प्रतीत होता है कि ऋचाओं की रचना करनेवाले को ही ऋषि कहा गया। वेद की अनेक ऋचाएँ हैं और सभी की रचना किसी-न-किसी ऋषि द्वारा ही हुई। इन्होंने सर्वप्रथम प्रकृतिजन्य देवताओं (यथा—सूर्य, सोम, इंद्र, वरुण, वायु, अग्नि, रुद्र इत्यादि) के प्रति मानव की स्तुति एवं वंदना का प्रयोजन किया।

देवता प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों के नियामक माने गए। उसी के अनुरूप उनकी पूजा एवं वंदना के मंत्र रचे गए। मंत्र-शक्ति का प्रायोगिक परीक्षण किया गया और उसे सत्य के सिद्धांत के अधीन नियंत्रित पाया गया। मंत्रों के प्रयोग से यज्ञ, बलि, तप आदि की व्यवस्था की गई और तब जाकर हिंदू धर्म को एक परीक्षित और प्रायोगिक धरातल मिला जिस पर भौतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का मानव हित में उपयोग संभव था। यह व्यवस्था हमारी ऋषि-परंपरा का ही योगदान है।

प्रारंभिक काल में ऋषि, मुनियों, ज्ञानियों, विद्वानों, उपदेशकों आदि की कोई

जाति नहीं होती थी बल्कि सभी को हिंदू धर्म एवं ज्ञान का पुरोधा ही कहते थे। महर्षि वाल्मीकि, महर्षि व्यास, ऋषि मातंग, ब्रह्मर्षि वशिष्ठ, ऋषि गौतम, जमदग्नि, परशुराम, दुर्वासा, देवभक्त शबरी के पिता ऋषि शबर, कण्व, जावालि, याज्ञवल्क्य, मनु, अत्रि, भृगु, कहोड़, विभांडक, दक्ष, ऋष्यश्रृंग, पराशर, गौडपाल, गोविंदपाद, भगवदपाद आदि शंकराचार्य, महर्षि शंबूक इत्यादि प्रमुख पुरोधा थे। इनमें से सभी ने केवल हिंदू धर्म के दस तत्त्वों (सत्य, अहिंसा, शौच, इंद्रियनिग्रह, अस्तेय, धैर्य, ज्ञान, विद्या, क्षमा, मोक्ष) पर ही अपने विचार व्यक्त नहीं किए अपितु हिंदू लोकजीवन तथा हिंदू जीवन-पद्धति की प्रकृतिपरक आवश्यकताओं के बारे में संदेश भी दिए।

ऋषि मातंग को महाराष्ट्र के मातंग जाति के लोग उनके कर्नाटक के थंपी के निकट स्थित आश्रम में जाकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। शबर ऋषि ने बालि को आदेश दिया था कि वह उनके आश्रम में ही नहीं बल्कि ऋष्यमूकपर्वत पर कभी न आए अन्यथा वह जीवित नहीं रहेगा। ऋषि शबर के पास जलाकर राख कर देनेवाली विद्या का ज्ञान था। ऋषि विभांडक ने एक मादा हिरन के डिंब में अपना प्रस्वेद यानी पसीना स्थापित किया था। आज की क्लोनिंग-पद्धति उसी समय हिंदू धर्म में अन्वेषित थी।

रामायणकालीन पुष्पक विमान की रचना महाभारतकाल में भी हुई मिलती है। अलवर (राजस्थान) के अधिपति शाल्व के पास सौंभ नामक एक अद्भुत नगराकार विमान था और जिसकी सहायता से उन्होंने श्रीकृष्ण की द्वारका नगरी पर आक्रमण किया था।[1] यह भी हिंदू धर्म एवं ज्ञान के पुरोधाओं द्वारा ही निर्मित था। कुछ लोग शाल्व को भी वैदिक वंश-परंपरा का 'खट्टिक' कहते हैं। तत्कालीन काशीराज की ज्येष्ठा पुत्री अंबा इसी शाल्व से प्रेम करती थी। भीष्म द्वारा अपहृत होने तथा शाल्व द्वारा विजित वस्तु कहकर अपनाने से अस्वीकार करने का स्वभाव आज के स्वाभिमानी और जिद्दी खटिक जाति से मेल खाता है।

हिंदू धर्म एवं ज्ञान के पुरोधाओं की जितनी संख्या ऊपर बतलाई गई है, उनके सापेक्ष यदि वैदिक और पौराणिक ऋषियों के विषय में अध्ययन किया जाए तो सप्तर्षियों का उल्लेख मिलता है। सप्तर्षियों के सात मंडल होते हैं। प्रत्येक मंडल में सात ऋषि हैं। इस प्रकार 49 ऋषि प्रमुख रूप से हुए जिनके वर्ण निर्धारित नहीं है। परंतु उत्तर-वैदिककाल के उपरांत इन्हीं ऋषियों के वंश में सभी प्रकार के ऋषि उत्पन्न हुए। अनेक ब्रहर्षि और राजर्षियों के साथ-साथ हजारों महर्षियों (इतर वर्ण यानी वैश्य एवं शूद्र) का वर्ण स्वत: निर्धारित है।[2]

---

1. महाभारत (वनपर्व) अध्याय 14-22
2. शास्त्री, विजय सोनकर: दलित हिंदू की अग्नि परीक्षा, पृष्ठ 60

वर्तमान समय में भी ऋषि-परंपरा का दृश्यावलोकन 'गुरु-परंपरा' के रूप में किया जा सकता है। आज का प्रत्येक हिंदू चाहे वह वाल्मीकि हो अथवा किसी भी जाति का हो, अपने तथा अपने परिवार को किसी-न-किसी गुरु-परंपरा से आबद्ध रखे हुए है। सांप्रदायिक एवं जातिगत भेदों की अधिकता और हिंदू आध्यात्मिक चिंतन के विभिन्न आधारों के आलोक में अनेक विधि से संपूर्ण हिंदुओं द्वारा मान्य की जाती हो अथवा नहीं, परंतु जो परंपरा चल रही है वह वास्तव में उसी प्राचीन हिंदू ऋषि-परंपरा का ही प्रतिरूप है जो युग-परिवर्तन के साथ ही वर्तमान स्वरूप में पाई जाती है।

हिंदू वाल्मीकि समाज में ऋषि-परंपरा का विशेष सम्मान है। आदिऋषि महर्षि वाल्मीकि उनके आराध्य देव हैं—भगवान् हैं। उनका तो कहना है कि वे ही प्रथम ऋषि हैं और अन्य ऋषिगण उनकी ही परंपरा में हैं। वे लोग वर्तमान समय में प्रचलित गुरु-परंपरा में बहुत कम आस्था रखते हैं। किसी के विशेष संपर्क से भले ही उनका ध्यान उधर चला गया हो, परंतु मुख्य रूप से वे गुरु-परंपरा और ऋषि-परंपरा में अंतर करते हैं। उनके अनुसार ऋषि-परंपरा का आशय भगवान् वाल्मीकि से है, जबकि गुरु-परंपरा का अभिप्राय किसी ज्ञान-गुरु से है।

7.2 महर्षि वाल्मीकि का चरित्र-चित्रण

ऋषि का भावार्थ है—'पढ़ा-लिखा होना' यानी जो अपनी विद्या, तप और त्याग के बल पर ऋषि बना हो। ऐसे ऋषियों में जो महान् हो, महर्षि होता है। वाल्मीकिजी तो ऋषियों में महाऋषि थे।

महर्षि वाल्मीकि आदिकवि हैं, अतः विश्व के समस्त कवियों के गुरु हैं। रामायण संस्कृत महाकाव्य है, जिसकी रचना महर्षि वाल्मीकि ने की है। चूँकि वह प्रथम काव्य है इसलिए वे प्रथम कवि हैं। श्री व्यासदेवादि सभी कवियों ने आदिकवि वाल्मीकिजी की रचना के ही आधार पर (उसी महाकाव्य का अध्ययन कर) पुराण, महाभारतादि का निर्माण किया, इसलिए भी महर्षि वाल्मीकिजी कवियों के गुरु और आदिकवि के रूप में संसार में जाने जाते हैं।

शास्त्रों में वाल्मीकि को मिट्टी से उत्पन्न बताया गया है। मिट्टी यानी धरती माता जिसे हम पृथ्वी कह सकते हैं। मिट्टी मातृभूमि का भी संकेत है। वाल्मीकि का अर्थ मिट्टी की वर्मी है जिसमें घास-फूस की अथवा कंकर-पत्थरों की मिलावट नहीं होती है। अर्थात् बिलकुल शुद्ध मुलायम मिट्टी।

वाल्मीकि शब्द व्यक्तित्व की ओर भी संकेत करता है। वाल्मीकिजी विशुद्ध मिट्टी के समान, ऋषि-स्वभाव यानी मृदुल और मुलायम तथा कठोर भी थे। किसी भी प्रकार से अटूट। वही स्वभाव वर्तमान वाल्मीकि तथाकथित सफाईकर्मी जाति में

भी पाया जाता है। धर्मरक्षा हेतु दृढ़ता, मृदुलता आदि सभी प्रकार के लक्षण उनमें पाए जाते हैं।

लोगों का कहना है कि वाल्मीकिजी ब्राह्मण जाति के नहीं बल्कि किसी निम्न जाति के थे। स्वयं वाल्मीकिजी अपने को प्रचेता का पुत्र लिखते हैं।[1] प्रचेता को वशिष्ठ, नारद, पुलस्त्य, कवि आदि का भाई लिखा है।[2] ये लोग चूँकि निम्न जाति के नहीं थे बल्कि ब्रह्मपुत्र अथवा ब्राह्मण थे, अतएव वाल्मीकिजी भी ब्राह्मण थे। वह ब्रह्म तप को प्राप्त हुए थे, इसलिए ब्राह्मण थे। उनके समय में वर्ण-व्यवस्था का निर्माण मात्र कार्य विभाजन के निमित्त मात्र से हुआ था और वर्ण-धर्म परिवर्तित हुआ करते थे इसलिए सामान्य गृहस्थ के होने पर भी वे कर्म से ब्राह्मण थे, धर्म से भी ब्राह्मण ही थे। मत्स्यपुराण में इनको 'भार्गवसत्तम्' यानी भार्गव ब्राह्मण भी माना गया है।[3]

वाल्मीकि के समय में जाति-व्यवस्था थी ही नहीं। ऋषियों की कोई जाति मानी भी नहीं जात्ती थी, इसलिए वाल्मीकि को वर्ण अथवा जाति के भेदभाव में विवाद का विषय बनाना घृणास्पद है। यह सामान्य सी सोचने की बात है कि छोटे को कोई और छोटा भला कहाँ तक और कैसे बना सकता है? वस्तुत: तो लोग बड़े को ही आक्रोश में छोटा बनाते हैं। मध्ययुग में विदेशी इसलामिक आक्रांताओं द्वारा इसलाम अस्वीकार करने पर दंडस्वरूप किसी निम्न जाति के व्यक्ति को और भी निम्न बनाने का प्रश्न नहीं था, मुख्य प्रश्न तो यह था—उच्च जाति को निम्न जाति में परिवर्तित करना। वाल्मीकि ब्राह्मण ही थे, इसलिए धर्मरक्षा करने का दंड उनके वंश (वाल्मीकि-वंश) को दिया गया। उनके हिंदू होने का धर्माभिमान एवं योद्धा होने का उनका स्वाभिमान भंग करके उन्हें सफाईकर्मी यानी भंगी बनाया गया।

वाल्मीकिजी के समय में न तो हिंदुस्थान में मैला ढोने की संस्कृति थी और न ही इसलाम पंथ का जन्म हुआ था, न ही इसलामिक संस्कृति (धर्म) के प्रचारक वे विदेशी लुटेरे एवं आक्रांता ही थे। अत: वर्तमान वाल्मीकि जाति की स्थिति अथवा अस्वच्छ कर्म में आक्रांताओं द्वारा लगाए जाने के पूर्व ब्राह्मण की सामाजिक प्रस्थिति उच्च थी। यहाँ ऋषि व्याध के जन्म के बारे में उल्लेख करना विषय की स्पष्टता के लिए आवश्यक है। वे जन्मांतर के व्याध हो सकते थे, जैसा कि स्कंदपुराण में उल्लिखित है।[4] व्याध-जन्म के पहले भी स्तंभ नाम के श्रीवत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे। व्याध-जन्म में शंख ऋषि के सत्संग से रामनाम के जप से दूसरे जन्म में अग्निशर्मा अथवा रत्नाकर

1. रामायण 7/93/17, 7/96/19
2. मनुस्मृति 1/35
3. मत्स्यपुराण 12/61
4. स्कंदपुराण (वैशाखमाहात्म्य)

हुए। वहाँ भी व्याधों के संग से कुछ दिन संस्कारवश व्याध-कार्य में लगे रहे। फिर सप्तर्षियों के संसर्ग से मरा-मरा जपकर बाँबी पड़ने से वाल्मीकि हुए। यही कथा सर्वत्र कुछ अंतर के साथ उल्लिखित पाई जाती है। वाल्मीकिजी को निम्न जाति का मानना भ्रममूलक है।

वाल्मीकिजी के स्थान को भी लेकर एकमतिता नहीं मिलती है। उनका आश्रम तमसा नदी के तट पर था।[1] यह उस तमसा से सर्वथा भिन्न है जिसका उल्लेख गंगा के उत्तर तथा अयोध्या के दक्षिण में मिलता है। कुछ लोग उनका आश्रम प्रयाग से 20 मील दक्षिण में मानते हैं।[2] कुछ लोग प्रयाग-झाँसी रोड और राजापुर-मानिकपुर रोड के संगम पर बतलाते हैं।[3] गोस्वामी तुलसीदासजी दारिपुर या दिगपुर के बीच (बिलसतिभूमि) को मानते थे। कुछ लोग सीतामढ़ी तो कुछ लोग कानपुर के बिठूर को भी मानते हैं। कुछ लोग यह कहते हैं कि वे घूमते रहते थे और राम-बनवास के समय चित्रकूट के समीप तथा राज्यारोहणकाल में गंगा तट पर बिठूर में रहते थे। अपने ग्रंथ के अनुसार भी वे बिठूर के ही सिद्ध होते हैं।

स्पष्ट है कि वाल्मीकिजी सनातनी हिंदू थे। वह उच्चकोटि के विद्वान् और व्याकरण के ज्ञाता थे। उन्होंने योग-विशिष्ट महारामायण और रामायण की रचना की थी। उनकी रचना (रामायण) के आधार पर ही लोगों ने बाद में राम-कथा पर अपने-अपने ग्रंथ लिखे। उसके पूर्व किसी को राम का ज्ञान नहीं था। अतएव वाल्मीकिजी वर्तमान वाल्मीकि सफाईकर्मी जाति के साथ ही संपूर्ण हिंदू समाज के लिए पूजनीय माने जाते हैं।

चारित्रिक आधार पर वाल्मीकिजी को साधारण मानव-स्तर से ऊपर का पाया जाता है। उनको संत प्रवृत्ति केवल स्वांतः सुखाय तक सीमित नहीं है अपितु बहुत व्यापक है। उनका विचार पूरे विश्व के लिए धर्म का संदेश है। एक सच्चे मार्ग-दर्शक की भाँति वह धर्म-अधर्म, नीति-अनीति, सदाचार, कदाचार आदि सभी के विषय में सम्यक् जानकारी देते चलते हैं ताकि मानव समाज पशुता से ऊपर उठकर देवरूपी व्यक्तित्व में चमत्कृत होने लगे।

वाल्मीकिजी का चरित्र जीव-जंतुओं के प्रति पूर्णतः सहिष्णु है। क्रोध का प्राकट्य तो है, परंतु उचित स्थान पर ही। सत्य सर्वत्र व्याप्त है। धैर्य की अंतिम सीमा भी क्षमा तक है। उनका सारा प्रयास हिंदू धर्म के प्रति समर्पण है। धर्मरक्षा और देशरक्षा, जनरक्षा और जीवरक्षा—ये सारे मनोभाव उनको हिंदू धर्म का प्रतीक एवं प्रवक्ता बनाते हैं।

---

1. रामा. (बाल.) 2/3-4
2. कल्याण का रामायणांक, पृष्ठ 496
3. सम्मेलन पत्रिका, 43/2, (पृष्ठ 133)

यही कारण है कि उनके विचारों से प्रभावित वाल्मीकि जाति भी हिंदू धर्म से ओत-प्रोत है। मध्ययुग में लाख प्रयासों के बाद भी विदेशी मुसलिम आक्रांता एवं शासक वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति के स्वाभिमानी पूर्वजों को इसलाम स्वीकार कराने में सफल नहीं हुए थे। इस जाति के लोगों ने अपने स्वाभिमान को भंग कराके मैला भले ही ढोया परंतु हिंदू धर्म की अंत तक रक्षा करने में सफलता अर्जित की। इसके लिए उनके समक्ष महर्षि वाल्मीकि का चरित्र एक आदर्श था, आज भी वह आदर्श है और आगे भी रहेगा।

7.3 हिंदू धर्म की पहचान महर्षि वाल्मीकि

धर्म जीवन का सबल है, जिसे सार्वभौमिक नैतिकता भी कह सकते हैं।[1] धर्म व्यक्ति के मन को शुद्ध बनाने का पवित्रतम मार्ग है। धर्म के आधार पर एक व्यक्ति दूसरे को प्रेम करता है। जिसमें विद्वेष हो वह धर्म नहीं और जिसमें अंधविश्वास हो वह भी धर्म नहीं है।[2] धर्म प्रकृतिमार्गी है। प्रकृति निरंतर एवं गतिशील है, और धर्म भी किसी क्षेत्र काल-सीमा से परे निरंतर एवं गतिशील है। विधि-विधान (नियम, आचार, स्वीकृति) को धर्म और निषेध यानी विधान विरुद्ध, अनियम, अनाचार, अस्वीकृति को अधर्म कहते हैं। समाज द्वारा मान्य नियम धर्म है, जबकि समाज द्वारा निषिद्ध नियम (कार्य एवं व्यवहार) अधर्म हैं। हिंदू धर्म केवल हिंदू समाज के मान्य नियमों से ही संबंधित है, क्योंकि हिंदू समाज के मान्य नियम सदैव प्राकृतिक होते हैं। हिंदू समाज कभी अप्राकृतिक एवं असामाजिक नियमों की स्वीकृति को स्वीकार नहीं करता है।

हिंदू धर्म का आधार शाश्वत वेद है, हिंदू धर्म में समाज की अवधारणा के स्थान पर लोकजीवन का सिद्धांत है, हिंदू अर्थ चिंतन की पूर्णता धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पुरुषार्थ में अवस्थित है, हिंदू धर्म का लक्ष्य है परम चैतन्य में प्रवेश और उस चेतना में प्रवेश करके जीवन के प्रति स्वयं को समग्रता से समझना, जानना और उसका निर्वहन करना। हिंदू धर्म में व्यक्तिगत एवं सामाजिक उत्कर्ष की पूरी संभावना, हिंदू धर्म में ईश्वर प्राप्ति अवरोधरहित और हिंदू धर्म में सबके कल्याण एवं वसुधैव कुटुम्बकम् के भाव है।[3]

हिंदू धर्म प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करके दिनचर्या तथा ऋतुचर्या के अनुरूप आचरण के संदर्भ बोध में अवस्थित है। सत्, ऋत् तथा ब्रह्म रूपी महत्त्वपूर्ण

---

1. डॉ. कृष्णगोपाल : बाबा साहब व्यक्तित्व और विचार, पृ. 239, 244
2. दिनकर, रामधारी सिंह: संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 251, 266
3. डॉ. विजय सोनकर शास्त्री, हिंदू वैचारिकी, पृ. 29

कारकों पर आधारित संपूर्ण रीति-रिवाज, परंपरा, पर्व, त्योहार, उत्सव और धार्मिक एवं आध्यात्मिक अनुष्ठान, दिनचर्या, ऋतुचर्या के साथ सत्यनिष्ठ व्यवहार एवं मर्यादित लोकाचार ही हिंदू जीवन-पद्धति है। हिंदू जीवन-पद्धति की इस व्यापक अवधारणा के साथ संबद्ध होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चारों पुरुषार्थ के सम्यक् कल्याणकारी रूप को ही हिंदू धर्म कहते हैं।[1]

वेदाधारित शाश्वत वैचारिकी में वैदिक समाज धर्मप्रधान था। उनका देवताओं की सत्ता, प्रभाव एवं उनकी व्यापकता में दृढ़ विश्वास था। उनके विचार में यह जगत् पृथ्वी, अंतरिक्ष और आकाश के रूप में तीनों लोकों में विभक्त है। अन्यान्य ग्रहों का पूर्ण प्रभाव पृथ्वी पर है। इसी आधार पर पृथ्वी पर भी प्रकृति और प्राकृतिक नियमन परिलक्षित होता है। हिंदू धर्म की प्राचीनता पर तो प्रश्न ही नहीं उठता, किंतु हिंदू नाम पर आधुनिक विद्वानों की त्वरित प्रक्रिया प्राप्त हो जाती है कि यह शब्द प्राचीन नहीं है।

हिंदू धर्म के दस तत्त्वों में सत्य, अहिंसा, क्षमा, अस्तेय यानी चोरी न करना, तपस्या, इंद्रियों पर नियंत्रण, पवित्रता, धैर्य, आध्यात्मिक ज्ञान और व्यावहारिक ज्ञान यानी विद्या इत्यादि का संपुट पाया जाता है। जो सत्य है वही धर्म है। जो पवित्र है वही हिंदू धर्म है।

उपरोक्त धर्म एवं हिंदू धर्म के सापेक्ष महर्षि वाल्मीकि की पहचान स्थापित है। किसी की पहचान यदि उसके कार्यों से होती है तो वाल्मीकिजी अपनी कृति रामायण द्वारा हिंदू धर्म से ओत-प्रोत पाए जाते हैं। वे स्वयं ही हिंदू धर्म हैं। रामायण में सर्वत्र ही प्रकृतिमार्गी को धर्म कहा गया है। रामायण का हिंदू धर्म जीवन को संबल प्रदान करता है। राम नाम के सहारे धैर्य एवं आत्म-नियंत्रता के सहारे जीवन की नौका पार लग जाने का पूरा विश्वास है। महर्षिजी ने नैतिकता को ही धर्म माना है और नैतिकतापूर्ण मर्यादित आचरण एवं व्यवहार को हिंदू धर्म का मुख्य आधार बताया है।

प्रेम और सहिष्णुता को धर्म की संज्ञा देकर महर्षि वाल्मीकि ने विश्वबंधुत्व भाव की हिंदू वैचारिकी को सर्वत्र जीवंत बनाए रखा है। वह धर्मोचित समाज की बात करते हैं अर्थात् जिस समाज में धर्म मान्य है वही समाज वास्तव में समाज है। हिंदू धर्म केवल हिंदू समाज में पाया जाता है, यह कहना सर्वथा सत्य है। धर्म के वैदिक प्रमाणों को वाल्मीकिजी ने रामायण में मान्यता प्रदान की है। पुरुषार्थ के सापेक्ष हिंदू धर्म में जिस धर्म की मान्यता है, उससे वाल्मीकिजी पूर्णरूपेण सहमत हैं।

हिंदू धर्म के संपूर्ण (दस) तत्त्वों के सापेक्ष महर्षि वाल्मीकि की रचना और उनकी भावना पूर्णतः खरी उतरती पाई जाती है। सत्य और अहिंसा को हिंदू धर्म में

---

1. डॉ. विजय सोनकर शास्त्री, हिंदू वैचारिकी, पृ. 17

विशेष महत्त्व दिया जाता है। वाल्मीकिजी और उनकी रचना (रामायण) इन दोनों तत्त्वों की प्रतिमूर्ति है। पवित्रता, तपस्या और इंद्रिय-निग्रह की आवश्यकता रामायण में अनेक कांडों एवं सर्गों में उल्लिखित है जिससे पता चलता है कि इन तीनों तत्त्वों के सापेक्ष भी हिंदू धर्म की पहचान है। सीता अधीर होकर भी धैर्य रखती हैं और श्रीराम अवगुणों एवं उत्पातों को प्रयत्नत: क्षमा भी करते हैं। किंतु हिंदू धर्म की सीमा का उल्लंघन होने पर क्रोध (हिंसा) करते भी हैं। ज्ञान, विद्या, दम नामक तत्त्वों की अन्विति भी कवि के ग्रंथ में है। हिंदू धर्म की पहचान सिद्ध करने के लिए महर्षि वाल्मीकि ने विभिन्न पात्रों के चित्रण को सजीव रूप दे दिया है। इसलिए यह कहना उचित है कि वाल्मीकिजी रामायण के माध्यम से स्वयं ही हिंदू धर्म की पहचान बने थे।

7.4 महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण

महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण को भी पवित्र हिंदू धर्मग्रंथों में स्थान दिया गया है। यह महाभारत से भी पूर्व की रचना है और इसका उल्लेख महाभारत में हुआ है। रामांयण में स्थापित 'राम' नाम स्वयं में एक बीजमंत्र है और एक शक्ति भी। राम कहें या रामायण कहें, दोनों का भावार्थ एक ही है। राम धर्म हैं तो रामायण भी हिंदू धर्म है। रामायण हिंदू धर्म, हिंदू संस्कृति, हिंदू लोकजीवन एवं हिंदू जीवन-पद्धति इत्यादि संपूर्ण का समुच्चय है। भगवान् श्रीराम का भावबोध है—रामायण। देव प्रतिमाओं की तरह यह स्वयं में भी पूज्य है।

पवित्र ग्रंथ रामायण का परिचय कराते हुए उसके महात्मय को इन पंक्तियों में व्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है—

'वेद जिस परमतत्त्व का वर्णन करते हैं, वहीं श्रीमन्नरामायाण तत्त्व श्रीमद्रामायण में श्रीराम रूप से निरूपति है। वेदवेद्य परम पुरुषोत्तम दशरथनंदन श्रीराम के रूप में अवतीर्ण होने पर साक्षात् वेद ही श्री वाल्मीकि के मुख से श्रीरामायण रूप में प्रकट हुए, ऐसी आस्तिकों की चिरकाल से मान्यता है। इसलिए श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की वेदतुल्य ही प्रतिष्ठा है।'

महर्षि वाल्मीकि का 'आदिकाव्य' रामायण इस पृथ्वी पर प्रथम काव्य का सम्मान अर्जित कर चुका है। यह सभी के लिए परमपूज्य है। भारत के लिए तो वह परम गौरव है। इसे हिंदुस्थान की वास्तविक और बहुमूल्य राष्ट्रीय संपदा कहा गया है। यह सर्वसंग्रहणीय, पठनीय, मननीय एवं श्रवणीय है। इसका प्रत्येक अक्षर महापातकनाशक माना गया है।[1]

---

1. बृहद्धर्मपुराण, 1/30/47

रामायण एक आधार ग्रंथ है। इसी को आधार बनाकर महर्षि वेदव्यास एवं अन्य कवियों ने महाभारत, पुराणादि ग्रंथों का निरूपण किया।[1] इस ग्रंथ की अगणित प्राचीन टीकाएँ हैं। अंग्रेजों ने भी संस्कृत के तथाकथित जर्मन विद्वान् मैक्समूलर को धन और सुख-सुविधाओं का लालच देकर इंग्लैंड बुलाया और रामायण तथा अन्य हिंदू धर्मग्रथों का संपादन करवाकर इसके उज्ज्वल स्वरूप को मिलावट करके विरूपित किया। गुलामी की दुर्गंध जिनमें अभी तक है, वे लोग केवल मैक्समूलर संपादित हिंदू धर्म-ग्रंथ खरीदते एवं पढ़ते हैं, भ्रामक सूचनाएँ पाते हैं और भ्रमित होते हैं। वास्तव में मैक्समूलर कभी हिंदुस्थान नहीं आया किंतु हिंदू धर्मग्रथों पर उसकी टिप्पणियों पर विश्वास करना कितने आश्चर्य की बात है। जिज्ञासुगण अध्ययन करते समय मैक्समूलर इत्यादि की मिलावट की बातें जान लेते हैं। उस अंश को अपनी नीर-क्षीर विवेक बुद्धि से सम्मुख प्रस्तुत करना भी शोध का एक महत्त्वपूर्ण विषय है।

आदिकाव्य होने के कारण रामायण में मिलावट सर्वाधिक आवश्यक समझा गया था। पहले तो उसे धर्म-ग्रंथ शेक्सपीयर के नाटक जैसे ही कल्पित लगे थे, परंतु अंग्रेज विद्वानों ने गहराई से अध्ययन किया तो वे भयभीत हो उठे, क्योंकि इन ग्रंथों में ज्ञान और विज्ञान दोनों था। विश्व का कोई भी मानव हेतु उदाहरणार्थ व्यावहारिक विषय ऐसा शेष न बचा जिनका सजीव एवं सार्थक चित्रण इनमें न हुआ हो। पानी से बर्फ बनाने की कला, फर्नीचर कला, कुटीर उद्योग कला, उपचार एवं शल्य-चिकित्सा की कला, उत्तम प्रजाति के वर्णशंकर पशु एवं जानवर की उत्पत्ति इत्यादि सबकुछ यहीं से सीखकर उसे यूरोप का शोधपरक ज्ञान बतलाया गया।[2] वैटिकन ने स्वीकार भी किया कि भारतीयों के साथ ज्यादती की गई।[3] फ्रेडरिक वाडमेर ने भी लिखा—'बाइबिल के रक्षक इतने भयभीत हो गए हैं कि उन्हें ऐसा लगने लगा है कि संस्कृत का वर्चस्व बाइबिल की मीनार गिरा देगा।'[4]

श्री सुरेश सोनी ने उक्त स्थिति का उल्लेख इन पंक्तियों में किया है[5]— 'जैसे-जैसे भारत, भारतीयता और हिंदू धर्म का अधिक प्रचार होने लगा वैसे-वैसे ईसाई धर्म प्रचारकों और पादरियों के कान खड़े हो गए। उन्हें लगने लगा कि यदि संस्कृत वाङ्मय का इसी प्रकार प्रचार चला तो सृष्टि का निर्माण 4004 ई. पू. हुआ तथा बाइबिल में व्यक्त विचार ही सर्वश्रेष्ठ विचार है, ये धारणाएँ ध्वस्त हो जाएँगी। अतः उन्होंने ऐसे

---

1. बृहद्धर्मपुराण, 1/30/47, 51, 55
2. धर्मपाल : भारत की लूट एवं बदनामी, पृष्ठ (विषय-प्रवेश 21-24),
3. वही, (विषय प्रवेश, पृ. 12)
4. वाडमेर, फ्रेडरिकः दि लूम ऑफ लैंग्वेज, न्यूयॉर्क, 1944, पेज 174
5. सोनी, सुरेशः हमारी सांस्कृतिक विचारधारा के मूल स्रोत, पेज 15

एक नहीं अनेक लोग तैयार किए जो भारतीय साहित्य और इतिहास की प्राचीनता, श्रेष्ठता और गहनता का विरोध करने के लिए आगे आए और उनका विरोध कोई साधारण विरोध नहीं रहा। इन लोगों ने भारतीय साहित्य, इतिहास, संस्कृति को कम-से-कम प्राचीन बताने के लिए उपलब्ध तथ्यों को अपने कुतर्कों से काटकर अप्रामाणिक और अवास्तविक बताया।'

वर्तमान समय में एक ओर आतंक का पर्याय इसलाम और दूसरी ओर ईसाइयत, दोनों में रक्तिम-प्रतिस्पर्द्धा के साथ विश्व पर छा जाने की कुत्सित दुर्भावनाएँ आ चुकी हैं और हिंदुस्थान की पावनभूमि को आतंकवाद का रणक्षेत्र बनाने का कुचक्र भी चल रहा है, ऐसे में आवश्यक हो गया है कि प्रत्येक हिंदू अपने धर्मग्रथों के महत्त्व को समझे। हिंदुस्थान की दर्शनात्मक विचारयात्रा का दर्शन करने के लिए वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, जैनागम, त्रिपिटक, न्याय, सांख्य, योगादि दर्शन तथा विभिन्न संतों द्वारा रचित ग्रंथ संपदा में संचित हमारी संस्कृति, परंपरा तथा तत्त्वज्ञान का परिचय हमारी आज की पीढ़ी के लिए आवश्यक है। ताकि हिंदू धर्मग्रथों पर आधारित हिंदू-धर्म शाश्वत रहे, उसकी प्रतिष्ठा बनी रहे और तद्नुरूप हिंदू जीवन-पद्धति में भी कोई वैश्विक परिवर्तन न आने पाए।

महर्षि वाल्मीकि की रामायण भी इसीलिए आज दैनिक अध्ययन का विषय होनी चाहिए। क्योंकि उसमें काव्यगुण एवं अन्यान्य सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं जो किसी दैनिक अध्ययन हेतु आवश्यक है।

रामायण की यह विशेषता भी अपने आप में आश्चर्य का विषय है कि आदिकवि ने बिना किसी प्राचीन काव्य को देखे और सहारा लिए ही सर्वोत्तम काव्य का निर्माण किया। इस ग्रंथ में ज्योतिषशास्त्र[1], ग्रह-नक्षत्र विज्ञान[2], आयुर्वेद विज्ञान[3], राजनीति विज्ञान[4], तंत्रशास्त्र[5] आदि का प्रणयन हुआ है। धर्मशास्त्र के लिए तो यह ग्रंथ परम प्रमाण है ही, अन्य ऐतिहासिक कथाएँ भी अनेक हैं और अर्थशास्त्र व्यवहार एवं आचार के साथ ही कुशलमार्ग का भी उल्लेख पाया जाता है। रामायण के दार्शनिक चिंतन में तप को ही सर्वसुलभता का शस्त्र बताया गया है। उसका मूल तत्त्व इस प्रकार उल्लिखित है—

'पवित्रतापूर्वक रहकर तपोनुष्ठान करते हुए ईश्वर की आराधना करना एवं अधर्म

---

1. रामायण (युद्धकांड) सर्ग 10
2. वही, अयोध्याकांड 41/11 एवं युद्धकांड 102/32-34
3. वही, युद्धकांड, सर्ग 91
4. वही, युद्धकांड, सर्ग 18 एवं 63/2-25
5. वही, युद्धकांड, 73/24-28

से सदा दूर रहना।'

भगवान् श्रीराम की पर-ब्रह्मरूप का प्रतिष्ठापरक यह ग्रंथ आधुनिक ऐतिहासिक शैली में न होने से भले ही इतिहास के स्वरूप में न स्वीकार किया जाए, किंतु भला हजारों-लाखों वर्षों का इतिहास क्या आज के विकास के चश्मे से पढ़ा जा सकता है ?[1] तात्पर्य यह कि रामायण में इतिहास, भूगोल, राजनीति, मनोविज्ञान आदि संपूर्ण विषय हैं जिनसे सभी प्रकार की जिज्ञासाएँ एवं ज्ञान-पिपासा शांत हो सकती हैं। महान् ग्रंथ में बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किंधाकांड, सुंदरकांड और लंकाकांड है जिनमें क्रमश: 77, 119, 75, 67, 68, 128 (कुल 534) सर्ग हैं। सातवाँ उत्तरकांड जिसे प्रक्षिप्त माना जाता है, उसमें भी 111 सर्ग हैं।

रामायण की पाठ-विधि प्रत्येक प्रति में दी गई होती है। ग्रंथ के प्रति ये पंक्तियाँ वाल्मीकि के साथ अन्य समाज के लिए अत्यधिक प्रेरक एवं उत्साहवर्द्धक हैं—

'राम भगवान् के रूप में जन-जन में पूजे ही नहीं जाते बल्कि राम का नाम भगवान् का नाम राम से स्वास-स्वास जपा भी जाता है। जब तक यह धरती, नदियाँ, सूरज, चाँद और सितारे रहेंगे तब तक राम, रामायण और ऋषि वाल्मीकि का नाम अमर रहेगा।'

7.5 महर्षि वाल्मीकि एक भागवत रूप

भगवान् को माननेवाले भाग्यवान होते हैं। भाग्यशाली हैं वे लोग जिनका मन भगवान् में लगता है, उसी में लीन रहता है और अंततोगत्वा इस नश्वर शरीर का परित्याग करके उनकी पवित्र आत्मा उसी परमात्मा में ही विलीन हो जाती है। भगवत्कृपा से जिनको यह सौभाग्य प्राप्त होता है और वे भगवान् को परमप्रिय हो जाते हैं, वे ही परम भागवतस्वरूप हो जाते हैं।

भागवत् रूप भगवान् का ही प्रतिरूप होता है। भक्ति जब भगवान् से स्वीकृत होकर 'तथास्तु' प्राप्त करने में सफल होती है, मानव का स्वरूप भी ऐसे में भागवत् स्वरूप हो जाता है। भागवत स्थिति के लिए कोई भवसागर नहीं रह जाता, कोई भवबाधा नहीं रह जाती और नरक का भय तो दूर भाग ही जाता है।

महर्षि वाल्मीकि को बड़े सौभाग्य से भागवत रूप प्राप्त हुआ था। परंतु इसलिए नहीं कि वह प्रचेता-पुत्र यानी नारदादि के भ्राता थे, बल्कि इसलिए कि वे भगवान् श्रीराम के प्रथम और अनन्य भक्त थे। जन्मांतर में व्याध होने का पातक भी उनको भागवत होने से नहीं रोक पाया। उनके व्याध-कर्म भी उनको नरकगामी नहीं बना सके।

---

1. वही (गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण), प्रथम भाग-नम्र निवेदन, पृष्ठ 7

भागवत् आस्था की दिशा में उनकी परम् निष्ठा एवं आस्था थी। दृढ़विश्वास भी था। फिर विधि-त्रुटि के दोष तो भक्तिभाव की पृष्ठभूमि पर थोथा की भाँति उड़ गए। ऐसे में जो शेष रहा वही तो भागवत रूप था।

वर्तमान वाल्मीकि सफाईकर्मी जाति के लोग महर्षि वाल्मीकि के उसी भागवत रूप को नमन करते रहते हैं। महर्षि वाल्मीकि का भागवत रूप ही उनके लिए एक दिशा बोध है जिसके अनुसार चलकर वे हिंदू धर्म में बने रहे। अपने आदि आचार्य के भागवत रूप के माध्यम से ही वे अपने प्रभु श्रीराम तक पहुँच सकेंगे, ऐसा उनको विश्वास है।

महर्षि वाल्मीकि के भागवत रूप को वाल्मीकि समाज आज इसलिए नमन करता है क्योंकि विदेशी आक्रांताओं एवं शासकों के दमन, दलन, उत्पीड़न, शोषण इत्यादि के समय एकमात्र उनकी ही कृपा से हिंदू धर्म की रक्षा हो सकी थी और इसलाम अस्वीकार करने की उनमें दृढ़ता आई थी। वे महसूस करते हैं कि जैसे महर्षि वाल्मीकिजी के भागवतस्वरूप की कृपा से उनको अरब के आक्रांता मुगलों और अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति मिली, वैसे ही और उसी भागवत की कृपा से उनको कोई ऐसी दिशा अवश्य मिल जाएगी जिस ओर चलकर वे अपनी वर्तमान दयनीय एवं अभावग्रस्त स्थिति यानी दलित दशा को परिवर्तित और उन्नत कर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक ढ्ंग से उन्नत बना सकेंगे।

भगवान् श्रीराम को प्रत्येक हिंदू के लिए जीवन का आधारस्वरूप देने के कारण महर्षि वाल्मीकि सभी के लिए भागवतस्वरूप हो गए हैं, किंतु उन्हें आत्मसात् करने वाला हिंदू समाज न जाने किस कारण आपस में अंतरंग नहीं बन पा रहा है। उनकी चिंतनता और विचारशीलता में बहुत बड़ा अंतर है। वर्तमान वाल्मीकि समाज सही दिशा में है—ईश्वर की अपेक्षा उनके भागवतस्वरूप को अपना प्रथम समर्पण प्रेषित करता है, अर्थात् महर्षि वाल्मीकि को (उनके भागवत रूप को) ईश्वर प्राप्ति एवं उनकी कृपा को पाने या उन तक पहुँचने का माध्यम मानता है। इसलिए सीधे ईश्वर के दरबार में आवाज न देकर पहले उनके भागवतस्वरूप की भक्ति करता है ताकि वह उनको ईश्वर के पास ले जाएँ।

दूसरी ओर, जो लोग वाल्मीकि समाज से दूरी बनाए हुए हैं, भागवत (महर्षि वाल्मीकि) से दिशाबोध पाकर ही ईश्वर से जुड़ने का यत्न करते हैं। धर्म में बने रहकर भी धर्म का लाभ आहरित नहीं कर पाते हैं। रहस्य समझ भी नहीं पाते। परंतु जो सबकुछ जानते हैं, महर्षि वाल्मीकि के भागवतस्वरूप को सहायक बनाकर ही भगवान् श्रीराम के पास तक पहुँचने का यत्न करते हैं और सफल भी होते हैं। ऐसे ही लोग समाज में भेदभाव नहीं जानते और अपने लिए अपने जैसा ही वाल्मीकि समाज को भी जानते और मानते हैं।

महर्षि वाल्मीकि का भागवतस्वरूप हिंदू धर्म के सभी दस तत्त्वों का समुच्चय है। उसमें किसी भी एक तत्त्व तक की कमी नहीं है। उसमें साकार और निराकार, दोनों ही प्रकार की भगवद्‌भक्ति का दिशा बोध है। तपोनिष्ठ जीवन और शरीर उसी समय तक है जब तक श्रीराम का सान्निध्य अलभ्य है। उनके लिए मन में भाव मात्र आते ही शरीर से आत्मा को मुक्ति मिल जाती है। वनगमन के समय हजारों वर्ष से तपरत विभूतियों की आत्माओं को उनके शरीर से मुक्त किया था भगवान् श्रीराम ने। दूसरी तरफ पत्थर (अहल्या) को शरीर और जीवन, दोनों प्रदान किया। वर्षों से मातंग ऋषि के आश्रम में भगवान् श्रीराम की प्रतीक्षारत शबरी को स्वर्ग से विशेष विमान बुलाकर श्रीराम द्वारा स्वर्गलोक को भेजने का प्रकरण प्रत्येक व्यक्ति को आकर्षित करता है। परम भागवत इसी प्रकार से अपने प्रभु से सदैव सबकुछ पाते रहते हैं। वाल्मीकिजी यही चाहते थे कि लोग उन्हें जान न पाएँ कि वे कौन हैं, भगवान् श्रीराम ने उन्हें परमभागवत बनाकर वही स्थिति ला दी—ऐसे महान् ऋषि के श्रीचरणों में वाल्मीकि समाज तो भावविभोर होकर कोटि-कोटि नमन् करता पाया जाता है, साथ ही अन्य हिंदू धर्मावलंबी भी उन्हें भगवान् वाल्मीकि कहकर सम्मान प्रदान करते हैं।

7.6 करोड़ों वाल्मीकि जाति के लोगों के श्रद्धा-केंद्र महर्षि वाल्मीकि

महर्षि वाल्मीकि ने हिंदू समाज को भगवान् श्रीराम का दर्शन कराया और ज्ञान भी प्रदान किया कि भगवान् श्रीराम कैसे मिल सकते हैं। महर्षि वाल्मीकि ने हिंदू धर्म को भगवान् श्रीराम जैसा एक संबल प्रदान किया जिसके बल पर आज संपूर्ण हिंदू समाज जय श्रीराम के जयघोष के साथ हिंदू, हिंदुस्थान और हिंदू धर्म की रक्षा में डटा हुआ है। महर्षि वाल्मीकि वह प्रकाश-पुंज हैं जिनके प्रकाश से आज का संपूर्ण हिंदू समाज प्रकाशमान है। धर्म-पथ पर चलते हुए धार्मिक वृत्ति से स्वधर्म का अनुपालन करने के मार्ग में अब कोई बाधा नहीं रह गई है—ऐसा मार्गदर्शन महर्षि वाल्मीकि से प्राप्त हुआ है। करोड़ों हिंदू आज भी महर्षि वाल्मीकि के प्रति श्रद्धालु हैं।

हिंदुस्थान के समस्त हिंदू विभिन्न प्रकार की भाषाओं एवं बोलियों को विहंगम रूप में आत्मसात् किए हुए हैं। भगवान् श्रीराम को प्रत्येक के पास पहुँचाने के लिए रामायण ही आधारग्रंथ बना। उसी ग्रंथ के आधार पर महाभारत लिखी गई तथा अन्य भाषाओं एवं लिपियों में इस सर्वोपयोगी ग्रंथों का प्रणयन हुआ। देश के प्रत्येक हिंदू वाल्मीकिकृत रामायण पर आधारित अपने-अपने साहित्य में भगवान् श्रीराम के दर्शन एवं पूजन कर पाने में सफल रहे हैं। इसके लिए वे सभी अपने मूल ग्रंथ रामायण और उसके रचयिता भगवान् वाल्मीकि के प्रति श्रद्धालु हैं।

शिक्षा के अभावग्रस्त और भाषा एवं लिपियों के संज्ञान से अपरिचित लोगों के

लिए भी भगवान् श्रीराम दुर्लभ नहीं रह पाए, ऐसी व्यवस्था महर्षि वाल्मीकि ने कर रखी थी। उन्होंने भगवान् श्रीराम की लीलाओं को संसार के रंगमंच पर लाकर रामायण को दृश्य-रामायण का स्वरूप प्रदान किया और भगवान् श्रीराम को दशरथनंदन के रूप में घुटनों पर चलाया, किलकारियाँ लगवाईं, उनका विवाह किया, वनवास दिया, लंकाविजय दिखलाया और ऐसे ही अनेक दृश्यों से लोगों को भगवान् श्रीराम के बारे में जानकारी कराईं। उन करोड़ों अनपढ़ अथवा अपढ़ लोगों के लिए भी महर्षि वाल्मीकिजी श्रद्धा के केंद्र बन गए।

श्रीमद्रामायण को रंगमंच पर प्रस्तुत करके भगवान् श्रीराम के प्रति सामान्य हिंदुओं को तृप्त करनेवाले महर्षि वाल्मीकि ने दृष्टिहीनों की भी श्रद्धा प्राप्त की। उन लोगों ने अपने प्रभु को अपने अंत:चक्षुओं से देखा और उनकी मधुर तथा दिव्य वाणी को कानों से सुना। जो मूकबधिर थे उन्होंने आँखों को संतृप्त किया। दुखियों ने देखा तो उनके दु:ख दूर हो गए। दुर्बलों ने देखा तो बलवान हो गए। दरिद्रों ने देखा तो धनवान हो गए। सोद्देश्य और सफल प्रस्तुति करके महर्षि वाल्मीकि भी महान् हो गए। करोड़ों लोग उनके प्रति श्रद्धावान हुए।

महर्षि वाल्मीकि द्वारा स्मरण कराया गया भगवान् श्रीराम का नाम इतना मधुर है कि लोगों ने अपने पालतू तोता-पक्षियों को यह नाम रटा दिया और वह दिन-रात श्रीराम, सीताराम रटने लगे जिसे सुनकर करोड़ों हिंदू आध्यात्मिक और भौतिक आनंद एक साथ पाने लगे। उन सभी लोगों ने इसके लिए भी अपने आदिकवि वाल्मीकि को ही श्रद्धा अर्पित की। गणिका ने सोचा भी न था कि अपने तोता को राम नाम सिखलाने का प्रसाद सीधा उनको प्राप्त होगा और वह भवसागर से पार उतर जाएगी। महर्षि व्याघ्र, सज्जन व्याघ्र, शिला गौतमी आदि सभी जीव बंधन से मुक्त हो गए। यह देखकर ही दलितों का झुकाव अपने पतितपावन राजाराम की ओर हुआ और वे आकंठ उसी में निमगन रहने लगे। कठिन-से-कठिन काम भी वे राम नाम गाते हुए पूरा करने लगे। अपने प्रियजनों के पार्थिव शरीर कंधों पर रखकर जब वे राम नाम सत्य है बोलने लगे तो उनके दारुण दु:ख भी दूर हो गए। राम नाम की जीवन घूटी ने मृतसंजीवनी बनकर करोड़ों को नव-जीवन भी दिया। यह सब अद्भुत चमत्कार था और इसके मूल में महर्षि वाल्मीकिजी थे, इसलिए करोड़ों लोगों के वे श्रद्धा-केंद्र बन गए। जीवन के अंतिम क्षण में महात्मा गांधी ने भी 'हे राम' बोलकर संसार को एक संदेश दे ही दिया।

भगवान् श्रीराम ने शबरी, केवट, भील, रीछ, वानर आदि सबको अपनाया, सबका उपकार किया और सबसे सहयोग भी लिया। केवट ने पार होने की मजदूरी नहीं ली, क्योंकि भवसागर को पार करने का उसे आशीर्वाद पहले ही मिल चुका था। शबरी ने जूठे बेर खिलाए। उसने प्रेम में आतिथ्य की विधि की सुधि खो दी

थी। भगवान् श्रीराम ने भी सामाजिक समरसता का साक्षात् प्रदर्शन किया। साधारण से साक्षात्कार में भगवान् श्रीराम ने साम्यवाद और समरसता के अंतर को समझाने का अच्छा प्रयास किया।

धर्म के याज्ञिक कार्यों में विघ्न उत्पन्न करनेवालों को दंडित किया और ऋषियों-मुनियों की सेवाभाव से सुरक्षा किया और उनके आशीर्वाद लेकर अधर्म करनेवालों पर विजय प्राप्त की। समुद्र को सुखा डालने की अपरिमित क्षमता रखने के बाद भी उससे बार-बार अनुरोध ही किया कि वह उनको पार उतरने की युक्ति बतलाए। हल्का सा आक्रोश करते ही अहंकारी हाथ उठाकर शरणागत हुआ और सेतु बनाने की सहमति दे दी। अहंकार न करने की एक संस्कृति का यह एक संदेश था। अकारण क्रोध न करने की भी एक संस्कृति का स्वरूप दिया। यह सब भगवान् श्रीराम ने दिया जो लोगों के जीवन को सार्थक बनाने के लिए पर्याप्त है। ऐसे श्रीराम की महिमा का ज्ञान कराने वाले महर्षि भला क्यों नहीं करोड़ों हिंदुओं के साथ वाल्मीकि समाज की श्रद्धा के भी केंद्र होंगे?

सर्वशक्तिसंपन्न भगवान् श्रीराम ने कहीं भी अपनी क्षमता का प्रदर्शन नहीं किया और सदैव मर्यादा में रहने की शिक्षा दी। प्रमाद से मुक्त रहने, पुरुषार्थ करने और ऋषियों-मुनियों के प्रति विनम्र रहने का गहन ज्ञान कराया। सत्य पर दृढ़निश्चय रखना और सत्य को अपराजेय मानना उन्होंनें ही अपनी अलौकिक लीलाओं द्वारा प्रदर्शित किया। उन्होंने लोगों में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत की और मित्रता का निर्वहन नियम बतलाया। असहायों के उत्थान का श्रीराम का आदर्श सदैव अनुकरणीय रहेगा। भेदभावरहित समाज और रामराज्य यानी प्रजा-राज्य के संविधान को प्रस्तुत करके भगवान् श्रीराम ने मर्यादा पुरुषोत्तम का अलंकरण धारण किया और मानव संसार को प्रेरित किया कि प्रत्येक व्यक्ति अपने सत्कर्मों से श्रीराम बने। महर्षि वाल्मीकि ने यह अवसर प्रदान किया। इसलिए वे करोड़ों लोगों के श्रद्धा के केंद्र हैं।

7.7 वाल्मीकि एवं सुदर्शन इत्यादि समाज के विशिष्टि पुरोधा

वाल्मीकि एवं सुदर्शन समाज में विभिन्न समयों पर अनेक पुरोधाओं का प्रादुर्भाव हुआ। किसी ने ऋषि-महर्षि परंपरा को पुनीत किया, किसी ने संत-परंपरा का निर्वहन किया, किसी ने राज्य-प्रशासन की भूमिका निभाई और किसी ने स्वतंत्रता संग्राम में अपना जीवन बलिदान किया। इनका संक्षिप्त परिचय सामान्य जानकारी के लिए दिया जा रहा है।

ऋषि एवं संत-परंपरा के पुरोधा

ऋषि-परंपरा में सबसे पहले महर्षि वाल्मीकिजी का नाम लिया जाता है। रामायण के रचयिता और भगवान् श्रीराम के नाम को संपूर्ण हिंदू समाज के हृदयस्थल में संचरित-प्रसरिकर्ता आर्यभाषा के आदिकवि महर्षि वाल्मीकि आज भी न केवल वाल्मीकि समाज में अपितु विश्व हिंदू समाज में पूज्य हैं। उन्होंने हिंदू, हिंदू धर्म, हिंदू संस्कृति, हिंदू सभ्यता, प्रकृतिपरक हिंदू जीवन-पद्धति यानी संपूर्ण हिंदुस्थान को अपनी रचना (रामायणम्) से 'राम' नाम का वह बीजमंत्र दिया जो आज भी किसी हिंदू के लिए सुरक्षा-कवच बन गया है। हमारे राम, हमारे भगवान् हैं, हमारे जीवन के प्राण हैं, यानी हमारे सबकुछ हैं। साकार-ब्रह्म की उपासना के प्रतिमूर्ति श्रीराम सर्वव्यापी होकर घट-घट में वास करते हैं।

वाल्मीकि समाज अपने महान् ऋषि के कारण भी हिंदू समाज में अपना विशिष्ट स्थान स्थापित करने में सफल है। महर्षि वाल्मीकि के हिंदू तत्त्वों को मन-मस्तिष्क में धारण करते हुए विदेशी आक्रांता शासक मुगलों के प्रचंड दमन, दलन एवं उत्पीड़न को निष्प्रभावी बनाने हेतु मैला ढोने तक का दंड स्वीकार किया किंतु हिंदू धर्म की रक्षा करने का अप्रतिम साहस करनेवाली यह जाति ऋषि परंपरा में भी चिरअमर हो चुकी है। इसका एक कारण महर्षि वाल्मीकिजी स्वयं हैं।

वाल्मीकि एवं सुदर्शन इत्यादि (सफाईकर्मी) जाति की ऋषि-परंपरा में जैसे महर्षि वाल्मीकिजी का आविर्भाव अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, उसी प्रकार से उसकी संत-परंपरा भी स्तुत्य श्रेणी की है। विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के नर-संहार-काल में मूर्ति-पूजा को इसलामिक आक्रोश से बचाने, चमचमाती हुई नग्न मुसलिम-आक्रांताओं की तलवारों से हिंदू-सिरों के स्वाभिमानों को सुरक्षित रखने और हिंदू धर्म कर्मों को अनवरत प्रतिपादित रखने हेतु निराकार ब्रह्मोपासना-विधि का अनुसरण आवश्यक था। संत रैदासजी की पद्धति का अनुसरण करके वाल्मीकि समाज के लिए संत वाल्मीकि एवं नवलजी महाराज ने भी निराकार पूजा-पद्धति को अपनाने और महाराज सुदर्शनजी ने हिंदू धर्म की रक्षा हर प्रकार से करने का आवाहन किया। आज निराकार-ब्रह्मोपासना 'नवल-धर्म' के नाम से वाल्मीकि समाज को गौरवान्वित किए हुए है। उनका समाधि-स्थल वाल्मीकि समाज का पवित्र तीर्थ बन चुका है।

राज्य-प्रशासन परंपरा में वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि समाज के पुरोधा

राज्य-प्रशासन में संबंधित वाल्मीकि एवं सुदर्शन पुरोधाओं की एक लंबी अनुसूची बनती है, और उनकी जीवनगाथाएँ इतिहास के अमिट पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में लिखी

मिलती हैं। कुछ का उल्लेख लोकगीतों, लोककथाओं और लोकप्रचलित किंवदंतियों में भी पाया जाता है। अनेक पुरोधाओं का उल्लेख रोटी पर बिके मुसलिम इतिहासकारों ने अपने सुल्तानों और बादशाहों के सम्मानभंग को बचाने के लिए नहीं किया और अनेको का नाम अंग्रेजों ने भी ढूँढ़-ढूँढ़कर मिटवाया। ग्रंथों में प्रक्षिप्तता करते समय उनके नाम और जाति को भी बदल दिया। कहीं-कहीं गुमनाम दलित लिखकर अधूरा छोड़ दिया। फिर भी इतिहास के पूरे पन्ने में वे परिवर्तन न कर सके। अतः जो मिल पाए हैं उनका परिचय अग्रलिखित है।

हिंदुस्थान में जो योद्धा उनके उत्पीड़न एवं शोषण का शिकार हुए, सिर पर मैला ढोया एवं अपना स्वाभिमान भंग कराया, अपनी गरदनें कटाकर इसलामिक तलवारों की धार मोटी कर दी, इसलाम को निरंतर ठोकरें मारी, हिंदू-कुटुंबों की जूठन खाई परंतु मुसलमानों का स्पर्श किया हुआ जल भी ग्रहण नहीं किया, शासन-सत्ता को सदैव ललकारते रहे और जब भी अवसर मिला, इसलाम को तार-तार किया। हरिहर और बुक्का, बंदा बैरागी और वाल्मीकि कुंबा, कालू मदारी का नाम ऐसे ही वीरों में था जो गर्व के योग्य है।

मध्य प्रदेश में मंडु, मांडव, मांडवगढ़, मंडप, मंडपदुर्ग जैसे कई नामों से प्रसिद्ध एक नगर है जो जनपद धार में पड़ता है। 1405 ई. में दिलावर खाँ का पुत्र होशंगशाह धार से अपनी राजधानी यहीं मंडू लाया था। पहले वहाँ कन्नौज के प्रतिहार शासन करते थे। 12वीं-13वीं शताब्दी में परमार-वंश का शासन था। अलाउद्दीन की सेना ने परमारों का धर्माभिमान एवं स्वाभिमान भंग करने हेतु उनको मैला ढोने में लगाया और भंगी बनाया था। परंतु एक भी परमार क्षत्रियों को वह इसलाम स्वीकार नहीं करा पाया। अलाउद्दीन खिलजी के बाद वहाँ 1401 ई. में मालवा के प्रशासक दिलावर खाँ गोरी का शासन था, जो पठान वंश-परंपरा का था। उसके पुत्र होशंगशाह के बाद सुल्तान गयासुद्दीन ने उस किले में 15 हजार सुंदरियों का एक विशाल संग्रह रखा था। 1531 ई. में बहादुरशाह, 1534 ई. में हुमायूँ और 1554 ई. में पुनः हिंदू राजा बाजबहादुर का शासन स्थापित हुआ था। 1570 ई. में अकबर के सेनापति आदम खाँ और आसफ खाँ ने बाजबहादुर से मांडू छीना। उसकी रूपवती पत्नी ने विष खा लिया। मुगलों के बाद वहाँ पेशवाओं का अधिकार हुआ और अंत में इंदौर की मराठा रियासत में मिला लिया गया। दुर्ग में आज भी आलमगीर गेट और लालकोट के पास स्थित भंगी गेट हमारे परमार राजवंशीय राजपूतों के हिंदू धर्मरक्षार्थ सफाईकर्मी बनाए जाने की कहानी कहता है।[1]

---

1. मध्य प्रदेश के धार जिले में भवरचित मांडू जिले के प्रवेशद्वार का नाम है।

एक दूसरी ऐतिहासिक सत्यकथा भी सफाईकर्मी समाज के साथ-साथ संपूर्ण हिंदू धर्मरक्षकों के सिर को ऊँचा कर देती है। यह भी परमार राजवंशीय परंपरा के क्षत्रियों से जुड़ी हुई है जिनको हिंदू धर्म त्यागकर इसलाम न स्वीकारने के कारण बलपूर्वक वाल्मीकि, सुदर्शन, इत्यादि (सफाईकर्मी) बनाया गया था।

इतिहास में लिखा है कि अलाउद्दीन खिलजी (1296-1316 ई.) के आदेश से ऐलुल्मुल्क मुल्तानी द्वारा ज़िन दिनों मुल्तान में बड़े पैमाने पर लूटपाट एवं इसलामीकरण किया जा रहा था। गुजरात के परमार राजपूत वंश की बरवारी (परवारी) गोत्र के हजारों हिंदू भी बंदी बनाकर दिल्ली ले जाए गए थे। अबोध बच्चों को बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया और वयस्क स्त्री-पुरुषों को मैला ढोना (सफाईकर्मी) स्वीकारने पर हिंदू बने रहने दिया गया। जिन बालकों को मुसलमान बनाया गया उनमें दो बालक राजवंशीय घराने के थे। बड़े बालक सुखरन परमार को हसनरजा तथा छोटे को हिसामुद्दीन नाम दिया गया। अलाउद्दीन को उसके विश्वासपात्र हिजड़ा मलिक काफूर ने 6 जनवरी, 1316 ई. को विष देकर मार डाला तथा अपने 6 वर्षीय पालक पुत्र उमर खाँ को दिल्ली के सिंहासन पर बैठाया। अलाउद्दीन के बेटों ने काफूर की हत्या कर दी और 35 दिनों बाद पिता की गद्दी पर मुबारकशाह बैठा। इसमें हसनरजा ने काफी सहयोग किया था, इसलिए उसे खुसरोशाह की पदवी तथा उसके भाई हिसामुद्दीन को गुजरात का प्रांतपति बनाया गया।

सुल्तान मुबारकशाह के दरबार में जियाउद्दीन बरनी विद्यमान था। वह बहुत पहले से सुल्तानों का चारण (भाट) अथवा दरबारी गद्य लेखक था। सुल्तानों के आदेशों को प्रशंसापरक बनाकर जनता में प्रचारित कराना उसका काम था। वह अरबी नस्ल का होने से भारतीय मुसलमानों का कट्टर विरोधी था। वह हसनरजा एवं उसके भाई की पदोन्नति के विरुद्ध था। परंतु उसकी दाल नहीं गली। सुल्तान ने उसे दरबार में ठोकर मारकर भगा दिया था, ऐसे व्यक्ति के संकलन (तारीखे फीरोशाही) को सुल्तान फीरोजशाह ने भी महत्त्व नहीं दिया, क्योंकि उसे बरनी की सुरा-सुंदरी की कमजोरी का पता चल चुका था। ग्रंथ के नामकरण पर भी उसने बरनी पर दया नहीं की। बरनी ने मरते समय सभी सुल्तानों को दुःखी मन से अपशब्द कहा था। उस पर दया की अंग्रेजों ने, परंतु उसके मरने के बाद 'मध्यकालीन महान् इतिहासकार' कहकर व्यंग्य किया। भ्रमवश आज भी लोग उसे इतिहासकार ही मानते हैं जबकि वह झूठ का भंडार था।

मुबारकशाह का विश्वास प्राप्त करके खुसरो ने गुजरात के प्रांतपति अपने भाई के सहयोग से अपने हिंदू भाइयों को दिल्ली बुलाया और महल में रखा तथा उनके सहयोग से 4 अप्रैल, 1320 ई. को मुबारकशाह का अंत करके 13 अप्रैल, 1320

ई. को दिल्ली की गद्‌दी पर अधिकार कर लिया। इसलामिक सत्ता समाप्त करके खुसख (खुसरोशाह) ने इसलाम को ठोकर मारने एवं अपनी हिंदू योद्धा प्रजाति का परिचय देते हुए एक ही आदेश से उसने संपूर्ण राज्य में हिंदू देवी-देवताओं की विधिवत् पूजा-पाठ प्रारंभ करा दी। भारतीय मुसलमान दरबारी हिंदू धर्म में वापस लौटे। हजारों मुसलिम बालाओं का हिंदू बालकों से विवाह कराया गया। कुरान की प्रतियाँ फाड़कर जला दी गईं। महलों में पूजा-पाठ व शंखनाद सुनाई दिया।[1]

अलाउद्‌दीन खिलजी के एक विश्वासपात्र गयासुद्‌दीन तुगलक और कुछ कट्‌टर मुसलमानों ने दिल्ली पर चढ़ाई की। खुसरोशाह पराजित हुआ, क्योंकि उसका सहयोग तत्कालीन बचे हुए कुछ हिंदू राजाओं ने भी नहीं किया था। उसी स्थान पर खुसरोशाह की भी हत्या 5 दिसंबर, 1320 ई. को कर दी गई। उसने कुल 4 माह तक शासन किया।

सल्तनतकाल की ही भाँति मुगलकाल में भी वाल्मीकि एवं सुदर्शन (सफाईकर्मी) जाति के पुरुषों एवं नारियों ने शासन और सत्ता से टकराने, उसे चुनौती देने और पछाड़ने का कार्य किया था। लालबेग भंगी के विद्रोह को बड़ी कठिनाई से कुचला गया और उसे विवश होकर बलपूर्वक भंगी से मुसलमान बनाया गया। उसके साथी विद्रोहियों को भी बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया। वाल्मीकि एवं सुदर्शन समाज के जिस वर्ग को सफाईकर्मी (भंगी) से बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया था, वे लोग आज भी लालबेग को पूजते हैं। इसी क्रम में मुगलों को चुनौती देते हुए जिन सफाईकर्मी जाति के लोगों को मार दिया गया था उनमें सेरुलाल, कलपा उर्फ पवन और केसरबाई को सम्मान के साथ पूजा जाता है। सभी इतिहासकार इनके विषय में मौन हैं, किंतु लोककथाओं एवं लोकगीतों में इनकी चर्चा वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति के घरों में होती है।

कालू मदारी भी सफाईकर्मी (भंगी) समाज से था। छत्रपति शिवाजी को जब धोखे से बंदी बनाकर औरंगजेब ने जेल में डाल दिया तो उनको छुड़ाने का साहस कालू मदारी ने बड़े ही यत्न से किया था। मदारी के वेश में वह जेल के पास पहुँचा और जेलर से 'पेट की रोटी' का सवाल किया तथा उसकी चापलूसी भी की। जेलर की अनुमति पाकर वह कैदियों को खेल-तमाशा दिखाने अंदर पहुँचा और झोली में आदमी उड़ा देने का चमत्कार दिखाने की बात कहकर शिवाजी को बुलाया, झोले में भरा और यह कहते हुए चलता बना कि इसे अभी झोले से उड़ाकर कैदी-कक्ष में पहुँचाता हूँ। लोग कैदी-कक्ष में गए तब तक वह शिवाजी को लेकर जेल से

1. बी.डी. महाजन, मध्ययुगीन भारत, भाग-2, पृ. 391

बाहर आ गया। जेलर को धन्यवाद दिया कि अंदर से काफी सामान उसे मिला है। महाराष्ट्र के लोग आज कालू मदारी की चर्चा करते सुने जा सकते हैं। परंतु इतिहास में इस घटना की भी चर्चा नहीं है।

इतिहास की यह घटना भी कुछ इतिहास ग्रंथों में नहीं मिलती है, परंतु वी.डी. महाजन ने इसका उल्लेख किया है—'गुरु तेगबहादुर सिंह को इसलाम न स्वीकारने पर औरंगजेब ने मृत्युदंड दे दिया। उनके पुत्र गुरु गोविंद सिंह ने सिक्खों के रूप में हिंदू शक्ति को केंद्रित करने का प्रयास किया। उनके बाद सिक्खों की 12 मिस्लें बनीं। इनमें से एक भंगी मिसल[1] भी थी।'

अहमदशाह अकाली के आक्रमणों से टक्कर लेने के लिए पंजाब में सिक्खों की जो 12 मिस्लें फैजलपुरिया अथवा सिंहपुरिया, आहलुवालिया, भंगीमिस्ल, रामगढ़िया, कन्स्यिा, सुकरनकिया, पुलकिया, डल्लैवालिया, निशानवालिया, करोड़सिंधिया, शहीद या निहंग, नक्कई मिस्ल) बनी उनमें भंगी मिस्ल की स्थापना सरदार हरि सिंह ने की थी। यह संख्या और क्षेत्र की दृष्टि से सबसे शक्तिशाली मिस्ल थी। हरि सिंह ने इस मिस्ल की सीमा का पाक पट्टन तक विस्तार किया। लाहौर और अमृतसर भी इस मिस्ल में मिला लिए गए। हरि सिंह के बाद झंडा सिंह इसका सरदार बना, जिसके समय में इस मिस्ल की शक्ति अपने उच्च शिखर पर पहुँच गई। उसने कसूर, रामगढ़ और जम्मू पर विजय प्राप्त की। 'जमजमा' के नाम से प्रसिद्ध तोप भी छीनी और 1774 ई. में जब उसकी हत्या एक भाड़े के सैनिक द्वारा कर दी गई तो इसके भाई मंटा सिंह ने इसका स्थान लिया। 1782 ई. में इसकी मृत्यु के पश्चात् मिस्ल का ह्रास होने लगा तो रणजीत सिंह ने इसे बिना अधिक कठिनाई के अपने राज्य में मिला लिया।[2]

स्वतंत्रता संग्राम के वाल्मीकि पुरोधा

स्वतंत्रता संग्राम का आरंभ 1857 ई. से माननेवाले यह जानते हैं कि इसमें सैनिकों ने विद्रोह इसलिए किया था क्योंकि बंदूकों में कारतूस दाँतों से काटकर भरनी होती थी और वह कारतूस गाय तथा सूअर की चरबी से बँधी होती थी। इसमें धार्मिक दृष्टि से हिंदू और मुसलमान सैनिक सीधे प्रभावित थे। कारतूस बनती थी दमदम (कलकत्ता) में और बनानेवाला फैक्ट्री का कर्मचारी था मातादीन भंगी।[3] वह

1. महाजन, वी.डी. : मध्ययुगीन भारत, भाग-2, पृष्ठ 281-282
2. वही, पृष्ठ 281-282
3. विद्रोही, एम.आर. : दलित दस्तावेज, पृष्ठ 76-79

उस समय अवकाश पर अपने घर मेरठ आया हुआ था। वह एक सिपाही से उसका लोटा माँगकर पानी पीना चाहता था। जब सिपाही ने उसे अछूत कहकर लोटा देने से इनकार किया तब उसने यह बात कही—'जल्द ही आप लोग गाय-सूअर की चरबी दाँत से काटेंगे, और मेरे कारखाने में बनी कारतूस को बंदूकों में भरोगे।' सैनिक जानता था कि वह भंगी दमदम में काम करता है। इसलिए उसकी बातों पर विश्वास किया गया और सैनिक विद्रोह हो गया। आजादी मिलने के बाद उस भंगी तथा उसके परिवार को स्वतंत्रता संग्राम सेनानी का सम्मान-पत्र तथा पेंशन मिलनी चाहिए थी, किंतु उसका नाम किसी कागज पर अंकित ही नहीं किया गया।

सशस्त्र क्रांति काल की ही दूसरी घटना है। मुंडभर भाजू, तहसील कैरोना, जिला मुजफ्फरपुर नगर की रहनेवाली महावीरी देवी (सफाईकर्मी) ने महिलाओं का एक संगठन बनाया था। वह सबको मैला ढोने के कार्य से अलग होकर दूसरा कार्य करने की प्रेरणा देती थी। अंग्रेजों ने जब मुजफ्फरपुर नगर पर अधिकार करना चाहा तो महावीरी देवी ने हाथ में वल्लम, गड़ासा आदि लेकर उन पर आक्रमण कर दिया। दर्जनों अंग्रेज मारे गए। परंतु गोलियों के आगे वल्लम-भाले देर तक नहीं टिके और 22 भंगी महिलाओं के साथ महावीरी देवी भी शहीद हो गईं।[1] स्वतंत्रता आंदोलन के समय (1857 ई. में) कानपुर के बीवी घर में लगभग 125 अंग्रेज स्त्री-बच्चे कैद करके रखे गए थे। उनको सश्रम कारावास जैसी सजा वहाँ दी गई थी। छुआछूत का भेदभाव करनेवाली उन कैदी स्त्रियों की देखभाल के लिए भंगी जाति की स्त्रियों को रखा गया था। बीबी घर की अंग्रेज महिलाओं तथा बच्चों के शुभचिंतक पुरुष की पत्नी दोनों ही भारतीय थे, परंतु पत्नी अपने पति की सौंत के विरुद्ध थी। पति अस्पष्ट उन कैदियों को बचाना चाहता था ताकि अंग्रेजों से उसे पुरस्कार मिल सके, जबकि पत्नी देशभक्त थी और कैदियों के प्रति कठोर थी। एक अंग्रेज महिला ने एक भंगी महिला को दो सोने की मुहर का लालच देकर एक पत्र दिया ताकि वह डाकघर में डाल दे, भंगी महिला ने वैसा न करके देशभक्ति का परिचय दिया और द्वारपाल को पत्र दे दिया। द्वारपाल ने मुख्य निरीक्षक को दिया। वह भी कैदियों का शुभचिंतक था। अतएव पत्र की बात छिपा ली और दो मुहरों की चोरी का आरोप लगाते हुए भंगी महिला को पीटते-पीटते मार डाला ताकि वह पत्र का रहस्य किसी स्वतंत्रता सेनानी से न खोल सके। उसकी पत्नी को जब पूरी बात द्वारपाल और अन्यय भंगी स्त्रियों ने बताई तो वह अपने पति पर आग बबूला हो उठी और बीवी घर को आग के हवाले कर दिया। सारे अंग्रेज स्त्री-बच्चे जलकर मर गए।[2]

1. विद्रोही, एम.आर. : दलित दस्तावेज, पृष्ठ 82-83
2. वही, पृष्ठ 86-87

1857 ई. की क्रांति के समय की बात है, सासाराम (डुमराव) में हरेकृष्ण सिंह ने विद्रोह कर दिया था और पकड़े जाने के भय से जंगल में जा छिपे थे। वहाँ उनकी सुरक्षा में चार वाल्मीकि (सफाईकर्मी) क्रांतिकारी भी थे। उनका नाम तो कहीं नहीं लिखा मिलता है, परंतु उन लोगों ने जिस व्यक्ति के हाथ और नाक काटे थे, उसने थाने पर जो बयान दिया था उसमें हरेकृष्ण सिंह एवं चार अन्य (सफाईकर्मी जाति के लोगों) को दोषी करार किया था।[1]

आजादी के बाद अनेक लोगों को स्वतंत्रता सेनानी की पेंशन दी गई, उसमें कुछ वाल्मीकि एवं सुदर्शन (सफाईकर्मी के) लोगों के भी नाम हैं। सूची में बुलंदशाह के सरायधारी मुहल्ले के कन्हैयालाल पुत्र चैता सफाईकर्मी यानी वाल्मीकि का नाम मिलता है जो 1942-43 ई. के आंदोलन में फरार रहे और 1943-45 ई. तक राजनैतिक बंदी रहे। इसी प्रकार उड़ीसा के कमला मोहंती भी थे जिनको 1942 ई. में 9 माह का कारावास दिया गया था।[2]

7.8 फिर सफाईकर्मी समाज से घृणा क्यों?

यह प्रश्न वास्तव में गंभीर एवं विचारणीय है। यह प्रश्न कम-से-कम हिंदू समाज में हिंदू वाल्मीकि वंशजों के बारे में तो पूर्णतः अनावश्यक लगता है। क्योंकि हिंदू धर्म की रक्षा और देश की रक्षा, दोनों ही महत्त्वपूर्ण कार्यों को संपन्न करने में यह जाति सबसे आगे रही है। इस संदर्भ में सबसे अधिक त्याग इसी सफाईकर्मी जाति यानी पूर्वकालिक ब्राह्मण एवं क्षत्रियों ने किया है। इसी जाति ने विदेशी आक्रांता मुसलिम शासकों के सबसे अधिक दमन, दलन, उत्पीड़न और शोषण सहे। इसी जाति ने सबसे अधिक सामाजिक उपेक्षा एवं तिरस्कार के मानसिक कष्ट झेले। मैला ढोया, स्वाभिमान भंग कराया और पवित्रता की अवधारणा में अपवित्र एवं अछूत तक बने, परंतु प्रत्येक दशा में हिंदू धर्म की रक्षा करने में सफल रहे और इसलाम धर्म तो दूर, मुसलमान का छुआ जल तक स्वीकार नहीं किया। ऐसे त्याग और बलिदान के बदले पुरस्कार न मिलकर तिरस्कार, बहिष्कार और घृणा का मिलना, और वह भी अपने ही हिंदू समाज से, यह हिंदू समाज के लिए अत्यंत दुःख एवं लज्जा का विषय है।

हिंदू धर्मरक्षकों ने निहत्था होने पर भी विदेशी इसलामिक आक्रांताओं एवं लुटेरों का मुँहतोड़ उत्तर जिस साहस एवं बहादुरी से दिया, उसकी तुलना विश्व के किसी भी धर्मयुद्ध से नहीं की जा सकती है। एक तरफ संख्या में कम किंतु प्रचंड देवभक्त अपने हाथों में धूप, दीप और नैवेद्य लेकर प्रभु की आरती कर रहे थे और

1. विद्रोही, एम.आर., दलित दस्तावेज, पृष्ठ 249, 259
2. वही, पृष्ठ 249-259

दूसरी ओर उनकी गरदनें खूँखार लुटेरों द्वारा काटी जा रही थीं। उस अवस्था में हिंदू देशभक्त योद्धाओं द्वारा हजारों हजार मुसलिम सैनिकों को मारना इस बात का प्रमाण है कि दैवी-संपदा को प्राप्त करने में विदेशी इसलामिक लुटेरों को भी अपना रक्त पानी की तरह बहाना पड़ा था।

हिंदू देशरक्षकों ने भी अप्रत्याशित आक्रमणों का मुँहतोड़ प्रत्युत्तर दिया। लगातार और छल-छद्मों से होने वाले आक्रमणों में बार-बार विदेशी आक्रांताओं को हराने पर कभी-कभी हिंदू की पराजय भी हो जाया करती थी। अपनी पराजयों का प्रतिशोध लेते हुए विदेशी मुसलिम आक्रांता अबोध शिशुओं एवं स्त्रियों को उनके पराजित एवं युद्धबंदी पतियों के समक्ष काट डाला करते थे। जो सुंदर स्त्रियाँ थीं उनको अपहृत करके बलपूर्वक दास बनाकर बगदाद और ईरान भेजकर विक्रय करते थे। कुछ धर्मांतरित हिंदू से मुसलमान बने लोगों ने अवसर पाते ही महलों को मंदिरों में परिवर्तित करते हुए इसलाम को ठोकर मारकर हिंदू देवी-देवताओं की पूजा-पाठ प्रारंभ कर दी, ऐसे वाल्मीकि वंशजों के प्रति हिंदू समाज को अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करनी चाहिए।

स्मरण रहे कि युद्ध में वे लोग अपनी प्राणरक्षा को गौण और देश-रक्षा को प्रमुख स्थान देते थे। उनकी स्त्रियाँ दहकती चिताओं में प्रवेश करके अपने सतीत्व की रक्षा करती थीं। हिंदू नारियाँ योद्धा भी थीं और अनेक अवसरों पर युद्ध करते हुए विदेशी मुसलिम आक्रांताओं एवं विदेशी शासक अंग्रेजों के हाथों मारी गई थीं। छल से उनको जीवित पकड़कर उनका स्वाभिमान भंग किया जाता था। कायर और देशद्रोही पतियों का सिर तक काट लेती थीं। वे भी देशरक्षा में अपने को उत्सर्ग कर चुकी थीं। अपने पतियों के साथ युद्धबंदी होने पर भी उनका स्वाभिमान डिग नहीं पाता था। भला ऐसे वीरांगनाओं के त्याग और बलिदान को भूलना तथा मैला ढोने की उनकी विवशता को सदैव याद रखना और अपवित्र होने से उनको घृणा की दृष्टि से देखना क्या उनका त्रुटिपूर्ण मूल्यांकन करना नहीं है?

धर्मरक्षक और देशरक्षक हिंदू युद्धबंदियों ने इसलाम को सदैव अस्वीकार किया। उनके समूह का दिल दहला देने के लिए कुछ लोगों को उनके सम्मुख नरभक्षी शेर और चीतों के सामने डालकर हिंदू-शक्ति का परीक्षण किया गया। जानवर यदि मारकर खा जाता तो औरों से कहा जाता कि इसलाम स्वीकार करो अन्यथा इसी तरह सबको जानवरों का आहार बना दिया जाएगा। युद्धबंदी तब भी इसलाम अस्वीकार करते। जो वीर जानवरों से लड़कर उनको ही मार डालते उनकी पीठ ठोंककर उनको हाथी के सामने डाला जाता और कुचलकर मार देते।

विदेशी मुसलिम आक्रांता शासकों द्वारा भय दिखलाकर इसलाम स्वीकार कराने

की अग्रिम दंड-व्यवस्था में उनको पानी में डुबोकर या पर्वतों और दुर्गों से नीचे ढकेलकर मारा जाता था। आँखें निकालकर अंधा बनाते, फिर गर्म चिमटों से शरीर के संवेदनशील भागों के मांस नोचे जाते, हाथ और पाँव काटे जाते, शरीर की चमड़ी छीली जाती, फिर खौलते कड़ाहे में डालकर भून दिया जाता, जल्लादों से गरदन कटवाकर उनको भारी रकमें दी जातीं, कुछ को सूली और फाँसी पर लटकाया जाता, परंतु धैर्य का बाँध टूटने नहीं पाया और धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी युद्धबंदियों ने सदैव इसलाम अस्वीकार किया।

भूखों मारकर भी विदेशी मुसलिम आक्रांताओं द्वारा प्रखर हिंदुओं को इसलाम स्वीकार कराने का प्रयास किया गया। हिंदुओं के खेत छीन लिए गए। घर के सामान बकाया करों की वसूली के नाम पर उठा ले गए।[1] हिंदुओं के साथ मध्यकाल में हर स्तर पर भेदभाव होता था। यहाँ तक कि व्यापार, कृषि इत्यादि में भी।[2] आक्रमण का प्रत्युत्तर देने के दंड में घरों को आग के हवाले कर दिया गया। सुंदर स्त्रियों और बच्चों को बेचा और नीलाम किया गया तथा जो बिकने योग्य न थे उनको मार दिया गया। धधकते गाँवों के लोग जंगलों की ओर भागे तो जंगलों को काटकर अथवा आग लगाकर उनको ढूँढ़ा गया और जो दावाग्नि में भस्म होने से बच गए उनको तलवारों से दो टुकड़े कर दिया गया। फिर भी जो शेष बचे उन्होंने अपने युद्धबंदियों के निर्णयों का ही अनुसरण किया और इसलाम अस्वीकार किया।

हिंदुओं को किसी भी मूल्य पर इसलाम स्वीकार कराने में असफल होने पर विदेशी इसलामिक आक्रांताओं एवं शासकों ने सबको मृत्युदंड दिए जाने की योजना बनाई। परंतु दूसरी ओर उन्होंने यह भी विचार किया कि इस तरह से तो सभी हिंदू मार दिए जाएँगे और इसलाम स्वीकर भी नहीं करेंगे, तो जनता के अभाव में वे शासन किस पर करेंगे?

साथ ही इसलाम स्वीकारनेवालों पर शासन करना भविष्य के लिए खतरनाक भी होता। अतः उन्होंने एक नई युक्ति निकाली।

उन दिनों महलों में हजारों बेगमें नवाबों की हवस पूर्ति के लिए रखी जाती थीं जो शौचादि के बहाने बाहर जाकर अपनी वासना की पूर्ति हेतु अन्यान्य पुरुषों, नौकरों, रक्षकों इत्यादि से शारीरिक संपर्क करती थीं। सुल्तानों को जब इसकी सूचना मिलती थी तो वे क्रोधित होते थे। उन्हें लगता था कि उनके आदेशों का उल्लंघन हो रहा है, इसलिए उनको घरों में ही शौचादि आदेश दिया। तदुपरांत उनके मल-मूत्रों की सफाई का कार्य इसलाम अस्वीकार किए हुए हिंदू बंदियों से बलपूर्वक सफाई-कर्म

1. डॉ. सुमन शास्त्री, मध्यकालीन भारत की...., शोध ग्रंथ, पृ. 64
2. डॉ. सुमन शास्त्री, मध्यकालीन भारत की...., शोध ग्रंथ, पृ. 177

कराया जाता था। यह कार्य करने के लिए कोई भी हिंदू युद्धबंदी स्वेच्छा से तैयार नहीं था। परंतु उन्होंने विचार किया कि यदि वे यह कार्य स्वीकार लेते हैं तो उनको इसलाम स्वीकारने की बाध्यता से मुक्ति मिल जाएगी, दूसरी ओर उनका नर-संहार रुकेगा और तीसरा लाभ यह होगा कि वे जिस हिंदू धर्म की रक्षा के लिए इतना दुःख सह रहे हैं उसकी भी रक्षा स्वतः हो जाएगी।

युद्धबंदियों का उक्त निर्णय तो सही सिद्ध हुआ परंतु मैला ढोना उनके सामाजिक जीवन के लिए अभिशाप बन गया। वे मानते थे कि सफाई का कार्य करने के बाद वे स्नानादि करके शुद्ध हो जाएँगे और अपने समाज के लोगों से मिल-जुलकर सुख चैन से जीवन व्यतीत करेंगे। परंतु ऐसा उनका मानना फलीभूत न हो सका। बल्कि एक नवीन धारणा यह उत्पन्न हो गई कि जिस प्रकार लोग अपना मल-मूत्र त्यागने पर स्वयं को अपवित्र मानने लगते हैं और जब तक स्नान नहीं कर लेते तब तक शुद्ध अथवा पवित्र नहीं होते हैं। उसी प्रकार सिर पर मैला ढोने एवं सफाई-कर्म में लगे ये लोग अन्य विधर्मियों के मलमूत्र सिर पर ढोकर बाहर ले जाते हैं और लगातार प्रतिदिन यही कार्य करते हैं तो केवल स्नान कर लेने से ये इतनी जल्दी पवित्र कैसे हो सकते हैं?

उक्त सोच ने मैला ढोनेवालों के प्रति पवित्रता का प्रश्न खड़ा किया। मैला ढोनेवालों को जब बस्ती से दूर अलग स्थानों पर बसाकर उसे विदेशी आक्रांताओं द्वारा भंगी बस्ती, भंगी गेट, भंगी मार्ग आदि नाम दे दिया गया तो वे हिंदू समाज से भी दूर होते चले गए जो कालांतर में स्वतंत्रता के उपरांत भी स्थायी रहा। उनकी सामाजिक प्रस्थिति अस्वच्छ एवं अस्पृश्य मानने के साथ ही वे हिंदू समाज से भी मैला ढोनेवाली अथवा सफाईकर्मी जाति कहकर बहिष्कृत कर दिए गए।

यह विचार करने की बात है कि धर्मरक्षा और देशरक्षा के लिए जिन बहादुर, स्वाभिमानी एवं योद्धाओं ने इतनी बड़ी त्याग और तपस्या की, उनको उनके ही हिंदू समाज ने दुर्भाग्यवश उन्हें अपवित्र और अछूत कहकर उनसे घृणा की, जो न्यायोचित नहीं था। उन्हें अपनों से ऐसी आशा नहीं थी।

वर्तमान समय में हिंदू समाज के उपेक्षित लोगों का तेजी से धर्मांतरण होता जा रहा है। इसका प्रभाव दलित हिंदुओं पर भी पड़ सकता है, यदि समय रहते अन्य सामान्य वर्ग के हिंदू नहीं ध्यान देते हैं तो देश में हिंदुओं की स्थिति को दयनीय होने से कोई रोक नहीं सकता है। अतः वाल्मीकि एवं सुदर्शन समाज के वंशजों के प्रति अब घृणा का भाव दूर होना अपरिहार्य हो गया है।

प्रस्तुत अध्याय की विषय-सामग्री का समीक्षात्मक एवं विश्लेषात्मक अध्ययन करने पर हमने पाया कि महर्षि वाल्मीकि आर्ष-ऋषि परंपरा के प्रथम ऋषि थे, आदिकवि थे, भगवान् श्रीराम के आदिभक्त भी थे। उन्होंने अपने धर्मोचित लौकिक

चरित्र एवं आध्यात्मिक चिंतनता से हिंदू धर्म की ऋषि-परंपरा को गौरवान्वित किया और हिंदू धर्म की पहचान बने। महर्षि वाल्मीकि और हिंदू धर्म, दोनों की एक-दूसरे के पूरक बने। उनके आदिकाव्य रामायण ने भगवान् श्रीराम का गुणगान किया। उनको सर्वज्ञ बनाया। सभी ने अपने राम नाम को सत्य पाया और भगवान् का दर्शन कराने वाले वाल्मीकिजी को भी परम भागवत माना और वे करोड़ों हिंदुओं के श्रद्धाकेंद्र बने।

मध्यकाल में हिंदुस्थान पर विदेशी मुसलिम शासक एवं आक्रांताओं और लुटेरों का प्रचंड अत्याचार और हिंदुओं का हर प्रकार से उत्पीड़न एवं शोषण हुआ। हिंदू समाज के धर्मरक्षकों और देशरक्षकों को युद्धबंदी बनाकर उन्हें इसलाम स्वीकारने पर विवश किया गया। जिन लोगों ने इनकार किया उनको सर्वप्रथम मैला ढोने जैसे अपावन कार्यों में लगाया गया। उनके स्वाभिमान को भंग करके उनको भंगी बनाया गया और शेष हिंदू समाज में स्वच्छता के आधार पर अलग करके उन्हें अस्पृश्य की श्रेणी प्रदान की गई। समाज से बहिष्कृत होने पर स्वयं हिंदू समाज द्वारा ही उनसे घृणा भी की गई। यह घृणा अकारण ही थी, क्योंकि इसके पात्र वे मात्र इसलिए बने कि उन्होंने हिंदू धर्म की रक्षा के लिए इसलाम को एक सिरे से अस्वीकार दिया एवं आक्रांताओं द्वारा बलपूर्वक सफाईकर्मी बना दिया गया।

परिवर्तित परिवेश में एक तो वैश्वीकरण से हिंदू सभ्यता एवं संस्कृति का मूल हिंदू धर्म आज ईसाई और इसलाम से कड़ी टक्कर ले रहा है, जबकि दूसरी ओर तथाकथित दलित हिंदुओं के धर्मांतरण को लक्ष्य करके धर्म परिवर्तित कराने की बड़ी-बड़ी योजनाएँ चल रही हैं। इसके पूर्व कि तथाकथित दलित एवं घृणा की पात्र जातियाँ क्षुब्ध होकर कोई अन्य रास्ता चयन करें, समस्त हिंदू समाज द्वारा उनसे स्नेह एवं सहिष्णुतापूर्ण व्यवहार किए जाने की आवश्यकता है और उनके प्रति मन में जो पवित्रता को लेकर घृणा के भाव है उनको भी समाप्त कर देना होगा। इस संदर्भ में पर्याप्त मात्रा में प्रमाण प्रस्तुत किए जा चुके हैं।

उक्त अनुरोध वैदिक आदेश भी है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वकर्म करते हुए ही 100 वर्ष की आयु प्राप्त हो सकती है और शीघ्रतापूर्वक कार्य पूरा करते हुए उत्तमोतम धन को प्राप्त कर सकता है—

कुर्वन्नेवेहकर्माणि, जिजीविषेत्छतः ऽ समों

—यजु. 40/2

तरणिारित्सषासति वाज पुरन्ध्या युजा।
आ व इंद्र पुरुहुत नमे,
गिरा नेमि तष्टैव सद्रुवम्॥

हिंदू होने के कारण वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति अपने थोपे गए कार्यों को करने में संलग्न है। अब उचित समय आ गया है जब संपूर्ण हिंदू समाज वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि (सफाईकर्मी) जाति के संदर्भ में अपनी प्राचीन मान्यताओं को बदलकर पुस्तक में प्रस्तुत प्रमाणों एवं अकाट्य तर्कों के आलोक में चिंतन करें। महान् हिंदू योद्धाओं एवं उनके त्याग, बलिदान एवं उनके धर्माभिमान, राष्ट्राभिमान, स्वाभिमान, महान् योगदान का सम्मान करें। वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज के पुरोधाओं को हिंदू समाज का शत्-शत् नमन है।

□

अध्याय-8

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि का सामाजिक उत्थान एवं सशक्तिकरण

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज की संघर्षयुक्त किंतु बुद्धिमत्तापूर्ण चुनौती के आगे विदेशी इसलामिक जेहाद परास्त हुआ। धर्मरक्षक और देशरक्षक स्वाभिमानी एवं धर्माभिमानी हिंदुओं ने विदेशी आक्रांता मुसलिम लुटेरों एवं शासकों के छक्के छुड़ा दिए। युद्धबंदी होने पर भी उन स्वाभिमानी हिंदू योद्धाओं का सिर गर्व से उन्नत था। उन प्रखर राष्ट्रवादी बहादुरों के चेहरे पर चिंता, भय एवं आतंक भाव की रेखा तक न थी। भुजाओं का फड़कना यथावत् था। बंधनों में जकड़े हुए थे, इसलिए सभी विवश थे। शोषण, दलन, दमन और उत्पीड़न की जब संपूर्ण सीमाएँ समाप्त हो गईं और थक गईं तब इसलामिक विदेशी आक्रांताओं एवं शासकों ने इनके सामाजिक अपमान की रणनीति सुनिश्चित की। उनसे मैला ढोने का काम लिया। उनका स्वाभिमान भंग करके सफाईकर्मी (भंगी) बनाया। अपने ही समाज में वे अछूत हो गए और अपना सबकुछ देश एवं धर्म की भक्ति पर न्योछावर कर दिया।

विदेशी इसलामिक शासकों के दमन-चक्र का शेष कार्य विदेशी लुटेरे शासक अंग्रेजों ने पूरा किया और दलित (अछूत) नाम दिया। पाकिस्तान की तर्ज पर एक और अलग देश बनाने के लिए तथाकथित दलितों के प्रति घड़ियाली आँसू बहाए परंतु असफल रहे। देश आजाद हुआ। अन्य दलित जातियों की तरह हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति को भी आरक्षण का लाभ दिया गया। इस जाति की स्थिति विशेषकर सामाजिक स्थिति सबसे निम्न थी, इसलिए

आरक्षण का समान लाभ उठाने में भी यह जाति सफल न रही। यह आज भी सबसे पीछे एवं निम्न स्तर पर है जिसका प्रभाव देश के विकास लक्ष्य पर सर्वाधिक पड़ रहा है। आज विदेशी शक्तियाँ मध्यकाल की उन्हीं उत्पीड़ित एवं निर्मित जातियों को लक्ष्य करके धर्मांतरण की योजना में है। कुछ दलितों को तो लालच देकर धर्म परिवर्तन करवाकर उन्हें अनुसूचित जाति में सम्मलित करने का प्रयास भी कर रहे हैं। यह आत्मघाती कदम है।

उक्त समस्या ही आज संपूर्ण हिंदू समाज को वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति के सामाजिक उत्थान और उनके सशक्तिकरण पर सोचने हेतु विवश करती है। प्रस्तुत अध्याय में इसी विषय पर विचारणीय कुल 8 बिंदुओं के माध्यम से ध्यान आकृष्ट किया गया है। सर्वप्रथम वाल्मीकि एवं सुदर्शन समाज की वर्तमान स्थिति पर विचार किया गया है। यह देखा गया है कि उसकी सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक दशा के पिछड़ने के वर्तमान कारण क्या है। उनके पिछड़ेपन का निवारण क्यों आवश्यक है—इस पर विचार करते हुए यह देखा गया है कि उनका सामाजिक और आर्थिक विकास उनके शैक्षिक विकास से संभव है। उनके वर्तमान व्यवसाय (सफाई-कार्य) के बारे में एक सुझाव भी प्रस्तुत है कि सफाई-कार्य में वैज्ञानिक विधियाँ (तकनीक) प्रयुक्त की जाएँ तथा उनको पुनरीक्षित वेतन एवं पारिश्रमिक संबंधी नीति निर्धारित की जाए।

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि कुल 623 उप-जातियों में बटी हैं। सफाईकर्मियों के सामाजिक उत्थान एवं सशक्तिकरण के लिए सामाजिक जनजागरण के साथ उनमें आत्मगौरव का बोध कराना भी आवश्यक है। इसमें उनके विभिन्न जातिगत संगठन भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं और उनको आत्म उत्थान के विषय में सोचने का सुझाव भी दे सकते हैं।

अंत में यहाँ यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति को संवैधानिक संरक्षण एवं सरकार द्वारा प्रदत्त अन्य अभिकरण एवं योजनाएँ सही ढंग से क्रियान्वित की जानी चाहिए ताकि इस जाति को उसका पूरा-पूरा लाभ मिल सके।

8.1 वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज की वर्तमान स्थिति

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि दलित समाज की वर्तमान स्थिति मुगलों एवं अंग्रेजों के शासनकाल से बहुत अच्छी नहीं थी, वे ब्राह्मण एवं क्षत्रिय ही थे किंतु अस्वच्छ कार्यों के कारण उनका सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक पतन हुआ।

आजादी मिलने के कुछ ही वर्षों में इनकी स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है। यह जाति 800 वर्षों तक गुलामी में रही और इसका हर प्रकार से निरंतर शोषण हुआ। स्वतंत्रता-प्राप्ति के कुछ ही वर्षों में विकास की दिशा से जुड़ जाना, इनके सुंदर एवं सुखद भविष्य का पूर्व-आभास है। इतने ही समय में इनके समकक्ष की अन्य अस्पृश्य एवं दलित जातियों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षणिक आदि स्थिति अभी ठीक नहीं हो पाई है।

सामाजिक समानता के लिए संविधान में अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया है[1] और छूआछूत का भेदभाव दंडनीय अपराध घोषित किया जा चुका है, फिर भी पवित्रता की अवधारणा से मानसिक रुग्णता अभी बहुत स्थानों पर बनी हुई है और अनेक अनुसूचित जातियों के साथ लोग छुआछूत का भेदभाव रखते हैं। तथाकथित उच्च वर्ग के आयोजन में सफाईकर्मी के साथ भेदभाव किया जाता है, परंतु उसी जाति के अधिकारी के साथ भेदभाव नहीं होता है। यही स्थिति चमार, डोम, बहेलिया, भर, पासी एवं खटिक जैसी पूर्व की अस्पृश्य जातियों की भी है कि उच्च वर्ग के लोग इनके शिक्षित, संपन्न और प्रभावशाली लोगों को अपनाते हैं, परंतु सामान्य स्थितिवालों को दूर रखते हैं।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, रुखी, मजहबी सिख इत्यादि जाति में भी देखा गया है कि सफाई-कर्म में लगे लोगों के साथ विकसित स्वजाति लोग भी उतना नजदीकी संबंध नहीं रखते पाए जाते क्योंकि इनकी स्थिति उनसे अलग और ठीक है। यही स्थिति उन सफाईकर्मी जाति अथवा समाज के शाखा-प्रशाखाओं की है जो विकास की धारा में उन्नति की ओर अग्रसर हैं। यदि शेष वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि (सफाईकर्मी) समाज को भी विकास की धारा में उन्नत किया जाए तो उसकी भी सामाजिक स्थिति सुदृढ़ हो जाएगी और तब स्वाजातीय एवं विकसित लोग भी अपना सामाजिक समायोजन कर सकेंगे।

यह सर्वविदित हैं कि संपूर्ण अस्पृश्य एवं दलित जातियाँ पूर्वकाल में उच्च सामाजिक प्रस्थिति की यानी ब्राह्मण और क्षत्रिय ही रहीं[2] और विदेशी मुसलिम आक्रांताओं एवं विदेशी इसलामिक शासकों ने उनको इसलाम अस्वीकारने पर बलपूर्वक सफाईकर्मी एवं चर्मकर्मी आदि बनाया। वे लोग अपना स्वाभिमान भंग कराके हिंदू धर्म की रक्षा तथा हिंदू नर-संहार को रोक सकने में समर्थ रहे, फिर भी उनके इस त्याग और बलिदान को केवल इसलिए ठुकरा दिया जाता है कि उन्होंने

1. भारत का संविधान, अनुच्छेद 17
2. षो.एम.ए. शेरिंग, 'दि हिंदू कास्ट एंड ट्राईब्स इन बनारस, भूमिका, पृ. 21

अस्वच्छ एवं अस्पृश्य व्यवसाय विदेशी आक्रांता-शासकों के दमन, दलन एवं उत्पीड़न के उपरांत विवश होकर स्वीकार किया था।

सामाजिक भेदभाव की स्थिति यहाँ तक है कि सफाईकर्मी जाति के साथ चर्मकार, डोम, बहेलिया, पासी, खटिक, राजभर, दुसाध जैसी सभी अन्य जातियाँ इनसे भेदभाव रखती है।[1] जबकि वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति एकमात्र अपनी शत्रु-जाति मुसलमान से ही घृणा करती है।[2] वह अन्य हिंदू घरों का जूठन स्वीकार करती हैं, किंतु मुसलमान का छुआ जल तक नहीं पीती। हिंदू धर्म का निर्वाह जिस प्रकार वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख जाति के लोग करते हैं, वैसा कोई भी हिंदू जाति नहीं करती है। फिर भी उसकी सामाजिक उपेक्षा हिंदू समाज के लिए लज्जाजनक एवं चिंता का विषय है।

दलित समाज कोई प्राचीन हिंदू समाज व्यवस्था का कुष्ठरोग नहीं है। इसे बलपूर्वक विदेशी इसलामिक शासकों ने 1296 ई. में प्रायोजित किया और धर्मरक्षक (ब्राह्मण), देशरक्षक (क्षत्रिय) इत्यादि को पराजित करके युद्धबंदी बनाने के बाद उन सभी को बिना किसी भेदभाव के संयुक्त रूप से मैला ढोने एवं चर्म-कर्म इत्यादि में लगाया। एक ही साथ सभी को बलपूर्वक दलित बनाकर उनके हिंदू स्वाभिमान को ध्वस्त करने का प्रयास किया। अस्तु, ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जातियों से बलपूर्वक अस्वच्छ कामों में लगाकर बनाई गई वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति भला किस जाति के लिए घृणा की पात्र हुई? किसी भी जाति के पास इनका उत्तर नहीं है, परंतु मानसिक रोग के रूप में भेदभाव सभी जातियाँ करती हैं, जो हिंदू समाज के लिए निरंतर अभिशाप और समस्या का कारण है।

सामाजिक स्थिति निम्न होने से उसका प्रभाव धार्मिक स्थिति पर भी पड़ता है। यद्यपि आज वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य सफाईकर्मी जाति के लोग भी मंदिरों में जाकर आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करते हैं, परंतु किसी-किसी धर्मस्थलों पर यदाकदा आज भी इनके साथ दुर्भाग्यपूर्ण भेदभाव किया जाता है। ऐसा भेदभाव रखनेवाले यदि हिंदू धर्म के पुरोधा भी हों तो उनको यह सोचना चाहिए कि हिंदू धर्म की रक्षा में सबसे आगे रहकर इसी तथाकथित वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति के योद्धाओं ने अपना त्याग और बलिदान किया था, तब जाकर आज आक्रांताओं के चपेट में आने से बचे वे लोग इस हिंदू धर्म का आध्यात्मिक लाभ पा रहे हैं।

---

1. तोमर, देवेंद्रपाल सिंहः अछूत जातियों में छुआछूत, पृष्ठ 26, 60, 65, 66, 71-72, 129
2. वही, पृष्ठ 54

हिंदू धर्म में इस तरह का भेदभाव प्राचीनकाल में कभी न था, जिसके कारण सामाजिक समरसता का भाव सर्वत्र व्याप्त था। भेदभाव मध्ययुग की देन है जिसे दासता समाप्त होते ही स्वतः समाप्त हो जाना चाहिए था। यह तो हिंदू समाज की कायरता एवं अज्ञानता है जो आपस में भेदभाव को रखे हुए हैं। अब समय परिवर्तित हो चुका है। आज हिंदू समाज पर इसलामिक आतंकवाद और ईसाई अलगाववाद का संकट मँडरा रहा है। यदि हिंदू समाज भेदभावरहित होकर स्वयं सुदृढ़ नहीं हुआ तो हिंदू और हिंदुस्थान का अस्तित्व संकट में पड़ सकता है। अतः हिंदू अपनी कायरता को त्याग[1] और समाज में भाई-चारा स्थापित करें[2], विभेदकारी बातों पर ध्यान न दें[3], सामूहिक उत्सव आयोजित करें[4] तथा हिंदू धर्म पर डटे रहें।

वाल्मीकि समाज की आर्थिक स्थिति दयनीय है। अपने निर्धारित कार्य के बदले उनको पर्याप्त और उचित पारिश्रमिक नहीं मिलता है। जो सफाईकर्मी सरकारी विभागों में सेवारत हैं, वे तो कुछ अच्छी तरह से जी लेते हैं, परंतु अधिकतर बेरोजगार सफाईकर्मी समाज के युवक-युवतियाँ बेगार का शिकार होती हैं। काम कराने के बाद लोग दस, बीस रुपए देकर उनको टाल देते हैं। इनके पास कृषि, उद्योग, व्यापार, कुछ भी नहीं है। मध्यकाल में विदेशी आक्रांता मुसलिम शासकों ने सब नष्ट-भ्रष्ट करके उन्हें दरबदर कर दिया था। आक्रांताओं ने उन हिंदू युद्धबंदियों की जीविका का साधन सफाई का कार्य मात्र सुनिश्चित किया था। आज दूसरों का जूठन खाना इनकी मजबूरी है, परंतु मानवता के लिए यह सबसे बड़े कलंक के समान भी है। इन्हें जूठन देनेवालों को धिक्कार है कि वे हिंदू हैं। धिक्कार है उन जनवादी साहित्यकारों को जो इनके बारे में तरह-तरह के भ्रामक प्रचार करके इनको चोर, मद्य-निर्माता, मद्यप, जुआरी जैसे आपराधिक कार्यों से संबोधित करते हैं और मार्क्सवादी एवं माओवादी विचारक इनको नक्सलाइट बना रहे हैं। दलित जाति को सदैव ही मार्क्सवादियों की नैतिकता से सावधान रहना चाहिए,[5] क्योंकि उनका हित साम्यवादियों के हाथ में नहीं है।[6] बाबा साहब डॉ. अंबेडकर भी समाज को कम्यूनिस्टों से बचाने की ही बात करते थे।[7]

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति की राजनैतिक

---

1. बाबा साहब संपूर्ण वाङ्मय, खंड-1, पृष्ठ 76
2. वही, पृष्ठ 78
3. डॉ. अंबेडकर एक चिंतन, पृष्ठ 34
4. संपूर्ण वाङ्मय, खंड-1, पृष्ठ 71
5. जाटव, डी.आर. : दि बुद्धा एंड दि कार्ल मार्क्स (फोएनिक्स), पृष्ठ 182-186
6. डॉ. अंबेडकर के आलोचक, पृष्ठ 138
7. संकेत रेखा, पृष्ठ 287-288

पहचान केवल मतदाता के रूप में है। दलित राजनेता तथा दलितों की राजनैतिक पार्टियाँ, इस जाति के लोगों को सदैव अपना मानती है और उसका वोट अपने लिए सुरक्षित मानकर चलती हैं। इसलिए उनके लिए कार्य करना या न करना, दोनों बराबर मानती हैं। इस जाति के कोई नेता या जनप्रतिनिधि यदि हो भी जाते हैं तो वे अपने को तथाकथित उच्च वर्गों से संबंधित होने का ही गौरव आहरित करते रहते हैं और अपनों के पास जाने और उनके बारे में सोचने की उनके मन में भावना अथवा उनके पास समय नहीं रहता।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति का शैक्षिक स्तर न्यून है। बहुत कम लोग इस जाति में उच्च शिक्षा प्राप्त हैं। जिन्हें उच्च शिक्षा, उच्च आर्थिक स्थिति प्राप्त और उच्च सामाजिक स्थिति भी प्राप्त है, वे अपने को इस जाति से अलग मानते हैं और जाति के नाम पर वही·अपनी पुरानी शाखा-प्रशाखा का नाम लेते हैं। आज वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख जाति में, हेला और मेहतर, लालबेगी तथा हलालखोर में ऐसे ही अंतर देखने को मिलते हैं। विदेशी मुसलिम आतंकियों के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पीछे कर दी गई इन जातियों का शिक्षा, साहित्य, कला, विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में पिछड़ा होना, इनकी नियति बन गई है। इसके कारण इनका दैनिक जीवन दयनीय है जो दूसरों का जूठन खाने से ही स्पष्ट हो जाता है। उन्हें अपनी नियति को स्वयं परिवर्तन हेतु दृढ़ संकल्प करना होगा।

8.2 सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक पिछड़ेपन का वर्तमान कारण

हिंदू धर्म, हिंदू संस्कृति एवं हिंदू जीवन-पद्धति के नियामक हिंदू तत्त्व (हिंदुत्व) की रक्षा, संरक्षा एवं शिक्षा-दीक्षा में सतत् अग्रणी रहनेवाली ब्राह्मण एवं क्षत्रियों के धर्माभिमान एवं स्वाभिमान को भंग करके बलपूर्वक बनाई गई। हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख यानी सफाईकर्मी जाति आज वर्तमान समय में सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ी हुई है, जिसके कारणों को सामान्य रूप से दुर्भाग्य भी कहा जा सकता है।

सामाजिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण सफाई-कार्य के प्रति हिंदू पवित्रता की अवधारणा है। इसी वैचारिकी ने वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज को हिंदू समाज की मुख्यधारा से जोड़ने में मानसिक आधार पर दुर्भावना एवं भेदभाव की समस्या उत्पन्न कर रखी है। अस्पृश्यता संविधान द्वारा समाप्त घोषित की जा चुकी है और संपूर्ण देश में अस्पृश्यता यानी छुआछूत को दंडनीय घोषित किया जा चुका है, परंतु मानसिक दुर्भाग्यपूर्ण सोच की रूढ़ियाँ अभी तक समाप्त नहीं हुई हैं। मध्यकाल में दुर्भाग्यवश हिंदू समाज अस्वच्छता एवं अपवित्रता में अंतर नहीं कर सका।

मांस बेचने का कार्य करके भी महर्षि व्याघ्र पवित्र एवं ज्ञानी एवं गुरु मंत्र देनेवाले उच्च कोटि के ब्राह्मण थे। उनसे ब्राह्मण स्वयं दीक्षा लेते थे। उनके साथ कोई भेदभाव समाज में नहीं था तो आज अस्वच्छ कार्य करनेवाले धर्माभिमानी एवं स्वाभिमानी दलितों के साथ यह भेद क्यों? अस्पृश्यता ही आज हिंदू समाज के संकट के लिए सबसे बड़ा कारण है।

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य संपूर्ण दलित जातियों पर विदेशी इसलामिक आक्रांताओं एवं शासकों ने इतने अधिक अमानवीय अत्याचार किए जिससे उनकी सामाजिक स्थिति बद से बदतर हो गई।[1] पूरे 800 वर्षों तक विदेशी शासकों की इनके विरुद्ध मानसिकता होने के कारण इनको राज्याश्रय या प्रशासन-तंत्र का लाभ भी नहीं मिल पाया, बल्कि उसके स्थान पर वे सदैव उत्पीड़ित ही किए गए। वर्तमान समय में यह स्थिति तो खुलेआम नहीं है, किंतु परोक्षरूप से उत्पीड़न के अनेक संसाधन प्रयोग में लाए जाते हैं जो उनके सामाजिक विकास में बाधक है।

वर्तमान समय में वाल्मीकि एवं सुदर्शन समाज का नेतृत्व किसी ऋषि, मुनि, संत, योद्धा, राजनेता, शिक्षाविद्, समाजसेवक के हाथ में नहीं है जिसको राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त हो। उनकी सामाजिक पहचान के लिए महर्षि वाल्मीकि का रामायण, नवलजी का निराकार-धर्म, खुसरोशाह की छत्रछाया, भंगी मिस्ल का प्रभाव, भंगी गेट की योद्धापरक प्रेरणा आदि की सामाजिक संवेदना प्रभावहीन हो चुकी है।

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति की व्यवसायगत अपवित्रता चिंतन अभी पूरी तरह से ठीक नहीं हो पाई है इसलिए उच्च सामाजिक प्रस्थिति के साथ उसका समायोजन भी नहीं हो पाता है। विशेष अवसरों पर खान-पान आदि के आलोक में यह अंतर ठीक से देखा जा सकता है। शिक्षा, समृद्धि और सशक्ति (प्रभाव या प्रभुता) के आधार पर यह भेदभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है। इससे स्पष्ट है कि सामाजिक पिछड़ापन शिक्षा, समृद्धि और संप्रभुता के साथ ही समाप्त हो सकता है।

वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य सफाईकर्मी समाज आर्थिक दृष्टि से कई कारणों से पिछड़ा हुआ है। उनका मुख्य कार्य सफाई (अस्वच्छता) से जुड़ा हुआ है। यह कार्य राष्ट्रीय स्तर पर संपन्न होने से अधिकाधिक कर्मियों की आवश्यकता होती है। वाल्मीकि एवं सुदर्शन समाज इस महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्य को परिवार सहित लगकर भी पूरा नहीं कर पाता है, बल्कि संविदा पर अन्य जाति-वर्ग के लोगों को भी अब इसमें लगाया जाने लगा है।

सफाई-उद्योग पर जनसंख्या का भारी दवाब नहीं रह गया है, इसलिए इनसे जुड़े

---

1. तोमर, देवेंद्रपाल सिंह: हिंदू अछूत जातियों में छुआछूत, पृष्ठ-43

लोगों में बेरोजगारी की समस्या नहीं है। यदि होती तो लोग अन्य व्यवसाय भी अपनाते। चूँकि इस व्यवसाय में अल्प पारिश्रमिक देने की प्रथा विदेशी मुसलिम आक्रांताओं के ही शासनकाल से रही है, जो आज तक थोड़े ही परिवर्तनों के साथ चल रही है। इसलिए अपर्याप्त मजदूरी से दो जून की रोटी मुश्किल से जुट पाने की दशा में इस समाज में आर्थिक समृद्धि आने का प्रश्न ही नहीं है। इस समाज को शिक्षित बनकर अन्य व्यवसायों में लगना होगा तथा सफाई-कर्म एवं व्यवसाय में लगे लोगों को उच्चतम वेतन दिलाने के लिए संघर्ष करना होगा, ताकि इनके आय-स्तर में सुधार हो और इनकी क्रय-शक्ति में वृद्धि हो।

आर्थिक दृष्टि से वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति के पिछड़े होने का यह भी एक कारण है कि व्यवसायगत समस्याओं, प्रदूषण, दुर्गंध संबंधी घुटनवाली स्थिति से बचने के लिए ये निरंतर मद्य सेवन करते रहते हैं। मद्यपान अथवा अन्य नशे के बाद ही सफाईकर्मी यह अस्वच्छ कार्य कर पाते हैं। इसके कारण उनका पूरा वेतन मद्यपान में ही चला जाता है। यहाँ तक कि वे शराब के लिए ऊँचे दर के ब्याज पर ऋण लेकर भी शराब पीते हैं और वेतन के दिन महाजन वसूली के लिए रखे अपने गुंडों द्वारा इनका पूरा वेतन बलपूर्वक छीन ले जाता है। जब वे खुद ही शराब बनाते हैं तो पकड़े जाने पर भारी जुरमाना, सजा, पुलिस द्वारा सार्वजनिक पिटाई इत्यादि झेलते हैं। यदि वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य सफाईकर्मी जातियों एवं समाज को मद्यपान मुक्त करना हो तो सर्वप्रथम उन्हें इस अस्वच्छ कार्य से कैसे मुक्त करे, इस पर चिंतन करना होगा।

वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि समाज के मद्य-पान संबंधी दुर्गुणों को लेकर भी समाज उनसे घृणा करता है, यद्यपि यह घृणा अनुचित है। विचारणीय बिंदु यह है कि लोग अपना मल-मूत्र त्यागने के बाद स्वयं को अपवित्र मानने लगते हैं और सुगंधित साबुन-तेल आदि लगाकर स्वच्छ होने के लिए बार-बार स्नान करते हैं। ऐसी स्थिति में जो पूरे समाज का मैला अहर्निश ढोता है, कुछ उसकी भी समस्या पर ध्यान दें कि इतनी बड़ी अपवित्रता का बोझ वह भला होश में कैसे ढो सकता है? इसके लिए ही वह मद्यपान करने हेतु विवश होता है। ताकि वह शराब पीकर स्वयं को विस्मृत कर यह अस्वच्छ कार्य कर सकें। आज सफाईकर्मी समाज घृणा नहीं, दया और सहानुभूति का पात्र है।

वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि समाज की आस्था गाय में रही इसलिए वाल्मीकि जी, नवलजी, इत्यादि लोग प्रारंभ में गोपालन ही करते रहे। गाय ही उनकी संपत्ति थी और वे गोस्वामी कहे जाते थे। गोचारण करते समय ही अधिकांश लोगों को जंगल में प्रभु के दर्शन होते और उनका मन अध्यात्म की ओर आकृष्ट होता था। 1296 ई. से मैला ढोने में लगाए जाने के बाद जब इनकी गो-संपदा विदेशी इसलामिक आक्रांताओं ने छीन ली तो

वे इसलाम के शत्रु-पशु सूअर को आक्रोश एवं प्रतिशोधवश पालने लगे। सूअर-पालन[1] से इनकी आर्थिक स्थिति में कोई प्रोन्नति नहीं हुई क्योंकि यह सूअर-पालन का कार्य किसी व्यावसायिक उद्देश्य से नहीं किया गया था। इससे सामाजिक परिस्थिति न्यून हो सकती थी, परंतु मैला ढोने से वह तो पहले ही न्यूनतम हो चुकी थी। इसलिए खटिक जाति का अनुकरण करके वाल्मीकि समाज के लिए सूअर-पालन भी लाभप्रद नहीं रहा।

हिंदू धर्मरक्षक एवं देशरक्षकों की आर्थिक रीढ़ इसलामिक काल में ही तोड़ दी गई थी ताकि वे धनबल से सैन्यबल (सेना) अर्जित करके विद्रोह न कर सकें। उनकी कृषि-भूमि खालसा-भूमि (राज्य-संपत्ति) घोषित कर दी गई थी। करों के बोझ इतने लादे गए थे कि लोग गाँव छोड़कर दर-बदर हो जंगलों में पलायन करने लगे थे। वहाँ भी उनको जानवरों की तरह ढूँढ़कर मारा गया था। शिल्प एवं कुटीर उद्योगों को अधिग्रहीत करके श्रमिकों के लिए दो जून की रोटी कठिन कर दी गई थी। व्यापारियों को लूट लिया गया तथा महाजनों के करोड़ों के कोष शून्य कर दिए गए थे। इस प्रकार की प्रायोजित दरिद्रता आज तक वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज को भुखमरी के कगार पर खड़ा किए हुए हैं।

विदेशी मुसलिम आक्रांताओं की लूट, उनके शासकों के धन-अपव्यय और पुनः अंग्रेजों की लूट से यहाँ का आर्थिक विकास तो अवरुद्ध है ही, लोगों के समक्ष जीविका की समस्या भी जटिल हो गई है। लाला ज्ञानचंद्र आर्य के शब्दों में, 'आज कल संसार में आजीविका का प्रश्न बहुत जटिल और आवश्यक बना हुआ है। इस समस्या को सुलझाने के लिए भारत में भी उन्हें विदेशी साधनों का उपयोग किया जा रहा है जो विदेशों में असफल सिद्ध हो चुके हैं और भारत के लिए भी उपयोगी नहीं हैं।'[2]

वर्तमान समय में वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज के लोग अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए सफाई-कार्य के अतिरिक्त बाजा बजाना, घरेलू सेवाएँ, मजदूरी, कृषि-श्रमिक, निर्माण कार्य, सड़क-निर्माण, समाज सेवक, सिनेमा टिकट जाँचकर्ता, वार्ड ब्याय, परिचारक, नगरपालिका भिश्ती, इत्यादि लगभग 22 प्रकार के विविध कार्यों में लग गए हैं। कुछ सरकारी सेवाओं, पुलिस एवं सेना में भी प्रवेश कर गए हैं। इससे इनकी आर्थिक स्थिति में सुधार आना स्वाभाविक है। वर्तमान समय में केवल सफाई-कार्यों में लगे हुए लोगों को ही देखकर उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति के प्रति चिंता उत्पन्न होती है, अतः सर्वप्रथम ऐसे कार्यों में लगे हुए लोगों की आर्थिक स्थिति सुधारने हेतु प्रयास की आवश्यकता है।

शिक्षा के क्षेत्र में वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य सफाईकर्मी समाज के पिछड़े

1. आर्य, लाला ज्ञानचंद्र: वर्ण व्यवस्था का वैदिक रूप, पृष्ठ 26
2. तोमर, देवेंद्रपाल सिंह : हिंदू अछूत जातियों में छुआछूत, पृष्ठ 58

होने का मुख्य कारण उनकी आर्थिक स्थिति का दयनीय होना ही है। सफाई मजदूरों का अल्प वेतन, अल्प वेतन का मद्यपान में व्यय हो जाना, आर्थिक तंगी उत्पन्न करता है। घर का प्रत्येक सदस्य सफाई-कार्य में लगा रहता है तो कहीं किसी तरह पेट की आग बुझा पाती है। ऐसी स्थिति में जबकि घर के छोटे बच्चे तक शैशवावस्था में ही जीविका जुटाने में लग जाते हैं, तो उनको विद्यालय किस तरह से सुलभ हो सकता है, विचारणीय विषय है।

तथाकथित दलित जैसे निर्बल आय-वर्ग के लोगों के लिए सरकारी विद्यालय खोले गए हैं। उनमें मध्याह्न भोजन की भी व्यवस्था की गई है। कुछ गरीब घर के बच्चों के सहारे ऐसे विद्यालय जीवित रखे जा सके हैं परंतु संपन्न घरों के बच्चे अंग्रेजी सीखने के लिए प्राइवेट और कॉन्वेंट द्वारा चलाए जा रहे आँग्ल-पद्धति के विद्यालयों में अधिक भेजे जा रहे हैं। शिक्षालयों को व्यावसायिक स्वरूप प्रदान कर दिया गया है, जिससे उच्च शिक्षा अधूरी मानी जा रही है। क्योंकि सारी प्रतियोगिताएँ, न्यायिक कार्य, कार्यालयीय कार्य आदि अंग्रेजी भाषा में ही हो रहे हैं इसलिए उनमें समायोजन के लिए लोग अंग्रेजी पहले सीखने पर बल दे रहे हैं और वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति के सफाईकर्मियों के बच्चे अर्थाभाव में पीछे रह जा रहे हैं।

विदेशी अंग्रेज शासकों द्वारा यहाँ की प्राचीन शिक्षा-पद्धति के स्थान पर आधुनिक विदेशी शिक्षा पद्धति प्रचलित कर दी गई है। वह इसलिए भी फल-फूल रही है कि उसकी आवश्यकता आज तक बनी हुई है। यदि देश में सारे काम-काज क्षेत्रीय या संपर्क भाषा हिंदी में होने लगे तो यह समस्या स्वतः समाप्त हो सकती है, परंतु दक्षिण भारत में अंग्रेजी, बंगाल में अंग्रेजी, राजधानी में अंग्रेजी, कोर्ट में अंग्रेजी इत्यादि के कारण हिंदी का राष्ट्रभाषा क्या संपर्क भाषा भी होना कठिन कर दिया गया है।

वाल्मीकि अथवा अन्य किसी भी जाति के लिए किसी भी देश की भाषा का ज्ञान होना अच्छी बात है, किंतु जिससे अपनी संस्कृति प्रभावित न हो, वही भाषा उत्तम होती है। हिंदुस्थान के बहुभाषी हिंदी पसंद करते हैं, किंतु अंग्रेजी की आवश्यकता देखकर अधिकांशतः अंग्रेजी पढ़ने का प्रयास करते हैं। इससे देश पर पश्चिम का प्रभाव बढ़ता जा रहा है और यहाँ की संस्कृति में वैश्वीकरण का प्रदूषण भी व्याप्त होने लगा है। इस देश के ज्ञान-गुरु अब विदेशों में उच्च ज्ञान-प्राप्ति के लिए जा रहे हैं, जबकि वहाँ का ज्ञान यहीं का अर्जित किया हुआ अथवा चुराया गया ज्ञान है।[1]

शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी की धूर्तता विश्वप्रसिद्ध है। अरबी लुटेरों एवं अपनी दिनचर्या लिखनेवालों का विख्यात् इतिहासकार बतानेवाले अंग्रेजों ने यहाँ की शिक्षा-

1. धर्मपाल: भारत की लूट एवं बदनामी, विषय प्रवेश, पृष्ठ-24

व्यवस्था को ध्वस्त कर डाला,[1] शिक्षकों की निंदा की[2], इसे मूर्खों का देश कहा तथा मिशनरी शिक्षा का प्रसार करने का बहाना निकाला, जिससे वह अपने लिए सस्ते कर्मचारी प्राप्त कर सकें। यही कारण है कि वर्तमान में तथाकथित शिक्षित व्यक्ति को अपने देश की संस्कृति का कोई ज्ञान नहीं। दुनिया को हमारा महत्त्वपूर्ण योगदान था, इसकी कोई कल्पना नहीं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि समाज मानो अपनी जड़ों से कट रहा है।[3]

उपरोक्त कारणों से वर्तमान समय में वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से अभी भी पिछड़ा हुआ है। उसके समकक्ष (दलित एवं अस्पृश्य) कुछ जातियाँ तीव्र गति से विकास की धारा से जुड़ती जा रही है, परंतु यह जाति अभी भी उनकी तुलना में बहुत पीछे है, जिसका कारण मुख्य रूप से यही है कि इनकी एक बहुत बड़ी जनसंख्या अभी तक अपने पुराने धंधे यानी सफाई कार्यों में जुटी हुई है जिसका कारण उनकी आर्थिक स्थिति का दयनीय होना ही है। इस अर्थप्रधान युग में जिस किसी की भी आर्थिक स्थिति दयनीय है, वे पिछड़ी हुई अवस्था में देखे जाते हैं।

8.3 वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज का सशक्तिकरण अति आवश्यक

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज के पिछड़ेपन का निवारण अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए उन सभी कारणों (समस्याओं) का समाधान करने की आवश्यकता है। सबसे पहले उनके सामाजिक पिछड़ेपन का समाधान अथवा निदान होना चाहिए। वर्तमान समय में सफाई-कार्य न कानूनी कार्य है और न ही वंश-परंपरागत होने से बाध्यकारी कार्य है। यह मध्ययुगीन विदेशी इसलामिक शासकों द्वारा अपनी विलासिता के लिए प्रायोजित किया गया कार्य है। धर्माभिमानी और स्वाभिमानी ब्राह्मण एवं क्षत्रिय उनके मार्ग की सबसे बड़ी बाधा होते थे, इसलिए उनको बलपूर्वक अस्वच्छ एवं निम्न कार्यों में लगाया गया। इससे मुक्ति पाकर वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य समाज अपनी सामाजिक प्रस्थिति को पूर्वमध्यकालीन अवस्था में पहुँच सकता है। इससे सामाजिक पिछड़ापन समाप्त होगा। इसी प्रकार आर्थिक पिछड़ेपन को विभिन्न प्रकार के व्यवसायों एवं उद्यमों के माध्यम से दूर किया जा सकता है। आरक्षण द्वारा सुलभ शिक्षा के अवसर का लाभ उठाकर

1. धर्मपाल : भारत की लूट एवं बदनामी, संपादकीय, पृष्ठ 14
2. धर्मपाल : रमणीय वृक्ष, पृष्ठ 13
3. धर्मपाल : भारत की लूट एवं बदनामी, संपादकीय, पृष्ठ 17

ये लोग अपनी शैक्षिक स्थिति भी उन्नत कर सकते हैं, क्योंकि शैक्षिक स्थिति उन्नत करने पर उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति भी स्वत: उन्नत हो सकती है और राजनीतिक क्षेत्र में भी वे सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर सकते हैं, साथ ही शासन-प्रशासन में भी नियोजन पा सकते हैं।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज भी अन्य जातियों की भाँति भारतीय लोकतंत्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। यूरोपीय समाज से भारतीय समाज का स्वरूप पूर्णत: भिन्न है। शासन-प्रणाली भी अलग है। यहाँ जनता द्वारा जनता के लिए जनप्रतिनिधि चयन किए जाते हैं। यदि जनता पिछड़ी हुई है, तो इसका अर्थ भी यही हुआ कि उसका लोकतंत्र पिछड़ा हुआ है। अज्ञानता के कारण जनता अच्छे प्रतिनिधि नहीं भेज पाती है तो इसका परिणाम उसे और इस देश को ही भुगतना पड़ता है। इसलिए प्रबुद्ध जनमत के लिए वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज का ज्ञान के क्षेत्र में पिछड़ापन दूर करना आवश्यक है।

राष्ट्रीय विकास में व्यक्ति के साथ ही समाज की भी परिस्थिति अवलोकनीय होती है। यदि व्यक्ति की सामाजिक दशा चिंतनीय है, तो समाज स्वत: चिंतनीय होगा और समाज की चिंतनीय स्थिति का प्रभाव देश एवं समाज पर पड़ना स्वाभाविक है ही। ऐसे में भी वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज का पिछड़ापन दूर करना आवश्यक है।

देश की अर्थव्यवस्था और उसका आर्थिक विकास मूलत: राष्ट्रीय आय पर निर्भर करता है और राष्ट्रीय आय का आधार प्रतिव्यक्ति की आय तय करता है। जिस देश की प्रतिव्यक्ति आय का स्तर ऊँचा होगा, उस देश की राष्ट्रीय आय भी उच्च स्तर की होगी और देश विकास के पथ पर अग्रसर होगा। यहाँ व्यक्ति की नहीं, बल्कि पूरे समाज की आय स्तर निम्न है, जैसे—वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज में हम देखते हैं। ऐसे में देश की अर्थ-व्यवस्था के विकसित होने का प्रश्न कहाँ? अत: आवश्यक है कि वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज की आर्थिक स्थिति को उन्नत करके उनके आर्थिक पिछड़ेपन को समाप्त किया जाए।

देश के राष्ट्रीय विकास में अशिक्षा और अज्ञानता भी बाधक होती है। वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज की अधिकांश जनसंख्या आज भी शिक्षा के क्षेत्र में बहुत पीछे है और उसके कारण वह स्वयं भी पिछड़ी हुई अवस्था में है। इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर किसी विशेष योजना के अंतर्गत सफाईकर्मी समाज को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए समस्त प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए। यदि आज की महँगी शिक्षा पाने से वे वंचित रहते हैं तो इसकी जिम्मेदारी उनकी नहीं है। चूँकि उनकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है, इसलिए वे महँगी शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हैं।

इसलिए सरकार को ऐसी नीति बनानी होगी कि वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य छात्रों को उच्च शिक्षा नि:शुल्क प्रदान की जाए अथवा उसके लिए अधिकाधिक मात्रा में छात्रवृत्ति का लाभ दिया जाए। उनकी शिक्षा में धन की बाधा समाप्त होनी चाहिए।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज कार्यमूलक वर्ण-व्यवस्था के अनुसार अपने कार्य करते रहे। यह तभी संभव है जब उनको पर्याप्त सुविधाएँ, वैज्ञानिक उपकरण और अधिकाधिक वेतनमान, भत्ते, पुरस्कार आदि भी दिए जाएँ। उनके कार्यों के प्रति घृणा के भाव न प्रदर्शित किए जाएँ और कार्य के आधार पर उनको पिछड़ा हुआ न माना जाए। इसके साथ ही उन लोगों में उनके अतीत के योगदान के प्रति आत्मगौरव का बोध कराया जाए तथा कार्य के स्वरूप की मैली अथवा हीन भावना को दूर किया जाए। उनकी स्वयं की समझ को भी परिमार्जित किया जाए और वे अपने कार्य को आत्मसम्मान का कार्य समझकर करें। कार्य के स्तर की ग्लानि वे महसूस न करें, ऐसी व्यवस्था अथवा वातावरण भी बनाना होगा।

सफाईकर्मी समाज के अधिकांश लोग महाजनी ऋण में डूबे हुए पाए जाते हैं और प्रत्येक वेतन वितरण के दिन उनको बलपूर्वक पकड़कर उच्चतम ब्याज वसूल किया जाता है। जब कुछ भी शेष नहीं रह जाता तो वही ब्याज पुन: मूलधन के रूप में उनको दिया जाता है और फिर उस पर ब्याज लिया जाता है। इस तरह लेन-देन के चक्र में उलझाकर उनका आर्थिक उत्पीड़न आज उसी तरह से हो रहा है, जैसे मुगलकाल में होता था। उनके पिछड़ेपन का यह भी कारण है। इसके लिए उनको महाजनी ऋणों के विधिक तरीके से मुक्ति दिलाई जाए। बिना दलालों के सहयोग से बैंकों द्वारा न्यूनतम ब्याज-दर पर उनको ऋण की सुविधा प्रदान की जाए ताकि वे प्राप्त धन से अपना व्यवसाय इत्यादि कार्य पूरा कर सकें।

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज सबसे अधिक पिछड़ा हुआ है—मद्यपान से। उनका दुर्गंधयुक्त सफाई का कार्य ऐसा है जिससे बचने के लिए वे मदिरा का सेवन करते हैं। उनमें एक गलत अवधारणा है कि शराब पीने से उनके अंदर कोई प्रदूषणवाली बीमारी जाएगी तो नष्ट हो जाएगी। बाजार की महँगी शराब सुलभ न होने पर वे शराब बनाते भी हैं। आबकारी विभाग के छापे सफाईकर्मी बस्तियों पर बराबर पड़ते रहते हैं। इसको लेकर वे और उनका परिवार सामाजिक रूप से अपमानित एवं उत्पीड़ित और दंडित भी होता है।

सफाईकर्मियों की बस्ती जिस भी जगह चिह्नित होती है, उधर सामान्य लोग जाना पसंद नहीं करते। यह स्थिति मुगलकाल में थी। आज उनके लिए अलग बस्ती के निर्माण की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उनको समाज के अंदर भूमि आवंटित की जाए तथा अपनी पसंद के अनुसार आवास बनाने हेतु पर्याप्त पैसा एवं अवसर प्रदान

किया जाए। वे समाज में चारों ओर यत्र-तत्र होंगे तो आपस में उनके संबंध सौहार्दपूर्ण रहेंगे तथा अन्य लोगों के साथ रहकर वे भी सामाजिक बनेंगे। उनका आधा पिछड़ापन तो ऐसे ही समाप्त हो जाएगा।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज इसलाम का शत्रु-पशु सूअर पालता है उसे अपने घरों में ही रखता भी है जिसके कारण दुर्गंध का वातावरण सदैव बना रहता है और लोग उनकी बस्ती में जाने से कतराते हैं। यह मानव स्वभाव है कि कोई भी दुर्गंध पसंद नहीं करता। ऐसे जानवरों को लाभ की दृष्टि से भी पाला जाए तो अधिकाधिक अर्थोपार्जन करके लोग अपने पिछड़ेपन को दूर कर सकते हैं। वैसे पवित्रता की दृष्टि से शेष हिंदू समाज से सामंजस्य स्थापित करना है तो ऐसे सभी धंधे एवं कार्य-व्यवसाय छोड़ने होंगे जो किसी जाति के पिछड़ेपन के प्रतीक होते हैं। उदाहरण के लिए आज मृत पशुओं के चमड़े उतारना, मरे हुए पशुओं का मांस खाना, घरों में प्रसूति संबंधी मैल फेंकने का कार्य यदि चर्मकार जाति ने त्याग दिया तो वह खाए बिना मर नहीं रही है। उसी तरह से पिछड़ेपन के प्रतीक कार्य छोड़ देने से वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज दूसरे कार्य करके जीवन निर्वाह कर सकता है। इसके लिए उसे अपने जातीय संस्थाओं एवं संगठनों, समाज के अन्य धनाढ्य लोगों और सरकार को भी भरपूर सहयोग करना होगा, ताकि उनका पिछड़ापन दूर किया जा सके।

8.4 सफाईकर्मी समाज का सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक विकास शिक्षा द्वारा संभव

साहित्य ही समाज का दर्पण है और साहित्य का संबंध शिक्षा से है तो शिक्षा की आवश्यकता किसी भी समाज के लिए स्वतः आवश्यक हो जाती है। समाज का संचालन बिना किसी अर्थ-व्यवस्था के असंभव है इसलिए अर्थोपार्जन के लिए भी शिक्षा आवश्यक है। इसी आधार पर यह वैचारिकी जन्म लेती है कि वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज का सामाजिक और आर्थिक स्थिति जब स्वतः सशक्त होगी और तब कोई भी वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि जाति का व्यक्ति स्वयं को राजनैतिक क्षेत्र में भी स्थापित करने का अवसर प्राप्त कर सकता है।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना उचित प्रतीत होता है कि पुराने विचारों एवं रूढ़ियों के शिकार वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति के जो लोग अभी तक निर्धनता और दलित की स्थिति में है, अशिक्षित होने के कारण समाज में अपनी स्थिति को अधिक उन्नत नहीं बना पाए हैं। वे लोग अपने परंपरागत एवं प्रायोजित सफाई कार्यों

में लगे रहकर उच्च सामाजिक प्रस्थिति भी खो चुके हैं। वर्तमान में केवल रोजी-रोटी ही उनके लिए मुख्य उद्देश्य रह गया है। ऐसे लोग राजनीति के बारे में आक्रोश व्यक्त करते दिखलाई देते हैं।

वस्तुतः उनकी चिंता थी कि स्वतंत्रता मिलने के बाद उनके भी दिन अच्छे होंगे और विदेशी मुसलिम आक्रांता एवं मुगलकाल का दिया हुआ दर्द कुछ कम होगा। परंतु स्वतंत्रता मिलने के बाद जिन दलित और अस्पृश्य जातियों को शिक्षा का सीधा लाभ मिला उन्होंने अपना सामाजिक और आर्थिक स्तर ऊँचा कर लिया, राजनीति एवं शासन-प्रशासन में भी आगे आ गए और वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि समाज को वह अवसर नहीं मिल पाया। इसलिए वे आज तक पीछे एवं विकास की मुख्यधारा से दूर रह गए हैं। इसी अनुभव के कारण वे वर्तमान राजनीति से घृणा करते हैं। घृणा और आक्रोश में वे शिक्षा को भी अपना हितैषी नहीं मानते हैं।

परिवर्तित परिवेश में वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज के युवकों की सोच बदली है और वे ठीक से समझ पाए हैं कि उनका सामाजिक और आर्थिक विकास शिक्षा के बिना असंभव है। वे शिक्षा प्राप्त करने में जुट गए हैं। इसमें सबसे बड़ी बाधा है आधुनिक शिक्षा, महँगी शिक्षा और उच्च शिक्षा का वैश्वीकरण करनेवाली पाश्चात्य शिक्षा। इसके लिए कुछ अलग से व्यवस्था आवश्यक है। क्योंकि वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था का स्वरूप प्राचीन भारतीय शिक्षा के स्वरूप से भिन्न हो गया है। इसका कारण हजारों वर्षों तक देश की दासता है।

विदेशी आक्रांता मुसलिम एवं अंग्रेज शासकों द्वारा कभी हिंदुस्थान पर अरबी, फारसी और उर्दू तो फिर अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषाएँ थोपी गईं और वह भी स्वाभिमानी एवं योद्धा जातियों यानी मध्यकाल में प्रचंड दमन, दलन और उत्पीड़न के उपरांत दलित बना दी गई धर्माभिमानी एवं राष्ट्राभिमानी जातियों के लोगों के लिए निषिद्ध किया गया। स्वामिमानी जाति के लोगों ने वैसे भी गुलामी की प्रतीक उन विदेशी भाषाओं का अध्ययन करना अनुचित एवं अपमान माना। बिना विद्यालय गए ही अपने आत्मचिंतन से उच्चतम ज्ञान अर्जित किया और ईश्वर का साक्षात् दर्शन भी किया। संत कबीर, संत रविदास, संत दुर्बलनाथ, संत नवलजी इत्यादि इसके जीवंत साक्ष्य हैं। इन्हीं के बल पर यह देश विश्वगुरु कहा जाता रहा, जिसकी चर्चा विद्वान् राष्ट्रवादी लेखक श्री सुरेश सोनी ने इन पंक्तियों में की है—

'अपने श्रेष्ठतम तत्त्वज्ञान और उस तत्त्वज्ञान के प्रकाश में विकसित हुई संस्कृति के कारण भारत भूतकाल में विश्वगुरु की भूमिका निभाने में सक्षम रहा। विगत कुछ शताब्दियों के बाह्य आक्रमण के कारण विश्व को मार्गदर्शन देने की भारत की क्षमता समाप्त हुई है। विशेष रूप में अंग्रेजों के आक्रमण ने इस क्षमता

को नष्ट किया है।"[1]

उक्त कथन सर्वथा सत्य है। गुरुकुल शिक्षा-पद्धति के स्थान पर विदेशी शिक्षा-पद्धति का प्रचलन होने से विषयों एवं भाषाओं का अध्ययन-अध्यापन कार्य विदेशी विद्यालय प्रबंधन के अनुसार ही हो पाया, जिससे अंग्रेजों के लिए केवल हिंदू नौकर पैदा किए जा सके। उन नौकरों ने अंग्रेजों के निर्देशानुसार दलितों और अस्पृश्यों को शिक्षा से दूर रखा। यदि किसी दलित ने तरक्की भी की तो सर्वप्रथम उसने अपने समाज का ही बहिष्कार किया।[2]

मध्ययुग में जब विदेशी शासकों ने शिक्षा का प्रबंध अपने हाथ में लिया और सभी को एक समान अवसर देकर अध्ययन की सुविधा प्रदान की तो उसमें सुविधासंपन्न लोग आगे निकल गए, जबकि अभावग्रस्त लोग पीछे रहे गए। ऐसे लोगों के लिए डी. डी. घोलप ने बंबई विधान परिषद् के समक्ष यह प्रस्ताव रखा था कि दलित बच्चों की शिक्षा के लिए अलग से भी स्कूल एवं छात्रावास अनिवार्य किया जाए।[3] स्वामी दयानंद ने वैदिक शिक्षा को सबके लिए सुलभ किए जाने पर बल दिया और कहा कि वेद-ग्रंथ किसी जाति विशेष के लिए नहीं है, अतएव दलित लोग इसे अवश्य पढ़ें, यज्ञ करें, और यज्ञोपवीत भी धारण करें। इससे शिक्षा का स्तर ऊँचा उठने के साथ ही सामाजिक विषमता भी समाप्त होगी।[4]

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज का सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण शिक्षा द्वारा ही संभव था, जो प्रतिकूल परिस्थितियों में लक्ष्य से दूर रहा, जबकि वर्तमान में अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करके लक्ष्य तक पहुँचाने का प्रयास जारी है। इस प्रयास में प्रत्येक के सहयोग एवं सहानुभूति की आवश्यकता है, विशेषकर सरकारी प्रयासों में और भी तीव्रता लाने की आवश्यकता है।

8.5 सफाई-कार्य में वैज्ञानिक तकनीकि एवं पारिश्रमिक नीति आवश्यक

सफाई का कार्य धार्मिक पवित्रता से जुड़ा हुआ है। सफाई-कार्य सभ्यता और संस्कृति का प्रतिबिंब है। सफाई-कार्य किसी भी समाज की सम्मानजनक स्थिति-प्रस्थिति का बोध है। ऐसे में सफाईकर्मी किसी भी समाज, किसी भी देश और किसी भी शासन-प्रशासन के लिए क्या हो सकते हैं, यह स्वयं विचारणीय है।

---

1. सोनी, सुरेश (पूर्वोद्धृत), मनोगत, पृष्ठ 4
2. तोमर, देवेंद्र प्रताप सिंह (पूर्वोद्धृत), पृष्ठ 165
3. डॉ. कृष्णगोपाल, बाबा साहब व्यक्ति और विचार, पृष्ठ 55
4. वही, पृष्ठ, 58

सफाई-कार्य राष्ट्रीय स्तर पर कोई भिन्नता नहीं रखता, परंतु सफाईकर्मी नगरपालिका स्तर पर, राज्य स्तर पर, केंद्र सरकार के स्तर पर विभाजित करके भिन्न-भिन्न पारिश्रमिक एवं वेतन आहरित करने को विवश है। विदेशी शासन में जन्म लेने और पूरे गुलामी काल तक घृणा के पात्र बने रहने के बाद भी, वर्तमान में इनकी उपेक्षा दुःख का विषय है। आज इनको अंशकालिक कर्मचारी और ठेकेदार का कर्मचारी बनाने का आदेश जारी कर दिया गया है। सरकार अपनी अपव्ययिता के लिए अत्यधिक धन जुटाने में समर्थ नहीं हो पा रही है तो सफाईकर्मी समाज का पेट काटकर राजकोष बढ़ाने का निश्चय कर रखा है।

कई राज्यों में यह नियम लागू कर दिया गया है। ऐसी राज्य सरकारों से सफाईकर्मियों के लिए नवीन, पुनरीक्षित और उच्चतम वेतन की माँग का औचित्य ही समाप्त हो जाता है। जिद्दी सरकारें सफाईकर्मियों की हड़तालों का विकल्प भी ढूँढ़ रखी है—नई भर्तियों की घोषणा कर दी जाती है, सफाई मजदूर नेताओं की धर-पकड़ की जाती है, उनको लालच देकर मिलाया जाता है, और भूख से मरनेवाले सफाई-कर्मचारी पुनः काम पर वापस आ जाते हैं। सरकार जीत जाती है। सफाईकर्मी कर्मचारी हार जाते हैं। बस, इसी तरह से सरकार और सफाई-कर्मचारियों में परिणामरहित संघर्ष चल रहा है।

विचारणीय विषय यह है कि शासन द्वारा माँगें मनवाने के लिए भारी जनसंख्या का दबाव आवश्यक होता है। सफाई-कर्मचारी सबके लिए काम आते हैं, परंतु उनके लिए वर्तमान नेतागण समर्थन देने से कतराते हैं। यह कार्य किसी भी समाज के लिए न्यायोचित नहीं माना जा सकता। ऐसे लोगों के हित से जुड़े कार्यों में सहयोग न करना कायरता है। यदि पूरा समाज अपने सफाईकर्मियों के हितचिंतन कर ले तो शासन में इतनी शक्ति नहीं जो उनको अंशकालिक अथवा निविदा पर काम दे, बल्कि उन्हें भी सीधे-सीधे अच्छे वेतन दिए जा सकते हैं। आवश्यकता है इनके हित में सामूहिक समर्थन देने की।

जहाँ तक तकनीकी पद्धति से सफाई-कार्य के लिए प्रबंध किए जाने की बात है, तो पहले से कुछ तो परिवर्तन आया है। अब पीठ पर भिश्ती लेकर पानी गिराने और पीछे से झाड़ू मारकर नाली साफ करने की स्थिति नहीं देखी जाती है। भैंसेवाली बैलगाड़ी का स्थान भी कूड़ा उठानेवाली मशीनों और ट्रकों ने ले लिया है। फिर भी गलियों और सड़कों से कूड़ा एकत्रित करने और ट्रालियों पर लादकर एक स्थान तक पहुँचाने का कार्य शेष रह गया है जिसे सफाईकर्मी को अपने हाथ से ही करना पड़ता है। झाड़ू लगाने का कार्य स्त्रियाँ और बच्चे भी करते देखे जाते हैं। वे नियुक्त हैं अथवा किसी के स्थान पर कार्य कर रहे हैं, यह पूछने और देखने का किसी के पास समय नहीं है। परंतु यह कार्य भी मशीनों द्वारा इन्हीं सफाईकर्मियों के हाथों संपादित कराया जा सकता है।

बड़े शहरों में बड़े-बड़े मेनहोल बने हैं और मोटी पाइप लगाकर अथवा ट्रकों

पर लदे पानी को बहाकर पूरी सड़कें धो दी जाती हैं। पूरा कूड़ा-कचरा एक ही साथ बहकर मेनहोल से अंदर-अंदर दूर चला जाता है, जहाँ मशीनों से उसका विविध प्रकार से शोधन करके खाद और पानी तथा जल-विद्युत् तैयार किया जाता है।

धूल खींचनेवाली मशीनें पुस्तकालयों, अस्पतालों, सरकारी कार्यालयों में लगी हैं। इनका उपयोग सड़कों की सफाई में भी किया जा सकता है। गंदगी करनेवालों को प्रतिबंधित करने की प्रशासनिक व्यवस्था जहाँ लागू होती है, वहीं कुछ समय के लिए सफाई के दृश्य देखने को मिल जाते हैं, परंतु शिथिलता के साथ ही पुनः गंदगी होने लगती है। लोगों की एक मानसिकता यह हो गई है कि गंदगी भले वे करेंगे, परंतु सफाई के लिए उनको बाध्य नहीं किया जा सकता। इसी मानसिकता को बदलने की आवश्यकता है और इसके लिए पर्याप्त दंड का प्रावधान भी आवश्यक है। यह वैज्ञानिक तो नहीं फिर भी एक उत्तम प्रशासनिक विधि अवश्य है।

सफाई-कार्य की उपेक्षा और उसे साधारण कार्य मान लिया जाना किसी भी सरकार के लिए उचित नहीं है। इस कार्य को करनेवाले सर्वप्रथम अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा पहले ही खो देते हैं। यदि रोटी के लिए वे इतना नीचे गिरकर सेवाएँ देते हैं तो उनके प्रति उदात्त एवं उदारभाव होना आवश्यक है। जहाँ भी ऐसे कर्मियों को संविदा, निविदा आदि पर नियुक्त किया जाने लगा है और जहाँ भी वे विसंगत वेतन पा रहे हैं, वह सब तुरंत समाप्त होना चाहिए। उनके लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक जैसी नीति बनाकर एक समान और उच्चतम वेतनमान दिया जाना चाहिए। निजी क्षेत्र अथवा घरेलू नौकर के रूप में उनसे जो लोग काम लेते हैं, उसके लिए भी पारिश्रमिक का उचित अनुपात में निर्धारण होना चाहिए, तभी न्यायसंगत पारिश्रमिक का प्रावधान हो सकता है।

8.6 सामाजिक जनजागरण एवं आत्मगौरव का बोध

जागरण अथवा जागृति ही जीवन है। जागृति ही आत्मगौरव का बोध कराती है और संज्ञाशून्य जीवन में चेतना आती है। कभी-कभी जागरण के लिए जन-समूह का सहयोग आवश्यक होता है। वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज के लिए आज ऐसे ही जनजागरण की आवश्यकता है ताकि उनको अपने आत्मगौरव का बोध हो सके और वे विकास की राष्ट्रीय धारा से जुड़ सकें।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद संविधान में अस्पृश्यता को अपराध घोषित कर दिया गया है। किसी को जातिसूचक अपमानपूर्वक संबोधन से संबोधित किया जाना अपराध है। हिंदू समाज में भी स्वच्छता एवं पवित्रता को लेकर पूर्वकाल में प्रादुर्भूत की अस्पृश्यता की दुर्भावना अब दंडनीय घोषित है। समाज में वाल्मीकि, सुदर्शन, अथवा किसी भी जाति के नाम पर कोई भी भेदभाव जघन्य अपराध माना गया है।

वर्ण-व्यवस्था के नाम पर शूद्रों की श्रेणी में अनावश्यक रूप से वाल्मीकि, सुदर्शन या अन्यान्य अनुसूचित जातियों को धकेलकर राग-द्वेष की षड्यंत्रकारी राजनीति भी अब समाप्त हो चुकी है। बहुसंख्यक होने के कारण इस जाति के हाथों में राजनीतिज्ञों की जय-पराजय का भाग्य लटका हुआ है। आरक्षण और अन्य प्रकार की सामाजिक तुष्टिकरण सामग्री से हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति के लोग उपकृत किए जा रहे हैं। ऐसे में अब मात्र उनके सामाजिक जनजागरण का ही काम शेष रह जाता है।

मध्यकाल में सामाजिक जनजागरण का कार्य संतों, महात्माओं, समाजसेवियों, धर्माचार्यों, राजनेताओं, कवियों-साहित्यकारों आदि सभी ने किया था। जनजागरण के संदर्भ में कुछ जातियों ने भी अपने प्रति होनेवाले अन्याय एवं सामाजिक दुर्व्यवहार के प्रति निरंतर संघर्ष किया। इनका संघर्ष प्रवाहमान सामाजिक जनजागरण का प्रतिफल रहा। यह आत्मगौरव एवं राष्ट्राभिमान का बोध होने से भी जागृत हुआ था।

आधुनिक भारत में सामाजिक जनजागरण का संयुक्त एवं संपूर्ण प्रयास मुख्यत: गांधी, डॉ. अंबेडकर, डॉ. हेडगेवारजी ने किया राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एवं राजनैतिक क्षेत्र में पं. दीनदयाल उपाध्याय के द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानव दर्शन के चिंतन से प्रभावित रहा। वेद को प्राचीन धर्मग्रंथ मानते हुए लोगों को समझाया गया कि वेदों में कहीं भी अस्पृश्यता का उल्लेख नहीं है। विधि निषेध तर्कसंगत होने चाहिए,[1] क्योंकि ये नियम हिंदू धर्म की उदात्त भावनाओं के पूर्णत: विपरीत है।[2]

सामाजिक जनजागरण को सर्वग्राही बनाने के लिए डॉ. अंबेडकार ने कहा है कि समाज के अधिकारों की रक्षा अर्थात् सभी जातियों के सम्मान की स्थिति सामाजिक चेतना द्वारा ही संभव है,[3] अतएव सामाजिक समरसता एवं सहिष्णुता के बारे में सभी को समान रूप से भी चिंतन करने की आवश्यकता है। यह भय भी लोगों को निकालना होगा कि समाज के अन्य लोग उसे कुछ कहेंगे तो नहीं। यह हिंदू समाज में एक कायरता है जिसे दूर करना होगा।[4] आपस में भाई-चारा का वातावरण बनाना होगा।[5] राष्ट्र को उच्चासन पर पहुँचाने के लिए जाति-भेद त्यागना होगा।[6] यह भी एक प्रकार का जनजागरण ही कहा जाएगा।

---

1. गांधी, एम.के., नवजीवन पब्लिकेशन, अहमदाबाद
2. श्रीवास्तव, के.एल. : दि पोजीशन ऑफ हिंदूज अंडर दि दिल्ली सल्तनत 1206-1526, पेज 160-172
3. अंबेडकर वाङ्मय, भाग-1, पृष्ठ 167
4. वही, पृष्ठ 76
5. वही, पृष्ठ 78
6. वही, पृष्ठ 78

आध्यात्मिक होने के कारण वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य समाज का भगवान् पर अधिक विश्वास रहना स्वाभाविक है। परंतु उनको यह भी बतलाना होगा कि भगवान् उनकी ही मदद करता है, जो अपनी मदद स्वयं करने को सदैव सक्रिय रहते हैं। जो आलसी होते हैं और अपनी दीन-दशा को भगवान् की इच्छा मानकर चुपचाप बैठे रहते हैं वे कभी भी विकास नहीं कर सकते और न ही जागृत हो सकते हैं। इसके लिए सामाजिक जनजागरण के साथ ही उनमें आत्मगौरव का बोध कराना भी आवश्यक है।

आत्मगौरव का बोध कराने का तात्पर्य है लोगों के अंदर की शक्ति को जगाते हुए उनके गौरवशाली अतीत से परिचित कराना। उनको यह बतलाना कि पूर्वकाल में धर्मरक्षक (ब्राह्मण) और देशरक्षक (क्षत्रियों) यानी हिंदू युद्धबंदियों से बलपूर्वक मैला ढोने जैसा अस्वच्छ कार्य लेकर उनके स्वाभिमान को भंग कर भंगी यानी अस्पृश्य बनाया गया, फिर भी उन्होंने इसलाम अस्वीकार किया और हर प्रकार के भी इस्लार्मिक दमन, दलन, उत्पीड़न एवं शोषण को धैर्यपूर्वक सहा तथा अवसर मिला तो विद्रोह करके भयानक प्रत्युत्तर भी दिए। इस तरह वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज का एक गौरवशाली और योद्धा जातियों का धर्माभिमान एवं बहादुरी का इतिहास है, इसका बोध उन्हें उनकी अपनी आत्मा को कराने के साथ ही आत्मगौरव को उन्नत करना चाहिए।

आत्मगौरव का बोध जनजागरण की अपेक्षा अधिक सशक्त होता है। इसका छोटा सा उदाहरण महर्षि वाल्मीकि ने सुंदरकांड में दिया है—जामवंत ने समुद्र लाँघकर लंका के उस पार जाने और सीता का पता लगाने हेतु समुद्र के तट पर हनुमानजी के पौरुष की प्रशंसा करके उनके आत्मगौरब को ही बढ़ाया था जिससे हनुमानजी के शरीर में शक्ति का ऐसा संचार हुआ कि वे सीता की खोज के साथ ही लंका को भस्म करके चले आए थे।

एक कहावत है—

जो ज्यादा मीठा होता है, वह अपना नाश कराता है।
देखो मीठे ही गन्ने को कोल्हू में पेरा जाता है॥

अर्थात् आत्मगौरव का बोध किसी को उद्दंड बनाने का नाम नहीं, बल्कि किसी के स्वाभिमान को जागृत करने का पर्याय है। विदेशी अरब के आक्रांता-शासकों ने धर्माभिमानी एवं राष्ट्राभिमानी ब्राह्मण एवं क्षत्रियों को उनका स्वाभिमान भंग करके उन्हें सफाईकर्मी जाति की जो नई पहचान दी थी, बस उसी को जागृत करने की आवश्यकता है। इसके लिए परिस्थिति भी अनुकूल बन चुकी है तथा कोई किसी

से उसकी जाति नहीं पूछ रहा है। जाति-भेद स्वतः दम तोड़ रहा है और सामाजिक समरसता स्वतः फैलती जा रही है। हिंदू समाज एकजुट होकर सुदृढ़ होने की दिशा में अपना कदम आगे बढ़ा चुका है। ऐसे में वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मज़हबी सिख इत्यादि समाज को अपने सामाजिक जनजागरण हेतु संयुक्त रूप से अभियान चलाना है तथा अपने समाज के लोगों को उनके आत्मगौरव का बोध करा देना है।

8.7 जातिगत संगठन एवं आत्मोत्थान चिंतन आवश्यक

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि (सफाईकर्मी) जाति का जातिगत संगठन बहुत आवश्यक है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिन जातियों का कोई अपना संगठन नहीं है, उनकी किसी भी माँगों की उपेक्षा कर दी जाती है। जातिगत संगठन से उनकी जाति की संख्या और उसमें छुपी हुई राजनीतिक शक्ति का आकलन होता है। इससे पता चलता है कि सामाजिक एवं आर्थिक तथा शैक्षणिक एवं राजनीतिक आधार पर वह जाति किस स्तर तक पहुँच चुकी है। जातियों के संगठन राष्ट्रीय स्तर, प्रांतीय स्तर, जिला एवं तहसील स्तर पर बने हों तो लाभप्रद है। इससे एक शक्तिशाली कड़ी का प्रदर्शन संभव है जो उस जाति की एकता एवं विशालता का भी प्रदर्शन करता है। अतएव उनकी सभी माँगों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाता है।

वर्तमान समय राजनीति का है। सभी जातियों में सत्ता-शासन को हथियाने की होड़ लगी हुई है। तात्पर्य यह है कि सत्ता हथियाने एवं उसके संचालन में वर्चस्व स्थापित करने की दृष्टि से जाति समीकरण एवं अन्यान्य जातियों का उनके अंदर अंतर्भूत शक्तियों के प्रदर्शन की परंपरा स्पष्ट दृष्टिगत है। प्रत्येक क्षेत्र में राजनीति का वर्चस्व है। सामाजिक जगत हो या आर्थिक, यहाँ तक कि धार्मिक क्रिया-कलापों में भी राजनीति का हस्तक्षेप सामान्य रूप से दिखाई दे रहा है। राजनीति में अग्रणी होकर प्रत्येक व्यक्ति अथवा समाज सत्ता को बलपूर्वक प्राप्त कर शासन पर अपना प्रभुत्व रखना चाहता है। ऐसे में सामान्य जाति, पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों, सभी एकत्रित, संगठित और जागृत होकर तथा अन्य जातियों के साथ समीकरण स्थापित करके सत्ता इत्यादि में भागीदारी कर रही है। ऐसे में वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि (सफाईकर्मी) जाति को भी अपने अंदर विद्यमान जातीय संगठन की शक्ति को जागृत करके वर्तमान राजनीतिक सक्रियशीलता में अपने लिए भी राजनीतिक संभावनाओं को तलाशने की आवश्यकता है।

जातीय संगठनों को सरकार की ओर से कोई अनुदान आदि नहीं दिए जाते हैं बल्कि उनको अपने जाति-समुदाय से दिए गए आर्थिक सहयोग आदि लेकर अपनी

आवश्यकता पूरी करनी होती है। इसमें जिस जाति के पास आर्थिक धन-धान्य अधिक होते हैं, उनके जातीय संगठन अच्छी तरह से कार्य करते हैं और प्रत्येक कार्य वे धनबल के आधार पर संपन्न कर लेते हैं। परंतु जिन जातियों के संगठनों के पास अर्थाभाव होता है, वे चल नहीं पाते, कुछ ही समय बाद केवल कागजों पर रह जाते हैं अथवा समाप्त हो जाते हैं। इसलिए जातीय संगठनों के लिए एक अच्छे कोष की आवश्यकता होती है।

जातीय संगठनों के पास संगठन का अपना कार्यालय होना चाहिए। वर्तमान समय में संगठन के अध्यक्ष अथवा महामंत्री का आवास ही संगठन का कार्यालय हुआ करता है। कार्यालय के लिए अर्थ यानी धन की आवश्यकता होती है। धनसंपन्न जातीय संगठन अपने अनेक कार्यालय रखते हैं।

जातीय संगठनों के लिए कुशल एवं पूर्णकालिक कार्यकर्ता होना चाहिए। कार्यकर्ता यदि पूर्वाग्रही, रूढ़िवादी और मनमाने स्वभाव के होते हैं तो संगठन में बिखराव हो जाता है। सामाजिक अथवा राजनीतिक कार्य करने के लिए बड़ा मन एवं खुले मस्तिष्क होने चाहिए। अनेक संगठन ऐसे पाए जाते हैं जिनमें गुटबाजी खुलकर सामने आती है। कई संगटनों के वार्षिक चुनाव कागजों पर हो जाते हैं और पदाधिकारी मरते दम तक उससे लिपटे रहते हैं। वे कोई कार्य भी नहीं करते और अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए संस्था से बुरी तरह चिपके रहते हैं। हिंदुस्थान में हजारों जातियाँ हैं। यदि प्रत्येक जातियों का इतिहास इन जातीय संगठनों ने लिखा होता तो आज समाज के सामने हर जाति का गौरवशाली इतिहास पढ़ने को मिलता, जो भावी पीढ़ी के लिए काम आता। ऐसी जातीय संस्थाओं के पदाधिकारी अपने मुँह मियाँ मिट्ठू भले बन लें किंतु असहाय स्वाजातीय समाज के लोग उनके नाम तक सुनना पसंद नहीं करते।

किसी भी जातीय संगठन में अनेक शाखाओं का होना अच्छी बात है, किंतु किसी भी समय शक्ति प्रदर्शन हेतु उनमें आपसी तालमेल एवं स्वजातीय संगठन के भाव का होना बहुत आवश्यक होता है। सभी शाखाओं में जाति-गौरव का भाव होना चाहिए। उसके सदस्यों में समर्पण की भावना होनी चाहिए। संगठनों की एक आवाज पर सपरिवार एकत्रित होने का स्वभाव चाहिए। आलस्य, स्वार्थपरता, उदासीनता जैसे दुर्गुणों से संगठन कमजोर होकर कालकवलित हो जाते हैं।

वर्तमान वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि (सफाईकर्मी) जाति में आज इसी की कमी देखी जाती है। अभी तक पूर्वी एवं पश्चिमोत्तर भारत में वाल्मीकि समाज और दक्षिण भारत में सुदर्शन समाज के साथ पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, चंडीगढ़ इत्यादि में मजहबी सिख के जातीय संगठन मजबूत स्थिति में है। क्षेत्रीय आधार पर अलग-अलग चुहढ़ा, डोम, धरकार, डुमार, मेहतर, हेला, लालबेगी, रावत इत्यादि के भी संगठन हैं। इनकी अलग-अलग माँगें होने से उन्हें स्वीकारने में शासन के

सम्मुख कठिनाई है।

वर्तमान सफाईकर्मी समाज कई जातियों के मिश्रण से बने होने के कारण आपस में जातीय आधार पर संगठित नहीं है। इस समाज की उपजातियों, शाखाओं, प्रशाखाओं के अपने-अपने वंश, गोत्र, पुरोधा हैं। जैसे वाल्मीकि समाज कुछ शाखाओं के साथ महर्षि वाल्मीकि को अपना आदि भगवान् मानता है तो सुदर्शन समाज के लोग भगवान् श्वपच सुदर्शन को अपना पुरोधा मानते हैं। जाति-संगठन के अनुसार यह अंतर स्वाभाविक है, परंतु कार्य-संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय स्तर पर उनके एक सशक्त संगठन की पहचान आवश्यक है। वर्तमान में सभी उपजातियाँ एवं वाल्मीकि तथा सुदर्शन समाज के लोग कार्य के आधार पर केवल सफाईकर्मी ही जाने जाते हैं, इसलिए राष्ट्रीय आधार पर संपूर्ण लोगों को एकमंच पर आना होगा, आपस में विचार-विमर्श करना होगा, अपनी संपूर्ण माँगों को एकमत के साथ एकरूपता के सद्गुणों से युक्त करके प्रस्तुत करना होगा, तभी सबकी माँगें पूरी हो सकेंगी।

यह एक विचारणीय विषय है कि सफाईकर्मी (भंगी) जाति में रहते हुए भी कभी भी भगवान् वाल्मीकि अथवा भगवान् सुदर्शन को संपूर्ण सफाईकर्मी समाज पर थोपा नहीं जा सकता, क्योंकि सबकी अलग-अलग वंशावली, गोत्र, शाखा-प्रशाखाएँ आदि हैं। फिर भी हजारों-हजार शाखाओं-प्रशाखाओं, वंशों एवं गोत्रों, उपजातियों एवं नाम-संबोधनों में बँटे होने पर भी खटिक समाज और चर्मकार समाज के लोग राष्ट्रीय स्तर पर एकजुट होकर अपनी एक पहचान स्थापित करते हैं, इसी तरह वाल्मीकि समाज, सुदर्शन समाज तथा अन्य सफाईकर्मी जाति के लोग भी राष्ट्रीय स्तर पर 'अखिल भारतवर्षीय मध्यकालीन उत्पीड़ित समाज' के नाम से एकजुट होकर अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर सकते हैं। इसके लिए जातीय स्तर पर संपर्क बनाने और ताल-मेल बैठाने की आवश्यकता है।

स्वर्णिम भविष्य के लिए वर्तमान माँगों की प्रस्तुति सशक्त तरीके से करनी होगी। प्रत्येक शाखा-प्रशाखा एवं समाज को आत्म-उत्थान के लिए आत्म-चिंतन करना होगा। निहित स्वार्थ से ऊपर उठना होगा। पूर्वाग्रह एवं रूढ़िवादी विचार-भावों से अलग होना होगा और राष्ट्रीय स्तर पर चिंतन की मन:स्थिति बनानी होगी। मन से हीनभावना निकालनी होगी। मन-मस्तिष्क को विघटन की दिशा से हटाकर संगठन की ओर लाना होगा। तभी वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति का कल्याण होगा। अतएव प्रत्येक वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि (सफाईकर्मी) जाति का व्यक्तिात्म उत्थान का चिंतन क्षेत्र-विशेष में भले ही अलग-अलग करे, परंतु पूरे समाज के उत्थान का चिंतन तो राष्ट्रीय स्तर पर अपनी संयुक्त शक्ति के ही बल पर संभव है। संपूर्ण सफाईकर्मी समाज का भला होने पर वाल्मीकि समाज, सुदर्शन

समाज, मजहबी सिख समाज इत्यादि का भला स्वत: हो जाएगा।

8.8 संवैधानिक संरक्षण एवं सरकार द्वारा प्रदत्त अन्य अभिकरण तथा योजनाएँ

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि (सफाईकर्मी) जाति को भारतीय संविधान के अंतर्गत वे ही सुविधाएँ मिलती हैं जो इसके समकक्ष जातियों को आरक्षण के नाम पर मिली हुई हैं। विदेशी मुसलिम आक्रांताओं द्वारा भेदभाव इस जाति के साथ भी हुआ है। जिस प्रकार से खटिक जाति को कुछ प्रांतों में अनुसूचित जाति में और कुछ में पिछड़ी जाति में रखा गया है, उसी तरह से इस जाति की कुछ उपजातियों को पिछड़ी जाति में, कुछ को सामान्य जाति में और कुछ को अनुसूचित जाति में रखा गया है। यही नहीं, भेदभाव को बढ़ावा देते हुए इस जाति की जन-शक्ति को कमजोर करने हेतु इसे मुसलिम सफाईकर्मी के नाम से भी बाँटा गया है।

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि (सफाईकर्मी) जाति की वर्तमान उपजातियों के अनेक नाम भद्दे, अप्रिय एवं अपमानजनक हैं। ये नाम मध्यकाल में विदेशी इसलामिक शासकों ने दिए थे। वे इन्हीं नामों से संबोधित करके उनको अपमानित करते थे। आज देश स्वतंत्र है और हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि (सफाईकर्मी) जाति भी अन्य जातियों की भाँति अपने आत्मसम्मान एवं आत्मगौरव के साथ जागृत हो उठी है। ऐसे में इस जाति के लोग यदि अपने अच्छे नामों को लिखने की माँग करते हैं तो वह पूर्णत: न्यायसंगत है। यह कोई आर्थिक अनुदान की माँग नहीं है जिसके बारे में सरकार को सोचने की आवश्यकता है। हिंदू इस जाति के भद्दे नामों को हटाकर उनके स्थान पर वाल्मीकि, सुदर्शन आदि लिखे जाने की सरकारी अनुमति चाहते हैं, जिसके लिए तथाकथित सफाईकर्मी समाज को राष्ट्रीय स्तर पर एकजुट होकर आवेदन-पत्र देने की आवश्यकता दिखाई देती है।

भारतीय संविधान के माध्यम से अस्पृश्यता जैसी सामाजिक समस्या को समाप्त घोषित कर दिया गया है और किसी को भी 'भंगी' और 'चमार' शब्द से संबोधित करना भी दंडनीय अपराध घोषित कर दिया गया है। कोई भी व्यक्ति किसी को इन शब्दों से अपमानित नहीं कर सकता है, फिर इन शब्दों को संविधान में रखकर आरक्षण की सूची में उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है। सुदर्शन समाज और वाल्मीकि समाज की माँग पूर्णत: उचित है कि भद्दे नामों को आरक्षण सूची से हटाया जाए, वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य अच्छे भाववाले शब्दों को उन भद्दे नामों के स्थान पर प्रयुक्त किया जाए।

अभी तक सरकार ने उक्त माँगों को मान्य नहीं किया है, यद्यपि इसमें किसी तरह की कठिनाई शासन एवं सरकार को नहीं है और न ही इस जाति के सर्वोमुखी विकास के लिए किसी विशेष आयोजन का ही प्रबंध हो पाया है। अभी तक संविधान में वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति की सभी उपजातियों को आरक्षण सूची में जो भी परिस्थितियाँ प्राप्त हैं, यहाँ उनका उल्लेख अकारादिक्रम से प्रस्तुत है—

आरक्षण सूची में वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य (सफाईकर्मी) जाति

क्र.सं.	*जाति-उपजाति का नाम*	*प्रांतीय सूची में क्रम संख्या (अनुसूचित जाति में)*
1.	ओलगाना	कर्नाटक—21, गुजरात—5, महाराष्ट्र—12, राजस्थान—14
2.	कालिंदी	त्रिपुरा—14
3.	कोरार	कर्नाटक—21, गुजरात—5, महाराष्ट्र—12, राजस्थान—14
4.	चांडाल	आंध्र प्रदेश-16, उड़ीसा-20, कर्नाटक-28, केरल-16, तमिलनाडु-15, राजस्थान-18
5.	चुहड़ा, चुहरा, चुहरे चोहरा	दिल्ली-11, हिमाचल प्रदेश—3
6.	चूरा (चुरा)	चंडीगढ़—7, जम्मू—कश्मीर—5, पंजाब—2, राजस्थान—14, हरियाणा—2, हिमाचल प्रदेश—3
7.	जदमल्ली	कर्नाटक—21, गुजरात—5, महाराष्ट्र—12, राजस्थान—14
8.	डुमडूम	उड़ीसा—27, कर्नाटक—33, चंडीगढ़—15, जम्मू—कश्मीर—7, त्रिपुरा—8 पंजाब—16, महाराष्ट्र—19, हरियाणा—16, हिमाचल प्रदेश—25
9.	डुमना, डुमने	हरियाणा—16, हिमाचल प्रदेश—25
10.	डुमना महाशा	चंडीगढ़—15, हरियाणा—16, हिमाचल प्रदेश—25
11.	डुमार	मध्य प्रदेश—24, महाराष्ट्र—19
12.	डुरिया डोम	उड़ीसा—27
13.	डोम	आंध्र प्रदेश—20, तमिलनाडु—18, दिल्ली—15, पश्चि बंगाल—17, बिहार—10, मध्य प्रदेश—24, राजस्थान—24
14.	डोमार	उत्तर प्रदेश—30, मध्य प्रदेश—24
15.	डोमेर	उत्तर प्रदेश—30, मध्य प्रदेश—24, राजस्थान—24
16.	डोंबन	केरल—18, तमिलनाडु—19
17.	डोंबारा	आंध्र प्रदेश—20, कर्नाटक—33, तमिलनाडु—18
18.	डोंबो	उड़ीसा—27

19.	डोरिस	मध्य प्रदेश—24
20.	तुरहिया, तुरैहा	उत्तर प्रदेश—66
21.	तुरी	उड़ीसा—91, गुजरात—29, पश्चिम बंगाल—59, बिहार—23, महाराष्ट्र—59, हिमाचल प्रदेश—21, राजस्थान—59
22.	थोटी	आंध्र प्रदेश—51, कर्नाटक—99, केरल—62, तमिलनाडु—67, पांडिचेरी—12
23.	थोरी	गुजरात—27
24.	दुसाध	उड़ीसा—28, उत्तर प्रदेश—33, पश्चिम बंगाल—18, पांडिचेरी—12
25.	धरकार	उत्तर प्रदेश—29, मध्य प्रदेश—11
26.	धांगड़	पश्चिम बंगाल—17
27.	धानुक	उत्तर प्रदेश—28, चंडीगढ़—13, दिल्ली—13, मध्य प्रदेश—20, राजस्थान—20
28.	नगाड़ची	उड़ीसा—64
29.	नमोशुद्रा	अरुणाचल प्रदेश—14, उड़ीसा—65, त्रिपुरा—30, पश्चिम बंगाल—46, मणिपुर—4, मेघालय—14, मिजोरम—14
30.	नायक	राजस्थान—57
31.	पाने	आंध प्रदेश—20, उड़ीसा—69, कर्नाटक—33, तमिलनाडु—18
32.	पैडी	आंध्र प्रदेश—20, उड़ीसा—66, कर्नाटक—33, तमिलनाडु—18
33.	बंसफोर, बाँसफोर	अरुणाचल प्रदेश—1, आसाम—1, उत्तर प्रदेश—14, मध्य प्रदेश—8, मिजोरम—1 मेघालय—, 1 राजस्थान—8, उत्तर प्रदेश—7
34.	बजनिया	उत्तर प्रदेश—7
35.	बसोर	उत्तर प्रदेश—16, उड़ीसा—2, मध्य प्रदेश—8, महाराष्ट्र—8, मेघालय—8
36.	बागड़, बागड़ी बागड़े—बागरी	मध्य प्रदेश—2, उड़ीसा—8
37.	बारीकी	आंध्र प्रदेश—7, उड़ीसा—8
38.	वाल्मीकि	उत्तर प्रदेश—11, उड़ीसा—93, कर्नाटक—21, गुजरात—5, चंडीगढ़—7, दिल्ली—12, पंजाब—2, मध्य प्रदेश—11, महाराष्ट्र—12, हरियाणा—2, हिमाचल प्रदेश—3, राजस्थान—14
39.	बेरीया	उत्तर प्रदेश—19
40.	भंगी	अरुणाचल प्रदेश—12, आसाम—12, उड़ीसा—60, कर्नाटक—21, गुजरात—5, गोवा—1, चंडीगढ़—7, दादर नगरहवेली—4, दामनदीव—1, दिल्ली—8,

		पंजाब—2, पश्चिम बंगाल—22, बिहार—12, मध्य प्रदेश—11, महाराष्ट्र—113, मिजोरम—12, मेघालय—12, राजस्थान—14, हरियाणा—2, हिमाचल प्रदेश—3
41.	भामभी	कर्नाटक—22, गुजरात—4, महाराष्ट्र—11
42.	मंग	आंध्र प्रदेश—43, उड़ीसा—57, गुजरात—15, गोवा—5, दामनदीव—5, मध्य प्रदेश—37, महाराष्ट्र—46, राज-स्थान—44,45
43.	मन्ने	आंध्र प्रदेश—45
44.	मलकाना, मालकाना	कर्नाटक—21, गुजरात—5, राजस्थान—14
45.	मस्ती	आंध्र प्रदेश—46, कर्नाटक—69, महाराष्ट्र—49
46.	महाशा डुमना	जम्मू—कश्मीर—7, पंजाब—16, हरियाणा—6
47.	मादिगा	आंध्र प्रदेश—32, उड़ीसा—54, कर्नाटक—22, 61 गुजरात—4, तमिलनाडु—38, पांडिचेरी—6
48.	माला	आंध्र प्रदेश—35, उड़ीसा—56, कर्नाटक—65, तमिलनाडु—40, पांडिचेरी—7, महाराष्ट्र—39 आंध्र प्रदेश—48, आसाम—12, उड़ीसा—60, अरुणाचल प्रदेश—12, कर्नाटक—21, गुजरात—5, त्रिपुरा—28, पं. बंगाल—22, बिहार—14, मध्य प्रदेश—11, महाराष्ट्र—82, मिजोरम—12, राजस्थान—14, मेघालय—12
50.	मोगर	केरल—39, तमिलनाडु—43
51.	रावत	उत्तर प्रदेश—61, गुजरात—25, महाराष्ट्र—56
52.	रुखि	कर्नाटक—21, गुजरात—5, महाराष्ट्र—12, राजस्थान—14
53.	ऋषि	अरुणाचल प्रदेश—10, आसाम—13, मिजोरम—13
54.	लालबेगी	अरुणाचल प्रदेश—10, आसाम—10, उत्तर प्रदेश—52, कर्नाटक—21, गुजरात—5, महाराष्ट्र—12, मेघालय—10, मध्य प्रदेश—11, दिल्ली—23, पश्चिम बंगाल—40, बिहार—17, मिजोरम—10
55.	सिर्की	सिक्किम—5
56.	हरी	उड़ीसा—39, पश्चिम बंगाल—22, बिहार—14
57.	हलालखोर	उत्तर प्रदेश—39, कर्नाटक—21, गुजरात—5, पश्चिम बंगाल—21, बिहार—12, महाराष्ट्र—12, राजस्थान—14
58.	हाडी	आंध्र प्रदेश—22, गोवा—2, दामनदीव—2, उड़ीसा—33, कर्नाटक—81, गुजरात—23, महाराष्ट्र 53
59.	हेला	उत्तर प्रदेश—40

उपरोक्त भंगी जाति की उपजातियों को आरक्षण सूची में प्रांतवार जो प्रस्थिति प्राप्त है, उसका उल्लेख आगे किया गया है—

प्रांतवार वाल्मीकि, सुदर्शन एवं अन्य जाति की परिस्थिति

क्र.सं.	*प्रांत का नाम*	*भंगी जाति की उपजातियों के नाम*
1.	अंडमान निकोबार	कोई नहीं।
2.	अरुणाचल प्रदेश	नमोशूद्रा—14, बाँसफोर—1, भंगी—12, मेहतर—12, ऋषि—13, लालबेगी—10
3.	आंध्र प्रदेश	चांडाल—16, डोम—20, डोंबारा—20, डोंबो—24, थोरी—51, पाने—20, पैडी—20, बारीकी—7, मंग—43, मन्ने—45, मस्ती—76, मादिया—30, माला—35, मेहतर—48, हाडी—22
4.	आसाम	बाँसफोर—1, भंगी—12, मेहतर—12, ऋषि—13, लालबेगी—10
5.	उड़ीसा	चांडाल—20, डुमडूम—27, डुरिया—27, तुरी—91, दुसाध—28, अगाड़ची—64, नमोशूद्रा—65, पाने—69, पैडी—16, बसौर—9, बारीकी—93, भंगी—57, मादिया—54, माला—56, मेहतर—60, हरी—39, हाडी—39
6.	उत्तर प्रदेश	डोमार—32, डोमेर—30, तुरहिया, तुरैहा—66, दुसाध—33, धरकार—27, धानुक—28, बाँसफोर—14, बजनिया—7, बमोर—16, वाल्मीकि—93, भंगी—57 मादिया—54, माला—56, मेहतर—60
7.	उत्तरांचल	नव गठन के पूर्व की स्थिति
8.	कर्नाटक	ओलगाना—21, कोरार—21, चांडाल—28, जदमल्ली—21, डुमडूम—33, शेम्यारा—33, थोटी—99, पाने—33, पैडी—33, वाल्मीकि—21, भंगी—21, भामभी—22, मालकाना—21, मस्ती—69, मादिया—22, 61, माला—15, मेहतर—21, रुखि—21, लालबेगी—21, हलालखोर—21, हाडी—81
9.	केरल	चांडाल—16। डोंबन—18, थोटी—62, बोगर—39
10.	गुजरात	ओलगाना—5, कोरार—5, जदमल्ली—5, तुरी—29, थोरी—27, वाल्मीकि—5, भंगी—5, भामभी—4, मंग—19, मालकाना—5, मादिया—4, मेहतर—4, रावत—25, ऋषि—5, लालबेगी—5, हलालखोर—5
11.	गोवा	भंगी—2, मंग—5, हाडी—2,
12.	चंडीगढ़	चूरा (चूरा)—7, डुमडूम—15, डुमनामहाशा—15, धानुक—13, वाल्मीकि—7, भंगी—7
13.	छत्तीसगढ़	नवगठन के पूर्व की स्थिति
14.	जम्मू—कश्मीर	चूरा (चुरा)—5, डुमडूम—7, महाशा डुमना—7
15.	झारखंड	नव गठन के पूर्व की स्थिति

16.	तमिलनाडु	चांडाल—15, डोम—18, डोंबन—19, डोंवारा—18, थोटी—67, पाने—18, पैडी—18, मादिया—38, माला—40, मोगर—43
17.	त्रिपुरा	कालिंदी—14, डुमडूम—8, नमोशूद्रा—30, मेहतर—8
18.	दादरा नगरहवेली	भंगी—1
19.	दामनदीव	भंगी—1, मंग—5, हाडी—2
20.	दिल्ली	चुहड़ा, चुहरा, चुहरे, चोहरा—11, डोम—15, धानुक—13, भंगी—8, लालबेगी—23
21.	नागालैंड	कोई नहीं।
22.	पंजाब	चूरा (चुरा)—2, डुमडूम—16, वाल्मीकि—2, भंगी—2, महाशा डुमना—16
23.	पश्चिम बंगाल	डोम—17, तुरी—59, दुसाध—18, धांगड़—17, नमोशूद्रा—46, भंगी—22, मेहतर—22, लालबेगी—40, हरी—22, हलालखोर—2।
24.	पांडिचेरी	थोटी—12, मादिया—6, माला—8 डोम—10, तुरी—23, दुसाध—11, भंगी—14, मेहतर—14, लालबेगी—17, हरी—14, हलालखोर—13
25.	बिहार	डोम—10, तुरी—23, दुसाध—11, भंगी—14, मेहतर—14, लालबेगी—17, हरी—14, हलालखोर—13
26.	मणिपुर	नमोशूद्रा—4
27.	मध्य प्रदेश	डुमार—24, डोम—24, डोमार—24, डोमेर—24, डोरिस—24, धरकार—11, धानुक—20, बाँसफोर—8, बसोर—8, बागड़, बगाड़ी, बागाड़े, बागरी—2, वाल्मीकि—11, भंगी—11, मंग—37, मेहतर—11, लालबेगी—11
28.	महाराष्ट्र	ओलगाना—12, कोरार—12, जदमल्ली—12, डुमडूम—19, डुमार—19, तुरी—59, बसोर—8, वाल्मीकि—12, भंगी—113, भामभी—11, मंग—46, मस्ती—49, माला—39, मेहतर—12, रावत—56, रुखि—12, लालबेगी—12, हलालखोर—12, हाडी—53
29.	मिजोरम	नमोशूद्रा—14, बाँसफोर—1, भंगी—12, मेहतर—12, ऋषि—13, लालबेगी—10
30.	मेघालय	नमोशूद्रा—14, बाँसफोर—1, बसोर—8, भंगी—12, मेहतर—12, लालबेगी—10
31.	राजस्थान	ओलगाना—14, कोरार—14, चांडाल—18, चूरा (चुरा)—14, जदमल्ली—14, डोम—24, डोमेर—24, तुरी—59, धानुक—20, बापरु—57, बाँसफोर—8, बागड़, बागड़ी, बागड़े, बागरी—4, वाल्मीकि—14, भंगी—14, मंग—44, 45, मालकाना—14, मेहतर—14, रुखि—14, हलालखोर—14

32.	लक्षद्वीप	कोई नहीं।
33.	सिक्किम	सिर्की—5
34.	हरियाणा	चूरा (चुरा)—2, डुमडूम—16, डुमनाडुमने—16, डुमना महाशय—16, वाल्मीकि—2, भंगी—2, महाशाडुमना—6
35.	हिमाचल प्रदेश	चुहड़ा, चुहरा, चुहरे, चोहरा—3, चुरा (चूरा)—3, डुमडूम—25, डुमना—25, डुमना डुमने—25, डुमनामहाशा—25, तुरी—21, वाल्मीकि—3, भंगी—3

निष्कर्ष यह है कि वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज ने चुनौतीपूर्ण ढंग से इसलाम को ठुकराया और अरब के विदेशी इसलामिक आक्रांताओं एवं शासकों की युद्धबंदी शारीरिक यातनाओं, मृत्युदंड की असह्य वेदनाओं, पारिवारिक उत्पीड़नों और आर्थिक शोषणों को अनवरत सहते रहकर हिंदू धर्म में बने रह गए। केवल उनको अपने हिंदू समाज से अलग होना पड़ा और सर्वप्रथम मैला ढोने का अस्वच्छ कार्य करना पड़ा। ऐसे प्रचंड धर्माभिमानी एवं राष्ट्राभिमानी लोगों का स्वाभिमान भंग हो गया। दुर्भाग्यवश लोग उनको धर्मरक्षक ब्राह्मण तथा देशरक्षक राजवंशीय राजपूत (क्षत्रिय) के बदले 'भंगी' कहने लगे। आज भी असंवैधानिक शब्द घोषित होने के उपरांत भी उन्हें इसी शब्द से संबोधित किया जाता है और उनके समाज को अस्वच्छ कार्य के आधार पर अलग रखा जाता है। आज के युग में उनके सामाजिक उत्थान एवं सशक्तिकरण हेतु चिंतन की आवश्यकता प्रासंगिक है।

हजारों वर्ष की दासता के बाद मिली आजादी की सुविधाओं का लाभ उन तक पहुँचकर भी उनको नहीं मिल रहा है, क्योंकि वर्तमान समय में भी उनकी सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक स्थिति अत्यंत दयनीय है। समाज से अलग-थलग पड़ जाने के कारण उनकी जीविका के लिए अन्य संसाधनों की भी एक ज्वलंत समस्या है और जो संसाधन हैं वे उनकी सामाजिक प्रस्थिति के कारण अभिशाप है।

आर्थिक और शैक्षिक स्थिति अच्छी होने पर वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति का सामाजिक सशक्तिकरण बहुत कुछ संभव है। इसके लिए सफाई-कार्य को एक खुला रोजगार घोषित करना होगा। इसमें प्रत्येक जाति की खुली भरती करके सर्वप्रथम अस्पृश्यता के आलोक में उत्पन्न होनेवाले सामाजिक भेदभाव की वैचारिकी को समाप्त करना होगा। इसलामिक पूर्वकालीन शासनादेशानुसार इनकी अलग बस्ती की कोई आवश्यकता नहीं है। अन्य लोगों के साथ रहने पर इनमें स्वच्छ रहने की, अन्य व्यवसाय करने की तथा सामान्य समाज के साथ समायोजन करने की इच्छा जागृत होगी।

आर्थिक स्थिति का भी इनकी सामाजिक एवं शैक्षिक स्थिति पर प्रभाव पड़ता है, इसलिए इनको न्यूनतम के स्थान पर अधिकतम वेतनमान मिलना चाहिए। अन्य घरों में कार्य से जाने पर देय पारिश्रमिक की दर निर्धारित होनी चाहिए। सफाई-कार्य में मशीनों के प्रयोग का प्रचलन प्रारंभ तो हो रहा है, परंतु उसमें और भी परिवर्तन और परिवर्द्धन करने की आवश्यकता है।

सामाजिक समायोजन हेतु सामूहिक उत्सव एवं समारोहों का आयोजन, सामाजिक समरसता पूर्ण व्यवहार तथा सह-अस्तित्व पर आधारित सहिष्णुता का आचार—यह विविध प्रकार की प्रक्रियाएँ इस जाति को सामाजिक अभिशापों को मिटाने में उपयोगी होंगी। इनमें सामाजिक अनुकूलन से संबंधित जनजागरण के सफल प्रयोग भी होने चाहिए। सदियों से भंग हो चुका इनका स्वाभिमान वापस दिलाने से यानी इनमें सामाजिक शक्ति का हस्तांतरण करने से इनको आत्मगौरव का बोध होगा, फिर वे अपने अतीत के इतिहास को दुहराने और एक बार पुनः धर्मरक्षक और देशरक्षक बनने की चेष्टा तो कर ही सकते हैं।

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जाति के सामाजिक उत्थान एवं सशक्तिकरण के लिए उनके क्षेत्रवार जातीय संगठनों का विकास तीव्र गति से किया जाना चाहिए और परंपरागत बन चुकी परिवर्तित जीवन-पद्धति को एक बार पूर्ववत् बनाने के साथ ही उनमें आत्म-उत्थान की सोच भी उत्पन्न करनी होगी। इनके संगठनों की माँगों की अनदेखी करने के बदले उन पर ध्यान देना होगा। शासन के समक्ष प्रस्तुत इनकी माँग उनके भंग किए गए पूर्व स्वाभिमान से ही संबंधित है। ये राष्ट्रीय स्तर पर तथाकथित एवं अन्य ऐसे ही घृणित शब्दों के प्रयोग को बंद करने की माँग कर रहे हैं जिसे किए जाने में कोई विधिक कठिनाई नहीं है। यानी सभी राज्यों में सफाईकर्मी जाति के लिए वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि अच्छे भाववाचक नाम दिए जाने से शासन एवं सरकार को कोई परेशानी नहीं है। फिर भी क्षेत्रीय स्तर पर यह माँग अनसुनी की जाती है तो इसे राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज की विराट् सभाओं के माध्यम से सरकार को बाध्य किया जा सकता है।

सरकार को भी तथाकथित सफाईकर्मी समाज पर कुछ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होगी। मध्यकाल में इसलामिक शासकों द्वारा प्रायोजित इस जाति को अलग से विशेष आरक्षण देकर आगे बढ़ाना होगा, क्योंकि अनुसूचित जाति में रखे जाने के कारण विकसित दलित जातियाँ इनका भी लाभ छीन लेती है। इनके लिए योजनाओं में कुछ समय के लिए अलग से कुछ विशेष सुविधाएँ दी जानी चाहिए।

कई राज्यों में इनको पिछड़ी जाति में भी रखा गया है जो शत-प्रतिशत अन्यायपूर्ण है। सरकार को इस दिशा में तत्काल सोचने की आवश्यकता है, तभी तथाकथित सफाईकर्मी जाति का सामाजिक उत्थान और सभी क्षेत्रों में उनका सशक्तिकरण हो सकता है। यह कार्य इसलिए किया जाना अपरिहार्य हो गया है, क्योंकि देश के आर्थिक विकास में इस जाति की दयनीय सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति बहुत बड़ी बाधा है। विदेशी इसलामिक एवं आक्रांताओं के शासनकाल में बलपूर्वक छीनी गई इनकी प्रस्थिति को पुनः लौटाने की परम आवश्यकता है। इन इसलामिक काल की हिंदू स्वाभिमान की लड़ाई में दंडित एवं अंग्रेजी काल के स्वतंत्रता सेनानियों को राष्ट्र पुनः सम्मान दे। आज इनका सामाजिक विकास और सशक्तिकरण वर्तमान हिंदू समाज के लिए भी एक आवश्यक कर्तव्य बन गया है।

□

उपसंहार

हिंदू धर्म एवं सामाजिक व्यवस्था इत्यादि के गहन अध्ययन से यह स्पष्ट है कि वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियाँ अथवा मल-मूत्र ढोने एवं सफाई-कार्य में निरुक्त यह जातियाँ वैदिककाल, स्मृतिकाल, बौद्धकाल, मौर्यकाल, गुप्तकाल तथा हर्षवर्द्धन-काल (648 ई.) तक अस्तित्व में नहीं थीं।

विदेशी मुसलिम आक्रांताओं एवं लुटेरों के अवसान-काल तथा इसलामिक शासन के स्थापना-काल (1206 ई.) तक भी यह जाति प्रकाश में नहीं आई थी। 1296 ई. तक के सुल्तान सत्ता-संघर्ष एवं गृह-युद्धों में अपने परिवारों की हत्या में लगे रहे। युद्धबंदियों की भी हत्या कर दी जाती अथवा बंदी-गृह में डाल दिया जाता था।

इसलामिक शासन खिलजी-वंश के हाथ में आने पर भोग-विलास पर विशेष ध्यान दिया गया। शासक सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के महलों में हजारों बेगमें भर दी गईं। शौचादि के बहाने बाहर जाने पर इनके व्याभिचार से इनको मल-मूत्र त्याग के लिए बाहर न जाने का आदेश हुआ और पूरा महल गंदगी से भर गया। उसे साफ करने के लिए बलपूर्वक हिंदू युद्धबंदियों को लगाया गया। इस प्रकार उन धर्माभिमानी, स्वाभिमानी एवं राष्ट्राभिमानी योद्धाओं का स्वाभिमान भंग करने का प्रयास किया गया। 13वीं शताब्दी के प्रारंभ में हिंदू युद्धबंदियों का बलपूर्वक सामाजिक स्वाभिमान भंग होने के कारण एक मिश्रित जाति 'भंगी' नाम से प्रायोजित हो गई।

---

1. मत्स्यपुराण, 12/61
2. अध्यात्म रामायण, 6/6/39
3. बाईं पड़ने से आदि कवि का नाम 'वाल्मीकि' पड़ा।

हिंदू युद्धबंदी मुख्यतः धर्मरक्षक (ब्राह्मण) एवं देशरक्षक (क्षत्रिय) थे, जिन्होंने स्वधर्म अनुपालन हेतु इसलाम अस्वीकार किया था। धर्मरक्षकों में भार्गवसत्तम[1] एवं प्रचेता[2] गोत्रीय इस वाल्मीकि[3], सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि वंश की मुख्यतः कई प्रशाखाओं के लोग थे। देशरक्षकों में भी कछवाहा, गहलौत, चंद्रवंशी, चुहड़ा, चौहान, पवार, पडिहार (परमार), मराठा, राठौर, सोलंकी इत्यादि शाखा-प्रशाखाओं के क्षत्रिय थे।

युद्धबंदी होने पर उनकी अलग-अलग जाति-प्रजाति समाप्त हो चुकी थी। प्रत्येक की स्थिति एवं प्रस्थिति एक समान कर दी गई थी। मैला ढोने पर सभी लोग केवल 'भंगी' संबोधित थे। उनकी अलग-अलग जाति, उपजाति का अस्तित्व अर्थहीन हो चुका था। धर्मांतरित मुसलिम एवं तथाकथित हिंदू बस्ती से अलग बसाए जाने पर ये अपने समाज से भी दूर हो गए और कालांतर में अस्पृश्य एवं प्रचंड दमन एवं दलन के उपरांत दलित भी हो गए। वैवाहिक एवं दांपत्य संबंधों के सापेक्ष इनका आपस का अंतर वाल्मीकि भंगी, वामन-भंगी, चुहड़ा-भंगी, परमार-भंगी, सोलंकी-भंगी इत्यादि के रूपों में बना रहा। यह अंतर आज भी विद्यमान है। अंग्रेजों के समय मेहतर, लालबेगी, हलालखोर जैसे अपावन नाम भी इनको अभिशप्त करने हेतु थोपे गए।

विदेशी मुसलमान एवं मुगल शासकों के शासन में स्वाभिमानी हिंदुओं के स्वाभिमान को भंग करने के साथ-साथ उनके आर्थिक ढाँचे को तोड़ने एवं उन्हें दर-बदर करने के लिए पूर्णरूपेण योजनाबद्ध कुकृत्य हुआ। उस समय देशरक्षा का औचित्य गौण होने से हिंदू धर्मरक्षा का महत्त्व सर्वोच्च था और हिंदू युद्धबंदी हर दशा को स्वीकार करते हुए मात्र हिंदू के मूल्य पर इसलाम अस्वीकारते रहे। अपनी आर्थिक क्षमतानुसार कुछ अस्त्र-शस्त्रों को एकत्रित करके वे छिटपुट विद्रोह भी करते रहे। इसलिए विदेशी आक्रांता मुसलिम शासकों द्वारा मैला ढोने का कार्य बलपूर्वक कराने के साथ ही शेष युद्धबंदियों के परिवारों की आर्थिक स्थिति पर घातक प्रहार किया गया जिससे आर्थिक मेरुदंड टूट जाने पर भी वे दर-बदर का जंगली जीवन व्यतीत करने एवं सफाई-कर्म स्वीकार करने पर विवश हुए।

हिंदू युद्धबंदियों की कृषि-भूमि खालसा-भूमि (सरकारी भूमि) घोषित कर दी गई।[1] दुधारू पशुओं की देखभाल युद्धबंदियों के परिवार करते थे, किंतु तीन-चौथाई दूध प्रतिदिन स्थानीय प्रशासक के नाम पर गाँव का चौकीदार ले जाता था। उनको पशु चराने की भूमि प्रयोग में लाने पर अलग से कर देना होता था। खेत सरकारी,

1. डॉ. सुमन शास्त्री, मध्यकालीन भारत की'', शोध ग्रंथ, पृ. 64

चरागाह सरकारी, दूध सरकारी, दैवी आपदा-सूखा, महामारी ऊपर से होती थी, ऐसे में लोग जंगलों में भागने लगे। गाँव का गाँव खाली हो गया। जो रह गए उनसे भागे हुए लोगों के कर माँगे गए। अंत में वे भी भाग गए।[1]

मानवविहीन गाँवों में आग लगा दी गई और उनकी तलाश में जंगलों की कटाई आरंभ कर दी गई। बीहड़ वनों में नरभक्षी जानवरों के होने का भय दिखलाकर उन्हें भस्म कर देने की अनुमति प्राप्त कर ली गई। भागते हुए लोगों को दौड़ाकर जानवरों की तरह आखेट किया गया। राष्ट्रीय संपदा (वन) को राख बनाया गया। वन्य पशुओं की प्रजातियाँ नष्ट कर दी गईं। अनेक प्रजातियाँ उसी समय से अनुपलब्ध हैं, जबकि प्राचीन काल के अभयारण्यों में वे विद्यमान थीं। लगातार खेती से वंचित भूमि ऊसर के रूप में आज देश के समक्ष समस्या बनी हुई हैं।

आक्रांताओं एवं मुसलमान शासकों से टक्कर लेनेवालों को लक्ष्य करके उन्हें पददलित किया गया। वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियाँ उनमें एक हैं। धर्मरक्षा और देशरक्षा का प्रश्न हिंदू समाज के लिए एक सशक्त चुनौती थी। उसका सामना हिंदू पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों और बच्चों ने भी किया था। सभी आत्मोसर्ग हेतु सन्नद्ध थे, इसलिए उनके भागने या रणक्षेत्र में पीठ दिखाने का कोई प्रश्न ही नहीं था। युद्ध से शेष बचे युद्धबंदियों को सामाजिक रूप से प्रताड़ित करने हेतु विदेशी मुसलिम आक्रांता शासकों द्वारा निम्न श्रेणी के कार्यों में लगाया जाता था ताकि वे सामाजिक रूप से अपमानित हो, घृणा के पात्र बने और अपने ही हिंदू समाज एवं जातियों से ठुकरा अथवा बहिष्कृत कर दिए जाएँ और विवश होकर इसलाम स्वीकार कर लें।

इसलामिक शासन को टक्कर देनेवाले युद्धबंदियों को सर्वप्रथम अलाउद्दीन के शासनकाल में मैला ढोने के काम में लगाया गया। यह कार्य उनसे भारी दमन एवं दलन के उपरांत बलपूर्वक कराया गया, क्योंकि स्वच्छता (पवित्रता) की सर्वाधिक अवधारणा का स्वाभिमान मैला ढोने पर अधिक प्रमाणित होता था। ऐसे लोगों को घर में आने-जाने के लिए अलग से एक दरवाजा लगाया जाता एवं उसका नाम भंगी-दरवाजा रखा गया। दुर्ग होने पर उनको जिस रास्ते से मैला लेकर बाहर जाना होता था उस द्वार (गेट) का नाम भंगी द्वार अथवा भंगी गेट रखा गया था। 'मंडू' दुर्ग (धार, मध्य प्रदेश) का भंगी गेट (लालकोट और आलमगीर गेट के बीच अवस्थित) इसका जीवंत साक्ष्य है।[2]

---

1. इरफान हबीब, दी एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया, पृ. 249-250
2. पाटिल, डी.आर. : मंडू (आर्कियोलाजिक सर्वे ऑफ इंडिया दिल्ली, 2004) के अंत में संलग्न मानचित्र।

मैला ढोने का दंड वाल्मीकि जाति के लोगों को अधिक दु:खद रहा। मृत्युदंड मिलने पर वे इतने दु:खी न होते जितने दु:खी वे भंगी बनाए जाने पर थे। ऋषि वाल्मीकि के वंशज, भगवान् श्रीराम के भक्त और हिंदू धर्म के लिए समर्पित जीवन जीनेवालों को मैला ढोने का कार्य घुट-घुटकर मरने के समान था, परंतु वे विदेशी आक्रांता मुगल शासकों द्वारा बलपूर्वक थोपा गया यह दंड झेलने को विवश थे। हिंदू धर्म की रक्षा एवं वाल्मीकि-वंश की निरंतरता के लिए इस प्रकार का दंड स्वीकारना उनके लिए अपरिहार्य था।

राजपूत, क्षत्रिय तथा मराठा से परिवर्तित कट्टर हिंदू एवं हिंदुत्व के नाम पर मर मिटनेवाली यह जाति बहादुर, लड़ाकू, स्वाभिमानी, युद्धकला में निपुण एवं योद्धा है। राजवंशीय परंपरा की राजपूती शान उनमें आज भी दृष्टिगोचर होती है। उनकी दृढ़ता, जिद्द और भुजाओं की फड़कन से प्रतीत होता है कि वे देशरक्षक के रूप में अत्यंत तीव्रगति से तलवारें और तीर-धनुष चलाते रहे होंगे। वर्तमान समय में भी उनकी अक्खड़ता, निडरता और टक्कर लेने की निर्भीकता को देखकर उनकी मराठा प्रजाति का स्मरण हो जाता है।

कट्टर हिंदू एवं हिंदुत्व के नाम पर यह जाति सदैव मिट जाने को प्रस्तुत है। देश में जब भी सांप्रदायिकता की आग धधकती है, ये हिंदुओं की रक्षा में अपने जान की परवाह किए बिना ही कूदकर मरने-मारने पर उतारू हो जाते हैं और सबसे आगे रहते हैं। इनकी बहादुरी आज भी विद्यमान है। इनका स्वाभिमान आज भी भारतीय मुसलमानों को ही विदेशी मुसलमानों एवं मुगलों को प्रतीक के रूप में चुनौती देता हुआ शाश्वत है। लाठी, बल्लम, भाले, तलवार और तीर-कमान चलाने का प्रदर्शन जब ये किसी विशेष अवसर पर करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कोई प्रशिक्षित सैनिक युद्धाभ्यास कर रहा हो। इससे उनका योद्धा स्वरूप भी दृष्टिगोचर होता है। युद्ध में वे निपुण न रहे होते तो मिटा दिए गए होते। उनके युद्धबंदी होने से ही पता चलता है कि वे युद्ध में परास्त नहीं, बल्कि अप्रत्याशित रूप से परिस्थितियों द्वारा पराजित हुए थे और बलपूर्वक जंजीरों में बाँधकर बंदी बनाए गए थे। युद्ध में निपुण एवं योद्धा होने के कारण ही इन्होंने इसलामिक सैनिकों से कड़ी टक्कर ली और उनको भारी नुकसान पहुँचाया था।

वर्तमान समय में वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति की योद्धा-प्रवृत्ति का सही ढंग से मूल्यांकन नहीं हो पाया है और इनको अभी भी उसी मध्ययुगीन थोपे गए कार्य में ही लगाए रखा गया है, जबकि यह जाति सीधे सेना में भरती करने योग्य है। अनुवांशिक योग्यता के कारण ये लोग थोड़े से ही प्रशिक्षण मिलने पर आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों का भी प्रयोग कर सकते हैं। इनके रक्त में ही धर्म एवं देशरक्षा का भाव मिश्रित है।

वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियों के गौरवशाली अतीत एवं अंधकारमय भविष्य को आधुनिक समय में शिक्षा एवं आर्थिक विकास के रास्ते पर लाना देशहित में अति आवश्यक है। देश का दुर्भाग्य और समाज के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है कि महर्षि वाल्मीकि ने रामायण जैसी रचना देकर घर-घर तक हिंदू प्राणों के आधार पर भगवान् श्रीराम को पहुँचाया और संपूर्ण हिंदू समाज में हिंदू धर्म एवं हिंदुत्व का प्राण फूँका। धर्मरक्षा में अपने स्वाभिमानी स्वभाव का अंत करके बलपूर्वक मैला ढोने में लगाए गए वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि के वंशजों के गौरवशाली अतीत को लोगों ने भुला दिया। उनका भविष्य मैला ढोने एवं सफाई-कर्म में लगाकर अंधकारमय होता गया और वे समाज की मुख्यधारा से अलग-थलग पड़ जाने से सभी क्षेत्रों में पिछड़ते चले गए, परंतु हिंदू समाज ने उनकी ओर आँख उठाकर देखने एवं उत्थान के साथ उनको सम्मान देने का प्रयास नहीं किया।

अब समय बदल चुका है। देश की एक बहुत बड़ी जनसंख्या के साथ वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियाँ आज भी सबसे दयनीय स्थिति में पड़ी हुई हैं। देश की समृद्धि एवं विकास के लिए यह जनसंख्या बहुत बड़ी चुनौती के रूप में खड़ी है। सभी यह महसूस कर रहे हैं कि बिना इन जातियों को विकसित किए देश का विकास असंभव है। इस जाति के लिए सर्वप्रथम सभी प्रकार की शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान करके इनकी शिक्षा का स्तर ऊँचा करना होगा। शिक्षा का विकास इनके सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन को भी कम कर देगा।

शिक्षित वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जातियों तथा सामान्य समाज के लोगों से आपसी संबंध होता जा रहा है। वे उच्च पदों पर आसीन होकर अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति को भी उन्नत करते जा रहे हैं। ऐसे में किसी विशेष पैकेज द्वारा इस समाज को शिक्षा का सुनहला अवसर देना सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। वर्तमान समय में सम्मान उनका है जो शिक्षित हैं और जिनके पास भूमि एवं धन है। यदि वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज को शिक्षित बनाया जाता है तो वे अर्थोपार्जन के विविध आयामों का आश्रय लेकर अपने अतीत को प्राप्त कर सकते हैं और उनका अंधकारमय वर्तमान एवं भविष्य, दोनों ही प्रकाशमान हो सकता है।

वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति एक धर्मपरायण ही नहीं, धर्म-रक्षक जाति भी है। हिंदू धर्म के प्रति उसकी निष्ठा अटूट है। इसलाम स्वीकारने पर उसे अनेक सुख-सुविधाओं का लालच दिया गया था और उन्होंने ऐसे लोगों को धर्मपरिवर्तन करके लाभ उठाते हुए देखा भी था। उन्होंने दूसरी ओर इसलाम अस्वीकार करनेवालों

की शारीरिक, आर्थिक प्रताड़नाओं को भी देखा था जो आत्मा को कंपित कर देनेवाली थीं, फिर भी उन्होंने मृत्यु से लेशमात्र समझौता नहीं किया और अपनी धर्मपरायणता का परिचय देते हुए इसलाम को अस्वीकार करते रहे। इससे स्पष्ट होता है कि वाल्मीकि जाति के लोग हिंदू धर्म के प्रति पूरी तरह से परायण थे।

इसलाम स्वीकार कराने के लिए जिन दिनों विदेशी आक्रांता-शासकों द्वारा हिंदुओं का भारी नरसंहार हो रहा था और हिंदू धर्म को माननेवालों की संख्या निरंतर घटती जा रही थी, उस समय हिंदू धर्म के संरक्षण के लिए उन्होंने बहुत बुद्धिमानी-युक्ति से काम लिया। यदि वे भी मैला ढोना अस्वीकार कर देते तो अरब के विदेशी इसलामिक शासकों के सम्मुख उन्हें मृत्युदंड देने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। मृत्युदंड स्वीकारने से हिंदुओं की बहुत बड़ी संख्या के विनाश का भय था। उन्होंने हिंदू और हिंदू धर्म, दोनों का संरक्षण किया तथा मैला ढोना स्वीकार करके अन्य हिंदुओं के समक्ष एक प्रचंड धार्मिकता का उदाहरण रख मृत्युदंड से अन्य हिंदुओं को मरने से बचा लिया। विदेशी आक्रांताओं ने युद्धबंदियों को चर्म-कर्म जैसे अनेक अस्वच्छ कार्य ढूँढ़-ढूँढ़कर दिए और वे भी युद्धबंदी वाल्मीकि जाति की तरह ही उन कार्यों को स्वीकार करके हिंदू धर्म में बने रहे तथा इसलाम स्वीकारने का उन पर दबाव भी समाप्त हो गया।

हिंदू धर्म के प्रति समर्पित अनेक हिंदू जातियों का नाम गर्व के साथ लिया जाता है, परंतु हिंदू धर्म के संरक्षण में कुछ ही जातियों का नाम लिया जाता है जिनमें वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जातियाँ यानी सफाई-कर्म में लगी जातियाँ भी एक हैं। यही एकमात्र ऐसी जातियाँ रहीं जिन्होंने अपने धर्म को बिना छोड़े ही धर्म के संरक्षक का दायित्व निर्वहन किया। वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि जाति वर्तमान समय में दलित जातियों में आज सबसे पीछे एवं नीचे भले हैं, किंतु उन सभी का मार्ग-दर्शन इसी जाति ने किया और सभी दलित जातियों के अस्तित्व को समाप्त होने से बचाया। परंतु आज वे सभी हिंदू जातियाँ इस जाति के लोगों को अपने से निम्न श्रेणी का मानकर उनके उपकारों को भुला रही हैं, जो दुःखद पक्ष है। जबकि धर्म संरक्षक के रूप में यह जाति तो पूरे हिंदू समाज के लिए स्तुत्य होनी चाहिए।

भगवान् श्रीराम के सापेक्ष हिंदू धर्म के संरक्षक महर्षि वाल्मीकि को भला कौन हिंदू अपना धर्म-संरक्षक नहीं मानेगा? वाल्मीकि समाज के संत पुरोधा नवलजी महाराज के निराकार भक्ति संरक्षण को भला कौन अस्वीकार करेगा? इस प्रकार यह प्रथम जाति है जिसकी दो शाखाएँ अलग-अलग एक साकार धर्मोपासना के संरक्षण में है तो दूसरे निराकार धर्मोपासना के संरक्षण में निरत हैं।

आज भी हिंदुत्व के नाम पर लड़नेवाली जाति के रूप में वाल्मीकि एवं सुदर्शन जाति ही अग्रणी मानी जाती है। विदेशी आक्रांताओं एवं लुटेरों को मुँहतोड़ उत्तर देने के साथ ही उनके द्वारा मंदिरों एवं मूर्तियों की बड़े पैमाने पर की गई तोड़-फोड़ का सर्वाधिक प्रत्युत्तर इसी जाति ने दिया था। हिंदुत्व के नाम पर लड़नेवाली अनेक जातियों के विरोध का समापन कई रूपों में हुआ। आर्थिक उत्पीड़न के साथ, शारीरिक प्रताड़ना के साथ, देश-निष्कासन एवं क्रय-विक्रय के साथ आदि। परंतु इस योद्धा जाति ने या तो मैदान में वीरगति पाई अथवा युद्धबंदी होने पर अपने विवेक से नर-संहार को रोका और धर्म की रक्षा भी की।

प्रसंगवश एक अन्य ऐतिहासिक घटना का भी उल्लेख यहाँ संक्षेप में किया जा रहा है जिसमें 15 साल बाद हिंदू से मुसलमान बनाए गए एक सफाईकर्मी परमार बालक ने तपे-तपाए जल्लादस्वरूप अलाउद्दीन खिलजी की सत्ता को उखाड़ फेंका और दिल्ली की गद्दी पर चार माह तक हिंदू राज्य स्थापित कर दिखाया था।

घटना सन् 1305 ई. की है। अलाउद्दीन खिलजी की सहमति से उसका सेनापति ऐनुल्मुल्क मुल्तानी जिन दिनों मालवा को लूट रहा था, उसके हाथ बहुत से परमार वंशीय राजपूत क्षत्रिय लोग बंदी एवं गुलाम बनाए गए थे। इसलाम अस्वीकार करने पर उसने उन सभी को मैला ढोने के कार्यों में लगाकर सफाईकर्मी बना दिया, परंतु उनके दो अबोध बच्चों को बलपूर्वक मुसलमान बना दिया। बच्चों को वह दृश्य भूला न था। उन्होंने इसका बदला लेने का निश्चय कर लिया।

भोग-विलास की चरम सीमा पर पहुँचकर अलाउद्दीन खिलजी अंत में एक हिजड़ा (मलिक कफूर) के हाथों मारा गया, परंतु 35 दिनों के अंदर इन दो बालकों ने मलिक कफूर की हत्या करके खिलजी के पुत्र मुबारकशाह को गद्दी पर बैठाया। मुबारकशाह इससे प्रसन्न् होकर सुखसख भंगी (हसन राजा) यानी बड़े भाई को खुसरोशाह की उपाधि दी और उसके छोटे भाई हिसामुद्दीन को प्रांतपति बना दिया। इसका विरोध धूर्त्त अलाउद्दीन का भतीजा जियाउद्दीन बरनी ने किया जिसे ठोकर मारकर दरबार से निकाल दिया गया। वह अपनी चाटुकारिता भरी पुस्तक 'तारीखे-ए-अलाउद्दीन' लेकर दरबार से चला गया और ईरानी तुर्कों से इसकी शिकायत करके सबको मुबारकशाह और खुसरोशाह के विरुद्ध भड़काने लगा।

मुबारकशाह अलाउद्दीन से भी अधिक विलासी निकला। इसका लाभ उठाते हुए खुसरोशाह ने अपने सगे-संबंधियों को दिल्ली स्थित शाही महल में रखने की अनुमति सुल्तान से प्राप्त कर ली और 16 अप्रैल, 1320 ई. को मुबारकशाह की हत्या करके दिल्ली की गद्दी पर हिंदू राज्य स्थापित कर दिया। महलों में देवी-देवताओं की पूजा होने लगी। दरबारी एवं अन्य लोग मुसलिम लड़कियों को बलपूर्वक अपनी

पत्नी और हिंदू बनाने लगे। देखते-देखते दिल्ली से मुसलमान भाग खड़े हुए और चारों ओर हर-हर महादेव के नारे लगने लगे। परंतु उस समय भी उत्तरी भारत के हिंदू राजागण अपनी पराजयों का दुःखड़ा रोते रहे और खुसरोशाह के इस सफल प्रयास को एक मुसलिम का विद्रोह मानकर चुपचाप बैठे रहे। परिणाम तय था। 6 दिसंबर, 1320 ई. को खुसरोशाह का अंत उसके एक विश्वासपात्र मुसलमान ने कर दिया और गद्दी तुगलकवंश के हाथ में चली गई और जियाउद्दीन बरनी पुनः दरबारी बनकर सुखोपभोग करने लगा। मुहम्मद बिन तुगलक तक उसकी दाल गलती रही, परंतु फिरोजशाह के समय में उसे पुनः दरबार से हटा दिया गया। उसने अपनी पुस्तक का नाम बदलकर 'तारीक-ए-फीरोजशाही' किया और फीरोजशाह को समर्पित किया। फीरोजशाह ने उसकी पुस्तक को झूठ का पुलिंदा कहकर दरबार से भगा दिया। वह बूढ़ा हो गया था, फिर भी भोग-विलास की इच्छा उसमें प्रबल रूप से विद्यमान थी। धन का अभाव था। वह कुछ समय तक एक भारतीय मुसलमान के टुकड़ों पर जीता रहा। मरा तो दफन भी उसी ने किया, जिस भारतीय मुसलमान को वह फूटी आँख देखना नहीं चाहता था।

प्रसंग रोचक है और वह भी विश्व के महान् विख्यात् इतिहासकार का, इसलिए जो सच है वही लिखा जा रहा है कि अपने अन्नदाताओं की चाटुकारिता के लिए संकलन को वृद्धावस्था में जब जियाउद्दीन बरनी ने सुल्तान फीरोजशाह जैसे शासक को दिया और फिरोजशाह ने उस संकलन को झूठ का पुलिंदा कहा। यह परम विस्मयकारी है कि वही पुस्तक अंग्रेजों की दृष्टि में कैसे उच्च कोटि का इतिहास ग्रंथ बन गई?

इसी प्रकार अंग्रेजों ने एक मुसलिम लुटेरे की डायरी को इतिहास-ग्रंथ घोषित कर दिया था और तभी से लोग अलबरूनी का उद्धरण अपने कथानकों की पुष्टि में देते रहते हैं। इस विख्यात् इतिहासकार का सच्चा स्वरूप आचार्य चतुरसेन शास्त्रीजी ने अपनी पुस्तक 'सोमनाथ' में स्पष्ट कर दिया है। वह अलबरूनी डकैत छद्मवेश में महमूद गजनवी के साथ सोमनाथ मंदिर में जाकर पहले सारी स्थिति देख आया था, उसके बाद मंदिर लूटने की योजना बनाई गई। लूटपाट के समय भी अलबरूनी था। महमूद के पिता सुबुक्तगीन की ओर से फकीर अलहजवीसी ने जयपाल के साथ जासूसी की थी। इस प्रकार, पहले व्यापारी, बाद में फकीरी और अंत में डकैती का काम करनेवाला अलबरूनी कैसे विख्यात् इतिहासकार बन गया? यह कम-से-कम भारतीय इतिहासकारों को अवश्य विचार करना चाहिए? प्रश्न उठता है कि क्या उसकी डायरियाँ इतिहास हो सकती हैं? हिंदुत्व के नाम पर लड़नेवाली वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियाँ के साथ हजारों उन तथाकथित दलित

जातियों का यह प्रश्न शायद निरुत्तरित ही रहेगा, क्योंकि धर्मग्रंथों, इतिहासग्रंथों आदि में मिलावट करनेवाले अंग्रेज और झूठ लिखनेवाले विदेशी मुसलिम लेखक एवं देशयात्री ही उनके उद्धरण-साक्ष्य अधिक होते हैं।

तथाकथित हिंदू दलित जातियाँ अनावश्यक, अवैज्ञानिक और अव्यावहारिक भेदभाव एवं तिरस्कार की शिकार हैं। भेदभाव एवं तिरस्कार उसका किया जाता है जिसने किसी को त्रस्त कर रखा हो। यह जाति अपने कार्य एवं व्यवहार से किसी के भी लिए कोई समस्या नहीं रही। अस्पृश्यता गैर-कानूनी घोषित है। समाज से छुआछूत का भेदभाव दंडनीय अपराध घोषित किया जा चुका है। ऐसे में यदि कोई वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि जाति के लोगों से या अन्य तथाकथित दलित जातियों से भेदभाव और तिरस्कार का व्यवहार करता है, तो वह अनावश्यक होगा ही, दंडनीय भी कहा जाएगा।

एक चिकित्सक और नर्स अपने व्यवसाय के अंतर्गत दिन-रात मरीजों का मैल और घाव-मवाद धोते रहते हैं। वे कुष्ठव्याधि और कैंसर, हैजा एवं चेचक इत्यादि जैसी बीमारियों में भी रोगियों की देखभाल करते हैं, उनके पास बैठकर उनका हाल-चाल पूछकर उन्हें जीवन के प्रति आशान्वित करते हैं और आवश्यकतानुसार उनको बार-बार छूते भी हैं। वे कभी भी भेदभाव अथवा तिरस्कार नहीं करते। परंतु सफाईकर्मियों में ऐसी व्याधियाँ नहीं होती हैं और वे स्वयं भी सबसे मिलना-जुलना और अपना दुःख-दर्द बाँटना चाहते हैं, परंतु लोग उनसे दूरी बना लेते हैं। उनसे घृणा और भेदभाव करते हैं और कभी-कभी बुरी तरह से तिरस्कार भी कर देते हैं। वे लोग इसी तरह की अनावश्यक, अर्थहीन एवं अवैज्ञानिक दुर्भावना का आज तक शिकार बने हुए हैं। यह अब समाप्त करने का समय है।

हिंदू धर्मरक्षकरूपी यह जाति हिंदुओं के प्यार, स्नेह, अपनत्व एवं सहयोग की अधिकारी है। स्वाभिमान को भंग कराके धर्म की रक्षा करनेवाली वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, मजहबी इत्यादि जाति को हिंदू समाज सम्मान के साथ कम-से-कम अपना प्यार, स्नेह, अपनत्व और सहयोग तो दे सकता है। विचारणीय विषय है कि यह जाति किसी मुसलिम के घर का जल तक स्वीकार नहीं करती है। इसके मन में आज तक वे दिन याद हैं, जब विदेशी आक्रांताओं और इसलामिक शासकों ने बलपूर्वक इनको मैला ढोने में लगाया और इनका सामाजिक स्तर गिराया है।

हिंदू समाज का वर्तमान व्यवहार देखकर यह कहना पड़ता है कि वाल्मीकि समाज को यदि अपने प्यार, स्नेह, सहयोग, सम्मान, दया, करुणा आदि भी नहीं दे सकते तो वे हिंदू ही नहीं हैं। ये भाव तो किसी भी हिंदू में सामान्य रूप से पाए जाते हैं। प्यार, स्नेह, सहयोग, करुणा एवं ममता तो हिंदू धर्म की नींव है। जिनके पास यह गुण नहीं

है, वे हिंदू नहीं हैं। हिंदू वे हैं जो वाल्मीकि ही नहीं, किसी भी जाति के लिए ये दान बिना किसी भेदभाव के देते हैं। वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी इत्यादि कट्टर हिंदू हैं। अतएव किसी भी हिंदू का प्यार, स्नेह, सहयोग, करुणा एवं ममता पाना उनका जन्मसिद्ध अधिकार है।

हिंदू धर्म के नाम पर युद्ध करनेवालों की यह जाति विदेशी मुसलिम शासकों द्वारा दंडस्वरूप मैला ढोने के अस्वच्छ कार्य करने पर विवश हुई। इस जाति के समक्ष उनके अद्वितीय राष्ट्रवाद एवं धार्मिकता के प्रचंड प्रवाह के लिए समस्त हिंदू धर्मानुयायियों को नतमस्तक होना चाहिए। इस जाति ने उस समय मैला ढोया, जब दंड का एकमात्र उपाय प्रचलित था—मृत्युदंड। इसलाम अस्वीकारनेवाले तरह-तरह की शारीरिक यातनाएँ देकर केवल जान से मारे जा रहे थे ताकि हिंदू वह दृश्य देखकर काँप उठें और इसलाम स्वीकार कर लें। उस समय मैला ढोने की आवश्यकता को पूरी करके वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी इत्यादि समाज ने शासकों को दंड की एक अनचाही विधि को त्यागने का दिशा निर्देशन किया। इसलाम ठुकरानेवाले उसी समय से बलपूर्वक अस्वच्छ कार्यों में लगाकर अस्पृश्य बनाए गए। हिंदू धर्म पूर्णत: इस प्रकार सुरक्षित भी रह गया। यह सबकुछ करनेवाली हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी, मखियार इत्यादि जाति हिंदू धर्मानुयायियों के लिए नतमस्तक होने की प्रेरक हो जाती है।

यह सर्वविदित है कि हिंदू दलित जातियों का सैकड़ों वर्षों तक उत्पीड़न एवं शोषण सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक स्तरों पर तीव्र गति से और बलपूर्वक हुआ है जिससे वे शैक्षिक एवं राजनैतिक, दोनों ही दिशा में पिछड़कर रह गए हैं। आज के युग में उसी जाति की सामाजिक एवं अन्याय प्रस्थितियाँ सामाजिक समायोजन योग्य मानी जाती हैं जो आर्थिक, शैक्षणिक और राजनैतिक दृष्टि से सशक्त हों। वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि जातियों की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय है। उनके पास यथोचित आवास भी नहीं है और वे भूमिहीन हैं क्योंकि उनकी भूमि, उनका आवास इत्यादि विदेशी आक्रांताओं ने बलपूर्वक उनसे छीनकर उन्हें बेदखल कर दिया था। अत: उनको समाज के अंदर यत्र-तत्र निवास करने के लिए नि:शुल्क भूखंड तथा आवास-निर्माण के लिए पर्याप्त धनराशि मिलनी चाहिए। वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि समाज के बच्चों को अनिवार्य और छात्रवृत्ति सहित शिक्षा का पूरा लाभ मिलना चाहिए। उनके शिक्षित समाज को संपूर्ण व्यय प्रदान करके राजनीति में भी भागीदार बनाना चाहिए। समाज यह कार्य स्वेच्छा से करके वाल्मीकि, सुदर्शन, रुखी, मखियार, मजहबी सिख इत्यादि समाज के प्राचीन ऋण को उतार सकता है

और सरकार उनके लिए विशेष पैकेज अथवा योजनाएँ बनाकर भी उन्हें लाभान्वित कर सकती हैं। वाल्मीकि, सुदर्शन, मजहबी सिख इत्यादि सफाईकर्मी जातियों एवं इस समाज की समस्याओं का निवारण करना भारतीय समाज और भारत सरकार का महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य दायित्व है।

□

परिशिष्ट

हिंदू वाल्मीकि, सुदर्शन इत्यादि (सफाईकर्मी) जाति के संबोधन, उपनाम एवं गोत्र आदि की अनुसूची

(अ)

(1) अटवाल, (2) अनरियाबंधा, (3) अफ्रोड—गोत्र, (4) अरखेल—टाइटिल, (5) आदिडोम्मारोल्लू, (6) आदीवाल, (7) आदेवाल, (8), आयुकुट्टडी, (9) आर्यकूथाड़ी, (10) आर्य डोंवारा, (11) इग्गीरेड्डी, (12) उज्जैनीवाल, (13) उतवाल, (14) ओडिया, (15) ओलगाना, (16) औचेवाल, (17) औजला।

(क)

(18) कंगड़ा, (19) कंजियारे, (20) कंडावारी—गोत्र, कंडीवारा, (21) कंडीवारी, (22) कंडीमारी, (23) कंदरी, (24) कजहाई कूथाड़ी, (25) कड़ीदता, (26) करिआर—गोत्र, (27) करिकंठ—गोत्र, (28) करीयाणा, (29) करीयाना, (30) करोसिया, करोटिया (31) कलयाण, (32) कलियाणे—गोत्र, (33) कल्याणी—गोत्र, (34) कल्याणे—गोत्र, (35) कलसे—टाइटिल, (36) कलाई, (37) कलैकुट्टडी, (38) कलोत्रे—गोत्र, (39) कल्ला—गोत्र, (40) कहारु, (41) काकड़ी, (42) कागट, (43) कागड़ा, (44) कागड़ी, (45) कागड़ीया, (46) कागरा, (47) कालिंदी—टाइटिल, (48) कालीअट्टा, (49) कालीढई, (50) किलयारा, (51) कुंडे—टाइटिल, (52) कुकरा—टाइटिल, (53) कुकी, (54) कुठारा, (55) कुडी डोग्वारा, (56) कुबाना, (57) कुल—टाइटिल, (58) कुलाना, (59) कुलीना, (60) कुसर—गोत्र, (61) कुथाड़ी, (62) कोटा

कोंडावाल्लू, (63) कोथू लोल्लू, (64) कोल्हटी, (65) कोहरा, (66) कोहरा, (67) कोहात—भाइत, (68) कौरटाना, (69) कौशड़।

(ख)

(70) खकार, (71) खग्रोव, (72) खड़ालनी, (73) खड़ालीय, (74) खरे—टाइटिल, (75) खसारा, (76) खान—टाइटिल, (77) खारू, (78) खोखड़, (79) खोखर, (80) खोजे, (81) खोरे।

(ग)

(82) गइत, (83) गचंद, (84) गचली, (85) गट्ट, (86) गणड़ा, (87) गरचड़ी, (88) गलहार, (89) गाँचन, (90) गारु, (91) गित्त, (92) गिल—टाइटिल, (93) गिलगच्छ, (94) गीर, (95) गुमरे—टाइटिल, (96) गुलतानी, (97) गेगीया, (98) गोगड़ीया, (99) गोगालिया, (100) गोडला, (101) गोडीला, (102) गोडीवाल, (103) गोढारे—टाइटिल, (104) गोरे टाइटिल, (105) गोहारसुई, (106) गोहारसूस, (107) गौसार, (108) ग्रांवकर—टाइटिल।

(घ)

(109) घटाटे—टाइटिल, (110) घिचरीया—टाइटिल, (111) घिचरे—टाइटिल, (112) घिलौट, (113) घोरिए—गोत्र।

(च)

(114) चंदाल, (115) चंदालिया, (116) चकरारी, (117) चनवारिया, (118) चनारा, (119) चरन, (120) चरनिया भामभी, (121) चलारना, (122) चाटे, (123) चाहे, (124) चिंडा, (125) चिग्सा, (126) चिथराही, (127) चिड़ाई, (128) चिड्ढा, (129) चिड़ी, (130) चुटेलकर—टाइटिल, (131) चुखाने, (132) चुरहा, (133) चुरा, चूरा, (134) चुहड़ा, चुहरा, चुहरे, चोहरा, (135) चेडी, चेडे, (136) चौसती, (137) चौहान—गोत्र।

(छ)

(138) छटाले—गोत्र, (139) छापर, (140) छापरबंद, (141) छिपा, (142) छुहरा, (143) छूंछा।

(ज)

(144) जंगआला, (145) जंगालके, (146) जगत—टाइटिल, (147) जडुका—गोत्र, (148) जड़िया—गोत्र, (149) जदमल्ली, (150) जनजौतार, (151) जनवारे—टाइटिल, (152) जलाले टाइटिल, (153) जवोरे—टाइटिल, (154) जांडा, (155) जागरा, (156) जाटभामभी, (157) जाहिर, (158) जिंझूया, (159) जुतली, (160) जेडीया, (161) जैसवाल—गोत्र, (162) जोआ पैओ, (163) जोइया, (164) जोडा—गोत्र, (165) जोरीया, (166) जौते।

(झ)

(167) झए, झाए—गोत्र, (168) झनजूतार, (169) झनजौतार, (170) झनझौहा, (171) झबबा, (172) झाऐ—गोत्र, (173) झाटा—गोत्र, (174) झाबा, (175) झाबे, (176) झिजजू, (177) झौतरा, (178) झौनज, (179) झौनजट, (180) झौनी।

(ट)

(181) टक, (182) टगरीमन, (183) टनक, (184) टांडी—टाइटिल, (18 5) टार, (186) टिउहार, (187) टींगड़ी।

(ड)

(188) डकाहा—टाइटिल, (189) डबगोहार, (190) डींगरे—गोत्र, (191) डुम, (192) डुमना, (193) डुमनामहाशा, (194) डुमने, (195) डुमरा, (196) डुमार, (197) डुंबा, (198) डुरियाडोम, (200) डेलीकर—गोत्र, (201) डोगरी—गोत्र, (202) डोनारे, (203) डीम, डोमड़ा, (204) डोम सिखारिया, (205) डोमार, (206) डोमारा, (207) डोमाल, (208) डोमेर, (209) डोमै, (210) डोंब, (211) डोंबन, (212) डोंबरा, (213) डोंबार, (214) डोंबारा, (215) डोंबारी, (216) डोंबीदास, (217) डोंबो, (218) डोम्मारा, (219) डोम्मारोल्लू, (220) डोरिस, (221) डोहाना।

(ढ)

(222) ढंहरा—गोत्र, (223) ढलहान, (224) ढलियान, (225) ढाएसाही, (226) ढाप, (227) ढाब, (228) ढिबला, (229) ढींगरे, (230) ढेलार, (231) ढोंगरे।

(त)

(232) तंबोली, (233) ताँबे—टाइटिल, (234) तुनैहा, (235) तुरई, (236) तुरइया टाइटिल, (237) तुरहिया, (238) तुरी, (239) तुरैहा, (240) तुर्केल—टाइटिल, (241) तेगड़ी, (242) तेजी, (243) तेजे, (244) तोसमर।

(थ)

(245) थूड—गोत्र, (246) थोटी, (247) थोरी।

(द)

(248) दमार, (249) दलगचे, (250) दलगप, (251) दवागे—टाइटिल, (252) दाखिद, (253) दातथिची, (254) दातसिची, (255) दादरी, (256) दामड़े—गोत्र, (257) दामनकर टाइटिल (258) दारगर, (259) दारगम, (260) दास—टाइटिल, (261) दास डोंबी, (262) लिगामी, (263) दिलराज, (264) दुग्गल, (265) दुरिया—टाइटिल, (266) दुसाध, (267) देगाड़ी, (268) देशमंडल—टाइटिल, (269) द्वारेके—गोत्र।

(ध)

(270) धई, (271) धनड़ी, (272) धनकवाल, (273) धनार, (274) धनीक—टाइटिल, (275) धनुक—टाइटिल, (276) धनुवाल, (277) धरकार, (278) धरनी, (279) धरवती, (280) धरौ, (281) धरौवत, (282) धर्मबस्ती, (283) धांगड़, (284) धांचल, (285) धाचंद, (286) धानुक, (287) धाप, (288) धारलीया, (289) धारवती, (290) धारीवाल, (291) धारू, (292) धालीवाल, (293) धासार, (294) धांसूर, (295) धींगरे—गोत्र।

(न)

(296) नगाडची—टाइटिल, (297) नन्हेत—गोत्र, (298) नमोशूद्र, (299) नहर, (300) नहोरी, (301) नाग, (302) नागेश्वर, (303) नाथनोत्रे—गोत्र, (304) नाथवत्, (305) नाथावत, (306) नायक—टाइटिल, (307) नायकरानी, (308) नाह—गोत्र, (309) नाहर—टाइटिल, (310) नाहल, (311) निंबा—गोत्र, (312) नील—टाइटिल।

(प)

(313) पंडन—गोत्र, (314) पंदोतिया, (315) पकीयाना, (316) पगानी, (317) पड़ार, (318) पआ, (319) पनवाड़, (320) परतान, (321) पहरार, (322) परिहार—टाइटिल, (323) पसेरकार—टाइटिल, (324) पहारोलिया, (325) पाटिल—टाइटिल, (326) पाने, (327) पानो, (328) पारगोनइत—टाइटिल, (229) पारछी—पारशा, (230) पारा डोंबारा, (331) पिंडकर, (332) पिंडार, (333) पिंडाल, (334) पिछल, (335) पिखान, (336) पिरहार, (337) पुआर—पैल, (338) पूछिया, (339) पूमा, (340) पेड्डींटीराजू, (341) पेलपवार, (342) पैओ, (343) पैटी, (344) पैडी, (345) पैडीपानो, (346) पैलपुआर—गोत्र, (347) पैसाडेली—गोत्र, (348) पोदू, (349) पौहाल, पथर फोड़।

(फ)

(350) फरवा, (351) फरवाहिन, (352) फल, (353) फारिवन।

(ब)

(354) बंगी, (355) बंसफोर, (356) बक्सरे—टाइटिल, (357) बग्गन, (358) बजइयाँ—टाइटिल, (359) बजनियाँ—टाइटिल, (360) बदलान—टाइटिल, (361) बढेल, (362) बदलान, (363) बनवारे—टाइटिल, (364) बभनिया, (365) बलगेर, (366) बसोर—टाइटिल, (367) बहुलान, (368) बाँसफोर, (369) बागड़—गोत्र, (370) बागड़ी—टाइटिल, (371) बागड़े—टाइटिल, (372) बाग़र—टाइटिल, (373) बाग्रवा—गोत्र, (374) बावरा—गोत्र, (375) बाबी, (376) वामन—टाइटिल, (377) बारीकी, (378) बारू, (379) बालदी, (380) बालदीन—गोत्र, (381) बालाशाही, (382) वाल्मीकि, (383) वाल्मीकि कोरार, (384) वाल्मीकि चुहड़ा, (385) वाल्मीकि बेदारू, (386) वाल्मीकि मक्कालू, (387) बासर, (388)

वासिर, (389) बासी, (390) बासूर, (391) बिगासी, (392) बिदनार, (393) बिपालोच, (394) बिरकान, (395) बीला—बीले, (396) बुगर, (397) बुट्ट, (398) वुडलान, (399) बुरट, (400) बुरत, (401) बुरात, (402) बोरट, (403) बोरत, (404) बुहात—गोत्र, (405) बेंगीरी—फ्राम—गोत्र, (406) बेग—टाइटिल, (407) बेगी, (408) बेद, (409) बेदलान, (410) बेदारूवाल्मीकि, (411) बेरीया—टाइटिल, (412) बेहड़ा, (413) बेहेरा, (414) बैरागी—टाइटिल, (415) बैस—गोत्र, (416) बोमे, (417) बौहात—गोत्र, (418) ब्रोलाट, ।

(भ)

(419) भंगी, (420) भंदारा, (421) भगत—टाइटिल, (422) भट्ट—गोत्र, (423) भट्टी—गोत्र, (424) भट्टू—गोत्र, (425) भदियाना, (426) भनोलाई—गोत्र, (427) भरुमक, (428) भादर, (429) भानू, (430) भावन, (431) भांभी, (432) भामभी चरनिया, (433) भामभी जाट, (434) भामभी मारू (435) भारती—टाइटिल, (436) भानालेय—टाइटिल, (437) भालगोचे—गोत्र, (438) भाहूत कोहात, (439) भिखारके, (440) भूंबक, (441) भेटल, (442) भेटा—गोत्र, (443) भैनीवाली, (444) भोगरा, (445) भोरे—गोत्र, (446) भोरडा—गोत्र।

(म)

(447) मंग, (448) मंगतोत्रे—गोत्र, (449) मंझ, (450) मंदीरी, (451) मक्कालू वाल्मीकि, (452) मखियार—टाइटिल, (453) मगसार, (454) मगहिया, (455) मजहबी सिंख, (456) मजोत्रे—गोत्र, (457) मठू, (458) मंडाला, (459) मत्रू, (460) मदराजू, (461) मधुमटके—टाइटिल, (462) मनहार, (463) मन्ने, (464) मन्नेपल्ली, (465) मरांगी, (466) मलकाना, (467) मलीक—टाइटिल, (468) मस्ती, गश्ती—टाइटिल, (469) मस्ते—टाइटिल, (470) महतो—टाइटिल, (471) महदी, (472) महानंदा—टाइटिल, (473) महाशा डुमना, (474) महोती, (475) महोबिया, (476) माथी, (477) मादिगा, (478) मारूभामभी, (479) मार्वे—टाइटिल, (480) मालकाना, (481) माला, (482) मालेपुल्लू, (483) मिचवार—गोत्र, (484) मिचवाल—गोत्र, (485) मिट्ठू, (486) मिरगय, (487) मिरद्या—टाइटिल, (488) मिरासी—गोत्र, (489) मिलखत, (490) मिलतू, (491) मुल्तानिया, (492) मुल्ली, (493) मुही—गोत्र, (494) मेरवा, (495) मेलवंडे, (496) मेहतर, (497) मोगर, (498) मोगेर—टाइटिल, (499) मोंगी—गोत्र, (500)

मोगे—गोत्र, (501) मोरकर—टाइटिल, (502) मोल्लादास, (503) मोहती, (504) मोही।

(र)

(505) रंगरेटा, (506) रंजीला, (507) रंटी, (508) रठवाल, (509) रत्तल, (510) रत्ती, रत्तीया, (511) राउत—टाइटिल, (512) राती, (513) राना—टाइटिल, (514) रावत—टाइटिल, (515) रिडलान—टाइटिल, (516) रुखि—टाइटिल, (517) रुमल, (518) रोहीवन, (519) ऋषि।

(ल)

(520) लंगोटे—टाइटिल, (521) लछड़, (522) लट, लटी, (523) लदड़—गोत्र, (524) लदाड़—गोत्र, (525) लहौरी, (526) लाखे—टाइटिल, (527) लानती, (528) लालका—गोत्र, (529) लालबेगी, (530) लालोमे—गोत्र, (531) लाहार, (532) लाहीरा, (533) लाहोतनी सूरी, (534) लुआरे—गोत्र, (535) लुछड़, (536) लुहात—गोत्र, (537) लूटे—गोत्र, (538) लूंबड़, (539) लोइट, (540) लोगाइट, (541) लोटो, (542) लोनीया, (543) लोहार, (544) लौहार, (545) शिक्कलवार—टाइटिल, (546) शिर्के—टाइटिल, (547) शिवोत्रे—गोत्र, (548) शुक्लवार—टाइटिल, (549) शुद्धा डोंबे, (550) संगर, (551) संगसत, संगसन, (552) संगीलीपी, (553) संजोतरी, (554) सनातर, (555) सपरवीन—गोत्र, (556) सभरवाल—टाइटिल, (557) समुद्रे—टाइटिल, (558) सरपतड़ा, (559) सरवती, (560) सखन, (561) सरभल, (562) सपसुर, (563) सहोतरा, (564) सहोता, (565) सहोते, (566) सहोत्रे—गोत्र, (567) साइता, (568) सागर—टाइटिल, (569) सादी ·साद्धू, (570) साहबतोरी, (571) साखन—गोत्र, (572) साखान—गोत्र, (573) साहीढाए—गोत्र, (574) सिंग—टाइटिल, (575) सिंधू, (576) सिखारिया डोम, (577) सिद्धू, (578) सिधुओं, (579) सियोल—गोत्र, (580) सिरकिया, सिरकीया, (581) सिर्किया, (582) सिर्की—टाइटिल, (583) सीरसबड़ा, (584) सीत्रवाले—गोत्र, (585) सुईगोहार, (586) सुदर्शन—टाइटिल, (587) सुदा, (588) सुनेनी—टाइटिल, (589) सुसता, (590) सुरानी, (591) सूरीलाहौतनी, (592) सूर्य, सूर्या—टाइटिल, (593) सूसगोसर, (594) सेट्टी—टाइटिल, (595) सेट्टी—टाइटिल, (596) सोड़या, (597) सोड़ा, (598) सोढ़ा, (599) सोथ, (600) सोथती, (601) सोदा, (602)

सोनकर, सानेकर—टाइटिल, (603) सोमी, (604) सोलंकी—गोत्र, (605) सोसत, (606) सोसवाल।

(ह)

(607) हंस—गोत्र, (608) हंसा—टाइटिल, (609) हतवाल, (610) हत्तसे हसे, (611) हत्थेल—टाइटिल, (612) हथगेन—टाइटिल, (613) हरी, (614) हलालखोर, (615) हालेय, (616) हसे, हत्तसे, (617) हांस—गोत्र, (618) हाडी—टाइटिल, (619) हाड्डी, (620) हाती बैड, (621) हाथीबैड—टाइटिल, (622) हेला, (623) होथीबेड—टाइटिल।

□

संदर्भ ग्रंथ-सूची

(अ) मूल ग्रंथ

1. वेद ग्रंथ

ऋग्वेद - सायण भाष्य सहित, संपादक, एफ. मैक्समूलर, 1890-92, 5 भाग, वैदिक संशोधन मंडल, पूना, 1935-51

यजुर्वेद - सायणकृत व्याख्या, श्रीराम शर्मा द्वारा संपादित, संस्कृत संस्थान, बरेली, 1963।

सामवेद - सायणकृत व्याख्या, श्रीराम शर्मा द्वारा संपादित, संस्कृत संस्थान, बरेली, 1964।

अथर्ववेद - वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, 1885

2. संहिताएँ

काठक संहिता - श्रेडर संपादित, लाइपजिंग, 1990।

तैत्तिरीय संहिता - महादेव शास्त्री संपादित, मैसूर, 1884।

यजुर्वेद संहिता (मूल) - सकलियत महर्षि देवरात, वाराणसी, 1973।

ऋग्वेद संहिता - पदपाठसंहिता, सायणाचार्यकृत-भाष्यसवलिता सैव हिंदी भाषा मंत्रानुवादसमन्विता, अनुवादक—पंडित रामगोविंद त्रिवेदी, चौखंबा विद्या भवनम्, वाराणसी, 1997।

वाजसनेयी संहिता - वासुदेवशास्त्री संपादित निर्णय सागर प्रेस बंबई, 1929।

3. ब्राह्मण ग्रंथ

ऐतरेय ब्राह्मण (ऋ) - षडगुरुशिष्यकृत सुखप्रदावृत्ति सहित, त्रावणकोर विश्वविद्यालय संस्कृत सीरीज, त्रिवेंद्रम।

शतपथ ब्राह्मण - अच्युत ग्रंथमाला कार्यालय, वाराणसी, संवत् 1994-97।

4. आरण्यक ग्रंथ

ऐतरेय आरण्य (ऋ) - संपादक, कीथ, ऑक्सफोर्ड, 1909

तैत्तिरीय आरण्यक (कृयजु) - आनंदाश्रम संस्कृत सिरीज, 1926

5. उपनिषद् ग्रंथ

ईशादिदशोपनिषद् - गीता प्रेस, गोरखपुर

छांदोग्योपनिषद् (साम) - गीता प्रेस, गोरखपुर

वृहदाहरण्यकोपनिषद् (शुयजु) - गीता प्रेस, गोरखपुर

6. श्रौत सूत्र

आश्वलायन श्रौतसूत्र (ऋ) - बिब्लियोथिका इंडिका, 1879

7. गृह्य सूत्र

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र - सुदर्शनाचार्य की टीका सहित, मैसूर गवर्नमेंट संस्कृत लाइब्रेरी सीरीज

आश्वलायन गृह्यसूत्र (ऋ) - नारायण की टीका सहित, निर्णय सागर प्रेस,

काठकगृह्य - संपादक डॉ. कलंद, 1925

8. धर्मसूत्र (स्मृतियाँ)

अंगीरा स्मृति - जीवानंद संग्रह में

अत्रिस्मृति - जीवानंद संग्रह में

आपस्तंब धर्मसूत्र - हरिदत्त टीका, 1910, बंबई संस्कृतमाला।

गौतम धर्मसूत्र - हरदत्त टीका सहित, आनंदाश्रम संस्कृत सीरीज, 1910

नारदस्मृति - कल्याण भट्ट, 1940, डॉ. जाली द्वारा संपादित

पाराशरस्मृति - माधव, 1940, बंबई संस्कृत माला संस्करण

मनुस्मृति - टीका. कुल्लू भट्ट, मेधातिथि तथा वूल्हर, वर्ष पूना 1910, कलकत्ता 1932, बॉम्बे 1946

याज्ञवल्क्यस्मृति - विश्वरूप-त्रिवेंद्रम आनंदाश्रम पूना, माघशास्त्री-निर्णय सागर संस्करण, त्रिवेंद्रम, 1917

वशिष्ठ स्मृति - वशिष्ठ धर्मसूत्र मातृदत्त, 1905 आनंदाश्रम स्मृति संग्रह, मैसूर

व्यासस्मृति – धर्मशास्त्र संग्रह, खंड 2, कलकत्ता, 1876

9. पुराण ग्रंथ

देवी भागवत पुराण – बिब्लियोथिका इंडिका, 1903

नारदपुराण – आनंदाश्रम, पूना 1910

ब्रह्मपुराण – बड़ौदा, 1941, गायकवाड़ सीरीज

भविष्यपुराण – वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, 1912

विष्णुपुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2009

स्कंदपुराण – खेमराज कचौड़ीगली, वाराणसी

हरिवंशपुराण – संपादक—रामबिहारी मिश्रा, वाराणसी, 1983

10. वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुकत, छंद ज्योतिष)

पतंजलि – महाभाष्य, संपादक कीलहार्न, बंबई

पाणिनि – अष्टाध्यायी, निर्णय सागर प्रेस, 1929

11. महाकाव्य (रामायण, महाभारत)

वाल्मीकि – रामायण, दो भाग, गीता प्रेस, गोरखपुर

व्यास – महाभारत, छह भाग, गीता प्रेस, गोरखपुर

12. निबंध साहित्य

आचार सागर – बल्लालसेन

नवसाहसांकचरित – संपादक—वामन शास्त्री, बंबई, 1895

नैषधीयचरित – बंबई, 1907

पुरातन प्रबंध संग्रह – भाग-2

शुक्रनीतिसार – बी.के. सरकार, इलाहाबाद, 1923

सभाश्रृंगार – संपादक—अमरचंद नाहटा, वाराणसी, संवत् 2019

13. साहित्यिक कृतियाँ

कालिदास – मालविकाग्नि मित्र, बंबई संस्कृत सीरीज, 1889

क्षेमेंद्र – दशावतारचरित, निर्णय सागर प्रेस, बंबई

तुलसीदास – रामचरितमानस, ठाकुर प्रसाद, वाराणसी, 2005

सोमदेव – नीतिवाक्यामृत, माणिकचंद ग्रंथमाला, नं. 221

14. ऐतिहासिक ग्रंथ

कल्हण – राजतरंगिणी, एम.ए. स्टीन, दो भाग, 1900, वाराणसी, 1961, आर.एस. पंडित, 1935

कौटिल्य – कौटिल्य अर्थशास्त्र, संपादक—आर. शामशास्त्री, मैसूर, 1909, 1929, आनंदाश्रम, पूना।

बाणभट्ट – हर्षचरित, अनुवाद—कावेल और टामस, 1879।

राजशेखर – कर्पूरमंजरी, कलकत्ता, 1948।

15. बौद्ध-साहित्य-

अंगुत्तरनिकाय – पालि भाग 4, सहसंपादक—भिक्षु जगदीश कश्यप, बिहार, 1960

जातक – हिंदी अनुवाद—भदंत कौसल्यायन, प्रयाग सं. 1946-2014

मिलिंदपंहो – बंबई, 1940

विनय पिटक – राहुल सांकृत्यायन, सारनाथ, 1935

16. जैन-साहित्य

अमरकोष – क्षीरस्वामी, पूना, 1907

आचारांग सूत्र – अनुवाद—जेकोबी, 22, ऑक्सफोर्ड, 1884

पुरातन प्रबंध संग्रह – जिन विजय मुनि, कलकत्ता, 1926

प्रबंध चिंतामणि – मेरुतुंग, हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1940

शब्दानुशासन – हेमचंद, बड़ौदा, गायकवाड़ सीरीज

(ब) समीक्षा-ग्रंथ (हिंदी)

अद्वैतीय, डॉ. देवसिंह – अद्वैत धर्म क्या है (भारतीय वाल्मीकि धर्म समाज, लुधियाना, 2007)

अंबेडकार, भीमराव – संपूर्ण वाङ्मय।

अंबेडकार, भीमराव – रानाडे, गांधी और जिन्ना (बॉम्बे, 1943)

आर्य, लाल ज्ञानचंद – वर्णव्यवस्था का वैदिक रूप (विजय गुजराल फाउंडेशन) नई दिल्ली, 1994

उपाध्याय, बलदेव – वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1998

उपाध्याय, भागवतशरण – भारतीय समाज का ऐतिहासिक तत्त्व

काणे, पी.वी. – धर्मशास्त्र का इतिहास, 5 भाग, लखनऊ, 1962

डॉ. कृष्णगोपाल – बाबा साहब : व्यक्ति और विचार (सुरुचि प्रकाशन, झंडेवाला, नई दिल्ली)

डॉ. कृष्णगोपाल – भारत की संत परंपरा और सामाजिक समरसता, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ, अकादमी, भोपाल, 2013

ग्रोवर – वी.एल. एवं यशपाल : आधुनिक भारत का इतिहास (एस. चंद्र एंड कंपनी, दिल्ली 2000)

जाटव, डी.आर. – डॉक्टर अंबेडकर धर्मदर्शन, जयपुर, 1993

टाड – राजस्थान का इतिहास, दिल्ली, तोमर

देवेंद्रपाल सिंह – हिंदू अछूत जातियों में छुआछूत कामनवेल्थ पब्लिशर्स, दिल्ली

दिनकर, डॉ. रामधारी सिंह – संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004

धर्मपाल – भारत की लूट एवं बदनामी, अहमदाबाद, 2007

धर्मपाल – रमणीय वृक्ष, अहमदाबाद, 2007

नवल वियोगी, वशीशंकर – सिंधुघाटी की सभ्यता

परमानंद – कबीर मंसूर अर्थात् सवसंवेदार्थ प्रकाश, अनुवादक—पंडित माधवाचार्य, प्रकाशक—गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास कल्याण, बंबई, 1984

पांडेय, विमलचंद – प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास दो भाग

भदकारिया, डॉ. श्यामलाल – सूर्यवंशी 360 गोत्रिय क्षत्रिय वंशावली, ग्वालियर, (भदौरिया) मुरार

माथुर, विजयेंद्र कुमार – ऐतिहासिक स्थानावली, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1990

मिश्र, जयशंकर – प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना

मिश्र, ज्वाला प्रसाद – जाति भास्कर

मिश्र, राजेंद्र कुमार (माहिम) – महर्षि वाल्मीकिय राज्य विज्ञान, इंदिरा नगर, लखनऊ

मोहम्मद, हबीब-खालिद – दिल्ली सल्तनत (हिंदी संस्करण), अहमद निजामी

राधेशरण – भारत की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना और संस्कृति के मूलतत्त्व, भोपाल, 1995

वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद - वैदिक राजनीतिशास्त्र

विद्रोही, एम.आर. - दलित दस्तावेज, सम्यक प्रकाशन दिल्ली, 2014

विपिनचंद - भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, दिल्ली, 2003

शर्मा, छोटेलाल - जाति अन्वेषण

शर्मा, ब्रह्मदेव - आदिवासी विकास-एक सैद्धांतिक विवेचन, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1980

शर्मा, मुंशी राम - वैदिक संस्कृति एवं सदाचार (वेद, कथांक-कल्याण 1999)

शर्मा, रघुनंदन प्रसाद - स्मृतियों में भारतीय जीवन-पद्धति, नई दिल्ली, संवत् 2058

शर्मा, रामनारायण - प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ

शास्त्री, आचार्य चतुरसेन - सोमनाथ (उपन्यास), हिंद पॉकिट बुक

शास्त्री, मंगलदेव - भारतीय संस्कृति का विकास

शास्त्री, डॉ. विजय सोनकर - दलित हिंदू अग्निपरीक्षा, वाराणसी, 2003

शास्त्री, डॉ. विजय सोनकर - दलितों पर घात, दिल्ली, 2007

शास्त्री, डॉ. विजय सोनकर - मानवाधिकार—एक भारतीय दृष्टि, वाराणसी, 2001

शास्त्री, डॉ. विजय सोनकर - हिंदू वैचारिकी : एक अनुमोदन, विश्व हिंदू परिषद्, संकटमोचन, नई दिल्ली, 2006

शास्त्री, डॉ. सुमन - मध्यकालीन भारत की व्यापार व्यवस्था का ऐतिहासिक अनुशीलन, शोध कार्य (2002), इतिहास विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

श्रीवास्तव, प्रो. अशोक - दिल्ली सल्तनत का उत्थान और पतन (712-1526 ई.) पूर्वांचल प्रकाशन, गोरखपुर, 1998

सभरवाल, रामलाल - भारत के मूल निवासी वाल्मीकि श्रेष्ठ लोग चंडीगढ़, 2005

सभरवाल, रामलाल - मजहबी सिक्ख एक मार्शल कौम

सांकृत्यायन, राहुल - सिद्धों की संपूर्ण साहित्य (पटना)

सावरकर, विनायक दामोदर - हिंदुत्व के पंच प्राण, अनु.—विक्रम सिंह, हिंदी साहित्य सदन, नई दिल्ली, 2001

सिंह, परमानंद - बौद्ध साहित्य में भारतीय समाज, म.गां. काशी विद्यापीठ, वाराणसी 1996

सिंह, रिपुदमन - शारीरिक मानव विज्ञान, लखनऊ, 1974

सोना, सुरेश - हमारी सांस्कृतिक विचारधारा के मूल स्रोत, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, 2003

(स) समीक्षा ग्रंथ (अंग्रेजी)

Alberuni	— Kitabulhind (Sachau, Vol-I)
Ali, Muhammad	— Religion of Islam
Ambedkar, B.R.	— Life & Mision
" "	— Writings & Speeches, Vol. 7-8
" "	— The Untachables
Ananthakrishna,	— The Mysore Tribes & Castse,
lyer, L.K.	— Mysore, 1930, Vol-III
Bahadur, K.P.	— Caste, Tribe and Culture of Ancient India, 1978
Basham, A.L.	— Cultural Histroy of India, 1975
Beal	— Vol.4 (Sunil Gupta Publ)
Bhagvandas	— Dus spoke Ambedakar, Vol. 1
Kanningham	— Ancient Gography of India
Chanda, R.P.	— The Indo-Aryan Race, 1916
Crooke, w.	— The Tribes and Casts of the North-western India (Calcutta, 1896, 1975)
D esuza, Dilip	— Brandred by Law, New delhi, 2004
Elliot & Dowson	— History of India as told by its own Historians, 8 Vols. London, 1966-77
Firista	— Brigs, Vol. 1
Garden	— Pre-Historical Background of Indian Culture.
Ghoshal, U.N.	— A History of Indian Public Life, Bombay, 1966
Ghurye, G.G.	— Caste and Class in India, New York, 1950
Habib	— Sultan Mahmod of Gazaneen
Hitti, P.K.	— A short History of the Arabs
Hollins, S.T.	— The Criminal Tribes in India, Delhi-2005
Jolly, J.	— Hindu Law and Custom, Calcutta, 1968
Kamble, J.R.	— Rise & Awokening of Depressed Classes in India, Delhi
Kosambi, D.D.	— The Culture & Civilisation in Ancient India.
Lal, K.S.	— Studies in Medieval Indian His tory, Delhi 1966

Latif, S.M. — History of Punjab

Luiz, A.A.D. — All India Enquiry of Nomadic Tribes Committee Riport, 1958

Mahalanodis, P.C. — Anthropometric Survey of the & others United provinces, 1941, A Statistical study : Sankhya, 9, 1949

Majumdar, D.N. — Blood Groups Distribution in the & Kishen, K United Provinces: Riport on the se rological survey of the U.P. Cen sus operation, 1941, eastern An thropologist 1, 1947

Majumdar, D.N. — Race Element in Bengal, Indian & Rao, C.R. Statistical Series No.3, Calcutta, 1960

Majumdar, R.C. — Ancient India.

Majumdar, R.C. — The Classical Age.

Max, John — Great Haise of India

Nazim — Life and Times of Mahamood of Gajaneen.

Nicolson — Literary History of the Arabs

Nicolson — Mystics of Islam

Pandit, Amichand — Balmik Prakash, 1959

Raberta — Tabakat-E-Nasiri, Vol. 1

Risley, H. H — The People of India, London, 1915

" " — The Tribes & Castes of Bengal (Calcutta, 1981, 2 Vols.)

Rose, H.A. — Glossary of the Trives & Caste of the Punjab & N.W.F. Provinci, Delhi, Amar Prakashan, 1980

Roychoudhary, S.C. — Political History of Ancieent India, Culcutta, 1953

Sachau — Vol.-2

Sharma, Rama — Bhangi-Scavengor in Indian Socity (M.P. Publications, New Delhi, 1995)

Sharma, Ramsharan — Ancient India.

Shyamlal — From Higher Coste to Lower Caste (Rawat Pub. New Delhi, 2007)

Singh, K.S. — Pipules of India (National Series, Vol. 4% India Communities, A-G (Anthropoligical Survey of India) Oxford, Univ. Prass, Delhi 1998)

Singh, Mohinder, — The Depressed Classes (Hind Kitab Bombay, 1947.

Srivastava, Ashok — Dis-Intrigration of North Indian Hindu States Vol-I,

Srivastava, K.L. — The Position of Hindus under the Delhi Sultanate 1206-1526, Munshiram Manoharlal Publishers Pvt., I.t.d., New Delhi, 1980.

Swaroop, Devendra — Politics of Converson (Delhi, D.R.I. Pub.)

Taylor, Ossak — Origin of Aryan.

Thurston, E — Castes & Tribes of Southern India, (Madras), 1909

Titus — Indian Islam

Tiwari, S.C. — The Distribution of Blood Groups Among the Bhotia of Almora, District. U.P. Man in India, 32, 1952

Vedal — Makers of Civilisation.

Villadhuri — Kitab-Futuhal-Buldal Vol.II

Visk, Koto — History of India

Waters — Vol-2

Wheeler — The Indus Civilisation, London, 1953

(द) समीक्षाग्रंथ (फारसी, उर्दू)

Barani, Z. — Tarikh-Firuzshahi, ed. Sir Sayyid Ahmed Khan, Calcutta, 1862, ed. by W.N. Lees, S. Ahmed Khan Kabiruddin, B.l, Calcutta, 1860-62

Beiggs, J. — Tarikh-i Firishta of Muhammad Qasim, 4 Vols, London, 1827-29

Ferishta — Muhammad Qasim Hindu Beg. (Gulshan-i-Ibrahimi), Tarikh-i-Ferishta, Lithographed Bombay, 1832, Lucknow, 1905, Eng. Tr. J. Briggs. Rise of Mohomedan Power in India, 4 vols., London, 1827-29 Calcutta, 1966.

Muhammad, Iqbal — Rahat-Us-Sudur

(य) विदेशी यात्रा-वृत्तांत

Alberuni — Kitabul Hind Tra. by E.Sachau, as, Al-Beruni s India, London 1910

Gibb, H.A.R. — Trevels of Ibna-Batuta, London, 1921

Charas — Hirth, F and Chau-Ju-Kua, St. Petrsburg, 1911 Rock-hill, W.W.

Fahiyan — Bel, Samuel, Travels of Fa-Hien and Sung-Yan, London, Trubner and co., 1869.

Marco Polo — The Book of Ser. Marco Polo, re vised ny Henry Cordier, London, 1920.

Hiuen Tsang — Travels in India, Tr. by watters, T.2 Vols, London 1904-5 and Life of Hiuen Tsang, Tr. by Ball, S. London, 1911

(र) निबंध

पनिक्कर, के.एम. - द स्ट्रक्चर ऑफ पनिशमेंट : मनुस्मृति रीएग्जमिंड, डॉ. निरुपण विद्यालंकार अभिनंदन ग्रंथ, 1984, मेरठ विश्वविद्यालय, संस्कृत अध्यापक परिषद्, मेरठ

मुखर्जी, राधा कुमुद - भारतीय इतिहास कांग्रेस अधिवेशन ग्वालियर (सभापति पद से दिया गया भाषण)

(ल) पत्र-पत्रिकाएँ

जनरल ऑफ बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी

संकेत रेखा

स्मरणिका, 2001 (भारतीय सुदर्शन समाज नागपुर, महाराष्ट्र)

(व) प्रतिवेदन (रिपोर्ट्स, गजेटियर्स)

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के मानव अधिकार, मध्य प्रदेश सरकार की मार्गदर्शिका, मध्य प्रदेश जनसंपर्क, भोपाल, 2002।

आदर्श हिंदी शब्दकोश

इंडियन एंटीक्वायरी, वॉल्यूम-8

इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इसलाम, वॉल्यूम-2

इपिग्राफिया इंडिया, वॉल्यूम-18, पार्ट-2

एनल्स ऑफ भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, वॉल्यूम-23, पार्ट-2

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, 1932 रिपोर्ट लीग इन 1932, ऑफ द डैलीगेशंस सैंट टू इंडिया, बाइ द इंडियन

गवर्नमेंट ऑफ इंड़िया, 1963 रिपोर्ट ऑफ द कमिश्नर फार शैड्यूल कास्ट एंड शैड्यूल ट्राइब्स, 1963

जनगणना प्रतिवेदन 1891

बॉम्बे गजेटियर्स वॉल्यूम-1, पार्ट-2,

रिपोर्ट ऑफ द सर्वे ऑफ द कंडीशंस ऑफ हरिजन इन इलाहाबाद, 1933

शेड्यूल्ड कास्ट ऑफ तमिलनाडु, डोंबार, सीरिज-10, तमिलनाडु पार्ट-वी-बी (इथनोग्राफिक नोट्स) सेंसस ऑफ इंडिया, 1971, वॉल्यूम-2

सेंसस ऑफ इंडिया, 1931, सी.पी. एंड बेरार, पार्ट-1, वॉल्यूम-12, 1933

सेंसस ऑफ इंडिया, 1961, आंध्र प्रदेश, वॉल्यूम-2, पार्ट वी-बी (जी)

सेंसस ऑफ इंडिया, 1971, दिल्ली डाइरेकटरोल पब्लिकेशन, वॉल्यूम-2

सेंसस ऑफ पंजाब, 1881,

सोर्स मैटिरियल्स, वॉल्यूम-1

हरिजन सेवक संघ देहली, 1933 रिपोर्ट ऑफ हरिजन सर्वे कमेटी, कानपुर, 1933-34

हरिजन सेवक संघ देहली, 1934 रिपोर्ट ऑन द कंडीशंस ऑफ हरिजन, देहली

□□□

हिंदू समाज सदैव धर्म, संस्कृति एवं वैदिक व्यवस्था से आच्छादित रही है एवं हिंदू जीवन पद्धति सनातन लोक जीवन की प्रतिछाया है। सनातन लोक़ जीवन का आधार वेद है, इसलिए हिंदू सामाजिक व्यवस्था की अध्ययन दृष्टि वेद सम्मत ही होनी चाहिए। वेद की विशेषता है कि संसार में मानवीय अभ्युत्थान के लिए संपूर्ण विषय वेद में निहित है एवं जो वेद में नहीं है, वह इस संसार में नहीं है।

हिंदू समाज में आज ज़ाति व्यवस्था अर्थहीन हो चुकी है। हिंदू धर्म एवं संस्कृति के अनुपालन में जातियों की कोई भूमिका नहीं होती है। वैदिक व्यवस्था एवं चारों पुरुषार्थ पर हिंदू लोक जीवन चिर निरंतर है। जहाँ राज दंड चूक जाता है, वहाँ धर्म दंड स्वत: कार्य करता है।

डॉ. विजय सोनकर शास्त्रीजी द्वारा लिखित इस कृति के आद्योपांत अध्ययन से यह प्रमाणित है। आज हजारों जातियों के रूप में बिखरे हुए हिंदू समाज के एकता की दिशा में यह एक शोधपरख कार्य है। हिंदू समाज की अभिन्न वाल्मीकि समाज निस्संदेह एक धर्माभिमानी, स्वाभिमानी एवं योद्धा प्रजाति की जाति है। आज उनकी दयनीय स्थिति के लिए उत्तरदायी तत्त्वों को ज्ञात कर उनका समाधान आवश्यक है।

भारत के पुर्नप्रतिस्थापना की दिशा में हिंदू समाज की स्वाभाविक प्राकृतिक समरसता हेतु एवं हिंदू समाज की सर्वस्पर्शी रूप का दर्शन आज की सबसे बड़ी चुनौती है। इस कार्य के लिए डॉ. विजय सोनकर शास्त्री को शुभाशीष और डॉ. शास्त्री के उज्ज्वल भविष्य तथा कल्याण की शुभकामना करता हूँ।

१००८ जगद्गुरु शंकराचार्य
स्वामी श्री वासुदेवानंद सरस्वती
ज्योतिर्मठ, बदरीकाश्रम, हिमालय

लेखक की अन्य पुस्तकें

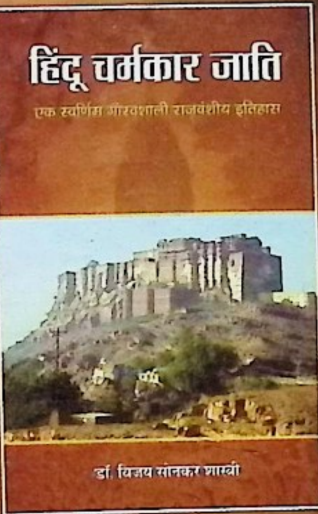

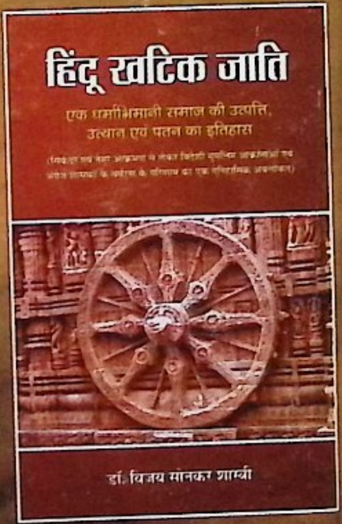

ISBN 978-93-5048-566-8
9 789350 485668
₹ 500/-

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001 : 2008 प्रकाशक
www.prabhatbooks.com